कायाकल्प

भारतीय ग्रन्थ निकेतन द्वारा प्रकाशित

अमर कथा शिल्पी मुंशी प्रेमचंद
का कथा साहित्य

कर्मभूमि
कायाकल्प
ग़बन
गोदान
निर्मला
प्रतिज्ञा
प्रेमाश्रम
मनोरमा
मानसरोवर (कहानी-संग्रह) आठ भाग
रंगभूमि
रूठी रानी और प्रेमा (दो उपन्यास)
वरदान
सेवा सदन

कायाकल्प

(उपन्यास)



भारतीय ग्रन्थ निकेतन
2313 कूचा चेलान, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन,
2713 कूचा चेलान, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

प्रकाशन वर्ष : 1987

मूल्य : 60.00

मुद्रक : हरिकृष्ण प्रिंटर्स,
शाहदरा,
दिल्ली-110032

KAYAKALP (Novel) : Prem Chand

कायाकल्प

दोपहर का समय था; चारों तरफ अँधेरा था। आकाश में तारे छिटके हुए थे। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था, मानो संसार से जीवन का लोप हो गया हो। हवा भी बन्द हो गई थी। सूर्य ग्रहण लगा हुआ था। त्रिवेणी के घाट पर यात्रियों की भीड़ थी—ऐसी भीड़, जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। वे सभी हिन्दू, जिनके दिल में श्रद्धा और धर्म का अनुराग था, भारत के हर एक प्रान्त से इस महान् अवसर पर त्रिवेणी की पावन धारा में अपने पापों का विसर्जन करने के लिए आ पहुँचे थे, मानो उस अँधेरे में भक्ति और विश्वास ने अधर्म पर छापा मारने के लिए अपनी असख्य सेना सजाई हो। लोग इतने उत्साह से त्रिवेणी के संकरे घाट की ओर गिरते-पड़ते लपके चले जाते थे कि यदि जल की शीतल धारा की जगह अग्नि का जलता हुआ कुण्ड होता, तो भी लोग उसमें कूदते हुए जरा भी न झिझकते!

कितने आदमी कुचल गए, कितने डूब गए कितने खो गए, कितने अपंग हो गए, इसका अनुमान करना कठिन है। धर्म का विकट संग्राम था। एक तो सूर्य ग्रहण, उस पर यह साधारण अद्भुत प्राकृतिक छटा! सारा दृश्य धार्मिक वृत्तियों को जगाने वाला था। दोपहर को तारों का प्रकाश माया के परदे को फाड़कर आत्मा को आलोकित करता हुआ मालूम होता था। वैज्ञानिकों की बात जाने दीजिए, पर जनता में न जाने कितने दिनों से यह विश्वास फैला हुआ था कि तारागण दिन को कहीं किसी सागर में डूब जाते हैं। आज वही तारागण आँखों के सामने चमक रहे थे, फिर भक्ति क्यों न जाग उठे! सद्वृत्तियाँ क्यों न आँखें खोल दें!

घण्टे भर के बाद फिर प्रकाश होने लगा, तारागण फिर अदृश्य हो गए, सूर्य भगवान् की समाधि टूटने लगी।

यात्रीगण अपने-अपने पापों की गठरियाँ त्रिवेणी में डालकर जाने लगे। संध्या होते-होते घाट पर सन्नाटा छा गया। हाँ, कुछ घायल कुछ, अधमरे प्राणी जहाँ-तहाँ पड़े कराह रहे थे और ऊँचे कगार से कुछ दूर पर एक नाली में पड़ी तीन-चार साल की एक लड़की चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी।

सेवा-समितियों के युवक, जो अब तक भीड़ सँभालने का विफल प्रयत्न कर रहे थे, अब डोलियाँ कंधों पर ले-लेकर घायलों और भूले-भटकों ... पहुँचे। सेवा और दया का कितना अनुपम दृश्य था!

सहसा एक युवक के कानों में उस बालिका के रोने की आवाज पड़ी। अपने साथी से बोला—यशोदा, उधर कोई लड़का रो रहा है।

यशोदा—हाँ, मालूम तो होता है। इन मूर्खों को कोई कैसे समझाए कि यहाँ बच्चों को लाने का काम नहीं। चलो, देखें।

दोनों ने उधर जाकर देखा, तो एक बालिका नाली में पड़ी रो रही है। गोरा रंग था, भरा हुआ शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, गोरा मुखड़ा, सिर से पाँव तक गहनों से लदी हुई। किसी अच्छे घर की लड़की थी। रोते-रोते उसकी आँखें लाल हो गई थीं। इन दोनों युवकों को देख कर डरी और चिल्लाकर रो पड़ी। यशोदा ने उसे गोद में उठा लिया और प्यार करके बोला—बेटी, रो मत, हम तुझे तेरी अम्मा के घर पहुँचा देंगे। तुझी को खोज रहे थे। तेरे बाप का क्या नाम है?

लड़की चुप तो हो गई, पर संशय की दृष्टि से देख-देख सिसक रही थी। इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सकी।

यशोदा ने पि.. चुमकार कर पूछा—बेटी, तेरा घर कहाँ है?

लड़की ने कोई जवाब न दिया।

यशोदा—अब बताओ महमूद, क्या करें?

महमूद एक अमीर मुसलमान का लड़का था। यशोदानन्दन से उसकी बड़ी दोस्ती थी। उसके साथ यह भी सेवासमिति में दाखिल हो गया था। बोला—क्या बताऊँ? कैंप में ले चलो, शायद कुछ पता चले।

यशोदा—अभागे जरा-जरा से बच्चों को लाते हैं और इतना भी नहीं करते कि उन्हें अपना नाम और पता तो याद करा दें।

महमूद—क्यों बिटिया, तुम्हारे बाबूजी का क्या नाम है?

लड़की ने धीरे से कहा—बाबूजी!

महमूद—तुम्हारा घर इसी शहर में है या कहीं और?

लड़की—मैं तो बाबू जी के साथ लेल पर आयी थी!

महमूद—तुम्हारे बाबूजी क्या करते हैं?

लड़की—कुछ नहीं कलते।

यशोदा—इस वक्त अगर इसका बाप मिल जाए तो सच कहता हूँ, बिना मारे न छोड़ूँ! बचा गहने पहनाकर लाये थे, जाने कोई तमाशा देखने आये हों!

महमूद—और मेरा जी चाहता है कि तुम्हें पीटूँ। मियाँ-बीवी यहाँ आये तो बच्चे को किस पर छोड़ आते! घर में और कोई न हो तो?

यशोदा—तो फिर उन्हीं को यहाँ आने की क्या जरूरत थी?

महमूद—तुम 'एथीइस्ट' (नास्तिक) हो; तुम क्या जानो कि सच्चा मजहबी जोश किसे कहते हैं?

यशोदा—ऐसे मजहबी जोश को दूर से ही सलाम करता हूँ। इस वक्त दोनों मियाँ-बीवी हाय-हाय कर रहे होंगे।

महमूद—कौन जाने, वे भी यहीं कुचल-कुचला गए हों।

लड़की ने साहस कर कहा—तुम हमें घर पहुँचा दोगे ? बाबूजी तुमको पैसा देंगे !

यशोदा—अच्छा बेटी चलो, तुम्हारे बाबूजी को खोजें।

दोनों मित्र बालिका को लिये हुए कैंप में आये; पर वहाँ कुछ पता न चला। तब दोनों उस तरफ गये, जहाँ मैदान में बहुत से यात्री पड़े हुए थे। महमूद ने बालिका को कन्धे पर बैठा लिया और यशोदानन्दन चारों तरफ चिल्लाते फिरे—यह किसकी लड़की है ? किसी की लड़की तो नहीं खो गई ? यह आवाजें सुनकर कितने ही यात्री, हाँ-हाँ, कहाँ-कहाँ, करके दौड़े; पर लड़की को देखकर निराश लौट गए।

चिराग जले तक दोनों मित्र घूमते रहे। नीचे-ऊपर, किले के आस पास, रेल के स्टेशन पर, अलोपी देवी के मन्दिर की तरफ यात्री-ही-यात्री पड़े हुए थे; पर बालिका के माता-पिता का कहीं पता न चला। आखिर निराश होकर दोनों आदमी कैम्प लौट आये।

दूसरे दिन समिति के और कई सेवकों ने फिर पता लगाना शुरू किया। दिन-भर दौड़े, सारा प्रयाग छान मारा सभी धर्मशालाओं की खाक छानी; पर कहीं पता न चला।

तीसरे दिन समाचार-पत्रों में नोटिस दिया गया और दो दिन वहाँ और रह कर समिति आगरे लौट गयी। लड़की को भी अपने साथ लेती गयी। उसे आशा थी कि समाचार-पत्रों से शायद सफलता हो। जब समाचार-पत्रों से कुछ पता न चला, तब विवश होकर कार्यकर्ताओं ने उसे वहीं के अनाथालय में रख दिया। महाशय यशोदानन्दन ही उस अनाथालय के मैनेजर थे।

2

बनारस में महात्मा कबीर के चौरे के निकट मुंशी वज्रधरसिंह का मकान है। आप हैं तो राजपूत, पर अपने को मुंशी लिखते और कहते हैं। 'मुंशी' की उपाधि से आपको बहुत प्रेम है। 'ठाकुर' के साथ आपको गँवारपन का बोध होता है, इसलिए हम भी आपको मुंशीजी कहेंगे। आप कई साल से सरकारी पेंशन पाते हैं। बहुत छोटे पद से तरक्की करते-करते आपने अन्त में तहसीलदारी का उच्च पद प्राप्त कर लिया था। यद्यपि आप उस महान् पद पर तीन मास से अधिक न रहे और उतने दिन भी केवल एवज पर रहे; पर आप अपने को 'साबिक तहसीलदार' लिखते थे और मुहल्लेवाले भी उन्हें खुश करने को 'तहसीलदार साहब' ही कहते थे। यह नाम सुनकर आप खुशी से अकड़ जाते थे, पर पेंशन केवल 25 रु०

मिलती थी, इसलिए तहसीलदार साहब को बाजार-हाट खुद ही करना पड़ता था। घर में चार प्राणियों का खर्च था। एक लड़की थी, एक लड़का और स्त्री। लड़के का नाम चक्रधर था। वह इतना जहीन था कि अपने पिता के पेन्शन के जमाने में जब घर से किसी प्रकार की सहायता न मिल सकती थी, केवल अपने बुद्धि-बल से उसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली थी। मुंशीजी ने पहले ही से सिफारिश पहुँचानी शुरू की थी। दरबारदारी की कला में वह निपुण थे। हुक्काम को सलाम करने का उन्हें मरज था। हाकिमों के दिये हुए सैकड़ों प्रशंसा-पत्र उनकी अतुल सम्पत्ति थे। उन्हें वह बड़े गर्व से दूसरों को दिखाया करते थे। कोई नया हाकिम आये, उससे जरूरत रब्त-जब्त कर लेते थे। हुक्काम ने चक्रधर का ख्याल करने के वादे भी किए थे; लेकिन जब परीक्षा का नतीजा निकला और मुंशीजी ने चक्रधर से कमिश्नर के यहाँ चलने को कहा, तो उन्होंने जाने से साफ इनकार किया!

मुंशीजी ने त्योरी चढ़ाकर पूछा—क्यों? क्या घर बैठे तुम्हें नौकरी मिल जाएगी?

चक्रधर—मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

वज्रधर—यह खब्त तुम्हें कब से सवार हुआ? नौकरी के सिवा और करोगे ही क्या?

चक्रधर—मैं आजाद रहना चाहता हूँ।

वज्रधर—आजाद रहना था तो एम० ए० क्यों किया?

चक्रधर—इसीलिए कि आजादी का महत्त्व समझूँ।

उस दिन से पिता और पुत्र में आये दिन चमचख मचती रहती थी। मुंशीजी बुढ़ापे में भी शौकीन आदमी थे। अच्छा खाने, और अच्छा पहनने की इच्छा अभी तक बनी हुई थी। अब तक इसी खयाल से दिल को समझाते थे कि लड़का नौकर हो जाएगा तो मौज करेंगे। अब लड़के का रंग देखकर बार-बार झुँझलाते और उसे कामचोर-घमंडी, मूर्ख कहकर अपना गुस्सा उतारते थे—अभी तुम्हें कुछ नहीं सूझती, जब मैं मर जाऊँगा तब सूझेगी। तब सिर पर हाथ रखकर रोओगे। लाख बार कह दिया—बेटा, यह जमाना खुशामद और सलामी का है। तुम विद्या के सागर बने बैठे रहो, कोई सेंत भी न पूछेगा। तुम बैठे आजादी का मजा उठा रहे हो और तुम्हारे पीछे वाले बाजी मारे जाते हैं। वह जमाना लद गया, जब विद्वानों की कद्र थी, अब तो विद्वान् टके सेर मिलते हैं, कोई बात नहीं पूछता। जैसे और भी चीजें बनाने के कारखाने खुल गए हैं, उसी तरह विद्वानों के कारखाने हैं और उनकी संख्या हर साल बढ़ती जाती है।

चक्रधर पिता का अदब करते थे, उनको जवाब तो न देते; पर अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए उन्होंने जो मार्ग तय कर लिया था, उससे वह न हटते थे। उन्हें यह हास्यास्पद मालूम होता था कि आदमी केवल पेट पालने के लिए आधी

उम्र पढ़ने मे लगा दे। अगर पेट पालना ही जीवन का आदर्श हो, तो पढ़ने क जरूरत ही क्या है। मजदूर एक अक्षर भी नही जानता, फिर भी वह अपना औ अपने बाल-बच्चो का पेट बड़े मजे से पाल लेता है। विद्या के साथ जीवन क आदर्श कुछ ऊँचा न हुआ, तो पढ़ना व्यर्थ है। विद्या को साधन बनाते उन्हें लज्जा आती थी। वह भूखो मर जाते, लेकिन नौकरी के लिए आवेदन-पत्र लेकर कहीं न जाते। विद्याभ्यास के दिनो मे भी वह सेवाकार्य मे अग्रसर रहा करते थे और अब तो इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही न था। दीनो की सेवा और सहायता मे जो आनन्द और आत्मगौरव था, वह दफ्तर मे बैठ कर कलम घिसने में कहाँ?

इस प्रकार दो साल गुजर गए। मुशी वज्रधर ने समझा था, जब यह भूत इस के सिर से उतर जाएगा, शादी-ब्याह की फिक्र होगी, तो आप-ही-आप नौकरी की तलाश मे दौड़ेगा। जवानी का नशा बहुत दिन तक नही ठहरता। लेकिन जब दो साल गुजर जाने पर भी भूत के उतरने का कोई लक्षण न दिखाई दिया, तो एक दिन उन्होंने चक्रधर को खूब फटकारा—दुनिया का दस्तूर है कि पहले अपने घर मे दिया जलाकर तब मसजिद मे जलाते हैं। तुम अपने घर को अँधेरा रख कर मसजिद को रोशन करना चाहते हो। जो मनुष्य अपनो का पालन न कर सका, वह दूसरों की किस मुँह से मदद करेगा। मैं बुढ़ापे मे खाने-कपड़े को तरसूं और तुम दूसरो का कल्याण करते फिरो। मैंने तुम्हे पैदा किया, दूसरो ने नही; मैंने तुम्हें पाला-पोसा दूसरो ने नही; मैं गोद मे लेकर हकीम-वैद्यो के द्वार-द्वार दौड़ता फिरा, दूसरे नही। तुम पर सबसे ज्यादा हक मेरा है, दूसरो का नही।

चक्रधर अब पिता की इच्छा से मुँह न मोड़ सके। उन्हें अपने कालेज ही मे कोई जगह मिल सकती थी। वहाँ सभी उनका आदर करते थे, लेकिन यह उन्हे मंजूर न था। वह कोई ऐसा धन्धा चाहते थे, जिससे थोड़ी देर रोज काम करके अपने पिता की मदद कर सकें। एक घण्टे से अधिक समय न देना चाहते थे। सयोग से जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह को अपनी लड़की को पढ़ाने के लिए सुयोग्य और सच्चरित्र अध्यापक की जरूरत पड़ी। उन्होने कॉलेज के प्रधाना-ध्यापक को इस विषय मे एक पत्र लिखा। 30 रु० मासिक तक वेतन रक्खा। कालेज का कोई अध्यापक इतने वेतन पर राजी न हुआ। आखिर उन्होने चक्रधर को उस काम पर लगा दिया। काम बड़ी जिम्मेदारी का था, किन्तु चक्रधर इतने शील, इतने गम्भीर और इतने सयमी थे कि उन पर सबको विश्वास था। दूसरे दिन से चक्रधर ने लड़की को पढ़ाना शुरू कर दिया।

3

कई महीने बीत गए। चक्रधर महीने के अन्त में रुपये लाते और माता के हाथ पर रख देते। अपने लिए उन्हें रुपये की कोई जरूरत न थी। दो मोटे कुरतों पर साल काट देते थे। हाँ, पुस्तकों से उन्हें रुचि थी; पर इसके लिए कॉलिज का पुस्तकालय खुला हुआ था, सेवा-कार्य के लिए चन्दों से रुपये आ जाते थे। मुंशी वज्रधर का मुँह भी कुछ सीधा हो गया। डरे कि इससे ज्यादा दबाऊँ, तो शायद यह भी हाथ से जाय। समझ गए कि जब तक विवाह की बेड़ी पाँव में न पड़ेगी, यह महाशय काबू में न आएँगे। वह बेड़ी बनवाने का विचार करने लगे।

मनोरमा की उम्र अभी तेरह वर्ष से अधिक न थी; लेकिन चक्रधर को उसे पढ़ाते हुए बड़ी झेंप होती थी। वह यही प्रयत्न करते थे कि ठाकुर साहब की उपस्थिति ही में उसे पढ़ाएँ। यदि कभी ठाकुर साहब कहीं चले जाते, तो चक्रधर को महान् संकट का सामना करना पड़ता था।

एक दिन चक्रधर इसी संकट में जा फँसे। ठाकुर साहब कहीं गए हुए थे। चक्रधर कुर्सी पर बैठे; पर मनोरमा की ओर न ताककर द्वार की ओर ताक रहे थे, मानो वहाँ बैठते डरते हों। मनोरमा वाल्मीकीय रामायण पढ़ रही थी। उसने दो-तीन बार चक्रधर की ओर ताका, पर उन्हें द्वार की ओर ताकते देखकर फिर किताब देखने लगी। उसके मन में सीता वनवास पर एक शंका हुई थी और वह इसका समाधान करना चाहती थी। चक्रधर ने द्वार की ओर ताकते हुए पूछा—चुप क्यों बैठी हो, आज का पाठ क्यों नहीं पढ़तीं ?

मनोरमा—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ, आज्ञा हो तो पूछूँ ?

चक्रधर ने कातर भाव से कहा—क्या बात है ?

मनोरमा—रामचन्द्र ने सीताजी को घर से निकाला, तो वह चली क्यों गयीं ?

चक्रधर—और क्या करतीं ?

मनोरमा—वह जाने से इनकार कर सकती थीं। एक तो राज्य पर उनका अधिकार भी रामचन्द्र ही के समान था, दूसरे वह निर्दोष थीं। अगर वह यह अन्याय न स्वीकार करतीं, तो क्या उन पर कोई आपत्ति हो सकती थी ?

चक्रधर—हमारे यहाँ पुरुषों की आज्ञा मानना स्त्रियों का परम धर्म माना गया है। यदि सीताजी पति की आज्ञा न मानतीं, तो वह भारतीय सती के आदर्श से गिर जातीं।

मनोरमा—यह तो मैं जानती हूँ कि स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए। लेकिन क्या सभी दशाओं में ? जब राजा से साधारण प्रजा न्याय का दावा कर सकती है, तो क्या उसकी स्त्री नहीं कर सकती ? जब रामचन्द्र ने सीता की परीक्षा ले ली थी और अन्तःकरण से उन्हें पवित्र समझते थे, तो केवल झूठी निन्दा से बचने

के लिए उन्हें घर से निकाल देना कहाँ का न्याय था ?

चक्रधर—राजधर्म का आदर्श पालन करना था।

मनोरमा—तो क्या दोनों प्राणी जानते थे कि हम संसार के लिए आदर्श खड़ा कर रहे हैं ? इससे तो यह सिद्ध होता है कि वे कोई अभिनय कर रहे थे। अगर आदर्श भी मान लें, तो यह ऐसा आदर्श है, जो सत्य की हत्या करके पाला गया है। यह आदर्श नहीं है, चरित्र की दुर्बलता है। मैं आपसे पूछती हूँ, आप रामचन्द्र की जगह होते, तो क्या आप भी सीता को घर से निकाल देते ?

चक्रधर बड़े असमंजस में पड़ गए। उनके मन में स्वयं यही शंका और लगभग इसी उम्र में पैदा हुई थी; पर वह इसका समाधान न कर सके थे। अब साफ-साफ जवाब देने की जरूरत पड़ी, तो बगलें झाँकने लगे।

मनोरमा ने उन्हें चुप देखकर फिर पूछा—क्या आप भी उन्हें घर से निकाल देते ?

चक्रधर—नहीं, मैं तो शायद न निकालता।

मनोरमा—आप निन्दा की जरा भी परवा न करते ?

चक्रधर—नहीं, मैं झूठी निन्दा की परवा न करता।

मनोरमा की आँखें खुशी से चमक उठीं, प्रफुल्लित होकर बोली—यही बात मेरे भी मन में थी। मैंने दादाजी से, भाईजी से, पण्डितजी से, लौंगी अम्मा से, भाभी से, यही शंका की, पर सब लोग यही कहते थे कि रामचन्द्र तो भगवान् हैं, उनके विषय में कोई शंका हो ही नहीं सकती। आपने आज मेरे मन की बात कही। मैं जानती थी कि आप यही जवाब देंगे। इसीलिए मैंने आपसे पूछा था। अब मैं उन लोगों को खूब आड़े-हाथों लूँगी।

उस दिन से मनोरमा को चक्रधर से कुछ स्नेह हो गया। पढ़ने-लिखने से उसे विशेष रुचि हो गई। चक्रधर उसे जो काम करने को दे जाते, वह उसे अवश्य पूरा करती। पहले की भाँति अब हीले-हवाले न करती। अब उनके आने का समय होता, तो वह पहले ही से आकर बैठ जाती और उनका इन्तजार करती। अब उसे उनसे अपने मन के भाव प्रकट करते हुए संकोच न होता। वह जानती थी कि कम-से-कम यहाँ उनका निरादर न होगा, उसकी हँसी न उड़ाई जाएगी।

ठाकुर हरिसेवकसिंह की आदत थी कि पहले दो-चार महीने तक तो नौकरों को वेतन ठीक समय पर दे देते, पर ज्यों-ज्यों नौकर पुराना होता जाता था, उन्हें उसके वेतन की याद भूलती जाती थी। उनके यहाँ कई नौकर ऐसे भी पड़े थे, जिन्होंने वर्षों से अपने वेतन नहीं पाए थे। चक्रधर को भी इधर चार महीनों से कुछ न मिला था। न वही आप-ही-आप देते थे, न चक्रधर संकोचवश माँगते थे। उधर घर में रोज तकरार होती थी। मुंशी वज्रधर बार-बार तकाजे करते, झुँझलाते—माँगते क्यों नहीं ? क्या मुँह में दही जमाया हुआ है, या काम नहीं करते,? लिहाज भले आदमी का किया जाता है। ऐसे लुच्चों का लिहाज नहीं किया जाता।

जो मुफ्त में काम कराना चाहते हैं।

आखिर एक दिन चक्रधर ने विवश हो ठाकुर साहब को एक पुरजा लिखकर अपना वेतन माँगा। ठाकुर साहब ने पुरजा लौटा दिया—व्यर्थ की लिखा-पढ़ी करने की उन्हें फुरसत न थी और कहा—उनको जो कुछ कहना हो, खुद आकर कहें। चक्रधर शरमाते हुए गये और बहुत कुछ शिष्टाचार के बाद रुपये माँगे। ठाकुर साहब हँसकर बोले—वाह बाबूजी, वाह! आप भी अच्छे मौजी जीव हैं। चार महीनों से वेतन नहीं मिला और आपने एक बार भी न माँगा! अब तो आपके पूरे 120 रु० हो गए। मेरा हाथ इस वक्त तंग है। जरा दस पाँच दिन ठहरिए। आपको महीने-महीने अपना वेतन ले लेना चाहिए था। सोचिए, मुझे एकमुश्त देने में कितनी असुविधा होगी! खैर, जाइए, दस-पाँच दिन में रुपये मिल जाएँगे।

चक्रधर कुछ न कह सके। लौटे, तो मुँह पर घोर निराशा छाई हुई थी। आज दादाजी शायद जीता न छोड़ेंगे। इस ख्याल से उनका दिल काँपने लगा। मनोरमा ने उनका पुरजा अपने पिता के पास ले जाते हुए राह में पढ़ लिया था। उन्हें उदास देखकर पूछा—दादाजी ने आपसे क्या कहा?

चक्रधर उसके सामने रुपये-पैसे का जिक्र न करना चाहते थे। झेंपते हुए बोले—कुछ तो नहीं।

मनोरमा—आपको रुपये नहीं दिये?

चक्रधर का मुँह लाल हो गया—मिल जाएंगे।

मनोरमा—आपको 120 रु० चाहिए न?

चक्रधर—इस वक्त कोई जरूरत नहीं है।

मनोरमा—जरूरत न होती तो आप माँगते ही न। दादाजी में बड़ा ऐब है कि किसी के रुपये देते हुए उन्हें मोह लगता है। देखिए, मैं जाकर···

चक्रधर ने रोककर कहा—नहीं-नहीं, कोई जरूरत नहीं।

मनोरमा ने न माना। तुरन्त घर में गयी और एक क्षण में पूरे रुपये लाकर मेज पर रख दिये, मानो कहीं गिने-गिनाये रखे हुए थे।

चक्रधर—तुमने ठाकुर साहब को व्यर्थ कष्ट दिया।

मनोरमा—मैंने उन्हें कष्ट नहीं दिया! उनसे तो कहा भी नहीं। दादाजी किसी की जरूरत नहीं समझते। अगर अपने लिए कभी मोटर मँगवानी हो, तो तुरन्त मँगवा लेंगे; पहाड़ों पर जाना हो, तो तुरन्त चले जाएँगे, पर जिसके रुपये आते हैं, उसको न देंगे।

वह तो पढ़ने लग गई; लेकिन चक्रधर के सामने यह समस्या आ पड़ी कि रुपये लूं, या न लूं। उन्होंने निश्चय किया कि न लेना चाहिए। पाठ हो चुकने पर वह उठ खड़े हुए और बिना रुपये लिये बाहर निकल आये। मनोरमा रुपये लिये हुए पीछे-पीछे बरामदे तक आयी। बार-बार कहती रही—इसे आप लेते जाइए।

जब दादाजी दें तो मुझे लौटा दीजिएगा। पर चक्रधर ने एक न सुनी और जल्दी से बाहर निकल गए।

4

चक्रधर डरते हुए घर पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि द्वार पर चारपाई पड़ी हुई है; उस पर कालीन बिछी हुई है और एक अधेड़ उम्र के महाशय उस पर बैठे हुए हैं। उनके सामने ही एक कुर्सी पर मुंशी वज्रधर बैठे फर्शी पी रहे थे और नाई खड़ा पंखा झल रहा था। चक्रधर के प्राण सूख गए। अनुमान से ताड़ गए कि यह महाशय वर की खोज में आये हैं। निश्चय करने के लिए घर में जाकर माता से पूछा तो अनुमान सच्चा निकला। बोले—दादाजी ने इनसे क्या कहा?

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—नानी क्यों मरी जाती है, क्या जन्म भर क्वांरे ही रहोगे! जाओ, बाहर बैठो; तुम्हारी तो बड़ी देर से जोहाई हो रही है। आज क्यों इतनी देर लगायी?

चक्रधर—यह है कौन?

निर्मला—आगरे के कोई वकील हैं, मुंशी यशोदानन्दन।

चक्रधर—मैं तो घूमने जाता हूँ। जब यह यमदूत चला जाएगा, तो आऊंगा।

निर्मला—वाह रे शर्मीले! तेरा-सा लड़का तो देखा नहीं। आ, जरा सिर में तेल डाल दूं, बाल न जाने कैसे बिखरे हुए हैं। साफ कपड़े पहनकर जरा देर के लिए बाहर जाकर बैठ।

चक्रधर—घर में भोजन भी है कि ब्याह ही कर देने का जी चाहता है? मैं कहे देता हूँ, विवाह न करूँगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए।

किन्तु स्नेहमयी माता कब सुननेवाली थी? उसने उन्हें जबरदस्ती पकड़कर सिर में तेल डाल दिया, सन्दूक से एक धुला हुआ कुरता निकाल लायी और वो पहनाने लगी, जैसे कोई बच्चे को पहनाए। चक्रधर ने गर्दन फेर ली।

निर्मला—मुझसे शरारत करेगा, तो मार बैठूंगी। इधर ला सिर! क्या जन्म भर छूटे सांड बने रहने को जी चाहता है? क्या मुझसे मरते दम तक चूल्हा चक्की कराता रहेगा? कुछ दिनों तो बहू का सुख उठा लेने दे।

चक्रधर—तुमसे कौन कहता है भोजन बनाने को? मैं कल से बना दिया करूँगा। मंगला को क्यों छोड़ रखा है?

निर्मला—अब मैं मारनेवाली ही हूँ। आज तक कभी न मारा; पर आज पीट चलूंगी, नहीं तो जाकर चुपके से बाहर बैठ।

इतने में मुंशीजी ने पुकारा—नन्हें, क्या कर रहे हो? जरा यहाँ तो आओ।

चक्रधर के रहे-सहे होश भी उड़ गए। बोले—जाता तो हूँ, लेकिन कहे देता

हूँ, मैं यह जुआ गले में न डालूँगा। जीवन में मनुष्य का यही काम नहीं है कि विवाह कर ले, बच्चों का बाप बन जाए और कोल्हू के बैल की तरह आँखों पर पट्टी बाँधकर गृहस्थी में जुत जाए।

निर्मला—सारी दुनिया जो करती है, वही तुम्हें भी करना पड़ेगा। मनुष्य का जन्म होता ही किस लिए है?

चक्रधर—हजारों काम हैं?

निर्मला—रुपये आज भी नहीं लाये क्या? कैसे आदमी हैं कि चार-चार महीने हो गए, रुपये देने का नाम नहीं लेते! जाकर अपने दादा को किसी बहाने से भेज दो। कहीं से जाकर रुपये लाएँ। कुछ दावत-आवत का सामान करना ही पड़ेगा, नहीं तो कहेंगे कि नाम बड़े और दर्शन थोड़े।

चक्रधर बाहर आये तो मुंशी यशोदानन्दन ने खड़े होकर उन्हें छाती से लगा लिया और कुर्सी पर बैठाते हुए बोले—अब की 'सरस्वती' में आपका लेख देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इस वैषम्य को मिटाने के लिए आपने जो उपाय बताए हैं, वे बहुत ही विचारपूर्ण हैं।

इस स्नेह-मृदुल आलिंगन और सहृदयतापूर्ण आलोचना ने चक्रधर को मोहित कर लिया! वह कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि मुंशी वज्रधर बोल उठे—आज बहुत देर लगा दी। राजा साहब से कुछ बातचीत होने लगी क्या? (यशोदानन्दन से) राजा साहब की इनके ऊपर बड़ी कृपा है। बिलकुल लड़कों की तरह मानते हैं। इनकी बातें सुनने से उनका जी ही नहीं भरता। (नाई से) देख, चिलम बदल दे और जाकर झिनकू से कह दे, सितार-वितार लेकर थोड़ी देर के लिए यहाँ आ जाए। इधर ही से गणेश के घर जाकर कहना कि तहसीलदार साहब ने एक हाँड़ी अच्छा दही माँगा है। कह देना, दही खराब हुआ, तो दाम न मिलेंगे।

यह हुक्म देकर मुंशीजी घर में चले गये। उधर की फिक्र थी; पर मेहमान को छोड़कर न जा सकते थे। आज उनका ठाट-बाट देखते ही बनता था। अपना अल्पकालीन तहसीलदारी के समय का अलापाके का चोंगा निकाला था। उसी जमाने की मंदील भी सिर पर थी। आँखों में सुरमा भी था, बालों में तेल भी, मानो उन्हीं का ब्याह होने वाला है। चक्रधर शरमा रहे थे, यह महाशय इनके वेश पर दिल में क्या कहते होंगे। राजा साहब की बात सुनकर तो वह गड़ से गए।

मुंशीजी चले गये, तो यशोदानन्दन बोले—अब आपका क्या काम करने का इरादा है?

चक्रधर—अभी तो कुछ निश्चय नहीं किया है। हाँ, यह इरादा है कि कुछ दिनों आज़ाद रहकर सेवाकार्य करूँ।

यशोदा०—इससे बढ़कर क्या हो सकता है! आप जितने उत्साह से समिति

कई मिनट तक तो सब्र किए बैठे रहे, लेकिन न रहा गया। पान की तश्तरी और तसवीर लिये हुए घर में चले आये। चाहते थे कि अपने कमरे में जाकर देखें कि निर्मला ने पूछा—क्या बातचीत हुई? कुछ देंगे-दिलाएँगे कि वही 51 रुपयेवालों में हैं?

चक्रधर ने उग्र होकर कहा—अगर तुम मेरे सामने देने-दिलाने का नाम लोगी, तो जहर खा लूंगा।

निर्मला—वाह रे! तो क्या पचीस बरस तक यों ही पाला-पोसा है क्या? मुंह धो रखें!

चक्रधर—तो बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेतीं? देखो कै टके मिलते हैं।

निर्मला—तुम तो अभी से ससुर के पक्ष में मुझसे लड़ने लगे। ब्याह के नाम ही में कुछ जादू है क्या?

इतने में चक्रधर की छोटी बहिन मंगला तश्तरी में पान रखकर उनको देने लगी, तो कागज में लिपटी हुई तसवीर उसे नजर आयी। उसने तसवीर ले ली और लालटेन के सामने ले जाकर बोली—यह बहू की तसवीर है। देखो, कितनी सुन्दर है!

निर्मला ने जाकर तसवीर देखी, तो चकित रह गई। उसकी आँखें आनन्द से चमक उठीं। बोली—बेटा, तेरे भाग्य जाग गए। मुझे तो कुछ भी न मिले, तो भी इससे तेरा ब्याह कर दूं। कितनी बड़ी-बड़ी आम की फांक-सी आँखें हैं, मैंने ऐसी सुन्दर लड़की नहीं देखी।

चक्रधर ने समीप जाकर उड़ती हुई नजरों से तसवीर देखी और हँसकर बोले—लखावरी ईंट की-सी मोटी तो नाक है, उस पर कहती हो, कितनी सुन्दर है!

निर्मला—चल, दिल में तो फूला न समाता होगा, ऊपर से बातें बनाता है।

चक्रधर—इसी मारे मैं यहाँ न लाता था। लाओ, लौटा दूं।

निर्मला—तुझे मेरी ही कसम है, जो भांजी मारे। मुझे तो इस लड़की ने मोह लिया।

चक्रधर पान की तश्तरी और तसवीर लेकर चले; पर बाहर न जाकर अपने कमरे में गये और बड़ी उत्सुकता से चित्र पर आँखें जमा दीं। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो चित्र ने लज्जा से आँखें नीची कर ली हैं, मानो वह उनसे कुछ कह रही हैं। उन्होंने तसवीर को उलटकर रख दिया और चाहा कि बाहर चला जाऊँ; लेकिन दिल न माना, फिर तसवीर उठा ली और देखने लगे। आँखों को तृप्ति ही न होती थी। उन्होंने अब तक जितनी सूरतें देखी थीं, उनसे मन में इसकी तुलना करने लगे। मनोरमा ही इससे मिलती थी। आँखें दोनों का एक-सी हैं, बाल नेत्रों के समान विहंसते। वर्ण भी एक-से हैं, नख-शिख बिलकुल

मिलता-जुलता; किन्तु यह कितनी लज्जाशील है, वह कितनी चपल ! यह किसी साधु की शान्ति-कुटीर की भाँति लताओं और फूलों से सज्जित है, वह किसी गगनस्पर्शी शैल की भाँति विशाल। यह चित्त को मोहित करती है, वह किसी करती है। यह किसी पालतू पक्षी की भाँति पिंजरे में गानेवाली, वह परामूत पक्षी की भाँति आकाश में उड़ने वाली; यह किसी कवि कल्पना की भाँति मधुर और रसमयी, वह किसी दार्शनिक तत्व की भाँति दुर्बोध और जटिल !

चित्र हाथ में लिए हुए चक्रधर भावी जीवन के मधुर स्वप्न देखने लगे। यह ध्यान ही न रहा कि मुन्शी यशोदानन्दन बाहर अकेले बैठे हुए हैं। अपना व्रत भूल गए, सेवा सिद्धान्त भूल गए, आदर्श भूल गए; भूत और भविष्य भूल वर्तमान में लीन हो गए, केवल एक ही सत्य था, और वह इस चित्र की मधुर कल्पना थी।

सहसा तबले की थाप ने उनकी समाधि भंग की। बाहर संगीत-समाज जमा था। मुन्शी वज्रधर को गाने-बजाने का शौक था। गला तो रसीला न था; पर ताल-स्वर के ज्ञाता थे। चक्रधर डरे कि दादा इस समय कहीं गाने लगें, तो नाहक भद्द हो। जाकर उनके कान में कहा - आप न गाइएगा। संगीत से रुचि थी; पर यह असह्य था कि मेरे पिताजी कत्थकों के साथ बैठकर एक प्रतिष्ठित मेहमान के सामने गाएँ।

जब साज मिल गया, तो झिनकू ने कहा—तहसीलदार साहब, पहले आप ही की हो जाए।

चक्रधर का दिल धड़कने लगा; लेकिन मुन्शीजी ने उनकी ओर आश्वासन की दृष्टि से देखकर कहा—तुम लोग अपना गाना सुनाओ, मैं क्या गाऊँ।

झिनकू—वाह मालिक, वाह ! आपके सामने हम क्या गाएँगे। अच्छे-अच्छे उस्तादों की तो हिम्मत नहीं पड़ती।

वज्रधर अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठते थे। दो-चार बार तो 'नहीं-नहीं' की ...र धुरपद की एक गत छेड़ ही तो दी। पञ्चम स्वर था, आवाज फटी हुई, साँस ...ह जाती थी, बार-बार खाँसकर गला साफ करते थे, लोच का नाम न था, ...-कभी बेसुरे भी हो जाते थे; पर साजिन्दे वाह-वाह की धूम मचाए हुए थे ...या कहना है, तहसीलदार साहब ! ओ हो !

मुन्शीजी को गाने की धुन सवार होती थी, तो जब तक गला न पड़ जाए, ... होते थे। गत समाप्त होते ही आपने 'सूर' का पद छेड़ दिया और 'देस' ...में गाने लगे।

...झनकू—यह पुराने गले की बहार है ! ओ हो !

...ज्रधर—नैन नीर छीजत नहिं कबहूँ, निस-दिन बहत पनारे।

...नकू—जरा बता दीजिएगा, कैसे ?

...धर ने दोनों आँखों पर हाथ रखकर बताया।

कई मिनट तक तो सब्र किए बैठे रहे, लेकिन न रहा गया। पान की तश्तरी और तसवीर लिये हुए घर में चले आये। चाहते थे कि अपने कमरे में जाकर देखें कि निर्मला ने पूछा—क्या बातचीत हुई ? कुछ देंगे-दिलाएँगे कि वही 51 रुपयेवालों में हैं ?

चक्रधर ने उग्र होकर कहा—अगर तुम मेरे सामने देने-दिलाने का नाम लोगी, तो ज़हर खा लूंगा।

निर्मला—वाह रे ! तो क्या पचीस बरस तक यों ही पाला-पोसा है क्या ? मुंह धो रखें !

चक्रधर—तो बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेतीं ? देखो कै टके मिलते हैं।

निर्मला—तुम तो अभी से ससुर के पक्ष में मुझसे लड़ने लगे। ब्याह के नाम ही में कुछ जादू है क्या ?

इतने में चक्रधर की छोटी बहिन मंगला तश्तरी में पान रखकर उनको देने लगी, तो कागज में लिपटी हुई तसवीर उसे नजर आयी। उसने तसवीर ले ली और लालटेन के सामने ले जाकर बोली—यह बहू की तसवीर है। देखो, कितनी सुन्दर है !

निर्मला ने जाकर तसवीर देखी, तो चकित रह गई। उसकी आँखें आनन्द से चमक उठीं। बोली—बेटा, तेरे भाग्य जाग गए। मुझे तो कुछ भी न मिले, तो भी इससे तेरा ब्याह कर दूं। कितनी बड़ी-बड़ी आम की फांक-सी आँखें हैं, मैंने ऐसी सुन्दर लड़की नहीं देखी।

चक्रधर ने समीप जाकर उड़ती हुई नजरों से तसवीर देखी और हँसकर बोले—लखावरी ईंट की-सी मोटी तो नाक है, उस पर कहती हो, कितनी सुन्दर है !

निर्मला—चल, दिल में तो फूला न समाता होगा, ऊपर से बातें बनाता है।

चक्रधर—इसी मारे मैं यहां न लाता था। लाओ, लौटा दूं।

निर्मला—तुझे मेरी ही कसम है, जो भांजी मारे। मुझे तो इस लड़की ने मोह लिया।

चक्रधर पान की तश्तरी और तसवीर लेकर चले; पर बाहर न जाकर अपने कमरे में गये और बड़ी उत्सुकता से चित्र पर आंखें जमा दीं। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो चित्र ने लज्जा से आंखें नीची कर ली हैं, मानो वह उनसे कुछ कह रही हैं। उन्होंने तसवीर को उलटकर रख दिया और चाहा कि बाहर चला जाऊँ; लेकिन दिल न माना, फिर तसवीर उठा ली और देखने लगे। आंखों को तृप्ति ही न होती थी। उन्होंने अब तक जितनी सूरतें देखी थीं, उनसे मन में इसकी तुलना करने लगे। मनोरमा ही इससे मिलती थी। आंखें दोनों की एक-सी हैं, बाल नेत्रों के समान विहंसते। वर्ण भी एक-से हैं, नख-शिख बिलकुल

मिलता-जुलता; किन्तु यह कितनी लज्जाशील है, वह कितनी चपल ! यह किसी साधु की शान्ति-कुटीर की भाँति लताओं और फूलों से सज्जित है, वह किसी गगनस्पर्शी भवन की भाँति विशाल। यह चित्त को मोहित करती है, वह पराभूत करती है। यह किसी पालतू पक्षी की भाँति पिंजरे में गानेवाली, वह किसी अन्य पक्षी की भाँति आकाश में उड़ने वाली; यह किसी कवि कल्पना की भाँति मधुर और रसमयी, वह किसी दार्शनिक तत्व की भाँति दुर्बोध और जटिल !

चित्र हाथ में लिए हुए चक्रधर भावी जीवन के मधुर स्वप्न देखने लगे। यह ध्यान ही न रहा कि मुन्शी यशोदानन्दन बाहर अकेले बैठे हुए हैं। अपना व्रत भूल गए, सेवा सिद्धान्त भूल गए, आदर्श भूल गए; भूत और भविष्य भूल वर्तमान में लीन हो गए, केवल एक ही सत्य था, और वह इस चित्र की मधुर कल्पना थी।

सहसा तबले की थाप ने उनकी समाधि भंग की। बाहर संगीत-समाज जमा था। मुन्शी वज्रधर को गाने-बजाने का शौक था। गला तो रसीला न था; पर ताल-स्वर के ज्ञाता थे। चक्रधर डरे कि दादा इस समय कहीं गाने लगें, तो नाहक भद्द हो। जाकर उनके कान में कहा—आप न गाइएगा। संगीत से रुचि थी; पर यह अगाह था कि मेरे पिताजी कत्थकों के साथ बैठकर एक प्रतिष्ठित मेहमान के सामने गाएँ।

जब साज मिल गया, तो झिनकू ने कहा—तहसीलदार साहब, पहले आप ही की हो जाए।

चक्रधर का दिल धड़कने लगा; लेकिन मुन्शीजी ने उनकी ओर आश्वासन की दृष्टि से देखकर कहा—तुम लोग अपना गाना सुनाओ, मैं क्या गाऊँ।

झिनकू—वाह मालिक, वाह ! आपके सामने हम क्या गाएँगे। अच्छे-अच्छे उस्तादों की तो हिम्मत नहीं पड़ती।

वज्रधर अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठते थे। दो-चार बार तो 'नहीं-नहीं' की फिर धुरपद की एक गत छेड़ ही तो दी। पञ्चम स्वर था, आवाज फटी हुई, साँस उखड़ जाती थी, बार-बार खाँसकर गला साफ करते थे, लोच का नाम न था, कभी-कभी बेसुरे भी हो जाते थे; पर साजिन्दे वाह-वाह की धूम मचाए हुए थे—क्या कहना है, तहसीलदार साहब ! ओ हो !

मुन्शीजी को गाने की धुन सवार होती थी, तो जब तक गला न पड़ जाए, चुप न होते थे। गत समाप्त होते ही आपने 'सूर' का पद छेड़ दिया और 'देस' की धुन में गाने लगे।

झिनकू—यह पुराने गले की बहार है ! ओ हो !

वज्रधर—नीर नीर दोउन नहिं कबहूँ, निस-दिन बहत पनारे।

झिनकू—जरा बता दीजिएगा, कैसे ?

वज्रधर ने दोनों आँखों पर हाथ रखकर बताया।

चक्रधर से अब सहा नहीं गया। नाहक अपनी हँसी करा रहे हैं। इस बेसुरेपन र मुंशी यशोदानन्दन दिल में कितना हँस रहे होंगे। शर्म के मारे वह वहाँ खड़ा न रह सके। घर में चले गए; लेकिन यशोदानन्दन बड़े ध्यान से गाना सुन रहे थे। बीच-बीच में सिर भी हिला देते थे। जब गीत समाप्त हुआ, तो बोले—वह-सीलदार, साहब, आप इस फन के उस्ताद हैं!

वज्रधर—यह आपकी कृपा है, मैं गाना क्या जानूँ, इन्हीं लोगों की संगति में कुछ शुद-बुद आ गया।

झिनकू—ऐसा न कहिए मालिक, हम सब तो आप ही के सिखाए-पढ़ाए हैं।

यशोदा॰—मेरा तो जी चाहता है कि आपका शिष्य हो जाऊँ।

वज्रधर—क्या कहूँ, आपने स्वर्गीय पिताजी का गाना नहीं सुना। बड़ा कमाल था। कोई उस्ताद उनके सामने मुँह न खोल सकता था। लाखों की जायदाद उसी के पीछे लुटा दी। अब तो इसकी चर्चा ही उठती जाती है।

यशोदा॰—अब की न कहिए। आजकल के युवकों में तो गाने की रुचि ही नहीं रही। न गा सकते हैं न समझ सकते हैं। उन्हें गाते शर्म आती है।

वज्रधर—रईसों में भी इसका शौक उठता जाता है।

यशोदा॰—पेट के धन्धे से किसी को छुट्टी नहीं मिलती, गाए बजाए कौन?

झिनकू—(यशोदानन्दन से) हुजूर को गाने का शौक मालूम होता है!

यशोदा॰—अजी, जब था तब था! सितार वितार की दो-चार गतें बजा लेता था। अब सब छोड़-छाड़ दिया।

झिनकू—कितना ही छोड़-छाड़ दिया है; लेकिन आजकल के नौसिखियों से अच्छे ही होंगे। अबकी आप ही की हो।

यशोदानन्दन ने भी दो-चार बार इनकार करने के बाद काफी की धुन में एक ठुमरी छेड़ दी। उनका गला मँजा हुआ था, इस कला में निपुण थे, ऐसा मस्त होकर गाया कि सुननेवाले झूम-झूम गए। उनकी सुरीली तान साज में मिल जाती थी। वज्रधर ने तो वाह-वाह का तार बाँध दिया। झिनकू के छक्के छूट गए। मजा यह कि साथ ही साथ सितार भी बजाते थे। आसपास के लोग आकर जमा हो गए। समाँ बँध गया। चक्रधर ने यह आवाज सुनी, तो दिल में कहा, यह महाशय भी उसी टुकरी के लोगों में हैं, उसी रंग में रँगे हुए। अब झेंप जाती रही। बाहर आकर बैठ गए।

वज्रधर ने कहा—भाई साहब, आपने तो कमाल कर दिया। बहुत दिनों से ऐसा गाना न सुना था। कैसी रही, झिनकू?

झिनकू—हुजूर, कुछ न पूछिए, सिर धुन रहा हूँ। मेरी तो अब गाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। आपने हम सबों का रंग फीका कर दिया। पुराने जमाने के रईसों की क्या बातें हैं।

यशोदा॰—कभी-कभी जी बहला लिया करता हूँ, वह भी लुक-छिपक

लत्ते भी नहीं हैं; बस, यह दो कुरतों की पूँजी है। बहुत हैस-बैस के बाद
—मैं आपसे सच कहता हूँ, मैं अपने को ऐसी···ऐसी सुयोग्य स्त्री के योग्य
समझता।

यशोदा०—इन हीलों से मैं आपका दामन छोड़नेवाला नहीं हूँ। मैं आपके
ीभावों को समझ रहा हूँ। आप संकोच के कारण ऐसा कह रहे हैं; पर अहिल्या
न चंचल लड़कियों में नहीं है, जिसके सामने जाते हुए आपको शरमाना पड़े।
ाप उसकी सरलता देखकर प्रसन्न होंगे। हाँ, मैं इतना कर सकता हूँ कि आपकी
ातिर से पहले यह कहूँ कि आप परदेशी आदमी हैं, यहाँ सैर करने आए हैं।
स्टेशन पर होटल पूछ रहे थे। मैंने समझा, सीधे आदमी हैं, होटल में लुट जाएँगे,
साथ लेता आया। क्यों, कैसी रहेगी?

चक्रधर ने अपनी प्रसन्नता को छिपाकर कहा—क्या यह नहीं हो सकता कि
मैं और किसी समय आ जाऊँ।

यशोदा०—नहीं, मैं इस काम में विलम्ब नहीं करना चाहता। मैं तो उस
को लाकर दो चार दिन के लिए यहाँ ठहरा सकता हूँ; पर शायद आपके घर ..
लोग यह पसन्द न करेंगे।

चक्रधर ने सोचा, अगर मैंने और ज्यादा टालमटोल की, तो कहीं यह महाशय
सचमुच ही अहिल्या को यहाँ न पहुँचा दें। तब तो सारा परदा ही खुल जाएगा।
घर की दशा देखकर अवश्य ही उनका दिल फिर जाएगा। एक तो जरा-सा घर,
कहीं बैठने की जगह नहीं, उस पर न कोई साज, न सामान। विवाह हो जाने के
बाद दूसरी बात हो जाती है। लड़की कितने ही बड़े घराने की हो, समझ लेती है
अब तो यही मेरा घर है—अच्छा हो या बुरा। दो-चार दिन अपनी तकदीर क
रोकर शान्त हो जाती है। बोले—जी हाँ, यह मुनासिब नहीं मालूम होता।
ही चला चलूँगा।

घर में विद्या का प्रचार होने से प्रायः सभी प्राणी कुछ-न-कुछ उदार हो जाते
हैं। निर्मला तो खुशी से राजी हो गई। हाँ, मुंशी वज्रधर को कुछ संकोच हुआ;
लेकिन यह समझकर कि यह महाशय लड़के पर लट्टू हो रहे हैं, कोई अच्छी रकम
दे मरेंगे, उन्होंने भी कोई आपत्ति न की। अब केवल ठाकुर हरिसेवकसिंह को
सूचना देनी थी। चक्रधर यों तीसरे पहर पढ़ाने जाया करते थे; पर आज न
बजते-बजते जा पहुँचे।

ठाकुर साहब इस वक्त अपनी प्राणेश्वरी लौंगी से कुछ बातें कर रहे थे
मनोरमा की माता का देहान्त हो चुका था। लौंगी उस वक्त लौंडी थी। उ
इतनी कुशलता से घर सँभाला कि ठाकुर साहब उस पर [illegible], और
गृहिणी के रिक्त स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। [illegible] और रूप में इतना प्र
विरोध बहुत कम होगा। लोग कहते हैं, पहले यह इतनी सुन्दरी थी कि फू

तो उड़ जाए; पर गृहिणी का पद पाते ही उसकी प्रतिमा स्थूल रूप धारण करने लगी।

क्षीण जलधारा बरसात की नदी की भाँति बढ़ने लगी और इस समय तो स्थूल प्रतिमा की विशाल मूर्ति थी, अचल और अपार। बरसाती नदी का जल गड्ढों और गड़हियों में भर गया था। बस, जल-ही-जल दिखाई देता था। न आँखों का पता था, न नाक का, न मुँह का, सभी जगह स्थूलता व्याप्त हो रही थी; पर बाहर की स्थूलता ने अन्दर की कोमलता को अक्षुण्ण रखा था। सरल, सदय, हँसमुख, सहनशील स्त्री थी, जिसने सारे घर को वशीभूत कर लिया था। यह उसी की सज्जनता थी, जो नौकरों को वेतन न मिलने पर भी जाने न देती थी। मनोरमा पर तो वह प्राण देती थी। ईर्ष्या, क्रोध, मत्सर उसे छू भी न गया था। वह उदार न हो, पर कृपण न थी। ठाकुरसाहब व कभी-कभी उस पर भी बिगड़ जाते थे, मारने दौड़ते थे, दो-एक बार मारा भी था; पर उसके माथे पर जरा भी बल न आता। ठाकुर साहब का सिर भी दुखे, तो उसकी जान निकल जाती थी। वह उसकी स्नेहमयी सेवा ही थी, जिसने ऐसे हिंसक जीव को जकड़ रखा था।

इस वक्त दोनों प्राणियों में कोई बहस छिड़ी हुई थी। ठाकुर साहब झल्ला-झल्ला कर बोल रहे थे और लौंगी अपराधियों की भाँति सिर झुकाए खड़ी थी कि मनोरमा ने आकर कहा—बाबूजी आए हैं, आपसे कुछ कहना चाहते हैं।

ठाकुर साहब की भौंहें तन गईं। बोले—कहना क्या चाहते होंगे, रुपये माँगने आए होंगे। अच्छा, जाकर कह दो कि आते हैं, बैठिए।

लौंगी—इनके रुपये दे क्यों नहीं देते? बेचारे गरीब आदमी हैं; संकोच के मारे नहीं माँगते, कई महीने तो चढ़ गए?

ठाकुर—यह भी तुम्हारी मूर्खता थी, जिसकी बदौलत मुझे यह तावान देना पड़ता है। कहता था कि कोई ईसाइन रख लो; दो-चार रुपये में काम चल आएगा। तुमने कहा—नहीं, कोई लायक आदमी होना चाहिए। इनके लायक होने में शक नहीं; पर यह तो बुरा मालूम होता है कि जब देखो, रुपये के लिए सिर पर सवार। अभी कल कह दिया कि घबराइए नहीं, दस-पाँच दिनों में मिल जाएँगे। तब तक फिर भूत की तरह सवार हो गए।

लौंगी—कोई ऐसी ही जरूरत आ पड़ी होगी, तभी आए होंगे। 120 रुपये हुए न? मैं लाए देती हूँ।

ठाकुर—हाँ सन्दूक खोलकर लाना तो कोई कठिन काम नहीं। अखर तो उसे होती है, जिसे कुआँ खोदना पड़ता है।

लौंगी—वही कुआँ तो उन्होंने भी खोदा है। तुम्हें चार महीने तक कुछ न मिले, तो क्या हाल होगा, सोचो। मुझे तो बेचारे पर दया आती है।

यह कह कर लौंगी गयी और रुपये लाकर ठाकुर साहब से बोली—लो, दे

कपड़े-लत्ते भी नहीं हैं; बस, यह दो कुरतों की पूँजी है। बहुत हँस-बँस के बाद बोले—मैं आपसे सच कहता हूँ, मैं अपने को ऐसी···ऐसी सुयोग्य स्त्री के योग्य नहीं समझता।

यशोदा०—इन हीलों से मैं आपका दामन छोड़नेवाला नहीं हूँ। मैं आपके मनोभावों को समझ रहा हूँ। आप संकोच के कारण ऐसा कह रहे हैं; पर अहिल्या उन चंचल लड़कियों में नहीं है, जिसके सामने जाते हुए आपको शरमाना पड़े। आप उसकी सरलता देखकर प्रसन्न होंगे। हाँ, मैं इतना कर सकता हूँ कि आपकी खातिर से पहले यह कहूँ कि आप परदेशी आदमी हैं, यहाँ सैर करने आए हैं। स्टेशन पर होटल पूछ रहे थे। मैंने समझा, सीधे आदमी हैं, होटल में लुट जाएँगे, साथ लेता आया। क्यों, कैसी रहेगी?

चक्रधर ने अपनी प्रसन्नता को छिपाकर कहा—क्या यह नहीं हो सकता कि मैं और किसी समय आ जाऊँ।

यशोदा०—नहीं, मैं इस काम में विलम्ब नहीं करना चाहता। मैं तो उसी को लाकर दो चार दिन के लिए यहाँ ठहरा सकता हूँ; पर शायद आपके घर के लोग यह पसन्द न करेंगे।

चक्रधर ने सोचा, अगर मैंने और ज्यादा टालमटोल की, तो कहीं यह महाशय सचमुच ही अहिल्या को यहाँ न पहुँचा दें। तब तो सारा परदा ही खुल जाएगा। घर की दशा देखकर अवश्य ही उनका दिल फिर जाएगा। एक तो जरा-सा घर, कहीं बैठने की जगह नहीं, उस पर न कोई साज, न सामान। विवाह हो जाने के बाद दूसरी बात हो जाती है। लड़की कितने ही बड़े घराने की हो, समझ लेती है, अब तो यही मेरा घर है—अच्छा हो या बुरा। दो-चार दिन अपनी तकदीर को रोकर शान्त हो जाती है। बोले—जी हाँ, यह मुनासिब नहीं मालूम होता। मैं ही चला चलूँगा।

घर में विद्या का प्रचार होने से प्रायः सभी प्राणी कुछ-न-कुछ उदार हो जाते हैं। निर्मला तो खुशी से राजी हो गई। हाँ, मुंशी वज्रधर को कुछ संकोच हुआ; लेकिन यह समझकर कि यह महाशय लड़के पर लट्टू हो रहे हैं, कोई अच्छी रकम दे मरेंगे, उन्होंने भी कोई आपत्ति न की। अब केवल ठाकुर हरिसेवकसिंह को सूचना देनी थी। चक्रधर यों तीसरे पहर पढ़ाने जाया करते थे; पर आज नौ बजते-बजते जा पहुँचे।

ठाकुर साहब इस वक्त अपनी प्राणेश्वरी लौंगी से कुछ बातें कर रहे थे। मनोरमा की माता का देहान्त हो चुका था। लौंगी उस वक्त लौंडी थी। उसने इतनी कुशलता से घर सँभाला कि ठाकुर साहब उस पर रीझ गए और उसे गृहिणी के रिक्त स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। नाम और गुण में इतना प्रत्यक्ष विरोध बहुत कम होगा। लोग कहते हैं, पहले वह इतनी दुबली थी कि फूँक दो

तो उड़ जाए; पर गृहिणी का पद पाते ही उसकी प्रतिमा स्थूल रूप धारण करने लगी।

क्षीण जलधारा बरसात की नदी की भाँति बढ़ने लगी और इस समय तो स्थूल प्रतिमा की विशाल मूर्ति थी, अचल और अपार। बरसाती नदी का जल गड्ढों और गड्ढियों में भर गया था। बस, जल-ही-जल दिखाई देता था। न आँखों का पता था, न नाक का, न मुँह का, सभी जगह स्थूलता व्याप्त हो रही थी; पर बाहर की स्थूलता ने अन्दर की कोमलता को अक्षुण्ण रखा था। सरल, सदय, हँसमुख, सहनशील स्त्री थी, जिसने सारे घर को वशीभूत कर लिया था। यह उसी की सज्जनता थी, जो नौकरों को वेतन न मिलने पर भी जाने न देती थी। मनोरमा पर तो वह प्राण देती थी। ईर्ष्या, क्रोध, मत्सर उसे छू भी न गया था। वह उदार न हो; पर कृपण न थी। ठाकुरसाहब कभी-कभी उस पर भी बिगड़ जाते थे, मारने दौड़ते थे, दो-एक बार मारा भी था; पर उसके माथे पर जरा भी बल न आता। ठाकुर साहब का सिर भी दुखे, तो उसकी जान निकल जाती थी। यह उसकी स्नेहमयी सेवा ही थी, जिसने ऐसे हिंसक जीव को जकड़ रखा था।

इस वक्त दोनों प्राणियों में कोई बहस छिड़ी हुई थी। ठाकुर साहब भल्ला-भल्ला कर बोल रहे थे और लौंगी अपराधियों की भाँति सिर झुकाए खड़ी थी कि मनोरमा ने आकर कहा—बाबूजी आए हैं, आपसे कुछ कहना चाहते हैं।

ठाकुर साहब की भौंहें तन गईं। बोले—कहना क्या चाहते होंगे, रुपये माँगने आए होंगे। अच्छा, जाकर कह दो कि आते हैं, बैठिए।

लौंगी—इनके रुपये दे क्यों नहीं देते ? बेचारे गरीब आदमी हैं; संकोच के मारे नहीं माँगते, कई महीने तो चढ़ गए ?

ठाकुर—यह भी तुम्हारी मूर्खता थी, जिसकी बदौलत मुझे यह तावान देना पड़ता है। कहता था कि कोई ईसाइन रख लो; दो-चार रुपये में काम चल जाएगा। तुमने कहा—नहीं, कोई लायक आदमी होना चाहिए। इनके लायक होने में शक नहीं; पर यह तो बुरा मालूम होता है कि जब देखो, रुपये के लिए सिर पर सवार। अभी कल कह दिया कि घबराइए नहीं, दस-पाँच दिनों में मिल जाएँगे। तब तक फिर भूत की तरह सवार हो गए।

लौंगी—कोई ऐसी ही जरूरत आ पड़ी होगी, तभी आए होंगे। 120 रुपये हुए न ? मैं लाए देती हूँ।

ठाकुर—हाँ सन्दूक खोलकर लाना तो कोई कठिन काम नहीं। अखर तो उसे होती है, जिसे कुआँ खोदना पड़ता है।

लौंगी—यही कुआँ तो उन्होंने भी खोदा है। तुम्हें चार महीने तक कुछ न मिले, तो क्या हाल होगा, सोचो। मुझे तो बेचारे पर दया आती है।

यह कह कर लौंगी गयी और रुपये लाकर ठाकुर साहब से बोली—लो, दे

आओ। सुन लेना, शायद कुछ कहना भी चाहते हों।

ठाकुर—लायी भी तो रुपये, नोट न थे क्या?

लौंगी—जैसे नोट वैसे रुपये, इसमें भी कुछ भेद है?

ठाकुर—अब तुमसे क्या कहूँ। अच्छा रख दो, जाता हूँ। पानी तो नहीं बरस रहा है कि भीग रहे होंगे।

ठाकुर साहब ने झुंझलाकर रुपये उठा लिये और बाहर चले, लेकिन रास्ते में क्रोध शान्त हो गया। चक्रधर के पास पहुंचे, तो विनय के देवता बने हुए थे।

चक्रधर—आपको कष्ट देने—

ठाकुर—नहीं-नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मैंने आपसे दस-पाँच दिन में देने का वायदा किया था। मेरे पास रुपये न थे; पर स्त्रियों को तो आप जानते हैं, कितनी चतुर होती हैं। घर में रुपये निकल आए। यह लीजिए।

चक्रधर—मैं इस वक्त एक दूसरे ही काम से आया हूँ। मुझे एक काम से आगरे जाना है। शायद दो-तीन दिन लगेंगे। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

ठाकुर—हां,हां, शौक से जाइए, मुझसे पूछने की जरूरत न थी।

ठाकुर साहब अन्दर चले गये तब मनोरमा ने पूछा— आप आगरे क्या करने जा रहे हैं?

चक्रधर—एक जरूरत से जाता हूँ।

मनोरमा—कोई बीमारी है क्या?

चक्रधर—नहीं, बीमारी कोई नहीं है।

मनोरमा—फिर क्या काम है, बताते क्यों नहीं? जब तक न बतलाइएगा, मैं जाने न दूंगी।

चक्रधर—लौटकर बता दूंगा।

मनोरमा—जी नहीं, मैं यह नहीं मानती, अभी बतलाइए।

चक्रधर—एक मित्र से मिलने जाता हूँ।

मनोरमा—आप मुस्करा रहे हैं। मैं समझ गई, नौकरी की तलाश में जाते हैं।

चक्रधर—नहीं मनोरमा, यह बात नहीं है। मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

मनोरमा— तो क्या आप हमेशा इसी तरह देहातों में घूमा करेंगे?

चक्रधर—विचार तो ऐसा ही है, फिर जैसी ईश्वर की इच्छा!

मनोरमा—आप रुपये कहाँ से लाएँगे? उन कामों के लिए भी तो रुपयों की जरूरत होती होगी?

चक्रधर—भिक्षा मांगूंगा। पुण्य कार्य भिक्षा पर ही चलते हैं।

मनोरमा—तो आजकल भी आप भिक्षा मांगते होंगे?

चक्रधर—हां, मांगता क्यों नहीं। न मांगूं, तो काम कैसे चले!

मनोरमा—मुझसे तो आपने नहीं माँगा।

चक्रधर—तुम्हारे ऊपर तो विश्वास है कि जब माँगूँगा, तब दे दोगी; इसलिए कोई विशेष काम आ पड़ने पर माँगूँगा।

मनोरमा—और जो उस वक्त मेरे पास न हुए तो?

चक्रधर—तो फिर कभी माँगूँगा!

मनोरमा—तो आप मुझसे अभी माँग लीजिए, अभी मेरे पास रुपये हैं, दे दूँगी। फिर आप न जाने किस वक्त माँग बैठें?

यह कहकर मनोरमा अन्दर गयी और कलवाले 120 रुपये लाकर चक्रधर के सामने रख दिये।

चक्रधर—इस वक्त तो मुझे जरूरत नहीं। फिर कभी ले लूँगा।

मनोरमा—जी नहीं, लेते जाइए। मेरे पास खर्च हो जाएँगे। एक दफे भी बाजार गयी, तो यह गायब हो जाएँगे। इसी डर के मारे मैं बाजार नहीं जाती।

चक्रधर—तुमने ठाकुर साहब से पूछ लिया है?

मनोरमा—उनसे क्यों पूछूँ? गुड़िया लाती हूँ, तो उनसे नहीं पूछती; तो फिर इसके लिए उनसे क्यों पूछूँ।

चक्रधर—तो फिर यों मैं न लूँगा। यह स्थिति और ही है। यह ख्याल हो सकता है कि मैंने तुमसे रुपये ठग लिये। तुम्हीं सोचो, हो सकता है या नहीं?

मनोरमा—अच्छा, आप अमानत समझकर अपने पास रखे रहिए।

इतने में सामने से मुश्की घोड़ों की फिटन जाती हुई दिखाई दी घोड़ों के साजों पर गंगाजमुनी काम किया हुआ था। चार सवार भाले उठाए पीछे दौड़ते चले आते थे।

[illegible]

[illegible] उनके यहाँ जाती हूँ, मुझे [illegible] हुई हैं। न जाने क्यों मुझे बहुत मानती हैं।

चक्रधर—इनकी कोठी दुर्गाकुण्ड की तरफ है न! मैं एक दिन इनके यहाँ भिक्षा माँगने जाऊँगा।

मनोरमा—मैं जगदीशपुर की रानी होती, तो आपको बिना माँगे ही बहुत सा धन दे देती।

चक्रधर ने मुस्कराकर कहा—तब भूल जाती।

मनोरमा—जी नहीं; मैं कभी नहीं भूलती।

चक्रधर—अच्छा, कभी याद दिलाऊँगा। इस वक्त यह [illegible] रहने दो।

अधिकार है ! आप न लेंगे तो मैं सच कहती हूँ, आज ही जाकर इन्हें गंगा में फेंक आऊँगी ।

चक्रधर ने धर्मसंकट में पड़कर कहा—तुम इतना आग्रह करती हो, तो मैं लिये लेता हूँ; लेकिन इसे अमानत समझूँगा ।

मनोरमा प्रसन्न होकर बोली—हाँ, अमानत ही समझ लीजिए ।

चक्रधर—तो मैं जाता हूँ । किताब देखती रहना ।

मनोरमा—आप मुझसे बिना बताए चले जाएँगे, तो मैं कुछ न पढ़ूँगी ।

चक्रधर—यह तो बड़ी टेढ़ी शर्त है । बतला ही दूँ । अच्छा, हँसना मत । तुम जरा भी मुस्करायीं और मैं चला ।

मनोरमा—मैं दोनों हाथों से मुँह बन्द किए लेती हूँ ।

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—मेरे विवाह की कुछ बातचीत है । मेरी तो इच्छा नहीं है; पर एक महाशय जबरदस्ती खींचे लिये चले जाते हैं ।

यह कहकर चक्रधर उठ खड़े हुए । मनोरमा भी उनके साथ-साथ आयी । जब वह बरामदे से नीचे उतरे, तो प्रणाम किया और तुरन्त अपने कमरे में लौट आयी । उसकी आँखें डबडबाई थीं और बार-बार रुलाई आती थी, मानो चक्रधर किसी दूर देश जा रहे हों !

5

सन्ध्या समय जब रेलगाड़ी बनारस से चली, तो यशोदानन्दन ने चक्रधर से पूछा—क्यों भैया, तुम्हारी राय में झूठ बोलना किसी दशा में क्षम्य है या नहीं ?

चक्रधर ने विस्मित होकर कहा—मैं तो समझता हूँ, नहीं ।

यशोदा०—किसी भी दशा में नहीं ?

चक्रधर—मैं तो यही कहूँगा कि किसी दशा में भी नहीं, हालाँकि कुछ लोग परोपकार के लिए असत्य को क्षम्य समझते हैं ।

यशोदा०—मैं भी उन्हीं लोगों में हूँ । मेरा ख्याल है कि पूरा वृत्तान्त सुनकर शायद आप भी मुझसे सहमत हो जाएँ । मैंने अहिल्या के विषय में आपसे झूठी बातें कही हैं । वह वास्तव में मेरी लड़की नहीं है । उसके माता-पिता का हमें कुछ भी पता नहीं ।

चक्रधर ने आँखें बड़ी-बड़ी करके कहा—तो फिर आपके यहाँ कैसे आयी ?

यशोदा०—विचित्र कथा है । 15 वर्ष हुए, एक बार सूर्यग्रहण लगा था । उन दिनों कालेज में था । हमारी एक सेवासमिति थी । हम लोग उसी स्नान अवसर पर यात्रियों की सेवा करने प्रयाग आये थे । तुम तो उस वक्त बहु छोटे से रहे होंगे । इतना बड़ा मेला फिर नहीं लगा । वहीं हमें यह लड़

भी साग बेचते न नजर आते थे। हाँ, गलियों में लोग जमा होकर बातें कर रहे थे।

कुछ दूर तक तीनों आदमी मौन धारण किए बैठ रहे। चक्रधर शंकित होकर इधर-उधर ताक रहे थे। जरा भी घोड़ा रुक जाता, तो उनका दिल धड़कने लगता कि किसी ने ताँगा रोक तो नहीं लिया; लेकिन यशोदानन्दन के मुख पर ग्लानि का गहरा चिह्न दिखाई दे रहा था। उनके मुहल्ले में आज तक कभी कुरबानी न हुई थी। हिन्दू और मुसलमान का भेद ही न मालूम होता था। उन्हें आश्चर्य होता था कि और शहरों में कैसे हिन्दू मुसलमानों में झगड़े हो जाते हैं। और तीन ही दिन में यह नौबत आ गई!

सहसा उन्होंने उत्तेजित होकर कहा—राधामोहन, देखो, मैं तो यहीं उतरा जाता हूँ! जरा महमूद से मिलूंगा। तुम इन बाबू साहब को लेकर घर जाओ। आप मेरे एक मित्र के लड़के हैं, यहाँ सैर करने आये हैं. बैठक में आपकी चारपा डलवा देना, और देखो, अगर दैवसंयोग से मैं लौटकर न आ सकूं, तो घब की बात नहीं। जब लोग खूनखच्चर करने पर तुले हुए हैं, तो सब कुछ स और मैं उन आदमियों में नहीं हूँ कि गौ की हत्या होते देखूं और शान्त ख अगर मैं लौटकर न आ सकूं, तो तुम घर में कहला देना कि अहिल्या का आप ही के साथ कर दिया जाए।

है, इस मुहल्ले मे कभी कुरवानी हुई है ?

महमूद—जी नहीं, जहाँ तक मेरा ख्याल है, यहाँ कभी कुरवानी नहीं हुई।

यशोदा०—तो फिर आज आप यहाँ कुरवानी करने की नई रस्म क्यों निकाल रहे हैं ?

महमूद—इसलिए कि कुरवानी करना हमारा हक है। अब तक हम आपके जज्बात का लिहाज करते थे, अपने माने हुए हक भूल गए थे। लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जज्बात की परवाह नहीं करते, तो कोई वजह नहीं कि हम अपने हकों के सामने आपके जज्बात की परवा करें। मुसलमानों की शुद्धि करने का आपको पूरा हक हासिल है, लेकिन कम से कम पाँच सौ बरसों में आपके यहाँ शुद्धि की कोई मिसाल नहीं मिलती। आप लोगों ने एक मुर्दा हक को जिन्दा किया है। इसीलिए न, कि मुसलमानों की ताकत और असर कम हो जाए। जब आप हमें जेर करने के लिए नए-नए हथियार निकाल रहे हैं, तो हमारे लिए इसके सिवा और क्या चारा है कि अपने हथियारों को दूनी ताकत से चलाएँ।

यशोदा०—इसके यह मानी हैं कि कल आप हमारे द्वारों पर, हमारे मन्दिरों के सामने कुरवानी करें और हम चुपचाप देखा करें ! आप यहाँ हरगिज कुरवानी नहीं कर सकते और करेंगे तो इसकी जिम्मेदारी आपके सिर पर होगी।

यह कहकर यशोदानन्दन फिर ताँगे पर बैठे। दस-पाँच आदमियों ने ताँगे को रोकना चाहा; पर कोचवान ने घोड़ा तेज कर दिया। दम के दम ताँगा उड़ता हुआ यशोदानन्दन के द्वार पर पहुँच गया, जहाँ हजारों आदमी खड़े थे। इन्हें देखते ही चारों तरफ हलचल मच गई। लोगों ने चारों तरफ से आकर उन्हें घेर लिया। अभी तक फौज का अफ्सर न था, फौज दुविधे में पड़ी हुई थी, समझ में न आता था कि क्या करें। सेनापति के आते ही सिपाहियों में जान-सी पड़ गई, जैसे सूखे धान में पानी पड़ जाए।

यशोदानन्दन ताँगे से उतर पड़े और ललकार कर बोले—क्यों भाइयो, क्या विचार है ? यह कुरवानी होगी ? आप जानते हैं, इस मुहल्ले में आज तक कभी कुरवानी नहीं हुई। अगर आज हम यहाँ कुरवानी करने देंगे, तो कौन कह सकता है कि कल को हमारे मन्दिर के सामने गोहत्या न होगी।

कई आवाजें एक साथ आयीं—हम मर मिटेंगे, पर यहाँ कुरवानी न होने देंगे।

यशोदा०—खूब सोच लो, क्या करने जा रहे हो। वह लोग सब तरह से लैस हैं। ऐसा न हो कि तुम लाठियों के पहले ही वार में वहाँ से भाग खड़े हो ?

कई आवाजें एक साथ आयीं—भाइयो, सुन लो; अगर कोई पीछे कदम हटाएगा, तो उसे गो-हत्या का पाप लगेगा।

एक सिक्ख जवान—अजी देखिए, छक्के छुड़ा देंगे।

एक पंजाबी हिन्दू—एक-एक की गर्दन तोड़ के रख दूंगा।

आदमियों को यों उत्तेजित करके यशोदानंदन आगे बढ़े और जनता 'महावीर' और 'श्रीरामचन्द्र' की जयध्वनि से वायुमण्डल को कम्पायमान करती हुई उनके पीछे चली। उधर मुसलमानों ने भी डण्डे सँभाले। करीब था कि दोनों दलों में मुठभेड़ हो जाए कि एकाएक चक्रधर आगे बढ़कर यशोदानन्दन के सामने खड़े हो गए और विनीत किन्तु दृढ़ भाव से बोले—आप अगर उधर जाते हैं, तो मेरी छाती पर पाँव रखकर जाइए। मेरे देखते यह अनर्थ न होने पाएगा।

यशोदानन्दन ने चिढ़कर कहा—हट जाओ। अगर एक क्षण की भी देर हुई, ो फिर पछताने के सिवा और कुछ हाथ न आएगा।

चक्रधर—आप लोग वहाँ जाकर करेंगे क्या?

यशोदा०—हम इन जालिमों से गौ को छीन लेंगे।

चक्रधर—अहिंसा का नियम गौओं ही के लिए नहीं, मनुष्यों के लिए भी तो ़।

यशोदा०—कैसी बातें करते हो, जी! क्या यहाँ खड़े होकर अपनी आँखों से ौ की हत्या होते देखें?

चक्रधर—अगर आप एक बार दिल थामकर देख लेंगे, तो यकीन है कि आपको कभी यह दृश्य न देखना पड़े।

यशोदा०—हम इतने उदार नहीं हैं।

चक्रधर—ऐसे अवसर पर भी?

यशोदा०—हम महान् से महान् उद्देश्य के लिए भी यह मूल्य नहीं दे सकते? इन दामों स्वर्ग भी महँगा है।

चक्रधर—मित्रो, जरा विचार से काम लो।

कई आवाज़ें—विचार से काम लेना कायरों का काम है।

एक सिक्ख जवान—जब डण्डे से काम लेने का मौका आये, तो विचार को बन्द करके रख देना चाहिए।

चक्रधर—तो फिर जाइए; लेकिन उस गौ को बचाने के लिए आपको अपने एक भाई का खून करना पड़ेगा।

सहसा एक पत्थर किसी की तरफ से आकर चक्रधर के सिर में लगा। खून की धारा बह निकली; चक्रधर अपनी जगह से हिले नहीं। सिर थामकर बोले—अगर मेरे रक्त से आपकी क्रोधाग्नि शान्त होती हो, तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। अगर मेरा खून और कई जानों की रक्षा कर सके, तो इससे उत्तम कौन मृत्यु होगी?

फिर दूसरा पत्थर आया; पर अबकी चक्रधर को चोट न लगी। पत्थर कानों के पास से निकल गया।

यशोदानन्दन गरजकर बोले—यह कौन पत्थर फेंक रहा? सामने क्यों नहीं आता? क्या वह समझता है कि उसी ने गौरक्षा का ठीका ले लिया है? अगर वह

बड़ा वीर है, तो क्यों नहीं चन्द कदम आगे आकर अपनी वीरता दिखाता ? पीछे खड़ा पत्थर क्यों फेंकता है ।

एक आवाज—धर्मद्रोहियों को मारना अधर्म नहीं है ।

यशोदानन्दन—जिसे तुम धर्म का द्रोही समझते हो, वह तुमसे कहीं सच्चा हिन्दू है ।

एक आवाज—सच्चे हिन्दू वही तो होते है, जो मौके पर बगलें झाँकने लगें और शहर छोड़कर दो-चार दिन के लिए खिसक जाएँ ।

कई आदमी—यह कौन मन्त्री पर आक्षेप कर रहा है ? कोई उसकी जबान पकड़ कर क्यों नहीं खींच लेता ?

यशोदानन्दन—आप लोग सुन रहे हैं, मुझ पर कैसे-कैसे दोष लगाए जा रहे हैं । मैं सच्चा हिन्दू नहीं; मैं मौका पड़ने पर बगलें झाँकता हूँ और जान बचाने के लिए शहर से भाग जाता हूँ । ऐसा आदमी आपका मन्त्री बनने के योग्य नहीं है । आप उस आदमी को अपना मन्त्री बनाएँ, जिसे आप सच्चा हिन्दू समझते हों । मैं धर्म से पहले अपने आत्मगौरव की रक्षा करना चाहता हूँ ।

कई आदमी—महाशय, आपको ऐसे मुँहफट आदमियों की बात का खयाल न करना चाहिए ।

यशोदा०—यह मेरी पचीस बरसों की सेवा का उपहार है ! जिस सेवा का फल अपमान हो, उसे दूर ही से मेरा सलाम है ।

यह कहते हुए मुंशी यशोदानन्दन घर की तरफ चले । कई आदमियों ने उन्हें रोकना चाहा, कई आदमी उनके पैरों पड़ने लगे; लेकिन उन्होंने एक न मानी । वह तेजस्वी आदमी थे । अपनी संस्था पर स्वेच्छाचारी राजाओं की भाँति शासन करना चाहते थे । आलोचनाओं को सहन करने की उनमें सामर्थ्य ही न थी ।

उनके जाते ही वहाँ आपस में 'तू तू, मैं मैं' होने लगी । एक दूसरे पर आक्षेप करने लगा । गालियों की नौबत आयी, यहाँ तक कि दो-चार आदमियों में हाथा-पाई भी हो गई ।

चक्रधर ने जब देखा कि इधर से अब कोई शंका नहीं है, तो वह लपककर मुसलमानों के सामने आ पहुँचे और उच्च स्वर में बोले—हजरात, मैं कुछ अर्ज करने की इजाजत चाहता हूँ ।

एक आदमी—सुनो, सुनो; यही तो अभी हिन्दुओं के सामने खड़ा था ।

दूसरा आदमी—दुश्मनों के कदम उखड़ गए । सब भागे जा रहे हैं ।

तीसरा आदमी—इसी ने शायद उन्हें समझा-बुझाकर हटा दिया है । देखो, क्या कहता है ?

चक्रधर—अगर इस गाय की कुरबानी करना आप अपना मजहबी फर्ज समझते हों, तो शौक से कीजिए । मैं आपके मजहबी मामले में दखल नहीं दे रहा हूँ । लेकिन क्या यह लाजमी है कि इसी जगह कुरबानी की जाए ?

एक आदमी—हमारी खुशी है; जहाँ चाहेंगे, कुरबानी करेंगे तुमसे मतलब?

चक्रधर—बेशक, मुझे बोलने का हक नहीं है; लेकिन इस्लाम की जो इज्जत मेरे दिल में है, वह मुझे बोलने के लिए मजबूर कर रही है। इस्लाम ने कभी दूसरे मज़हबवालों की दिलजारी नहीं की। उसने हमेशा दूसरों के जजबात का एहतराम किया है। बगदाद और रूम, स्पेन और मिस्र की तारीखें उस मजहबी आजादी की शाहिद हैं, जो इस्लाम ने उन्हें अदा की थीं। अगर आप हिन्दू जज़बात का लिहाज करके किसी दूसरी जगह कुरबानी करें, तो यकीनन इस्लाम के वकार में फर्क न आएगा।

एक मौलवी ने जोर देकर कहा—ऐसी मीठी-मीठी बातें हमने बहुत सुनी हैं। कुरबानी यहीं होगी। जब दूसरे हमारे ऊपर जब्र करते हैं, तो हम उनके जजबात का क्यों लिहाज करें?

ख्वाजा महमूद बड़े गौर से चक्रधर की बातें सुन रहे थे। मौलवी साहब की उद्दण्डता पर चिढ़कर बोले—क्या शरीयत का हुक्म है कुरबानी यहीं हो? किसी दूसरी जगह नहीं की जा सकती?

मौलवी साहब ने ख्वाजा महमूद की तरफ अविश्वास की दृष्टि से देखकर कहा— मजहब के मामले में उलमा के सिवा और किसी को दखल देने का मजाज नहीं है।

ख्वाजा—बुरा न मानिएगा, मौलवी साहब! अगर दस सिपाही यहाँ आकर खड़े हो जाएँ, तो बगलें झाँकने लगिएगा!

मौलवी—किसकी मजाल है कि हमारे दीनी उमूर में मजाहमत करे?

ख्वाजा—आपको तो अपने हलवे-माँडे से काम है, जिम्मेदारी तो हमारे ऊपर आएगी, दूकानें तो हमारी लुटेंगी, आपके पास फटे बोरिए और फूटे बँधने के सिवा और क्या रखा है? जब वे लोग मसलहत देखकर किनारा कर गए, तो हमें भी अपने जिद से बाज आ जाना चाहिए। क्या आप समझते हैं कि वे लोग आपसे डरकर भागे? हमारे दुगुने आदमी अगर चढ़ आते, तो सँभालना मुश्किल हो जाता।

मौलवी—जनाब, जिहाद करना कोई खालाजी का घर नहीं। आप दुनिया के बन्दे है, दीन हकीकत क्या समझें?

ख्वाजा—बजा है, आपकी शहादत तो कहीं नहीं गई है। जिल्लत तो हमारी है।

मौलवी—भाइयो, आप लोग ख्वाजा साहब की ज्यादती देख रहे है। आप ही फैसला कीजिए कि दीन मामलात में उलमा का फैसला वाजिब है या उमरा का?

एक मोटे-ताजे दढ़ियल आदमी ने कहा—आप बिस्मिल्लाह कीजिए। उमरा को दीन से कोई सरोकार नहीं।

यह सुनते ही एक आदमी बड़ा-सा छुरा लेकर निकल पड़ा और कई आदमी गाय के सींगें पकड़ने लगे। गाय अब तक तो चुपचाप खड़ी थी। छुरा देखते ही वह छटपटाने लगी। चक्रधर यह दृश्य देखकर तिलमिला उठे। निराश और क्रोध से काँपते हुए बोले—भाइयो, एक गरीब, बेकस जानवर को मारना बहादुरी नहीं। खुदा बेकसों के खून से खुश नहीं होता। अगर जवाँमर्दी दिखानी है, तो किसी शेर का शिकार करो, किसी चीते को मारो, किसी जंगली सूअर का पीछा करो। उनकी कुरबानी से मुमकिन है, खुदा खुश हो। जब तक हिन्दू सामने खड़े थे, किसी की हिम्मत न पड़ी कि छुरा हाथ में लेता। जब वे चले गए तो आप लोग शेर हो गए?

एक आदमी—तो क्यों चले गए? मैदान में खड़े क्यों न रहे? गौरक्षा का जोश दिखाते। दुम दबाकर भाग क्यों खड़े हुए?

चक्रधर—भाग नहीं खड़े हुए और न लड़ने में वे आपसे कम ही हैं। उनकी समझ में यह बात आ गई कि जानवर की हिमायत में इन्सान का खून बहाना इन्सान को मुनासिब नहीं।

मौलवी—शुक्र है, उन्हें इतनी समझ तो आयी।

चक्रधर—लेकिन आप तो अभी तक उनकी दिलजारी पर कमर बाँधे हुए हैं। खैर, आपको अख्तियार है, जो चाहें, करें। मगर मैं यकीन के साथ कहता हूँ कि [illegible] कोई हिन्दू [illegible] दिलों में [illegible] एक दिन पछतावे का बाइस हो सकता है? अगर आपकी गिजा है, तो शौक से खाइए। लाखों गौएँ रोज कत्ल होती हैं, हिन्दू सिर नहीं उठाते। फिर यह क्योंकर मुमकिन है कि वह आपके मजहबी मामले में दखल दें? हिन्दुओं से ज्यादा बेतअस्सुब कौम दुनिया में नहीं है, लेकिन जब आप उनकी दिलजारी और महज दिलजारी के लिए कुरबानी करते हैं, तो उनको जरूर सदमा होता है। और उनके दिलों में जो शोला उठता है, उसका आप कयास नहीं कर सकते। अगर आपको यकीन न आए, तो देख लीजिए कि गाय के साथ ही एक हिन्दू कितनी खुशी से अपनी जान दे देता है!

यह कहते हुए चक्रधर ने तेजी से लपककर गाय की गर्दन पकड़ ली और बोले—आज आपको इस गाय के साथ एक इन्सान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

सभी आदमी चकित हो होकर चक्रधर की ओर ताकने लगे। मौलवी साहब ने क्रोध से उन्मत्त होकर कहा—कलाम-पाक की कसम, हट जाओ, वरना गजब हो जाएगा।

चक्रधर—हो जाने दीजिए। खुदा की यही मरजी है कि आज गाय के साथ

मेरी भी कुरबानी हो।

ख्वाजा महमूद—क्यों भई, तुम्हारा घर कहाँ है ?

चक्रधर—परदेशी मुसाफिर हूँ।

ख्वाजा—कसम खुदा की, तुम जैसा दिलेर आदमी नहीं देखा। नाम के लिए तो गाय को माता कहनेवाले बहुत हैं; पर ऐसे विरले ही देखे, जो गाय के पीछे जान लड़ा दें। तुम कलमा क्यों नहीं पढ़ लेते ?

चक्रधर—मैं एक खुदा का कायल हूँ। वही सारे जहान का खालिक और मालिक है। फिर और किस पर ईमान लाऊँ ?

ख्वाजा—वल्लाह, तब तो तुम सच्चे मुसलमान हो। हमारे हजरत को अल्लाहताला का रसूल मानते हो ?

चक्रधर—बेशक मानता हूँ, उनकी इज्जत करता हूँ और उनकी तौहीद का कायल हूँ।

ख्वाजा—हमारे साथ खानेपीने से परहेज तो नहीं करते ?

चक्रधर—जरूर करता हूँ, उसी तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ खाने से परहेज करता हूँ, अगर वह पाकसाफ न हो।

ख्वाजा—काश, तुम जैसे समझदार तुम्हारे और भाई भी होते। मगर यहाँ तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं। यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं; पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता। वल्लाह, आपसे मिलकर दिल खुश हो गया। अब कुछ कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्तफाक हो जाए। अब आप जाइए। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूं कुरबानी न होगी।

चक्रधर—और साहबों से तो पूछिए।

कई आवाजें—होती तो जरूर, लेकिन अब न होगी। आप वाकई दिलेर आदमी हैं।

ख्वाजा—यहां आप कहां ठहरे हुए हैं ? मैं आपसे मिलूंगा।

चक्रधर—आप क्यों तकलीफ उठाएंगे, मैं खुद हाजिर हूंगा।

ख्वाजा महमूद ने चक्रधर को गले लगाकर रुखसत किया। इधर उस वक्त गाय की पगहिया खोल दी गई। वह जान लेकर भागी। और लोग भी इस 'नौजवान' की 'हिम्मत' और 'जवांमर्दी की तारीफ करते हुए चले।

चक्रधर को आते देखकर यशोदानन्दन अपने कमरे से निकल आये और उन्हें छाती से लगाते हुए बोले—भैया, आज तुम्हारा धैर्य और साहस देखकर मैं दंग रह गया। तुम्हें देखकर मुझे अपने ऊपर लज्जा आ रही है। तुमने आज हमारी लाज रख ली। अगर यहां कुरबानी हो जाती, तो हम मुंह दिखाने लायक भी न रहते।

एक बूढ़ा—आज तुमने वह काम कर दिखाया, जो सैकड़ों आदमियों के रक्त-

पात से भी न होता !

चक्रधर—मैंने कुछ भी नहीं किया। यह उन लोगों की शराफत थी कि उन्होंने अनुनय-विनय सुन ली।

यशोदा०—अरे भाई, रोने का भी तो ढंग होता है। अनुनय-विनय हमने भी सैकड़ों ही बार की, लेकिन हर दफे गुत्थी और उलझती ही गई। आइए, आप के घाव की मरहम-पट्टी तो हो जाए !

चक्रधर को कमरे में बैठाकर यशोदानन्दन ने घर में जाकर अपनी स्त्री वागीश्वरी से कहा—आज मेरे एक दोस्त की दावत करनी होगी। भोजन खूब दिल लगाकर बनाना। अहिल्या, आज तुम्हारी पाक-परीक्षा होगी।

अहिल्या—वह कौन आदमी था दादा, जिसने मुसलमानों के हाथों से गाय को रक्षा की ?

यशोदा०—वही तो मेरे दोस्त हैं, जिनकी दावत करने को कह रहा हूँ। बेचारे रास्ते में मिल गए। यहाँ सैर करने आए हैं। मथुरी जाएँगे।

अहिल्या – (वागीश्वरी से) अम्माँ जरा उन्हें अन्दर बुला लेना, तो दर्शन करेंगे। दादा, मैं कोठे पर बैठी सब तमाशा देख रही थी। जब हिन्दुओं ने उन पर पत्थर फेंकना शुरू किया, तो ऐसा क्रोध आता था कि वहीं से फटकारूँ। बेचारे के सिर से खून निकलने लगा, लेकिन यह जरा भी न बोले। जब वह मुसलमानों के सामने आकर खड़े हुए, तो मेरा कलेजा धड़कने लगा कि कहीं सबके सब उन पर टूट न पड़ें। बड़े ही साहसी आदमी मालूम होते हैं। सिर में चोट आई है क्या ?

यशोदा०—हाँ, खून जम गया है; लेकिन उन्हें उसकी कुछ परवा ही नहीं। डॉक्टर को बुला रहा हूँ।

वागीश्वरी—खा पी चुके, तो जरा देर के लिए यहीं भेज देना। मेरे लड़कों की जोड़ी तो हैं ?

यशोदा०—अच्छी बात है। जरा सफाई कर लेना।

पड़ोस में एक डॉक्टर रहते थे। यशोदानन्दन ने उन्हें बुलाकर घाव पर पट्टी बँधवा दी। फिर देर तक बातें होती रहीं। धीरे-धीरे सारा मुहल्ला जमा हो गया। कई श्रद्धालु जनों ने तो चक्रधर के चरण छुए। आखिर भोजन का समय आया। जब लोग खाने बैठे, तो यशोदानन्दन ने कहा—भाई, बाबूजी से जो कुछ कहना हो, कह लो; फिर मुझसे शिकायत न करना कि तुम उन्हें नहीं लाये। बाबूजी, इस घर की तथा मुहल्ले की कई स्त्रियों की इच्छा है कि आपके दर्शन करें। आप को कोई आपत्ति तो नहीं है ?

वागीश्वरी—हाँ बेटा, जरा देर के लिए चले आना; नहीं तो अपने घर जाके कहोगे न कि मैंने जिन लोगों के लिए जान लड़ा दी, उन्होंने बात भी न पूछी।

चक्रधर ने शरमाते हुए कहा—आप लोगों ने मेरी जो खातिर की है,

नहीं भूल सकता। उसके लिए मैं सदैव आपका एहसान मानता रहूँगा।

ज्यों ही लोग चौके से उठे, अहिल्या ने कमरे की सफाई करनी शुरू की। वार की तस्वीरें साफ कीं, फर्श फिर से झाड़कर बिछाया; एक छोटी-सी मेज र फूलों का गिलास रख दिया, एक कोने में अगरबत्ती जलाकर रख दी। पान नाकर तश्तरी में रखे। इन कामों से फुरसत पाकर उसने एकान्त में बैठकर फूलों की माला गूँथनी शुरू की। मन में सोचती थी कि न जाने कौन हैं, स्वभाव कितना सरल है! लजाने में तो औरतों से भी बढ़े हुए हैं खाना खा चुके, पर सिर न उठाया। देखने में ब्राह्मण मालूम होते हैं। चेहरा देखकर तो कोई नहीं कह सकता कि वह इतने साहसी होंगे।

सहसा वागीश्वरी ने आकर कहा—बेटी दोनों आदमी आ रहे हैं। साड़ी तो बदल लो।

अहिल्या 'ऊँह' करके रह गई। हाँ उसकी छाती में धड़कन होने लगी। एक क्षण में यशोदानन्दनजी चक्रधर को लिए हुए कमरे में आए। वागीश्वरी और अहिल्या दोनों खड़ी हो गईं। यशोदानन्दन ने चक्रधर को कालीन पर बैठा दिया और खुद बाहर चले गए। वागीश्वरी पंखा झलने लगी; लेकिन अहिल्या मूर्ति की भाँति खड़ी रही।

चक्रधर ने उड़ती हुई निगाहों से अहिल्या को देखा। ऐसा महसूस हुआ, मानो कोमल, स्निग्ध एवं सुगन्धमय प्रकाश की लहर-सी आँखों में समा गई।

वागीश्वरी ने मिठाई की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—कुछ जलपान कर लो भैया, तुमने कुछ खाना भी तो नहीं खाया। तुम जैसे वीरों को सवा सेर से कम न खाना चाहिए। धन्य है वह माता, जिसने ऐसे बालक को जन्म दिया। अहिल्या, जरा गिलास में पानी तो ला। भैया जब तुम मुसलमानों के सामने अकेले खड़े थे, तो यह ईश्वर से तुम्हारी कुशल मना रही थी। जाने कितनी मनौतियाँ कर डालीं। कहाँ है वह माला, जो तूने गूँथी थी? अब पहनाती क्यों नहीं?

अहिल्या ने लजाते हुए काँपते हाथों से माला चक्रधर के गले में डाल दी, औ आहिस्ता से बोली—क्या सिर में ज्यादा चोट आयी?

चक्रधर—नहीं तो, बाबूजी ने ख्वाहमख्वाह पट्टी बँधवा दी।

वागीश्वरी—जब तुम्हें चोट लगी, तब इसे इतना क्रोध आया था कि आदमी को पा जाती, तो मुँह नोच लेती। क्या करते हो, बेटा?

चक्रधर—अभी तो कुछ नहीं करता, पड़े-पड़े खाया करता हूँ, मगर ज ही कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा। धन से तो मुझे बहुत प्रेम नहीं है और मिल जाए, तो मुझे उसको भोगने के लिए दूसरों की मदद लेना पड़े। हाँ, इतना अ चाहता हूँ कि किसी का आश्रित होकर न रहना पड़े।

वागीश्वरी—कोई सरकारी नौकरी नहीं मिलती क्या?

चक्रधर—नौकरी करने की तो मेरी इच्छा ही नहीं है। मैंने पक्का नि

कर लिया है कि नौकरी न करूँगा। न मुझे खाने का शौक है, न पहनने का, न ठाट-बाट का; मेरा निर्वाह बहुत थोड़े में हो सकता है।

वागीश्वरी—और जब विवाह हो जाएगा, तब क्या करोगे।

चक्रधर—उस वक्त सिर पर जो आएगी, देखी जाएगी। अभी से क्यों उसकी चिंता करूँ?

वागीश्वरी—जलपान तो कर लो, या मिठाई भी नहीं खाते!

चक्रधर मिठाइयाँ खाने लगे। इतने में महरी ने आकर कहा—बड़ी बहूजी, मेरे लाल को रात से खाँसी आ रही है; तिल भर नहीं रुकती, दवाई दे दो।

वागीश्वरी दवा देने चली गई। अहिल्या अकेली रह गई, तो चक्रधर ने उस की ओर देखकर कहा—आपको मेरे कारण बड़ा कष्ट हुआ। मैं तो इस उपहार के योग्य न था।

अहिल्या—यह उपहार नहीं, भक्त की भेंट है।

चक्रधर—मेरा परम सौभाग्य है कि बैठे-बिठाए इस पद को पहुँच गया।

अहिल्या—आपने आज इस शहर के हिन्दू मात्र की लाज रख ली। क्या और पानी दूँ?

चक्रधर—तृप्त हो गया। आज मालूम हुआ कि जल में कितना स्वाद है? शायद अमृत में भी यह स्वाद न होगा।

वागीश्वरी ने आकर मुस्कराते हुए कहा—भैया, तुमने तो आधी भी मिठाइयाँ नहीं खायीं। क्या इसे देखकर भूख-प्यास बन्द हो गई? यह मोहनी है, जरा इससे सचेत रहना।

अहिल्या—अम्मा, तुम छोटे-बड़े किसी का लिहाज नहीं करतीं!

वागीश्वरी—अच्छा, बताओ, तुमने इनकी रक्षा के लिए कौन-कौन सी मनौतियाँ की थीं।

अहिल्या—अम्मां, मुझे गालियां दोगी, तो मैं नीचे जाकर लेटूंगी, चाहे मच्छर भले ही नोंच खाएं।

वागीश्वरी—अरे, तो मैं कौन-सी गाली दे रही हूं। क्या ब्याह न करेगी? ऐसा अच्छा वर तुझे और कहां मिलेगा?

अहिल्या—तुम न मानोगी, लो मैं जाती हूं।

वागीश्वरी—मैं दिल्लगी नहीं कर रही हूं, सचमुच पूछती हूं। तुम्हारी इच्छा हो, तो बातचीत की जाए, अपनी ही बिरादरी के हैं। कौन जाने, राजी हो जाएं।

अहिल्या—सब बातें जानकर भी।

वागीश्वरी—तुम्हारे बाबूजी ने सारी कथा पहले ही सुना दी है।

अहिल्या—जो कहीं न माने?

वागीश्वरी—टालो मत, दिल की बात साफ-साफ कह दो।

अहिल्या—तुम मेरे दिल का हाल मुझसे अधिक जानती हो, फिर मुझसे क्यों पूछती हो?

वागीश्वरी—वह धनी नहीं हैं, याद रखो!

अहिल्या—मैं धन की लौंडी कभी नहीं रही।

वागीश्वरी—तो अब तुम्हें सशय में क्यों रखूं। तुम्हारे बाबूजी तुमसे मिलाने ही के लिए इन्हें काशी से लाए हैं। इनके पास और कुछ हो या न हो, हृदय अवश्य है। और ऐसा हृदय, जो बहुत कम लोगों के हिस्सों में आता है। ऐसा स्वामी पाकर तुम्हारा जीवन सफल हो जाएगा।

अहिल्या ने डबडबाई हुई आंखों से वागीश्वरी को देखा, पर मुंह से कुछ न बोली। कृतज्ञता शब्दों में आकर शिष्टता का रूप धारण कर लेती है। उसका मौलिक रूप वही है, जो आंखों से बाहर निकलते हुए कांपता और लजाता है।

6

मुंशी वज्रधर उन रेल के मुसाफिरों में थे, जो पहले तो गाड़ी में खड़े होने की जगह मांगते हैं, फिर बैठने की फिक्र करने लगते हैं और अन्त में सोने की तैयारी कर देते हैं। चक्रधर एक बड़ी रियासत के दीवान की लड़की को पढ़ाएं और वह इस स्वर्ण-संयोग से लाभ न उठाएं! यह क्योंकर हो सकता था। दीवान साहब को सलाम करने आने जाने लगे। बातें करने में तो निपुण थे ही, दो चार मुलाकातों में उनका सिक्का जम गया। इस परिचय ने ही शीघ्र मित्रता का रूप धारण किया। एक दिन दीवान साहब के साथ वह रानी जगदीशपुर के दरबार में पहुंचे और ऐसी लच्छेदार बातें कीं, अपनी तहसीलदारी की ऐसी डींग उड़ाई कि रानी जी मुग्ध हो गईं! कोई क्या तहसीलदारी करेगा! जिस इलाके में मैं था, वहां

कहार खड़ा था कि
...या और चौकी से उतरे। मगर खड़ाऊँ उलटे रखे थे। कहार को डाँटा—
...ँ, तो धोती छाँटूं ! मुंशीजी ने उलटे खड़ाऊँ देखे, तो कहार को डाँटा—
कितनी वार कह चुका कि खड़ाऊँ सीधे रखा कर। तुझे याद क्यों नहीं
? बता, उलटे खड़ाऊँ पर कैसे पैर रखूं ? आज तो मैं छोड़ देता हूँ, लेकिन
...ो तूने उलटे खड़ाऊँ रखे, तो इतना पीटूँगा कि तू भी याद करेगा।
कहार ने काँपते हुए हाथ से खड़ाऊँ सीधे कर दिये।
निर्मला ने हलवा बना रखा था। मुंशीजी आकर एक कुर्सी पर बैठ गए और
...ता हुआ हलवा मुँह में डाल लिया। वारे किसी तरह उसे निगल गए और
...खों से पानी पोंछते हुए बोले—तुम्हारा कोई काम ठीक नहीं होता। जलता
...आ हलवा सामने रख दिया। आखिर मुंह जलाने से तुम्हें कुछ मिल तो नहीं
...या।

निर्मला—जरा हाथ से देख क्यों नहीं लिया ?

वज्रधर—वाह, उलटा चोर कोतवाले डाँटे। मुझी को उल्लू बनाती हो।
तुम्हें खुद सोच लेना चाहिए था कि जलता हुआ हलवा खा गए, तो मुंह की क्या
होगी। लेकिन तुम्हें क्या परवा। लल्लू कहाँ हैं ?

निर्मला - लल्लू मुझसे कहके कहाँ जाते हैं ! पहर रात रहे, न जाने किधर
चले गए। जाने कहीं किसानों की सभा होने वाली है। वहीं गए हैं।

वज्रधर—वहाँ दिन भर भूखों मरेगा। न जाने इसके सिर से यह भूत कब
उतरेगा ? मुझसे कल दरोगाजी कहते थे, आप लड़के को सँभालिए, नहीं तो धोखा
खाइएगा। समझ में न 'ीं आता, क्या करूँ। मेरे इलाके के आदमी भी इन सभाओं
में अब जाने लगे हैं और मुझे खौफ हो रहा है कि कहीं रानी साहब के कानों में
भनक पड़ गई, तो मेरे सिर हो जाएंगी। मैं यह तो मानता हूँ कि अहलकार लोग
गरीबों को बहुत सताते हैं, मगर किया क्या जाए, सताए बगैर काम भी तो नहीं
चलता। आखिर उनका गुजर-बसर कैसे हो। किसानों को समझाना बुरा नहीं,
लेकिन आग में कूदना तो बुरी बात है। मेरी तो सुनने की उसने कसम खा ली है,
मगर तुम क्यों नहीं समझातीं ?

निर्मला—जो आग में कूदेगा, आप जलेगा, मुझे क्या करना है। उससे बहस
कौन करे। आज सवेरे-सवेरे कहाँ जा रहे हो ?

वज्रधर—जरा ठाकुर विशालसिंह के यहाँ जाता हूँ।

निर्मला—दोपहर तक लौट आओगे न ?

वज्रधर – हाँ, अगर उन्होंने छोड़ा। मुझे देखते ही टूट पड़ते हैं, तरह-तरह
की खातिर करने लगते हैं, दूध लाओ, मेवे लाओ, जान ही नहीं छोड़ते। तीनों
औरतों का किस्सा छेड़ देते हैं। वड़े ही मिलनसार आदमी हैं। मंगला क्या अभी
तक सो रही है ?

निर्मला—हाँ, जगा के हार गई, उठती ही नहीं।

वज्रधर—यह तो बुरी बात है। बहू-बेटियों का इतने दिन चढ़े तक सोना क्या मानी ?

यह कहकर मुंशीजी ने लोटे का पानी उठाया और मंगला के ऊपर डाल दिया। निर्मला 'हाँ-हाँ' करती रह गई। पानी पड़ते ही मंगला हड़बड़ाकर उठी और यह समझकर कि वर्षा हो रही है, कोठरी में घुस गई, सरदी के मारे काँप रही थी।

निर्मला—सवेरे-सवेरे लेके नहला दिया।

वज्रधर—यह सब तुम्हारे लाड़-प्यार का फल है। खुद दोपहर तक सोती हो, वही आदतें लड़कों को भी सिखाती हो।

निर्मला—स्वभाव सबका अलग-अलग होता है। न कोई किसी के बनाने से बनता है, न बिगाड़ने से बिगड़ता है। माँ-बाप को देखकर लड़कों का स्वभाव बदल जाना, तो लल्लू कुछ और ही होता। तुम्हें पिये बिना एक दिन भी चैन नहीं आती, उसे भी कभी पीते देखा है ? यह सब कहने को बातें हैं कि लड़के माँ-बाप की आदतें सीखते हैं।

वज्रधर ने इसका कुछ जवाब न दिया। कपड़े पहने; बाहर घोड़ा तैयार था, उस पर बैठे और शिवपुर चले।

जब वह ठाकुर साहब के मकान पर पहुँचे, तो आठ बज गए थे। ठाकुर साहब धूप में बैठे एक पत्र पढ़ रहे थे। बड़ा तेजस्वी मुख था। वह एक काला दुशाला ओढ़े हुए थे, जिस पर समय के अत्याचार के चिह्न दिखाई दे रहे थे। इस दुशाले ने उनके गोरे रंग को और भी चमका दिया था।

मुंशीजी ने मोढ़े पर बैठते हुए कहा—सब कुशल आनन्द है न ?

ठाकुर—जी हाँ, ईश्वर की दया है। कहिए, दरबार के क्या समाचार हैं ?

यद्यपि ठाकुर साहब रानी के सम्बन्ध में कुछ पूछना ओछापन समझते थे, तथापि इस विषय से उन्हें इतना प्रेम था कि बिना पूछे रहा न जाता था।

मुंशीजी ने मुस्कराकर कहा—सब वही पुरानी बातें हैं। डाक्टरों के पौ बारह हैं। दिन में तीन-तीन डाक्टर आते हैं।

ठाकुर—क्या शिकायत है ?

मुंशी—बुढ़ापे की शिकायत क्या कम है ? यह तो असाध्य रोग है।

ठाकुर—उन्हें तो और मनाना चाहिए कि किसी तरह इस मायाजाल से छूट जायँ। दवा-दर्पण की अब क्या जरूरत है। इतने दिन राजसुख भोग चुकीं, अब भी जी नहीं भरा।

मुंशी—वह तो अभी अपने को मरने लायक नहीं समझतीं। रोज जगदीशपुर से कहार पालकी उठाने के लिए बेगार पकड़कर आते हैं। वैद्यजी को लाना ले जाना उनका काम है।

ठाकुर—अन्धेर है और कुछ नहीं। पुराने जमाने में तो खैर —

था। जो दो-चार पैसे मजदूरों को मिल जाते थे, वही खाने भर को बहुत थे। आजकल तो एक आदमी का पेट भरने को एक रुपया चाहिए। यह महा अन्याय है। बेचारी प्रजा तबाह हुई जाती है आप देखेंगे कि मैं इस प्रथा को क्योंकर जड़ से उठा देता हूँ।

मुंशी—आपसे लोगों को बड़ी आशाएँ हैं। चमारों पर भी यही आफत है! दस बारह चमार रोज साईसी करने के लिए पकड़ बुलाए जाते हैं। सुना है, इलाके भर के चमारों ने पंचायत की है कि जो साईसी करे, उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाय। अब या तो चमारों को इलाका छोड़ना पड़ेगा, या दीवान साहब को साईस नौकर रखने पड़ेंगे।

ठाकुर—चमारों को इलाके से निकालना कोई दिल्लगी नहीं है। ये लोग समझते हैं कि अभी वही दुनिया है, जो बाबा आदम के जमाने में थी। चारों तरफ देखते हैं कि जमाना पलट गया, यहाँ तक कि किसान और मजदूर राज्य करने लगे, पर अब भी लोगों की आँखें नहीं खुलतीं। इस देश से न जाने कब यह प्रथा मिटेगी। प्रजा तबाह हुई जाती है। आप देखेंगे, मैं रियासत को क्या कर दिखाता हूँ। कायापलट कर दूंगा। सुनता हूँ, पुलिस आये दिन इलाके में तूफान मचाती रहती है। मैं पुलिस को यहाँ कदम न रखने दूंगा। जालिमों के हाथों प्रजा तबाह हुई जाती है।

मुंशी—सड़कें इतनी खराब हो गई हैं कि एक्के-गाड़ी का गुजर ही नहीं हो सकता।

ठाकुर—सड़कों को दुरुस्त करना मेरा पहला काम होगा। मोटर सर्विस जारी कर दूंगा, जिसमें मुसाफिरों को स्टेशन से जगदीशपुर जाने में सुविधा हो। इलाकों में लाखों बीघे ऊख बोयी जाती है और उसका गुड़ या राब बनती है। मेरा इरादा है कि एक शक्कर की मिल खोल दूं और एक अँगरेज को उसका मैनेजर बना दूं। मैं तो इन लोगों के सुप्रबन्ध का कायल हूँ। हिन्दुस्तानियों पर कभी विश्वास न करें, भूलकर भी नहीं। ये इलाके को तबाह कर देते हैं। शेखी तो नहीं मारता, इलाके में एक बार रामराज्य स्थापित कर दूंगा, कंचन बरसने लगेगा। आपने किसी महाजन को ठीक किया?

मुंशी—हां, कई आदमियों से मिला था और वे बड़ी खुशी से रुपये देने के लिए तैयार हैं, केवल यही चाहते हैं कि जमानत के तौर पर कोई गांव लिख दिया जाय।

ठाकुर—आपने हामी तो नहीं भर ली?

मुंशी—जी नहीं, हामी नहीं भरी; लेकिन बगैर जमानत के रुपये मिलना मुश्किल मालूम होता है।

ठाकुर—तो जाने दीजिए। कोई ऐसी जरूरत नहीं है, जो टाली न जा सके। अगर कोई मेरे विश्वास पर रुपये दे, तो दे दे, लेकिन रियासत की इंच

भर भी जमीन रेहन नहीं कर सकता। मैं फाके करूँ; विष खाऊँ, लेकिन रियासत पर आँच न आने दूँगा। हाँ, इसका वायदा करता हूँ कि रियासत मिलने के साल भर बाद कौड़ी-कौड़ी सूद के साथ चुका दूँगा। सच्ची बात तो यह है कि मुझे पहले ही मालूम था कि इस शर्त पर कोई महाजन रुपये देने पर राजी न होगा। ये बला के शोषक होते हैं। मुझे तो इनके नाम से चिढ़ है। मेरा बस चले, तो आज इन सबों को तोप पर उड़ा दूँ। जितना डर मुझे इनसे लगता है, उतना साँप से भी नहीं लगता। इन्हीं के हाथों आज मेरी यह दुर्गति है, नहीं तो इस गयी-बीती दशा में आदमी होता। इन सब पिशाचों ने सारा रक्त चूस लिया। पिताजी ने केवल पाँच हजार लिये थे, जिनके पचास हजार हो गए। और मेरे तीन गाँव, जो इस वक्त दो लाख को सस्ते थे, नीलाम हो गए। पिताजी का मुझे यह अंतिम उपदेश था कि कर्ज कभी मत लेना। इसी शोक में उन्होंने देह त्याग दी।

यहाँ अभी यह बातें हो ही रही थीं कि जनानखाने में से कलह शब्द आने लगे। मालूम होता था, कई स्त्रियों में संग्राम छिड़ा हुआ है। ठाकुर साहब ये कर्कश शब्द सुनते ही विकल हो गए, उनके माथे पर बल पड़ गए, मुख तेजहीन हो गया। यही उनके जीवन की सबसे दारुण व्यथा थी। यही काँटा था, जो नित्य उनके हृदय में खटका करता था। उनकी बड़ी स्त्री का नाम वसुमती था। वह अत्यन्त गर्वशीला थी; नाक पर मक्खी भी न बैठने देती। उसकी तलवार सदैव म्यान से बाहर रहती थी। वह अपनी सपत्नियों पर उसी भाँति शासन करना चाहती थी, जैसे कोई सास अपनी बहुओं पर करती है। वह यह भूल जाती कि ये उसकी बहुएँ नहीं, सपत्नियाँ हैं। जो उसकी हाँ में हाँ मिलाता, उस पर प्राण देती थी; किन्तु उसकी इच्छा के विरुद्ध जरा भी कोई बात हो जाती, तो सिंहनी का सा विकराल रूप धारण कर लेती थी।

दूसरी स्त्री का नाम रामप्रिया था। यह रानी जगदीशपुर की सगी बहिन थी। उसके पिता पुराने रिसालदार थे, दो दस्ती भाँजते थे। दोधारी तलवार से लड़ते थे। रामप्रिया दया और विनय की मूर्ति थी, बड़ी विचारशील और वाक्-मधुर; जितना कोमल अंग था, उतना कोमल हृदय भी था। वह घर में इस तरह रहती थी, मानो थी ही नहीं। उन्हें पुस्तकों से विशेष रुचि थी, हरदम कुछ न कुछ पढ़ा-लिखा करती थी। सबसे अलग-विलग रहती थी; न किसी के लेने में, न देने में; न किसी से बैर न प्रेम।

तीसरी महिला का नाम रोहिणी था। ठाकुर साहब का उन पर विशेष प्रेम था, और वह भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थी। इनमें प्रेम की मात्रा अधिक थी या माया की—इसका निर्णय करना कठिन था। उन्हें यह असह्य था कि ठाकुर साहब उनकी सौतों से बातचीत भी करें। वसुमती कर्कशा होने पर भी मलिन हृदय न थी, जो कुछ मन में होता, वही मुख में। एक बार मुँह से बात निकाल डालने पर फिर उसके हृदय पर उसका कोई चिह्न न रहता था। रोहिणी द्वेष को

ठाकुर—जरा इसका भी पता लगाइएगा कि आजकल उनका भोजन कौन बनाता है। पहले तो उनके मैके ही की कोई स्त्री थी। मालूम नहीं, अब भी वही बनाती है या कोई दूसरा रसोइया रखा गया है।

वज्रधर ने ठाकुर साहब के मन का भाव ताड़कर दृढ़ता से कहा—महाराज, क्षमा कीजिएगा, मैं आपका सेवक हूँ, पर रानीजी का भी सेवक हूँ। उनका शत्रु नहीं हूँ। आप और वह दोनों सिंह और सिंहनी की भाँति लड़ सकते हैं। मैं गीदड़ की भाँति अपने स्वार्थ के लिए बीच में कूदना अपमानजनक समझता हूँ। मैं वहाँ तक तो सहर्ष आपकी सेवा कर सकता हूँ, जहाँ तक रानीजी का अहित न हो। मैं तो दोनों ही द्वारों का भिक्षुक हूँ।

ठाकुर साहब दिल में शरमाए, पर इसके साथ मुंशीजी पर उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। बात बनाते हुए बोले—नहीं-नहीं, मेरा मतलब आपने गलत समझा! छीः! छीः! मैं इतना नीच नहीं। मैं केवल इसलिए पूछता था कि नया रसोइया कुलीन है या नहीं। अगर वह सुपात्र है, तो वही मेरा भी भोजन बनाता रहेगा।

ठाकुर साहब ने बात तो बनाई पर उन्हें स्वयं ज्ञात हो गया कि बात बनी नहीं। अपनी झेंप मिटाने को वह एक समाचार पत्र देखने लगे, मानो उन्हें विश्वास हो गया कि मुंशीजी ने उनकी बात सच मान ली।

इतने में हिरिया ने आकर मुंशीजी से कहा—बाबा, मालकिन ने कहा है कि आप जाने लगें तो मुझसे मिल लीजिएगा।

ठाकुर साहब ने गरजकर कहा—ऐसी क्या बात है, जिसको कहने की इतनी जल्दी है। इन बेचारों को देर हो रही है, कुछ निठल्ले थोड़े ही हैं कि बैठे-बैठे औरतों का रोना सुना करें। जा अन्दर बैठ।

यह कहकर ठाकुर साहब उठ खड़े हुए, मानो मुंशीजी को विदा कर रहे हैं। वह वसुमती को उनसे बातें करने का अवसर न देना चाहते थे। मुंशीजी को भी अब विवश होकर विदा माँगनी पड़ी।

मुंशीजी यहाँ से चले तो उनके दिल में एक शंका समायी हुई थी कि ठाकुर साहब कहीं मुझसे नाराज तो नहीं हो गए। हाँ, इतना संतोष था कि मैंने कोई बुरा काम नहीं किया। यदि वह सच्ची बात कहने के लिए नाराज हो जाते हैं, तो हो जायँ। मैं क्यों रानी साहबा का बुरा चेतूँ। बहुत होगा, राजा होने पर मुझे जवाब दे देंगे। इसकी क्या चिन्ता। इस विचार से मुंशीजी और अकड़कर बैठ गए। वह इतने खुश थे, मानो हवा में उड़े जा रहे हैं। उनकी आत्मा कभी इतनी गौरवोन्मत्त न हुई थी। चिन्ताओं को कभी उन्होंने इतना तुच्छ न समझा था।

चक्रधर की कीर्ति उनसे पहले ही बनारस पहुँच चुकी थी। उनके मित्र और अन्य लोग उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो रहे थे। बार-बार आते थे और पूछकर लौट जाते थे। जब वह पाँचवें दिन घर पहुँचे, तो लोग मिलने और बधाई देने आ पहुँचे। नगर का सभ्य समाज मुक्त कंठ से उनकी तारीफ कर रहा था। यद्यपि चक्रधर गंभीर आदमी थे, पर अपनी कीर्ति की प्रशंसा से उन्हें सच्चा आनन्द मिल रहा था। मुसलमानों की संख्या के विषय में किसी को भ्रम होता, तो वह तुरन्त उसे ठीक कर देते थे—एक हजार! अजी, पूरे पाँच हजार आदमी थे और सभी की त्योरियाँ चढ़ी हुईं। मालूम होता था, मुझे खड़ा निगल जाएँगे। जान पर खेल गया और क्या कहूँ। कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्हें चक्रधर की वह अनुनय-विनय अपमान जान पड़ती थी। उनका ख्याल था कि इससे तो मुसलमान और भी शेर हो गए होंगे। इन लोगों से चक्रधर को घण्टों बहस करनी पड़ी, पर वे कायल न हुए। मुसलमानों में भी चक्रधर की तारीफ हो रही थी। दो-चार आदमी मिलने भी आए, लेकिन हिन्दुओं का जमघट देखकर लौट गये।

और लोग तो तारीफ कर रहे थे, पर मुंशी वज्रधर लड़के की नादानी पर बिगड़ रहे थे—तुम्हीं को क्यों यह भूत सवार हो जाता है? क्या तुम्हारी ही जान [illegible] ? क्या वहाँ और लोग न थे, फिर [illegible] ने हाथ चला दिया होता, तो [illegible] ये हजारों आदमी, जो आज खुशी के मारे फूले नहीं समाते, बात तक न पूछते।

निर्मला तो इतनी बिगड़ी कि चक्रधर से बात न करना चाहती थी।

शाम को चक्रधर मनोरमा के घर गये। वह बगीचे में दौड़-दौड़कर हजारे से पौधों को सींच रही थी। पानी से कपड़े लथपथ हो गए थे। उन्हें देखते ही हजारा फेंककर दौड़ी और पास आकर बोली—आप कब आये, बाबूजी? मैं पत्रों में रोज वहाँ का समाचार देखती थी और सोचती थी कि आप यहाँ आएँगे, तो आपकी पूजा करूँगी। आप न होते तो वहाँ जरूर दंगा हो जाता। आपको बिगड़े हुए मुसलमानों के सामने अकेले जाते हुए जरा भी शंका न हुई?

चक्रधर ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—जरा भी नहीं। मुझे तो यही धुन थी कि इस वक्त कुरबानी न होने दूँगा, इसके सिवा दिल में और कोई खयाल न था। अब सोचता हूँ, तो आश्चर्य होता है कि मुझमें इतना बल और साहस कहाँ से आ गया था। मैं तो यही कहूँगा कि मुसलमानों को लोग नाहक बदनाम करते हैं। फसाद से वे भी उतना ही डरते हैं, जितना हिन्दू। शान्ति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है। लोगों का यह खयाल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं, बिलकुल गलत है। मुसलमानों को केवल यह

शंका हो गई है कि हिन्दू उनसे पुराना वैर चुकाना चाहते हैं और उनकी हस्ती को मिटा देने की फिक्र कर रहे हैं। इसी भय से वे जरा-जरा सी बात पर तिनक उठते हैं और मरने-मारने पर आमादा हो जाते हैं।

मनोरमा—मैंने तो जब पढ़ा कि आप उन बौखलाए हुए आदमियों के सामने निःशंक भाव से खड़े थे, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। आगे पढ़ने की हिम्मत न पड़ती थी कि कहीं कोई बुरी खबर न हो। क्षमा कीजिएगा, मैं उस समय वहाँ होती, तो आपको पकड़कर खींच लाती। आपको अपनी जान का जरा भी मोह नहीं है।

चक्रधर—(हँसकर) जान और है ही किसलिए? पेट पालने ही के लिए तो हम आदमी नहीं बनाए गए हैं। हमारे जीवन का आदर्श कुछ तो ऊँचा होना चाहिए, विशेषकर उन लोगों का, जो सभ्य कहलाते हैं। ठाट से रहना ही सभ्यता नहीं।

मनोरमा—(मुस्कराकर) अच्छा, अगर इस वक्त आपको पाँच लाख रुपये मिल जाएँ, तो आप लें या न लें?

चक्रधर—कह नहीं सकता, मनोरमा, उस वक्त दिल की क्या हालत हो। दान तो न लूंगा, पड़ा हुआ धन भी न लूंगा; लेकिन अगर किसी ऐसी विधि से मिलें कि उसे लेने में आत्मा की हत्या न होती हो, तो शायद मैं प्रलोभन को रोक न सकूं, पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उसे भोग-विलास में न उड़ाऊंगा। धन की मैं निन्दा नहीं करता, उससे मुझे डर लगता है। दूसरों का आश्रित बनना तो लज्जा की बात है; लेकिन जीवन को इतना सरल रखना चाहता हूँ कि सारी शक्ति धन कमाने और अपनी जरूरतों को पूरा करने ही में न लगानी पड़े।

मनोरमा—धन के बिना परोपकार भी तो नहीं हो सकता।

चक्रधर—परोपकार मैं नहीं करना चाहता, मुझमें इतनी सामर्थ्य ही नहीं। यह तो वे ही लोग कर सकते हैं, जिन पर ईश्वर की कृपादृष्टि हो। मैं परोपकार के लिए अपने जीवन को सरल नहीं बनाना चाहता; बल्कि अपने उपकार के लिए, अपनी आत्मा के सुधार के लिए। मुझे अपने ऊपर भरोसा नहीं है कि धन पाकर भी भोग में न पड़ जाऊँ। इसलिए मैं उससे दूर ही रहता हूँ।

मनोरमा—अच्छा, अब यह तो बताइए कि आपसे वधूजी ने क्या बातें कीं? (मुस्कराकर) मैं तो जानती हूँ, आपने कोई बातचीत न की होगी, चुपचाप लजाए बैठे रहे होंगे। उसी तरह वह भी आपके सामने आकर खड़ी हो गई होंगी और खड़ी-खड़ी चली गई होंगी।

चक्रधर शरम से सिर झुकाकर बोले—हाँ, मनोरमा, हुआ तो ऐसा ही। मेरी समझ ही में न आता था कि क्या करूँ। उसने दो-एक बार कुछ बोलने का साहस भी किया।

मनोरमा—आपको देखकर खुश तो बहुत हुई होंगी?

चक्रधर—(शरमाकर) किसी के मन का हाल मैं क्या जानूं!

मनोरमा ने अत्यन्त सरल भाव से कहा—सब मालूम हो जाता है। अ मुझसे बता नहीं रहे हैं। कम-से-कम उनकी इच्छा तो मालूम ही हो गई होगी मैं तो समझती हूँ, जो विवाह लड़की की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है, व विवाह ही नहीं है। आपका क्या विचार है ?

चक्रधर बड़े असमंजस में पड़े। मनोरमा से ऐसी बातें करते उन्हें संकोच होता था। डरते थे कि कहीं ठाकुर साहब को खबर मिल जाए—सरला मनोरमा ही कह दे—तो वह समझेंगे, मैं इसके सामाजिक विचारों में क्रांति पैदा करना चाहता हूँ। अब तक उन्हें ज्ञान न था कि ठाकुर साहब किन विचारों के आदमी हैं। हाँ, उनके गंगास्नान से आभास होता था कि वह सनातन धर्म के भक्त हैं। सिर झुका कर बोले—मनोरमा, हमारे यहाँ विवाह का आधार प्रेम और इच्छा पर नहीं, धर्म और कर्तव्य पर रखा गया है। इच्छा चंचल है, क्षण-क्षण में बदलती रहती है। कर्तव्य स्थायी है, उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

मनोरमा—अगर यह बात है, तो पुराने जमाने में स्वयंवर क्यों होते थे ?

चक्रधर—स्वयंवर में कन्या की इच्छा ही सर्वप्रधान नहीं होती थी। वह वीर युग था और वीरता ही मनुष्य का सबसे उज्ज्वल गुण समझा जाता था। लोग आजकल वैवाहिक प्रथा सुधारने का प्रयत्न तो कर रहे हैं।

मनोरमा—जानती हूँ, लेकिन कहीं सुधार हो रहा है ? माता-पिता धन देख कर लट्टू हो जाते हैं। इच्छा अस्थायी है, मानती हूँ, लेकिन एक बार अनुमति देने के बाद फिर लड़की को पछताने के लिए कोई हीला नहीं रहता।

चक्रधर—अपने मन को समझाने के लिए तर्कों की कभी कमी नहीं रहती, मनोरमा ! कर्तव्य ही ऐसा आदर्श है, जो कभी धोखा नहीं दे सकता।

मनोरमा—हाँ, लेकिन आदर्श तो आदर्श ही रहता है, यथार्थ नहीं हो सकता। (मुस्कराकर) यदि आप ही का विवाह किसी कानी, कानी-कलूटी स्त्री से हो जाए, तो क्या आपको दुःख न होगा ? बोलिए ! क्या आप समझते हैं कि लड़की का विवाह किसी खूसट से हो जाता है, तो उसे दुःख नहीं होता। उसका बस चले तो वह पति का मुँह तक न देखे। लेकिन इन बातों को जाने दीजिए। वधूजी बहुत सुन्दर हैं ?

चक्रधर ने बात टालने के लिए कहा—सुन्दरता मनोभावों पर होती है। माता अपने कुरूप बालक को भी सुन्दर समझती है।

मनोरमा—आप तो ऐसी बातें कर रहे हैं, जैसे भागना चाहते हों। क्या माता किसी सुंदर बालक को देखकर यह नहीं सोचती कि मेरा भी बालक ऐसा ही होता !

चक्रधर ने लज्जित होकर कहा—मेरा आशय यह न था। मैं यही कहना चाहता था कि सुन्दरता के विषय में सबकी राय एक-सी नहीं हो सकती।

मनोरमा—आप फिर भागने लगे। मैं जब आपसे यह प्रश्न करती हूँ, तो

उसका साफ मतलब यह है कि आप उन्हें सुन्दर समझते हैं या नहीं ?

चक्रधर लज्जा से सिर झुकाकर बोले—ऐसी बुरी तो नहीं है।

मनोरमा—तब तो आप उन्हें खूब प्यार करेंगे ?

चक्रधर—प्रेम केवल रूप का भक्त नहीं होता।

सहसा घर के अन्दर से किसी के कर्कश शब्द कान में आये, फिर लौंगी का रोना सुनाई दिया। चक्रधर ने पूछा—यह लौंगी रो रही है ?

मनोरमा—जी हाँ ! आपसे तो भाई साहब से भेंट नहीं हुई। गुरुसेवकसिंह नाम है। कई महीनों से देहात में जमींदारी का काम करते हैं। हैं तो सगे भाई और पढ़े-लिखे भी खूब हैं; लेकिन भलमनसी छू भी नहीं गई। जब आते हैं, लौंगी अम्माँ से झूठमूठ तकरार करते हैं। न जाने उससे इन्हें क्या अदावत है।

इतने में गुरुसेवकसिंह लाल-लाल आँखें किए निकल आये और मनोरमा से बोले—बाबूजी कहाँ गए हैं ? तुझे मालूम है कब तक आएँगे ? मैं आज ही फैसला कर लेना चाहता हूँ।

गुरुसेवकसिंह की उम्र 25 वर्ष से अधिक न थी। लम्बे, छरहरे एवं रूपवान थे; आँखों पर ऐनक थी, मुँह में पान का बीड़ा, देह पर तनजेब का कुरता, माँग निकली हुई। बहुत शौकीन आदमी थे।

चक्रधर को बैठे देखकर वह कुछ झिझके और अन्दर लौटना चाहते ही थे कि लौंगी रोती हुई आकर चक्रधर के पास खड़ी हो गई और बोली—बाबूजी, इन्हें समझाइए कि मैं अब बुढ़ापे में कहाँ जाऊँ ? इतनी उम्र तो इस घर में कटी, अब किसके द्वार पर जाऊँ ? जहाँ इतने नौकरों-चाकरों के लिए खाने को रोटियाँ हैं, क्या वहाँ मेरे लिए एक टुकड़ा भी नहीं ? बाबूजी, सच कहती हूँ, मैंने इन्हें अपना दूध पिलाकर पाला है; मालकिन के दूध न होता था, और अब यह मुझे घर से निकालने पर तुले हुए हैं।

गुरुसेवकसिंह की इच्छा तो न थी कि चक्रधर से इस कलह के सम्बन्ध में कुछ कहें; लेकिन जब लौंगी ने उन्हें पंच बनाने में संकोच न किया, तो वह भी खुल पड़े। बोले—महाशय, इससे यह पूछिए कि अब यह बुढ़िया हुई, इसके मरने के दिन आए, क्यों नहीं किसी तीर्थस्थान में जाकर अपने कलुषित जीवन के बचे दिन काटती ? मैंने दादाजी से कहा था कि इसे वृन्दावन पहुँचा दीजिए, और वह तैयार भी हो गए थे; पर इसने सैकड़ों बहाने किए और न गयी। आपसे तो अब कोई परदा नहीं है, इसके कारण मैंने यहाँ रहना छोड़ दिया। इसके साथ इस घर में रहते हुए मुझे लज्जा आती है। इसे इसकी जरा भी परवाह नहीं कि जो लोग सुनते होंगे, तो दिल में क्या कहते होंगे। हमें कहीं मुँह दिखाने को जगह नहीं रही। मनोरमा अब सयानी हुई। उसका विवाह करना है या नहीं ? इसके घर में रहते हुए हम किस भले आदमी के द्वार पर जा सकते हैं ? मगर इसे इन बातों की बिलकुल चिन्ता नहीं। बस, मरते दम तक घर की स्वामिनी बनी रहना चाहती

है। दादाजी भी सठिया गए हैं, उन्हें मानापमान की जरा भी फिक्र नहीं। इसने उन पर न जाने क्या मोहिनी डाल दी है कि इसके पीछे मुझसे लड़ने पर तैयार रहते हैं। आज मैं निश्चय करके आया हूँ कि इसे घर के बाहर निकालकर ही छोड़ूँगा। या तो यह किसी दूसरे मकान में रहे या किसी तीर्थस्थान को प्रस्थान करे।

लौंगी—तो बच्चा सुनो, जब तक मालिक जीता है, लौंगी इसी घर में रहेगी और इसी तरह रहेगी। जब वह न रहेगा, तो जो कुछ सिर पर पड़ेगी, झेल लूँगी। जो तुम चाहो कि लौंगी गली-गली ठोकरें खाए तो यह न होगा। मैं लौंडी नहीं हूँ कि घर से बाहर रहूँ। तुम्हें यह कहते लज्जा नहीं आती? चार भाँवरें फिर जाने से ही ब्याह नहीं हो जाता। मैंने अपने मालिक की जितनी सेवा की है और करने को तयार हूँ, उतनी कौन ब्याहता करेगी? लाए तो हो बहू, कभी उठकर एक लुटिया पानी भी देती है? खायी है कभी उसकी बनाई हुई कोई चीज? नाम से कोई ब्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है।

गुरुसेवक—यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हें बातें बहुत करनी आती हैं; पर अपने मुँह से जो चाहे बने, मैं तुम्हें लौंडी ही समझता हूँ।

लौंगी—तुम्हारे समझने से क्या होता है; अभी तो मेरा मालिक जीता है। भगवान् उसे अमर करें! जब तक जीती हूँ, इसी तरह रहूँगी, चाहे तुम्हें अच्छा लगे या बुरा। जिसने जवानी में बाँह पकड़ी, वह क्या अब छोड़ देगा? भगवान् को कौन मुँह दिखाएगा?

यह कहती हुई लौंगी घर में चली गई। मनोरमा चुपचाप सिर झुकाए दोनों की बातें सुन रही थी। उसे लौंगी से सच्चा प्रेम था। मातृस्नेह का जो कुछ सुख उसे मिला था, लौंगी ही से मिला था। उसकी माता तो उसे गोद में छोड़कर परलोक सिधारी थी। उस एहसान को वह कभी न भूल सकती थी। अब भी लौंगी उस पर प्राण देती थी। इसलिए गुरुसेवकसिंह की यह निर्दयता उसे बहुत बुरी मालूम होती थी।

लौंगी के जाते ही गुरुसेवकसिंह बड़े शान्त भाव से एक कुर्सी पर बैठ गए और चक्रधर से बोले—महाशय, आपसे मिलने की इच्छा हो रही थी और इस समय मेरे यहाँ आने का एक कारण यह भी था। आपने आगरे की समस्या जिस बुद्धिमानी से हल की, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है।

चक्रधर—वह तो मेरा कर्त्तव्य ही था।

गुरुसेवक - इसीलिए कि आपके कर्त्तव्य का आदर्श बहुत ऊँचा है। 100 में 99 आदमी तो ऐसे अवसर पर लड़ जाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। मुश्किल से एक आदमी ऐसा निकलता है, जो धैर्य से काम ले। शान्ति के लिए आत्मसमर्पण करनेवाला तो लाख दो लाख में एक होता है। आप विलक्षण धैर्य और साहस के मनुष्य हैं। मैंने भी अपने इलाके में कुछ लड़कों का खेल सा कर रखा है। वहाँ

पठानों के कई बड़े-बड़े गाँव हैं; उन्हीं से मिले हुए ठाकुरों के भी कई गाँव हैं। पहले पठानों और ठाकुरों में इतना मेल था कि शादी, गमी, तीज-त्योहार में एक दूसरे के साथ शरीक होते थे; लेकिन अब तो यह हाल है कि कोई त्योहार ऐसा नहीं जाता, जिसमें खून-खच्चर या कम से कम मार-पीट न हो। आप अगर दो-एक दिन के लिए वहाँ चलें, तो आपस में बहुत कुछ सफाई हो जाए। मुसलमानों ने अपने पत्रों में आपका जिक्र देखा है और शौक से आपका स्वागत करेंगे। आपके उपदेशों का बहुत कुछ असर पड़ सकता है।

चक्रधर—बातों में असर डालना तो ईश्वर की इच्छा के अधीन है। हाँ, मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ। मुझसे जो सेवा हो सकेगी, वह उठा न रखूँगा। कब चलने का इरादा है?

गुरुसेवक—चलता तो इसी गाड़ी से; लेकिन मैं इस कुलटा को अबकी निकाल बाहर किए बगैर नहीं जाना चाहता। दादाजी ने रोक-टोक की, तो मनोरमा को लेता जाऊँगा और फिर इस घर में कदम न रखूँगा। सोचिए तो, कितनी बड़ी बदनामी है।

चक्रधर बड़े संकट में पड़ गए। विरोध की कटुता को मिटाने के लिए मुस्कराते हुए बोले—मेरे और आपके सामाजिक विचारों में बड़ा अन्तर है। मैं बिल्कुल भ्रष्ट हो गया हूँ।

गुरुसेवक—क्या आप लौंगी का यहाँ रहना अनुचित नहीं समझते?

चक्रधर—जी नहीं, खानदान की बदनामी अवश्य है; लेकिन मैं बदनामी के भय से अन्याय करने की सलाह नहीं दे सकता। क्षमा कीजिएगा, मैं बड़ी निर्भीकता से अपना मत प्रकट कर रहा हूँ।

गुरुसेवक—नहीं, नहीं, मैं बुरा नहीं मान रहा हूँ। (मुस्कराकर) इतना उजड्ड नहीं हूँ कि किसी मित्र की सच्ची राय न सुन सकूँ। अगर आप मुझे समझा दें कि उसका यहाँ रहना उचित है, तो मैं आपका बहुत अनुगृहीत हूँगा। मैं खुद नहीं चाहता कि मेरे हाथों किसी को अकारण कष्ट पहुँचे।

चक्रधर—जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाए, तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस संबंध को निबाहे।

गुरुसेवक—चाहे स्त्री कितनी ही नीच जाति की हो?

चक्रधर—हाँ, चाहे किसी भी जाति की हो!

मनोरमा यह जवाब सुनकर गर्व से फूल उठी। वह आवेश में उठ खड़ी हुई और पुलकित होकर खिड़की के बाहर झाँकने लगी। गुरुसेवकसिंह वहाँ न होते तो वह जरूर कह उठती—आप मेरे मुँह से बात ले गए।

एकाएक फिटन की आवाज आयी और ठाकुर साहब उतरकर अन्दर गये। गुरुसेवकसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले। वह डर रहे थे कि लौंगी अवसर पाकर

कहीं उनके कान न भर दे।

जब वह चले गये, तो मनोरमा बोली—आपने मेरे मन की बात कही। बहुत सी बातों में मेरे विचार आपके विचारों से मिलते हैं।

चक्रधर—उन्हें बुरा तो जरूर लगा होगा!

मनोरमा—वह फिर आपसे बहस करने आते होंगे। अगर आज मौका न मिलेगा तो कल करेंगे। अबकी वह शास्त्रों के प्रमाण पेश करेंगे, देख लीजिएगा।

चक्रधर—खैर, यह तो बताओ कि तुमने इन चार-पाँच दिनों में क्या काम किया?

मनोरमा—मैंने तो किताब तक नहीं खोली। बस, समाचार पढ़ती थी और वही बातें सोचती थी। आप नहीं रहते तो मेरा किसी काम में जी नहीं लगता। आप अब कभी बाहर न जाइएगा।

चक्रधर ने मनोरमा की ओर देखा, तो उसकी आँखें सजल हो गई थीं। सोचने लगे, बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना भावमय है।

8

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था—विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी विलास वृत्ति अणु मात्र भी कम न हुई थी। हमारी कर्मेन्द्रियाँ भले ही जर्जर हो जाएँ, चेष्टाएँ तो वृद्ध नहीं होतीं। कहते हैं, बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है, या पुराने पापों का पश्चात्ताप; पर रानी देवप्रिया का बुढ़ापा अतृप्त तृष्णा थी और अपूर्ण विलासा-राधना। वह दान-पुण्य बहुत करती थीं, साल में दो-चार यज्ञ भी कर लिया करती थीं, साधु-सन्तों पर उनकी असीम श्रद्धा थी और इस धर्मनिष्ठा में उनका ऐहिक स्वार्थ छिपा होता था। परलोक की उन्हें कभी भूलकर भी याद न आती थी। वह भूल गई थीं कि इस जीवन के बाद भी कुछ है। उनके दान और स्नान का मुख्य उद्देश्य था—शारीरिक विकारों से निवृत्ति, विलास में रत रहने की परम योग्यता। यदि वह किसी देवता को प्रसन्न कर सकतीं, तो कदाचित् उससे यही वरदान माँगतीं कि वह कभी बूढ़ी न हों। इस पूजा और व्रत के सिवा वह इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए भाँति-भाँति के रसों और पुष्टिकारक औषधियों का सेवन करती रहती थीं। झुर्रियाँ मिटाने और रंग को चमकाने के लिए भी कितने ही प्रकार के पाउडरों, उबटनों और तेलों से काम लिया जाता था। वृद्धावस्था उनके लिए नरक से कम भयंकर न थी। चिन्ता को तो वह अपने पास न फटकने देती थीं। रियासत उनके भोग-विलास का साधन मात्र थी। प्रजा को

ठानों के कई बड़े-बड़े गाँव हैं; उन्हीं से मिले हुए ठाकुरों के भी कई गाँव हैं। पहले ठानों और ठाकुरों में इतना मेल था कि शादी, गमी, तीज-त्योहार में एक दूसरे के साथ शरीक होते थे; लेकिन अब तो यह हाल है कि कोई त्योहार ऐसा नहीं जाता, जिसमें खून-खच्चर या कम से कम मार-पीट न हो। आप अगर दो-एक दिन के लिए वहाँ चलें, तो आपस में बहुत कुछ सफाई हो जाए। मुसलमानों ने अपने पत्रों में आपका जिक्र देखा है और शौक से आपका स्वागत करेंगे। आपके उपदेशों का बहुत कुछ असर पड़ सकता है।

चक्रधर—बातों में असर डालना तो ईश्वर की इच्छा के अधीन है। हाँ, मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ। मुझसे जो सेवा हो सकेगी, वह उठा न रखूँगा। कब चलने का इरादा है?

गुरुसेवक—चलता तो इसी गाड़ी से; लेकिन मैं इस कुलटा को अबकी निकाल बाहर किए बगैर नहीं जाना चाहता। दादाजी ने रोक-टोक की, तो मनोरमा को लेता जाऊँगा और फिर इस घर में कदम न रखूँगा। सोचिए तो, कितनी बड़ी बदनामी है।

चक्रधर बड़े संकट में पड़ गए। विरोध की कटुता को मिटाने के लिए मुस्कराते हुए बोले—मेरे और आपके सामाजिक विचारों में बड़ा अन्तर है। मैं बिल्कुल भ्रष्ट हो गया हूँ।

गुरुसेवक—क्या आप लौंगी का यहाँ रहना अनुचित नहीं समझते?

चक्रधर—जी नहीं, खानदान की बदनामी अवश्य है; लेकिन मैं बदनामी के भय से अन्याय करने की सलाह नहीं दे सकता। क्षमा कीजिएगा, मैं बड़ी निर्भीकता से अपना मत प्रकट कर रहा हूँ।

गुरुसेवक—नहीं, नहीं, मैं बुरा नहीं मान रहा हूँ। (मुस्कराकर) इतना उजड्ड नहीं हूँ कि किसी मित्र की सच्ची राय न सुन सकूँ। अगर आप मुझे समझा दें कि उसका यहाँ रहना उचित है, तो मैं आपका बहुत अनुगृहीत हूँगा। मैं खुद नहीं चाहता कि मेरे हाथों किसी को अकारण कष्ट पहुँचे।

चक्रधर—जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाए, तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस संबंध को निबाहे।

गुरुसेवक—चाहे स्त्री कितनी ही नीच जाति की हो?

चक्रधर—हाँ, चाहे किसी भी जाति की हो!

मनोरमा यह जवाब सुनकर गर्व से फूल उठी। वह आवेश में उठ खड़ी हु और पुलकित होकर खिड़की के बाहर झाँकने लगी। गुरुसेवकसिंह वहाँ न होते वह जरूर कह उठती—आप मेरे मुँह से बात ले गए।

एकाएक फिटन की आवाज आयी और ठाकुर साहब उतरकर अन्दर ग गुरुसेवकसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले। वह डर रहे थे कि लौंगी अवसर पा

कहीं उनके कान न भर दे।

जब वह चले गये, तो मनोरमा बोली—आपने मेरे मन की बात कही। बहुत सी बातों में मेरे विचार आपके विचारों से मिलते हैं।

चक्रधर—उन्हें बुरा तो जरूर लगा होगा!

मनोरमा—वह फिर आपसे बहस करने आते होंगे। अगर आज मौका न मिलेगा तो कल करेंगे। अबकी वह शास्त्रों के प्रमाण पेश करेंगे, देख लीजिएगा।

चक्रधर—खैर, यह तो बताओ कि तुमने इन चार-पाँच दिनों में क्या काम किया?

मनोरमा—मैंने तो किताब तक नहीं खोली। बस, समाचार पढ़ती थी और वही बातें सोचती थी। आप नहीं रहते तो मेरा किसी काम में जी नहीं लगता। आप अब कभी बाहर न जाइएगा।

चक्रधर ने मनोरमा की ओर देखा, तो उसकी आँखें सजल हो गई थीं। सोचने लगे, बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना भावमय है।

8

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था—विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी विलास वृत्ति अणु मात्र भी कम न हुई थी। हमारी कर्मेन्द्रियाँ भले ही जर्जर हो जाएँ, चेष्टाएँ तो वृद्ध नहीं होतीं! कहते हैं, बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है, या पुराने पापों का पश्चात्ताप; पर रानी देवप्रिया का बुढ़ापा अतृप्त तृष्णा थी और अपूर्ण विलास-साधना। वह दान-पुण्य बहुत करती थी, साल में दो-चार यज्ञ भी कर लिया करती थीं, साधु-सन्तों पर उनकी असीम श्रद्धा थी और इस धर्मनिष्ठा में उनका ऐहिक स्वार्थ छिपा होता था। परलोक की उन्हें कभी भूलकर भी याद न आती थी। वह भूल गई थीं कि इस जीवन के बाद भी कुछ है। उनके दान और स्नान का मुख्य उद्देश्य था—शारीरिक विकारों से निवृत्ति, विलास में रत रहने की परम योग्यता। यदि वह किसी देवता को प्रसन्न कर सकतीं, तो कदाचित् उससे यही वरदान माँगतीं कि वह कभी बूढ़ी न हों। इस पूजा और व्रत के सिवा वह इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए भाँति-भाँति के रसों और पुष्टिकारक औषधियों का सेवन करती रहती थीं। झुर्रियाँ मिटाने और रंग को चमकाने के लिए भी कितने ही प्रकार के पाउडरों, उबटनों और तेलों से काम लिया जाता था। वृद्धावस्था उनके लिए नरक से कम भयंकर न थी। चिन्ता को तो वह अपने पास न फटकने देती थीं। रियासत उनके भोग-विलास का साधन मात्र थी। प्रजा को

पठानों के कई बड़े-बड़े गाँव हैं; उन्हीं से मिले हुए ठाकुरों के भी कई गाँव हैं। पहले पठानों और ठाकुरों में इतना मेल था कि शादी, गमी, तीज-त्योहार में एक दूसरे के साथ शरीक होते थे; लेकिन अब तो यह हाल है कि कोई त्योहार ऐसा नहीं जाता, जिसमें खून-खच्चर या कम से कम मार-पीट न हो। आप अगर दो-एक दिन के लिए वहाँ चलें, तो आपस में बहुत कुछ सफाई हो जाए। मुसलमानों ने अपने पत्रों में आपका जिक्र देखा है और शौक से आपका स्वागत करेंगे। आपके उपदेशों का बहुत कुछ असर पड़ सकता है।

चक्रधर—बातों में असर डालना तो ईश्वर की इच्छा के अधीन है। हाँ, मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ। मुझसे जो सेवा हो सकेगी, वह उठा न रखूंगा। कब चलने का इरादा है?

गुरुसेवक—चलता तो इसी गाड़ी से; लेकिन मैं इस कुलटा को अबकी निकाल बाहर किए बगैर नहीं जाना चाहता। दादाजी ने रोक-टोक की, तो मनोरमा को लेता जाऊँगा और फिर इस घर में कदम न रखूंगा। सोचिए तो, कितनी बड़ी बदनामी है।

चक्रधर बड़े संकट में पड़ गए। विरोध की कटुता को मिटाने के लिए मुस्कराते हुए बोले—मेरे और आपके सामाजिक विचारों में बड़ा अन्तर है। मैं बिल्कुल भ्रष्ट हो गया हूँ।

गुरुसेवक—क्या आप लौंगी का यहाँ रहना अनुचित नहीं समझते?

चक्रधर—जी नहीं, खानदान की बदनामी अवश्य है; लेकिन मैं बदनामी के भय से अन्याय करने की सलाह नहीं दे सकता। क्षमा कीजिएगा, मैं बड़ी निर्भीकता से अपना मत प्रकट कर रहा हूँ।

गुरुसेवक—नहीं, नहीं, मैं बुरा नहीं मान रहा हूँ। (मुस्कराकर) इतना उजड्ड नहीं हूँ कि किसी मित्र की सच्ची राय न सुन सकूँ। अगर आप मुझे समझा दें कि उसका यहाँ रहना उचित है, तो मैं आपका बहुत अनुगृहीत हूँगा। मैं खुद नहीं चाहता कि मेरे हाथों किसी को अकारण कष्ट पहुँचे।

चक्रधर—जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाए, तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस संबंध को निबाहे।

गुरुसेवक—चाहे स्त्री कितनी ही नीच जाति की हो?

चक्रधर—हाँ, चाहे किसी भी जाति की हो!

मनोरमा यह जवाब सुनकर गर्व से फूल उठी। वह आवेश में उठ खड़ी हुई और पुलकित होकर खिड़की के बाहर झाँकने लगी। गुरुसेवकसिंह वहाँ न होते तो वह जरूर कह उठती—आप मेरे मुँह से बात ले गए।

एकाएक फिटन की आवाज आयी और ठाकुर साहब उतरकर अन्दर गये। गुरुसेवकसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले। वह डर रहे थे कि लौंगी अवसर पाकर

कहीं उनके कान न भर दे।

जब वह चले गये, तो मनोरमा बोली—आपने मेरे मन की बात कही। बहुत सी बातों में मेरे विचार आपके विचारों से मिलते हैं।

चक्रधर—उन्हें बुरा तो जरूर लगा होगा!

मनोरमा—वह फिर आपसे बहस करने आते होंगे। अगर आज मौका न मिलेगा तो कल करेंगे। अबकी वह शास्त्रों के प्रमाण पेश करेंगे, देख लीजिएगा।

चक्रधर—खैर, यह तो बताओ कि तुमने इन चार-पाँच दिनों में क्या काम किया?

मनोरमा—मैंने तो किताब तक नहीं खोली। बस, समाचार पढ़ती थी और वही बातें सोचती थी। आप नहीं रहते तो मेरा किसी काम में जी नहीं लगता। आप अब कभी बाहर न जाइएगा।

चक्रधर ने मनोरमा की ओर देखा, तो उसकी आँखें सजल हो गई थीं। सोचने लगे, बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना भावमय है।

8

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था—विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी विलास वृत्ति अणु मात्र भी कम न हुई थी। हमारी कर्मेन्द्रियाँ भले ही जर्जर हो जाएँ, चेष्टाएँ तो वृद्ध नहीं होतीं! कहते हैं, बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है, या पुराने पापों का पश्चात्ताप; पर रानी देवप्रिया का बुढ़ापा अतृप्त तृष्णा थी और अपूर्ण विलासा-राधना। वह दान-पुण्य बहुत करती थीं; साल में दो-चार यज्ञ भी कर लिया करती थीं, साधु-सन्तों पर उनकी असीम श्रद्धा थी और इस धर्मनिष्ठा में उनका ऐहिक स्वार्थ छिपा होता था। परलोक की उन्हें कभी भूलकर भी याद न आती थी। वह भूल गई थीं कि इस जीवन के बाद भी कुछ है। उनके दान और स्नान का मुख्य उद्देश्य था—शारीरिक विकारों से निवृत्ति, विलास में रत रहने की परम योग्यता। यदि वह किसी देवता को प्रसन्न कर सकतीं, तो कदाचित् उससे यही वरदान माँगतीं कि वह कभी बूढ़ी न हों। इस पूजा और व्रत के सिवा वह इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए भाँति-भाँति के रसों और पुष्टिकारक औषधियों का सेवन करती रहती थीं। झुर्रियाँ मिटाने और रंग को चमकाने के लिए भी कितने ही प्रकार के पाउडरों, उबटनों और तेलों से काम लिया जाता था। वृद्धावस्था उनके लिए नरक से कम भयंकर न थी। चिन्ता को तो वह अपने पास न फटकने देती थीं। रियासत उनके भोग-विलास का साधन मात्र थी। प्रजा को

कष्ट होता है, उन पर कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं, सूखे-झूरे की विपत्ति क्योंकर उनका सर्वनाश कर देती है, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था। उन्हें जिस समय जितने धन की जरूरत हो, उतना तुरन्त देना मैनेजर का काम था। वह ऋण लेकर दे, चोरी करे या प्रजा का गला काटे, इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था।

यों तो रानी साहब को हर एक प्रकार के विनोद से समान प्रेम था। चाहे वह थिएटर हो, या पहलवानों का दंगल, या अंगरेजी नाच, पर उनके जीवन की सबसे आनन्दमय घड़ियाँ वे ही होती थीं, जब वह युवकों और युवतियों के साथ प्रेम क्रीड़ा करती थीं। इस मण्डली में बैठकर उन्हें आत्म-प्रवंचना का सबसे अच्छा अवसर मिलता था। वह भूल जाती थीं कि मेरा यौवन काल बीत चुका है। अपने बुझे हुए यौवन दीपक को युवा की प्रज्ज्वलित स्फूर्ति से जलाना चाहती थीं; किंतु इस धुन में वह कितने ही अन्य विलासान्ध प्राणियों की भाँति नीचों को मुँह न लगाती थीं। काशी आनेवाले राजकुमारों और राजकुमारियों ही से उनका सहवास रहता था। आनेवालों की कमी न थी। एक न एक हमेशा ही आता रहता था। रानी की अतिथिशाला हमेशा आबाद रहती थी। उन्हें युवकों की आँखों में खुब जाने की सनक सी थी। वह चाहती थीं कि मेरे सौन्दर्य-दीपक पर युवक पतंगे की भाँति आकर गिरें। उनकी रसमयी कल्पना प्रेम के आघात-प्रत्याघात से एक विशेष स्फूर्ति का अनुभव करती थी।

एक दिन ठाकुर हरिसेवकसिंह मनोरमा को रानी साहब के पास ले गए। रानी उसे देखकर मोहित हो गई। तब से दिन में एक बार उससे जरूर मिलतीं। वह किसी कारण से न आती, तो उसे बुला भेजतीं। उसका मधुर गाना सुनकर वह मुग्ध हो जाती थीं। हरिसेवक सिंह का उद्देश्य कदाचित् यही था कि वहाँ मनोरमा को रईसों और राजकुमारों को आकर्षित करने का मौका मिलेगा।

भादों की अँधेरी रात थी। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रानी साहब को आज कुछ ज्वर था, चेष्टा गिरी हुई थी, सिर उठाने को जी न चाहता था; पर पड़े रहने का अवसर न था। हर्षपुर के राजकुमार को आज उन्होंने निमन्त्रित किया था। उनके आदर-सत्कार का काम करना जरूरी था। उनके सहवास के सुख से वह अपने को वंचित न कर सकती थीं। उनके आने का समय भी निकट था। रानी ने बड़ी मुश्किल से उठकर आईने में अपनी सूरत देखी। उनके हृदय पर आघात-सा हुआ। मुख प्रभातचन्द्र की भाँति मन्द हो रहा था।

रानी ने सोचा, अभी राजकुमार आते होंगे। क्या मैं उनसे इसी दशा में मिलूँगी? संसार में क्या कोई ऐसी संजीवनी नहीं है, जो काल के कुटिल चिह्न को मिटा दे? ऐसी वस्तु कहीं मिल जाती, तो मैं अपना सारा राज्य बेचकर उसे ले लेती। जब भोगने की सामर्थ्य ही न हो, तो राज्य से और सुख ही क्या! हा निर्दयी काल! तूने मेरा कोई प्रयत्न सफल न होने दिया।

राजकुमार अब आते होंगे, मुझे तैयार हो जाना चाहिए, ज्वर है, कोई परवा नहीं। मालूम नहीं, जीवन में फिर ऐसा अवसर मिले या न मिले।

सामने मेज पर एक अलबम रखा था। रानी ने राजकुमार का चित्र निकाल कर देखा। कितना महास मुख था, कितना तपस्वी स्वरूप, कितनी सुधामयी छवि !

रानी एक आरामकुर्सी पर लेटकर सोचने लगी—यह चित्र न जाने क्यों मेरे चित्त को इतने जोर से खींच रहा है। चित्त कभी इतना चंचल न हुआ था। इसी अलबम में और भी कई चित्र हैं, जो इससे कहीं सुन्दर हैं; लेकिन उन नवयुवकों को मैंने कठपुतलियों की तरह नचाकर छोड़ा। यह एक ऐसा चित्र है, जो मेरे हृदय में भूली हुई बातों की याद दिला रहा है, जिसके सामने ताकते हुए मुझे लज्जा सी आती है !

रानी ने घड़ी की ओर आतुर नेत्रों से देखा। नौ बज रहे थे। अब वह लेटी न रह सकी; संभलकर उठी; आलमारी में से एक शीशी निकाली। उसमें से कई बूँदें एक प्याली में डाली और आँखें बन्द कर पी गईं। इसका चमत्कारिक असर हुआ, मानो कोई कुम्हलाया फूल ताजा हो जाए; कोई सूखी पत्ती हरी हो जाए। उनके मुख-मण्डल पर आभा दौड़ गई। आँखों में चंचल सजीवता का विकास हो गया, शरीर में नए रक्त का प्रवाह-सा होने लगा। उन्होंने फिर आईने की ओर देखा और उनके अधरों पर एक मृदुल हास्य की झलक दिखाई दी। उनके उठने की आहट पाकर लौंडी कमरे में आकर खड़ी हो गई। यह उनकी नाइन थी। गुजराती नाम था।

रानी—समय बहुत थोड़ा है, जल्दी कर।

गुजराती – रानियों को कैसी जल्दी ! जिसे मिलना होगा, वह स्वयं आएगा और बैठा रहेगा।

रानी—नहीं, आज ऐसा ही अवसर है।

नाइन बड़ी निपुण थी, तुरन्त शृंगारदान खोलकर बैठ गई और रानी का शृंगार करने लगी, मानों कोई चित्रकार तसवीर में रंग भर रहा हो। आध घटा भी न गुजरा था कि उसने रानी के केश गूँथकर नागिन की सी लटें डाल दीं। कपोलों पर एक ऐसा रंग भरा कि झुर्रियाँ गायब हो गईं और मुख पर मनोहर आभा झलकने लगी। ऐसा मालूम होने लगा, मानो कोई सुन्दरी युवती सोकर उठी है। वही अलसाया हुआ अंग था, वही मतवाली आँखें। रानी ने आईने की ओर देखा और प्रसन्न होकर बोलीं—गुजराती, तेरे हाथ में कोई जादू है। मैं तुझे अपने साथ स्वर्ग में ले चलूँगी। वहाँ तो देवता लोग होंगे, तेरी मदद की और भी जरूरत होगी।

गुजराती—आप कभी इनाम तो देती नहीं। बस, बखान करके रह जाती हैं !

रानी—अच्छा, बता क्या लेगी ?

गुजराती—मैं लूंगी तो वही लूंगी, जो कई बार मांग चुकी हूँ। रुपये-पैसे लेकर मुझे क्या करना है।

यह एक दीवारगीर पर रखी हुई मदन की छोटी सी मूर्ति थी। चतुर मूर्तिकार ने इस पर कुछ ऐसी कारीगरी की थी जिससे कि दिन के साथ उसका भी रंग बदलता रहता था।

गुजराती—अच्छा, तो न दीजिए; लेकिन फिर मुझसे कभी न पूछिएगा कि क्या लेगी ?

रानी—क्या मुझसे नाराज हो गई ? (चौंककर) वह रोशनी दिखायी दी ! कुंवर साहब आ गए ! मैं झूला-घर में जाती हूँ। वहीं लाना।

यह कहकर रानी ने फिर वही शीशी निकाली और दुगुनी मात्रा में दवा पीकर झूलाघर की ओर चलीं। यह एक विशाल भवन था, बहुत ऊँचा और इतना लम्बा चौड़ा कि झूले पर बैठकर खूब पेंग ली जा सकती थी। रेशम की डोरियों में पड़ा हुआ एक पटरा छत से लटक रहा था; पर चित्रकारों ने ऐसी कारीगरी की थी कि मालूम होता था, किसी वृक्ष की डाल में पड़ा हुआ है। पौधों, झाड़ियों और लताओं ने उसे यमुना-तट का कुंज-सा बना दिया था। कई हिरन और मोर इधर उधर विचरा करते थे। रात को उस भवन में पहुँचकर सहसा यह ज्ञान न होता था कि यह कोई भवन है। पानी का रिमझिम बरसना, ऊपर से हल्की-हल्की फुहारों का पड़ना, हौज में जल पक्षियों का क्रीड़ा करना—यह सब किसी उपवन की शोभा दरसाता था।

रानी झूले की डोरी पकड़कर खड़ी हो गई और एक हिरन के बच्चे को बुलाकर उसका मुँह सहलाने लगीं। सहसा कदमों की आहट हुई। रानी मेहमान का स्वागत करने के लिए द्वार पर आयीं, पर यह राजकुमार न थे, मनोरमा थी। रानी को कुछ निराशा तो हुई; किन्तु मनोरमा भी आज के अभिनय की पात्री थी। उन्होंने उसे बुलवा भेजा था।

रानी—बड़ी देर लगायी ! तेरी राह देखते-देखते आँखें थक गईं।

मनोरमा– पानी के मारे घर से निकलने की हिम्मत ही न पड़ती थी।

रानी—राजकुमार ने न-जाने क्यों देर की। आ, तब तक कोई गीत सुना।

यहीं हौज के किनारे एक संगमरमर का चबूतरा था। दोनों जाकर उस पर बैठ गईं।

रानी—क्या मैं बहुत बुरी लगती हूँ ?

मनोरमा—आप ? आप तो सौन्दर्य की देवी मालूम होती हैं !

रानी—चल झूठी। मुझसे अपना रूप बदलेगी ?

मनोरमा—मैं तो आपकी लौंडी की तरह भी नहीं हूँ। मुझे आपके साथ बैठते शरम आती है।

रानी—अच्छा, बता, संसार में सबसे अमूल्य रत्न कौन-सा है ?

मनोरमा—कोहनूर हीरा होगा, और क्या ?

रानी—दुत् पगली ! संसार की सबसे उत्तम, देव-दुर्लभ वस्तु यौवन है। बता, तूने किसी से प्रेम किया है ?

मनोरमा—जाइए, मैं आपसे नहीं बोलती।

रानी—आह ! तूने तीर मार दिया। यही बिगड़ना तो पुरुषों पर जादू का काम करता है। काश, मेरे मुँह से ऐसी बातें निकलतीं ! सच बता, तूने किसी युवक से कभी प्रेम किया है ? अच्छा आ, आज मैं सिखा दूँ।

मनोरमा—आप मुझे छेड़ेंगी, तो मैं चली जाऊँगी।

रानी—ऐं, तो इतना चिढ़ती क्यों है ? ऐसी कोई बालिका तो नहीं। देख, सबसे पहली बात है, कटाक्ष करने की कला में निपुण होना। जिसे यह कला आती है, वह चाहे चन्द्रमुखी न हो; फिर भी पुरुष का हृदय छीन सकती है; सौन्दर्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता, उसी तरह जैसे कोई सिपाही शस्त्रों से कुछ नहीं कर सकता, जब तक वह उन्हें चलाना न जानता हो। चतुर खिलाड़ी एक बाँस की छड़ी से वह काम कर सकता है, जो दूसरे संगीन और बन्दूक से भी नहीं कर सकते। मान ले, मैं तेरा प्रेमी हूँ। बता, मेरी ओर कैसे ताकेगी ?

मनोरमा ने लज्जा से सिर झुका लिया। उसे रानी की रसिकता पर कौतूहल हो रहा था। वह कितनी ही बार यहाँ आयी थी; पर रानी को कभी इतना मद-मत्त न पाया था।

रानी ने उसकी ठुड्डी पकड़कर मुँह उठा दिया और बोली—पगली, इस भाँति सिर झुकाने से क्या होगा ? पुरुष समझेगा, यह कुछ जानती ही नहीं। अच्छा, समझ ले कि तू पुरुष है; देख, मैं तेरी ओर कैसी ताकती हूँ। सिर उठाकर मेरी ओर देख। कहती हूँ सिर उठा, नहीं तो मैं चुटकी काट लूँगी। हाँ, इस तरह।

यह कहकर रानी ने मनोरमा को भृकुटि-विलास और लोचन-कटाक्ष का ऐसा कौशल दिखाया कि मनोरमा का अज्ञान मन भी एक क्षण के लिए चंचल हो उठा। कटाक्ष में कितनी उत्तेजक शक्ति है, इसका कुछ अनुमान हो गया।

रानी—तुझे कुछ मालूम हुआ ?

मनोरमा—मुझे तो तीर-सा लगा। आप मोहिनी मन्त्र जानती होंगी।

रानी—तू युवक होती, तो इस समय छाती पर हाथ धरे आहतों की भाँति खड़ी होती; यह तो कटाक्ष हुआ। आ, अब तुझे बताऊँ कि आँखों से प्रेम की बातें कैसे की जाती हैं। मेरी ओर देख !

यह कहते-कहते रानी को फिर शिथिलता का अनुभव हुआ। 'सुधाबिन्दु' का प्रकाश मन्द होने लगा। विकल होकर पूछा—क्यों री, देख तो मेरा मुख कुछ उतरा जाता है।

गई। बोली—प्राणेश ! तुम्हीं हो इस रूप में ?

यह कहते-कहते वह मूर्छित हो गई।

9

रानी देवप्रिया का सिर राजकुमार के पैरों पर था और आँखों से आँसू बह रहे थे। उनकी ओर ताकते हुए विचित्र भय हो रहा था। उसे कुछ-कुछ सन्देह हो रहा था कि मैं सो तो नहीं रही हूँ। कोई मनुष्य माया के दुर्भेद्य अंधकार को चीर सकता है ? जीवन और मृत्यु के मध्यवर्ती अपार विस्मृत सागर को पार कर सकता है ? जिसमें यह सामर्थ्य हो, वह मनुष्य नहीं, प्रेत योनि का जीव है। यह विचार आते ही रानी का सारा शरीर काँप उठा, पर इस भय के साथ ही उसके मन में उत्कण्ठा हो रही थी कि उन्हीं चरणों से लिपटी हुई इसी क्षण प्राण त्याग दूँ। राजकुमार उसके पति हैं, इसमें तो सन्देह न था, सन्देह केवल यह था कि मेरे साथ यह कोई प्रेतलीला तो नहीं कर रहे हैं। वह रह-रहकर छिपी हुई निगाहों से उनके मुख की ओर ताकती थी, मानो निश्चय कर रही हो कि पति ही हैं या मुझे भ्रम हो रहा है।

सहसा राजकुमार ने उसे उठाकर बैठा दिया और उसके मनोभावों को शान्त करते हुए बोले—हाँ प्रिये, मैं तुम्हारा वही चिरसंगी हूँ, जो अपनी प्रेमाभिलाषाओं को लिये हुए कुछ दिनों को तुमसे जुदा हो गया था। मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि कोई यात्रा करके लौटा आ रहा हूँ। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, और जिसके भय से संसार काँपता है, वह केवल एक यात्रा है। उस यात्रा में भी मुझे तुम्हारी याद आती रहती थी। विकल होकर आकाश में इधर-उधर दौड़ा करता था। प्रायः सभी प्राणियों की यही दशा थी। कोई अपने संचित धन का अपव्यय देख-देखकर कुढ़ता था, कोई अपने बाल-बच्चों को ठोकरें खाते देखकर रोता था। वे दृश्य इस मर्त्यलोक के दृश्यों से कहीं करुणाजनक, कहीं दुःखमय थे। कितने ही ऐसे जीव दिखाई दिए, जिनके सामने यहाँ सम्मान से मस्तक झुकता था, वहाँ उनका नग्न स्वरूप देखकर उनसे घृणा होती थी। यह कर्मलोक है, वहाँ भोग-लोक; और कर्म का दण्ड कर्म में कहीं भयंकर होता है। मैं भी उन्हीं [illegible] में था। देखता था कि मेरे प्रेम सिंचित उद्यान को भाँति-भाँति के पशु कुचल रहे हैं, प्रणय के पवित्र सागर में हिंसक जल-जन्तु दौड़ रहे हैं, और देख-देखकर [illegible] विह्वल हो जाता था। अगर मुझमें वज्र गिराने की सामर्थ्य होती, तो [illegible] उन पशुओं का अन्त कर देता। मुझे यही जलन थी। कितने [illegible] रहीं, इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि [illegible] वाली मात्राएँ न थीं; पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता

मुझे कई युग बीत गए। रोज नई-नई सूरतें आती और पुरानी सूरतें लुप्त होती रहती थीं। सहसा एक दिन मैं लुप्त हो गया। कैसे लुप्त हुआ, यह याद नहीं; होश आया, तो मैंने अपने को बालक के रूप में पाया। मैंने राजा हर्षपुर के घर में जन्म लिया था।

इस नए घर में मेरा लालन-पालन होने लगा। ज्यों-ज्यों बढ़ता था, स्मृति पर परदा-सा पड़ता जाता था, पिछली बातें भूलता जाता था, यहाँ तक कि जब बोलने की सामर्थ्य हुई, तो माया अपना काम पूर कर चुकी थी। बहुत दिनों तक अध्यापकों से पढ़ता रहा। मुझे विज्ञान में विशेष रुचि थी। भारतवर्ष में विज्ञान की कोई अच्छी प्रयोगशाला न होने के कारण मुझे यूरोप जाना पड़ा। वहाँ मैं कई वैज्ञानिक परीक्षाएँ करता रहा। जितना ही रहस्यों का ज्ञान बढ़ता था, उतनी ही ज्ञान-पिपासा भी बढ़ती थी; किन्तु इन परीक्षाओं का फल मुझे लक्ष्य से दूर लिए जाता था। मैंने सोचा था, विज्ञान द्वारा जीव का तत्व निकाल लूंगा; पर सात वर्षों तक अनवरत परिश्रम करने पर भी मनोरथ न पूरा हुआ।

एक दिन मैं बर्लिन की प्रधान प्रयोगशाला में बैठा हुआ यही सोच रहा था कि एक तिब्बती भिक्षु आ निकला। मुझे चिन्तित देखकर वह एक क्षण मेरी ओर ताकता रहा, फिर बोला—बालू से मोती नहीं निकलते, भौतिक ज्ञान से आत्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त होता।

मैंने चकित होकर पूछा—आपको मेरे मन की बात कैसे मालूम हुई?

भिक्षु ने हँसकर कहा—आपके मन की इच्छा तो आपके मुख पर लिखी हुई है। जड़ से चेतन का ज्ञान नहीं होता। यह क्रिया ही उल्टी है। उन महात्माओं के पास जाओ, जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया है। वही तुम्हें वह मार्ग दिखाएँगे।

मैंने पूछा—ऐसे महात्माओं के दर्शन कहाँ होंगे? मेरा तो अनुमान है कि वह विद्या ही लोप हो गई और उसके जानने का जो दावा करते हैं, वे बने हुए महात्मा हैं।

भिक्षु—यथार्थ कहते हो; लेकिन अब भी खोजने से ऐसे महात्मा मिल जाएंगे। तिब्बत की तपोभूमि में आज भी ऐसी महान् आत्माएँ हैं, जो माया का रहस्य खोल सकती हैं। हाँ, जिज्ञासा की सच्ची लगन चाहिए।

मेरे मन में बात बैठ गई। तिब्बत की चर्चा बहुत दिनों से सुनता आता था। भिक्षु से वहाँ की कितनी ही बातें पूछता रहा। अन्त में उसी के साथ तिब्बत चलने की ठहरी। मेरे मित्रों को यह बात मालूम हुई, तो वे भी मेरे साथ चलने पर तैयार हो गए। हमारी एक समिति बनाई गई, जिसमें 2 अँगरेज, 2 फ्रेंच और 3 जर्मन थे। अपने साथ नाना प्रकार के यन्त्र लेकर हम लोग अपने मिशन पर चले। मार्ग में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, वहाँ कैसे पहुँचे, विहारों में क्या-क्या दृश्य देखे, इसकी चर्चा करने लगूं तो कई दिन लग जाएँगे। कई बार तो हम लोग मरते-मरते बचे; लेकिन वहाँ चित्त को जो शान्ति मिली;

उसके लिए लिए हम मर भी जाते, तो दुःख न होता। अँगरेजों को तो सफलता न हुई क्योंकि वे तिब्बत की सैनिक स्थिति का निरीक्षण करने आये थे और भिक्षुओं ने उनकी नीयत भाँप ली थी। लेकिन शेष पाँचों मित्रों ने तो पाली और संस्कृत के ऐसे-ऐसे ग्रन्थ रत्न खोज निकाले कि उन्हें यहाँ से ले जाना कठिन हो गया। जर्मन तो ऐसे प्रसन्न थे, मानो उन्हें कोई भंडेश हाथ आ गया हो।

शरद-ऋतु थी, जलाशय हिम से ढक गए थे। चारों ओर वर्फ ही वर्फ दिखाई देती थी। मेरे मित्र लोग तो पहले ही चले गए थे। अकेला मैं ही रह गया था। एक दिन सन्ध्या समय मैं इधर-उधर विचरता हुआ एक शिला पर जाकर खड़ा हो गया। सामने का दृश्य अत्यन्त मनोरम था, मानो स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। उसका बखान करना उसका अपमान करना है। मनुष्य की वाणी में न इतनी शक्ति है, न शब्दों में इतना चित्रण! इतना ही कह देना काफी है कि वह दृश्य अलौकिक था, स्वर्गोपम था। विशाल दृश्यों के सामने हम मन्त्रमुग्ध से हो जाते हैं, अवाक् होकर ताकते हैं, कुछ कह नहीं सकते। मौन आश्चर्य की दशा में खड़ा ताक ही रहा था कि सहसा मैंने एक वृद्ध पुरुष को सामने की गुफा से निकलकर पर्वत शिखर की ओर जाते देखा। जिन शिलाओं पर कल्पना के भी पाँव डगमगा जाएँ, उन पर वह इतनी सुगमता से चले जाते थे कि विस्मय होता था। बड़े-बड़े दरों को इस भाँति फाँद जाते थे, मानो छोटी-छोटी नालियाँ हैं। मनुष्य की यह शक्ति कि वह, उस हिम से ढके हुए दुर्गम शृङ्ग पर इतनी चपलता से चला जाए। और मनुष्य भी वह, जिसके सिर के बाल सन की भाँति सफेद हो गए थे।

मुझे ख्याल आया कि इतना पुरुषार्थ प्राप्त करना किसी सिद्ध ही का काम है। मेरे मन में उनके दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा हुई, पर मेरे लिए ऊपर चढ़ना असाध्य था। वह न-जाने फिर कब तक उतरें, कब तक यहाँ खड़ा रहना पड़े। उधर अँधेरा बढ़ता जाता था। आखिर मैंने निश्चय किया कि आज चलूँ, कल से रोज दिन भर यहीं बैठा रहूँगा, कभी न कभी तो दर्शन होंगे ही। मेरा मन कह रहा था कि इन्हीं से मुझे आत्मज्ञान प्राप्त होगा। दूसरे दिन मैं प्रातःकाल वहाँ आकर बैठ गया और सारे दिन शिखर की ओर टकटकी लगाए देखता रहा; पर चिड़िया का पूत भी न दिखाई दिया।

एक महीने तक यही मेरा नित्य का नियम रहा। रात भर विहार में पड़ा रहता दिन भर शिला पर बैठा रहता; पर महात्मा जी न जाने कहाँ गायब हो गए थे। उनकी झलक तक न दिखाई देती थी। मैंने कई बार ऊपर चढ़ने का प्रयत्न किया, पर सौ गज से आगे न जा सका। कील काँटे ठोकते, शिलाओं पर रास्ता बनाते कई महीनों में शिखर पर पहुँचना सम्भव था; पर यह अकेले आदमी का काम न था, अन्य भिक्षुओं से पूछता तो हँसकर कहते—उनके दर्शन हमें दुर्लभ हैं, तुम्हें क्या होंगे? बरसों में कभी एक बार दिखाई दे जाते हैं। कहाँ रहते हैं, कोई नहीं जानता; किन्तु अधीर न होना। वह यदि तुम्हारी

तो तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायगी। यह भी सुनने में आया कि कई
ु उनके दर्शनों की चेष्टा में प्राणों से हाथ धो वैठे हैं। उनमें इतना विद्युत्तेज
क साधारण मनुष्य उनके सम्मुख खड़ा ही नहीं हो सकता। उनको नेत्रज्योति
जली की तरह हृत्स्थल में लगती है। जिसने यह आघात सह लिया, उनकी तो
शल है; जो नहीं सह सकता, वह वहीं खड़ा-खड़ा भस्म हो जाता है। कोई योगी
। उनसे साक्षात् कर सकता है।

यह वातें सुन-सुनकर मेरी भक्ति और भी दृढ़ हो जाती थी। मरूं या जिऊं;
र उनके दर्शन अवश्य करूँगा, यह धारणा मन में जम गई। योगी की क्रियाएँ
तो पहले ही करने लगा था, इसलिए मुझे विश्वास था कि मैं उनके तेज का सामना
कर सकता हूं। दिव्यज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न में मर जाना भी श्रेय की वात
होगी। क्या था, क्या हूँगा? कहाँ जाऊँगा? इन स्वप्नों का उत्तर किसी ने आज
तक न दिया और न दे सकता है। वह तो अपने अनुभव की वात है। हम उसका
अनुभव ही कर सकते हैं, किसी को वता नहीं सकते। इस महान् उद्योग में मर
जाना भी मनुष्य के लिए गौरव की वात है।

एक वर्ष गुजर गया और महात्माजी के दर्शन न हुए। न जाने कहाँ जाकर
अन्तर्धान हो गए। वहाँ से न किसी को पत्र लिख सकता था, न संसार की कुछ
खवर मिलती थी। कभी-कभी जी ऐसा घवराता था कि चलकर अन्य सांसारिक
प्राणियों की भाँति जीवन का सुख भोगूं। इसमें रखा ही क्या है कि मैं क्या था और
क्या हूँगा। पहले तो यही निश्चित नहीं कि मुझे यह ज्ञान प्राप्त भी होगा और
हो भी गया, तो उससे मेरा या संसार का क्या उपकार होगा। विना इन रहस्यों
के जाने भी जीवन को उच्च और पवित्र वनाया जा सकता है। वहाँ की सुरम्यता
अजीर्ण हो गई, वह कमनीय प्राकृतिक छटा आँखों में खटकने लगी। विवश होकर
स्वर्ग में भी रहना पड़े, तो वह नरक-तुल्य हो जाय।

अन्त में एक दिन मैंने निश्चय किया कि अव जो होना हो, सो हो; इस पर्वत
शृंङ्ग पर अवश्य चढ़ूंगा। यह निश्चय करके मैंने चढ़ना शुरू किया; लेकिन दिन
गुजर गया और मैं सौ गज से आगे न जा सका। मेरी चढ़ाई उन विज्ञान के
खोजियों की सी न थी, जो सभी साधनों से लैस होते हैं। मैं अकेला था; न कोई
यन्त्र, न मन्त्र, न कोई रक्षक, न प्रदर्शक; भोजन का भी ठिकाना नहीं, प्राणों प
खेलना था। करता क्या! ज्ञान के मार्ग में यन्त्रों का जिक्र ही क्या! आत्मसमर्प
तो उसकी पहली क्रिया है। जानता था कि मर जाऊँगा; किन्तु पड़े-पड़े मरने
उद्योग करते हुए मरना अच्छा था।

पहली रात मैंने एक चट्टान पर वैठकर काटी। वार-वार झपकियाँ आ
थीं; पर चौंक-चौंक पड़ता था। जरा चूका और रसातल पहुँचा। इतनी कु
थी कि गरमी के दिन आ गए थे। हिम का गिरना वन्द था; पर जहाँ इ
आराम था, वहाँ पिघली हुई हिम शिलाओं के गिरने से क्षण मात्र में जीव

हाथ धोने की शंका भी थी। वह भयंकर निशा, वह भयंकर जन्तुओं की गरज और तड़प याद करता हूँ, तो आज भी रोमांच हो जाता है। बार-बार पूर्व दिशा की ओर ताकता था; पर निर्दयी सूर्य उदय होने का नाम न लेता था। खैर, किसी तरह रात कटी, सवेरे फिर चला। आज की चढ़ाई इतनी सीधी न थी, फिर भी 50 गज से आगे न जा सका। रास्ते में एक दर्रा पड़ गया, जिसे पार करना असंभव था। इधर-उधर बहुत निगाह दौड़ाई; पर ऐसा कोई उतार न दिखाई दिया, जहाँ से उतरकर दर्रे को पार कर सकता। इधर भी सीधी दीवार थी, उधर भी। संयोग से एक जगह दोनों ओर दो छोटे-छोटे वृक्ष दिखाई दिए। मेरी जेब में पतली रस्सी का एक टुकड़ा पड़ा हुआ था। अगर किसी तरह इस रस्सी को दोनों वृक्षों में बाँध सकूँ तो समस्या हल हो जाय, लेकिन उस पार रस्सी को पेड़ में कौन बाँधे ? आखिर मैंने रस्सी के एक सिरे में पत्थर का एक भारी टुकड़ा खूब कसकर बाँधा और उसको लंगर की भाँति उस पार वाले वृक्ष पर फेंकने लगा कि किसी डाल में फँस जाय, तो पार हो जाऊँ। बार-बार पूरा जोर लगाकर लंगर फेंकता था; पर लंगर वहाँ तक न पहुँचता था। सारा दिन इसी लंगरबाजी में कट गया, रात आ गई। शिलाओं पर सोना जान-जोखिम था। इसलिए वह रात मैंने वृक्ष ही पर काटने की ठानी। मैं उस पर चढ़ गया और दो डालों में रस्सी फँसा-फँसाकर एक छोटी-सी खाट बना ली। आधी रात गुजरी थी कि बड़े जोर का धमाका हुआ। उस अथाह खोह में कई मिनट तक उसकी आवाज गूँजती रही। सवेरे देखा तो बर्फ की एक बड़ी शिला ऊपर से पिघलकर गिर पड़ी थी और उस दर्रे पर उसका एक पुल-सा बन गया था। मैं खुशी के मारे फूला न समाया। जो मेरे लिए कभी न हो सकता था, वह प्रकृति ने अपने आप ही कर दिया। यद्यपि उस पुल पर से दर्रे को पार करना प्राणों से खेलना था—मृत्यु के मुख में पाँव रखना था; पर दूसरा कोई उपाय न था। मैंने ईश्वर को स्मरण किया और सँभल-सँभलकर उस हिम राशि पर पाँव रखता हुआ खाई को पार कर गया। इस असाध्य साधना में सफल होने से मेरे मन में यह धारणा होने लगी कि मर नहीं सकता। कोई अज्ञात शक्ति मेरी रक्षा कर रही है। किसी कठिन कार्य में सफल हो जाना आत्मविश्वास के लिए संजीवनी के समान है। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा मनोरथ अवश्य पूरा होगा।

उस पार पहुँचते ही सीधी चट्टान मिली। दर्रे के किनारे और चट्टान में केवल एक बालिश्त, और कहीं-कहीं एक हाथ का अन्तर था। उस पतले रास्ते पर चलना तलवार की धार पर पैर रखना था। चट्टान से चिमट-चिमटकर चलता हुआ, दो-तीन घण्टों के बाद मैं एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ चट्टान की तेजी बहुत कम हो गई थी। मैं लेटकर ऊपर को रेंगने लगा। सम्भव था, मैं संध्या तक इस तरह रेंगता रहता, पर संयोग से एक समतल शिला मिल गई और उसे देखते ही मुझे जोर की थकान मालूम होने लगी। जानता था कि यहाँ सोकर फिर

उठने की नौवत न आएगी, पर जरा-से लेट जाने के लोभ को मैं किसी तरह संवरण न कर सका। नींद को दूर रखने के लिए एक गीत गाने लगा। लेकिन न जाने कब आँखें झपक गई।

कह नहीं सकता कि कितनी देर तक सोया, जब नींद खुली और चाहा कि उठूं, तो ऐसा मालूम हुआ कि ऊपर मनो बोझ रखा हुआ है। सब अंग जकड़े हुए थे। कितना ही जोर मारता था, पर अपनी जगह से हिल न सकता था, चेतना किसी डूबते हुए नक्षत्र की भाँति डूबती जाती थी। समझ गया कि जीवन से इतने दिनों तक का साथ था। पूर्व स्मृतियाँ चेतना की अन्तिम जागृति की भाँति जागृत हो गईं। अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। व्यर्थ प्राण खोए। इतना जानने ही से तो उद्धार न होगा कि मैं पूर्व-जन्म में क्या था। यह ज्ञान न रखते हुए भी संसार में एक से एक ज्ञानी, एक से एक प्रणवीर, एक से एक धर्मात्मा हो गए। क्या उनका जीवन सार्थक हुआ ? यही सोचते-सोचते न जाने कब मेरी चेतना का अपहरण हो गया। जब मेरी आँख खुली, तो देखा कि एक छोटी-सी कुटी में मृगचर्म पर कम्बल ओढ़े पड़ा हुआ हूँ और एक पुरुष बैठा मेरे मुख की ओर वात्सल्य-दृष्टि से देख रहा है। मैंने इन्हें पहचान लिया। यह वही महात्मा थे, जिनके दर्शन के लिए मैं लालायित हो रहा था मुझे आँखें खोलते देखकर वह सदय भाव से मुस्काए और बोले—हिम-शय्या कितनी प्रिय वस्तु है। पुष्प-शय्या पर तुम्हें कभी इतना सुख मिला था ?

मैं उठ बैठा और महात्मा के चरणों पर सिर रखकर बोला—आपके दर्शनों से जीवन सफल हो गया। आपकी दया न होती, तो शायद वहीं मेरा अन्त हो जाता।

महात्मा—अन्त कभी किसी का नहीं होता। जीवन अनन्त है। हाँ, अज्ञानवश हम ऐसा समझ लेते हैं।

मैं—मुझे आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। आपमें अमानुषीय शक्ति है।

महात्मा—इसीलिए ऐसा समझते हो कि तुमने मुझे शिलाओं पर चढ़ते देखा है ? यह तो अमानुषीय शक्ति नहीं है। यह तो साधारण मनुष्य भी अभ्यास से कर सकता है।

मैं—आपने योग द्वारा ही यह बल प्राप्त किया होगा ?

महात्मा—नहीं, मैं योगी नहीं, प्रयोगी हूँ। आपने डारविन का नाम सुना होगा ? पूर्व जन्म में मेरा ही नाम डारविन था।

मैंने विस्मित होकर कहा—आप ही डारविन थे ?

महात्मा हाँ, उन दिनों मैं प्राणिशास्त्र का प्रेमी था। अब प्राणशास्त्र का खोजी हूँ।

सहसा मुझे अपनी देह में एक अद्भुत शक्ति का संचालन होता हुआ मालूम हुआ। नाड़ी की गति तीव्र हो गई, आँखों से ज्योति की रेखाएँ-सी निलकने लगीं।

[illegible] खिल गई हो। मैं फुर्ती से उठ बैठा [illegible]तु उन्होंने मुझे रोककर कहा—
[illegible] पर वह समय आ रहा है, जब आनेवाली जाति जल, स्थल और आकाश में समान रीति से चल सकेगी। यह मेरा विश्वास है। पृथ्वी का क्षेत्र उन्हें छोटा मालूम होगा। वह पृथ्वी से अन्य पिण्डों में उतनी ही सुगमता से आ-जा सकेंगे, जैसे एक देश से दूसरे देश में।

मैं—आपको अपने पूर्व जन्म का ज्ञान योग द्वारा ही हुआ होगा?

महात्मा—नहीं, मैं पहले ही कह चुका कि मैं योगी नहीं, प्रयोगी हूँ। तुमने तो विज्ञान पढ़ा है, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्युत् का अपार सागर है। जब हम विज्ञान द्वारा मन के गुप्त रहस्य जान सकते हैं, तो क्या अपने पूर्व-संस्कार न जान सकेंगे? केवल स्मृति को जगा देने ही से पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

मैं—मुझे भी यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है?

महात्मा—मुझे हो सकता है, तो आपको क्यों न हो सकेगा! अभी तो आप थके हुए हैं। कुछ भोजन करके स्वस्थ हो जाइए, तो मैं आपको अपनी प्रयोगशाला की सैर कराऊँ।

मैं—क्या आपकी प्रयोगशाला भी यहीं है?

महात्मा—हाँ, इसी कमरे से मिली हुई है। आप क्या भोजन करना चाहते हैं?

मैं—उसके लिए आप कोई चिन्ता न करें। आपका जूठन मैं भी खा लूँगा।

महात्मा—(हँसकर) अभी नहीं खा सकते। अभी तुम्हारी पाचन-शक्ति इतनी बलवान नहीं है। तुम जिन पदार्थों को खाद्य समझते हो, उन्हें मैंने बरसों से नहीं खाया। मेरे लिए उदर को स्थूल वस्तुओं से भरना वैसा ही अवैज्ञानिक है, जैसे इस वायुयान के दिनों में बैलगाड़ी पर चलना। भोजन का उद्देश्य केवल सचालन शक्ति को उत्पन्न करना है। जब वह शक्ति हमें भोजन करने की अपेक्षा कहीं आसानी से मिल सकती है, तो उदर को क्यों अनावश्यक वस्तुओं से भरें? वास्तव में आनेवाली जाति उदरविहीन होगी।

यह कहकर उन्होंने मुझे थोड़े से फल खिलाए, जिनका स्वाद आज तक याद करता हूँ। भोजन करते ही मेरी आँखें खुल-सी गईं। ऐसे फल न जाने किस बाग में पैदा होते होंगे। यहाँ की विद्युत्मय वायु ने पहले ही आश्चर्यजनक स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी। यह भोजन करके तो मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मैं आकाश में उड़ सकता हूँ। वह चढ़ाई, जिसे मैं असाध्य समझ रहा था, अब तुच्छ मालूम होती थी।

अब महात्माजी मुझे अपनी प्रयोगशाला की सैर कराने चले। यह एक विशाल गुफा थी, जिसके विस्तार का अनुमान करना कठिन था। उसकी चौड़ाई 500

हाथ से कम न रही होगी। लम्बाई उसकी चौगुनी थी। ऊँची इतनी कि हमारे ऊँचे-ऊँचे मीनार भी उसके पेट में समा सकते थे। बौद्ध मूर्तिकारों की अद्भुत चित्र-कला यहाँ भी विद्यमान थी। यह पुराने समय का कोई विहार था। महात्माजी ने उसे प्रयोगशाला बना लिया था।

प्रयोगशाला में कदम रखते ही मैं एक दूसरी ही दुनिया में पहुँच गया। जेनेवा नगर आँखों के सामने था और एक भवन में राष्ट्रों के मंत्री बैठे हुए किसी राज-नीतिक विषय पर बहस कर रहे थे। उनकी आँखों के इशारे, ओठों का हिलना और हाथों का उठना साफ दिखाई देता था। उनके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द साफ-साफ कानों में आता था। एक क्षण के लिए मैं धोखे में आ गया कि जेनेवा ही में बैठा हूँ। जरा और आगे बढ़ा तो संगीत की ध्वनि कानों में आयी। मैंने योरप में यह आवाज सुनी थी। पहचान गया, पैड्रोस्की की आवाज थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। जिन आविष्कारों का बड़े-बड़े विद्वानों को आभास मात्र था, वे सब यहाँ अपने समुन्नत, पूर्ण रूप में दिखाई दे रहे थे। इस निर्जन स्थान में, आबादी से कोसों दूर, इतनी ऊँचाई पर कैसे इन प्रयोगों में सफलता हुई, ईश्वर ही जान सकते हैं। महात्मा लोग तो योग की क्रियाओं ही में कुशल होते हैं। अध्यात्म उनका क्षेत्र है। विज्ञान पर उन्होंने कैसे आधिपत्य जमाया।

महात्माजी मेरी ओर देखकर मुस्कराए और बोले—विज्ञान अन्तःकरण को भी गुप्त नहीं छोड़ता। तुम्हें इन बातों से आश्चर्य हो रहा है, पर यथार्थ यह है कि विज्ञान ने योग को बहुत सरल कर दिया है। वह बहिर्जगत से अब धीरे-धीरे अन्तर्जगत में प्रवेश कर रहा है। मनोयोग की जटिल क्रियाओं द्वारा जो सिद्धि बरसों में प्राप्त होती थी, वह अब क्षणों में हो जाती है कदाचित् वह समय दूर नहीं कि हम विज्ञान द्वारा मोक्ष भी प्राप्त कर सकेंगे।

मैंने पूछा—क्या पूर्व समय का ज्ञान भी किसी प्रयोग द्वारा हो सकता है?

महात्मा—हो सकता है; लेकिन उससे किसी उपकार की आशा नहीं। विज्ञान अगर प्राणियों का उपकार न करे, तो उसका मिट जाना ही अच्छा। केवल जिज्ञासा को शान्त करने, विलास में योग देने, या यथार्थ की सहायता करने के लिए प्रयोग करना उसका दुरुपयोग करना है। मैं चाहूँ तो अभी एक क्षण में योरप के बड़े-से-बड़े नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दूँ, लेकिन विज्ञान प्राण-रक्षा के लिए है, वध करने के लिए नहीं।

मुझे निराशा तो हुई, पर आग्रह न कर सका। शाम तक प्रयोगशाला के यन्त्रों को देखता रहा। किन्तु उनमें अब मन न लगता था। यही धुन सवार थी कि क्योंकर यह दुस्तर कार्य सिद्ध करूँ। आखिर उन्हें किसी तरह पसीजते न देख-कर मैंने उसी हिकमत से काम लिया, जो निरुपायों का आधार है। बोला—भगवन्, आपने वह सब कर दिखाया; जिसका संसार के विज्ञानवेत्ता अभी केवल स्वप्न देख रहे हैं।

महात्माजी पर इन शब्दों का वही असर पड़ा, जो मैं चाहता था। यद्यपि मैंने यथार्थ ही कहा था, लेकिन कभी-कभी यथार्थ भी खुशामद का काम कर जाता है। प्रसन्न होकर बोले—मैं गर्व तो नहीं करता; पर ऐसी प्रयोगशाला संसार में दूसरी नहीं है।

मैं—योरपवालों को खबर मिल जाए, तो आपको आराम से बैठना मुश्किल हो जाय।

महात्मा—मैंने कितनी ही नई-नई बातें खोज निकालीं, पर उनका गौरव आज दूसरों को प्राप्त है। लेकिन इसकी क्या चिंता! मैं विज्ञान का उपासक हूँ, अपनी ख्याति और गौरव का नहीं।

मैं—आपने इस देश का मुख उज्ज्वल कर दिया।

महात्मा—मेरा यान आकाश में जितनी ऊँचाई तक पहुँच सकता है, उसकी योरपवाले कल्पना भी नहीं कर सकते। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही मेरी चन्द्र-लोक की यात्रा सफल होगी। योरप के वैज्ञानिकों की तैयारियाँ देख-देखकर मुझे हँसी आती है। जब तक हमको वहाँ की प्राकृतिक स्थिति का ज्ञान न हो, हमारी यात्रा सफल नहीं हो सकती। सबसे पहले विचारधाराओं को वहाँ से जाना होगा विद्वान लोग भी कभी-कभी बालकों की-सी कल्पनाएँ करने लगते हैं।

मैं—वह दिन हमारे लिए सौभाग्य और गर्व का होगा।

महात्मा—प्राचीन काल में ऋषिगण योग-बल से त्रिकाल-दृष्टि प्राप्त किया करते थे। पर उसमें बहुधा भ्रम हो जाता था। उसकी सहायता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होता था। मैंने वैज्ञानिक परीक्षाओं से उस कार्य को सिद्ध किया है। प्रण तो मैंने यही किया था कि किसी को यह रहस्य न बताऊँगा, लेकिन तुम्हारी तपस्या देखकर दया आ रही है! मेरे साथ आओ।

मैं महात्माजी के पीछे-पीछे एक ऐसी गुफा में पहुँचा, जहाँ केवल एक छोटी-सी चौकी रखी हुई थी। महात्माजी ने गम्भीर मुख से कहा—तुम्हें यह बात गुप्त रखनी होगी।

मैंने कहा—जैसी आज्ञा।

महात्मा—तुम इसका वचन देते हो?

मैं—आप इसकी किंचित् मात्र भी चिन्ता न करें।

महात्मा—अगर किसी यश और धन के इच्छुक को यह खबर मिल गई, तो वह संसार में एक महान् क्रांति उपस्थित कर देगा और कदाचित् मुझे प्राणों से हाथ धोना पड़े। मैं मर जाऊँगा, किन्तु इस गुप्त ज्ञान का प्रचार न करूँगा। तुम इस चौकी पर लेट जाओ और आँखें बन्द कर लो।

चौकी पर लेटते ही मेरी आँखें झपक गईं और पूर्व जन्म का दृश्य आँखों के सामने आ गए। हाँ प्रिये, मेरा अतीत जीवित हो गया। यही भवन था; यही माता पिता थे; जिनकी तसवीरें दीवानखाने में लगी हुई हैं। मैं लड़कों के साथ बाग में

गेंद खेल रहा था। फिर दूसरा दृश्य सामने आया मैं गुरु की सेवा में बैठा हुआ पढ़ रहा था। यह वही गुरुजी थे, जिनकी तसवीर तुम्हारे कमरे में है, एक तिल का भी अन्तर नहीं है। इसके बाद युवावस्था का दृश्य आया। मैं तुम्हारे साथ एक नौका पर बैठा हुआ नदी में जल-क्रीड़ा कर रहा था। यह है वह दृश्य, जब हवा वेग से चलने लगी थी और तुम डरकर मेरे हृदय से चिपक गई थीं।

देवप्रिया—खूब याद है, प्राणेश ! खूब याद है।

राजकुमार—वह दृश्य याद है, जब मैं लता कुंज में घास पर बैठा हुआ तुम्हें पुष्पाभूषणों से अलंकृत कर रहा था ?

देवप्रिया—हाँ प्राणनाथ, खूब याद है। यही तो स्थान है।

राजकुमार—पाँचवाँ दृश्य वह था, जब मैं मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था। माता-पिता सिरहाने खड़े थे और तुम मेरे पैरों पर सिर रखे रो रही थीं ! याद है ?

देवप्रिया—हाय प्राणनाथ ! वह दिन भूल सकती हूँ ?

राजकुमार—एक क्षण में मेरी आँखें खुल गईं। पर जो कुछ देखा था, वह सब आँखों में फिर रहा था, मानो बचपन की बातें हों। मैंने महात्मा से पूछा—मेरे माता-पिता जीवित हैं ? उन्होंने एक क्षण आँखें बन्द करके सोचने के बाद कहा—उनका देहावसान हो गया है। तुम्हारे शोक में दोनों घुल-घुलकर मर गए।

मैं—और मेरी स्त्री ?

महात्मा—वह अभी जीवित है।

मैं—किस नगर में है ?

महात्मा—काशी के समीप जगदीशपुर में। किन्तु तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं, यह ईश्वरी इच्छा के विरुद्ध होगा और संस्कारों के क्रम को पलटना अनिष्ट का मूल है।

मैंने उस समय तो कुछ न कहा, पर उसी क्षण मैंने तुमसे मिलने का दृढ़ संकल्प कर लिया। मुझे अब वहाँ एक-एक क्षण एक-एक युग हो गया। दो दिन तो मैं किसी तरह रहा, तीसरे दिन मैंने महात्माजी से विदा होकर प्रस्थान कर कर दिया। महात्माजी बड़े प्रेम से मुझसे गले मिले और चलते-चलते ऐसी क्रिया बतलायी, जिसके द्वारा हम अपनी आयु और बल को इच्छानुसार बढ़ा सकते हैं। तब मुझे गले से लगाकर एक यान पर बैठा दिया। यान मुझे हरिद्वार पहुँचाकर आप-ही-आप लौट गया। यह उनके यानों की विशेषता है। हरिद्वार से मैं सीधा हर्षपुर पहुँचा और एक सप्ताह तक माता-पिता की सेवा में रहकर यहाँ आ पहुँचा। तुमसे मिलने के पहले मैं कई बार इधर निकला। यहाँ की हर एक वस्तु मेरी जानी-पहचानी मालूम होती थी। दो-चार पुराने दोस्त भी दिखलाई दिए; पर उनसे मैं बोला नहीं। एक दिन जगदीशपुर की सैर भी कर आया। ऐसा मालूम होता था कि मेरी बाल्यावस्था वहीं गुजरी हो। तुमसे मिलने के पहले कई दिन

गहरी चिन्ता में पड़ा रहा। एक विचित्र शंका होती थी। अकस्मात् तुमसे पार्क में मुलाकात हो गई। कह नहीं सकता, तुम्हें देखकर मेरे चित्त की क्या दशा हुई। ऐसा जी चाहता था, दौड़कर हृदय से लगा लूँ। महात्मा के अन्तिम शब्द भूल गए और मैं यहां तुमसे मिल गया।

देवप्रिया ने रोते हुए कहा—प्राणनाथ, आपके दर्शन पाते ही मेरा हृदय गद्-गद हो गया। ऐसा मालूम हुआ, मानो आपसे मेरा पुराना परिचय है, मानो मैंने आपको कहीं देखा है। आपने एक दृष्टि में मेरे मन के उन भावों को जागृत कर दिया जिन्हें मेरी विलासिता ने कुचल-कुचलकर शिथिल कर दिया था। स्वामी! मैं आपके चरणों को स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ; लेकिन जब तक जाऊँगी, तब तक आपकी स्मृति को हृदय में संचित रखूँगी।

राजकुमार - प्रिये, तुम्हें मालूम है, विवाह का सम्बन्ध देह से नहीं, आत्मा से है। क्या आत्मा अनन्त और अमर नहीं?

देवप्रिया ने इसका कोई उत्तर न दिया। प्रश्नसूचक नेत्रों से राजकुमार की ओर ताकने लगी।

राजकुमार—तो अब तुम्हें मेरे साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं है?

देवप्रिया ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—प्राणनाथ, आप मुझसे यह प्रश्न क्यों करते हैं? आप मेरा उद्धार कर रहे हैं, आपको छोड़कर और किसकी शरण जाऊँगी? अब तो मुझे आप मार-मारकर भी भगाएँ, तो आपका दामन न छोड़ूँगी आह स्वामी! यह शुभ अवसर जीते जी मिलेगा, इसकी तो स्वप्न में भी आशा न थी। मेरा सौभाग्य सूर्य इतने दिनों के बाद फिर उदय होगा यह तो कदाचित् मेरे देवताओं को भी मालूम न होगा। न जाने किसके पुण्य-प्रताप से मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ है। कौन स्त्री इतनी सौभाग्यवती हुई है? आपको पाकर मैं सब कुछ पा गई। अब मुझे किसी बात की अभिलाषा नहीं रही। आपकी चेरी हूँ —वही चेरी, जो एक बार आपके ऊपर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी है।

राजकुमार ने रानी को कण्ठ से लगाकर कहा—यह हमारा पुनर्संयोग है!

देवप्रिया—नहीं प्राणनाथ, मैं इसे प्रेम-मिलन समझती हूँ।

यह कहते-कहते रानी चुप हो गई। उसे ख्याल आया कि मुझ जैसी वृद्धा ऐसे देवरूप पुरुष के योग्य नहीं है। अभी प्रेम के वशीभूत होकर यह मेरा उद्धार कर देंगे, पर क्या कब तक प्रेम का भाव रहेगा? सम्भव है, इनकी दया दृष्टि मुझ पर सदैव बनी रहे, लेकिन मैं रनिवास की दुर्जनियों को कौन मुँह दिखाऊँगी, जनता के सामने कैसे निकलूँगी? उस दशा में तो क्या मेरी रक्षा न कर सकेंगे? यह अवस्था तो असह्य हो जाएगी।

राजकुमार ने उसके मनोभावों को ताड़कर क
शंकाओं का उठना स्वाभाविक है लेकिन तुम्हें निश्चय
होता, तो तुम्हारे पास आता ही नहीं! मेरे चित्त की व

है। मैं रूप-सौन्दर्य का मूल्य जानता हूँ और उनका मुझ पर कोई आकर्षण नहीं हो सकता। मेरे लिए तो तुम इस रूप में भी उतनी ही प्रिय हो। हाँ, तुम्हारे संतोष के लिए मुझे वह क्रियाएँ करनी पड़ेंगी, जो महात्माजी ने चलते-चलते बताई थीं। जिसके द्वारा मैंने मायान्धकार पर विजय पायी, उसके द्वारा काल की गति को भी पलट सकूँगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मुरझाया हुआ फूल एक बार फिर हरा हो जाएगा—वही छवि, वही सौरभ, वही कोमलता फिर इसकी बलाएँ लेंगी। लेकिन तुम्हें भी मेरे लिए बड़े-बड़े त्याग करने पड़ेंगे। संभव है, तुम्हें राजभवन के बदले किसी वन में वृक्षों के नीचे रहना पड़े, रत्न-जटित आभूषणों के बदले वन्य पुष्पों पर ही संतोष करना पड़े। क्या तुम उन कष्टों को सह सकोगी ?

देवप्रिया—आपको पाकर अब मुझे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रही। विलास सच्चे सुख की छाया मात्र है। जिसे सच्चा सुख मयस्सर हो, वह विलास की तृष्णा क्यों करे ?

रानी मुँह से तो ये बातें कह रही थीं, किन्तु इस विचार से उनका चित्त प्रफुल्लित हो रहा था कि मेरा यौवन-पुष्प फिर खिलेगा, और सौन्दर्य दीपक फिर जलेगा।

राजकुमार—तो अब मैं जाता हूँ। कल संध्या समय फिर आऊँगा। इसी बीच में तुम यात्रा की तैयारी कर लेना।

देवप्रिया ने राजकुमार का हाथ पकड़कर कहा—मैं आपके साथ चलूंगी ! मुझे न जाने कैसी शंकाएँ हो रही हैं। मैं अब एक क्षण के लिए भी आपको न छोड़ूँगी।

राजकुमार—यों चलने से लोगों के मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ होंगी। मेरे पुनर्जन्म का किसी को विश्वास न आएगा; लोग समझेंगे कि ऐब को छिपाने के लिए यह कथा गढ़ ली गई है, केवल कुत्सित प्रेम को छिपाने के लिए यह कौशल किया गया है। इसलिए तुम किसी तीर्थयात्रा···

रानी ने बात काटकर कहा—मुझे अब लोकनिन्दा का भय नहीं है। मैं यह कहने को तैयार हूँ कि अपने प्राणपति के साथ जा रही हूँ।

राजकुमार ने मुसकराकर कहा—अगर मैं तुमसे दगा करूँ, तो ?

रानी ने भयातुर होकर कहा—प्राणनाथ, ऐसी बातें न करो। मैं अपने को तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर चुकी, लेकिन कुसंस्कारों से मुक्त नहीं हूँ। यदि कोई आदमी अभी आकर मुझसे कहे कि इन्द्रजाल का खेलकर रहे हैं, तो मैं नहीं कह सकती कि मेरी क्या दशा होगी। अलौकिक बातों को समझने के लिए अलौकिक बुद्धि चाहिए और मैं इससे वंचित हूँ। मैं निष्कपट भाव से अपने मन की दुर्बलताएँ प्रकट कर रही हूँ। मझे क्षमा कीजिएगा। अभी बहुत दिन गुजरेंगे, जब मैं इस स्वप्न को यथार्थ समझूँगी। उस स्वप्न को भंग न कीजिए। इस वक्त यहीं आराम कीजिए, रात बहुत बीत गई है। मैं तब तक कुँवर विशालसिंह को सूचना दे दूँ कि

ें।
वह आकर अपना राज्य सँभालें। कल मैं प्रातःकाल
हो जाऊँगी। री उपासना में अपना
यह कहकर रानी ने राजकुमार के लिए भोजन लाने उतनी मुझे आशा
भोजन करने लगे, तो आप ही खड़ी होकर उन्हें पंखा झलने अपने को आदर्श
आनन्द उसे कभी प्राप्त न हुआ था। उसके मर्मस्थल में प्रेम और
उठ रही थी; जी चाहता था कि इसी क्षण इनके चरणों पर गिर... तैयार
दूँ। भवन को

कुँवर साहब लेटने गए, तो रानी ने विशालसिंह के नाम पत्र लिख... रही

'कुँवर विशालसिंह जी, ग्दा

इतने दिनों तक मायाजाल में फँसे रहने के बाद अब मेरा चित्त संसार से विरक्त हो गया है। मैं तीर्थयात्रा करने जा रही हूँ और शायद फिर न लौटूँ। किसी तीर्थस्थान में ही अपने जीवन के शेष दिन काटूँगी। आपको उचित है कि आकर अपने राज्य का भार सँभालें। मुझे खेद है कि मेरे कारण आपको बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े। आपने मेरे साथ जो अनीति की, उसे भी मैं क्षमा करती हूँ। मायान्ध होकर हम सभी ऐसा करते हैं। मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि मेरी लौंडियों और सेवकों पर दया कीजिएगा। मैं अपने साथ कोई चीज नहीं ले जा रही हूँ। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह आपको सद्बुद्धि दे और आपकी कीर्ति देश-देशान्तरों में फैलाए! मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द की और कोई बात न होगी।

आपकी—देवप्रिया'

यह पत्र लिखकर रानी ने मेज पर रखा ही था कि उन्हें खयाल आया, मैं अपना राज्य क्यों छोड़ूँ? मैं हर्षपुर से भी तो इसकी देखभाल कर सकती हूँ? साल में महीने, दो महीने के लिए यहाँ आना कौन मुश्किल है? चलकर प्राणनाथ से पूछूँ, उन्हें इसमें कोई आपत्ति तो न होगी। वह राजकुमार के कमरे के द्वार तक गयी; पर अन्दर कदम न रख सकी। खयाल आया, समझेंगे अभी तक इसकी तृष्णा बनी हुई है। उलटे पाँव लौट आयी।

रात के दो बज गए थे। देवप्रिया यात्रा की तैयारियाँ कर रही थी। उसके मन में प्रश्न हो रहा था, कौन-कौन सी चीजें साथ ले जाऊँ? पहले वह अपने वस्त्रागार में गयी। शीशे की आलमारियों में एक से एक अपूर्व वस्त्र चुने हुए थे। इस समूह में से उसने खोजकर अपनी सोहाग की साड़ी निकाल ली, जिसे पहने आज 25 वर्ष हो गए। आज उसकी शोभा और सभी साड़ियों में बढ़ी हुई थी। उसके सामने सभी कपड़े फीके जँचते थे।

फिर वह अपने आभूषणों की कोठरी में गयी। इन आभूषणों पर वह जान देती थी। ये उसे अपने राज्य से भी प्रिय थे। लेकिन इस समय इन्हें देखते हुए उसे ऐसा भय हो रहा था, मानो चोरी कर रही है। उसने बहुत

मन का हाल भगवान् आप जानते हैं, पड़ेगी उनपर जिनके कारण यह सब रहा है।

यह कहकर रोहिणी अपने कमरे मे चली गई। सारे गहने-कपड़े उतार फेंक और मुंह ढांपकर चारपाई पर पड रही। ठाकुर साहब ने यह समाचार सुना, तो माथा कूटकर बोले—इन चाण्डालिनों से आज शुभोत्सव के दिन भी शान्त नही बैठा जाता। इस जिन्दगी से तो मौतही अच्छी। घर मे आकर रोहिणी से बोले—तुम मुंह ढांपकर सो रही हो, या उठकर पकवान बनाती हो? रोहिणी ने पड़े-पड़े उत्तर दिया—फट पड़े वह सोना जिससे टूटें कान। ऐसे उत्सव से बाज आयी, जिसे देखकर घरवालो की छाती फटे।

विशालसिंह—तुमसे तो बार-बार कहा कि उसके मुंह न लगा करो। एक चुप सौ वक्ताओ को हरा सकता है। दो बातें सुन लो, तो तीसरी बात कहने का साहस न हो। फिर तुमसे बडी भी तो ठहरी; यो भी तुमको उनका लिहाज करना ही चाहिए।

जिस दिन वसुमती ने विशालसिंह को व्यंग्य-बाण मारा था, जिसकी कथा हम कह चुके हैं, उसी दिन से उन्होंने उससे बोलना-चालना छोड दिया था। उससे कुछ डरने लगे थे, उसके क्रोध की भयंकरता का अन्दाजा पा लिया था। किन्तु रोहिणी क्यों दबने लगी? यह उपदेश सुना, तो झुंझलाकर बोले—रहने भी दो, जले पर नमक छिड़कते हो! जब बडा देख-देखकर जले, बात-बात पर कोसे, तो कोई कहाँ तक उनका लिहाज करे? इन्हें मेरा रहना जहर लगता है, तो क्या करूँ? घर छोड़कर निकल जाऊं? वह इसी पर लगी हुई है। तुम्ही ने उन्हें सिर चढ़ा लिया है। कोई बात होती है, तो मुझी को उपदेश करने दौड़ते हा, सीधा पा लिया है न! उनसे बोलते हुए तो तुम्हारा भी कलेजा कांपता है। तुम न शह देते तो उनकी मजाल थी कि यो मुझे आंखें दिखाती!

विशालसिंह—तो क्या मैं उन्हें सिखा देता हूँ कि तुम्हें गालियां दें?

रोहिणी—और क्या करते हो। जब घर मे कोई न्याय करने वाला नही रहा, तो इसके सिवा और क्या होगा? सामने तो चुड़ैल की तरह बैठी हुई है, जाकर पूछते क्यों नही? मुंह मे कालिख क्यो नही लगाते? दूसरा पुरुष होता, तो जूतों से बात करता, सारी शेखी किरकिरी हो जाती। लेकिन तुम तो खुद मेरी दुर्गति कराना चाहते हो। न जाने क्यों तुम्हें ब्याह का शौक चर्राया था?

कुंवर साहब ज्यो-ज्यों रोहिणी का क्रोध शान्त करने की चेष्टा करते थे, वह और भी बफरती जाती थी और बार-बार कहती थी, तुमने मेरे साथ क्यो ब्याह किया। यहाँ तक कि अन्त मे वह भी गर्म पड गए और बोले—और पुरुष स्त्रियो से विवाह करके कौन सा सुख देते हैं, जो मैं तुम्हें नही दे रहा हूँ? रही लड़ाई-झगड़ों की बात। तुम न लडना चाहो, तो कोई जबरदस्ती तुमसे न [illegible] और रामप्रिया भी तो इसी घर मे रहती है।

वसुमती—बस, एक ब्याह और कर लो, एक ही और, जिसमें चौकड़ी पूरी हो जाय।

विशालसिंह—क्यों बैठे-बैठे जलाती हो? विवाह क्या किया था, भोग-विलास करने के लिए, या तुमसे कोई बड़ी सुन्दरी होगी।

वसुमती—अच्छा, आओ, सुनते जाओ।

विशालसिंह—जाने दो, लोग बाहर बैठे होंगे।

वसुमती—अब यही तो नहीं अच्छा लगता। अभी घण्टे-भर वहाँ बैठे चिकनी-चुपड़ी बातें करते रहे तो नहीं देर हुई; मैं एक क्षण के लिए बुलाती हूँ तो भागे जाते हो। इसी दोअमली की तो तुम्हें सजा मिल रही है।

यह कहकर वसुमती ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया, घसीटती हुई अपने कमरे में ले गयी और चारपाई पर बैठाती हुई बोली—औरतों को सिर चढ़ाने का यही फल है। उसे तो सब चैन आये, जब घर में अकेली वही रहे। जब देखो तब अपने भाग्य को रोया करती है, किस्मत फूट गई, माँ-बाप ने कुएँ में झोंक दिया, जिन्दगी खराब हो गई। यह सब मुझसे नहीं सुना जाता, यही मेरा अपराध है। तुम उसके मन के नहीं हो, सारी जलन इसी बात की है। पूछो, तुझे कोई जबरदस्ती निकाल लाया था, या तेरे माँ-बाप की आँखें फूट गई थीं? वहाँ तो यह मसूबे थे कि बेटी मुँहजोर है ही, जाते ही, जाते राजा को अपनी मुट्ठी में करके रानी बन बैठेगी! क्या मालूम था कि यहाँ उसका सिर कुचलने कोई और बैठा हुआ है। यही बातें खोलकर कह देती हूँ, तो तिलमिला उठती है और तुम दौड़ते हो मनाने। बस, उसका मिजाज और आसमान पर चढ़ जाता है। दो दिन, दस दिन रूठी पड़ी रहने दो, फिर देखो, भीगी बिल्ली हो जाती है या नहीं। यह निरन्तर का नियम है कि लोहे को लोहा ही काटता है। कुमानुस के साथ कुमानुस बनने ही से काम चलता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने नारियों के विषय में जो कहा है, बिलकुल सच है।

विशालसिंह—यही वह खटवास लेकर पड़ी, अब पकवान कौन बनाए?

वसुमती—तो क्या जहाँ मुर्गा न होगा, वहाँ सवेरा ही न होगा? आखिर जब यह नहीं थी, तब भी तो जन्माष्टमी मनाई जाती थी। ऐसा कौन-सा बड़ा काम है? मैं बनाए देती हूँ। भगवान् थोड़े ही बाँटे हुए हैं। या मुझे जन्माष्टमी से कोई बैर है।

विशालसिंह ने पुलकित होकर कहा—बस, तुम्हारी इन्हीं बातों पर मेरी जान जाती है कुलवन्ती स्त्रियों का यही धर्म है। आज तुम्हारी धानी साड़ी गजब ढा रही है। कवियों ने सच कहा है, यौवन प्रौढ़ होकर और भी अजेय हो जाता है। चन्द्रमा का पूरा प्रकाश भी तो पूर्णिमा ही को तो होता है।

वसुमती—खुशामद करना कोई तुमसे सीख ले।

विशालसिंह—जो चीज कम हो, वह और मँगवा लेना।

विजय के गर्व से फूली हुई वसुमती आधी रात तक बैठी भाँति-भाँति के पकवान बनाती रही। द्वेष ने बरसों की सोयी हुई कृष्ण भक्ति को जागृत कर दिया। वह इन कामों में निपुण थी। श्रम से उसे कुछ रुचि-सी थी। निठल्ले न बैठा जाता था। रोहिणी जिस काम को दिन भर मर-मरकर करती, उसे वह दो घण्टे में हँसते-हँसते पूर्ण कर देती थी। रामप्रिया ने उसे बहुत व्यस्त देखा, तो वह भी आ गई और दोनों मिलकर काम करने लगीं।

विशालसिंह बाहर गये और कुछ देर तक गाना सुनते रहे; पर वहाँ जी न लगा। फिर भीतर चले आये और रसोई घर के द्वार पर मोढ़ा डालकर बैठ गए। भय था कि कहीं रोहिणी कुछ कह न बैठे और दोनों फिर न लड़ मरें।

वसुमती ने कहा—बाहर क्या हो रहा है?

विशालसिंह—गाना शुरू हो गया है। तुम इतनी महीन पूरियाँ कैसे बनाती हो? फट नहीं जातीं!

वसुमती—चाहूँ तो इससे भी महीन बेल दूँ, कागज मात हो जाय।

विशालसिंह—मगर खिलेंगी न?

वसुमती—खिलाकर दिखा दूँ। डब्बे-सी फूल जाय तो कहना। अभी महारानी नहीं उठीं क्या? इसमें छिपकर बातें सुनने की बुरी लत है। न जाने क्या चाहती है बहुत औरतें देखीं; लेकिन इसके ढंग सबसे निराले हैं। मुहब्बत तो इसे छू नहीं गई। अभी तुम तीन दिन बाहर कराहते रहे; पर कसम ले लो, जो उसका मन जरा भी मैला हुआ हो। हम लोगों के प्राण तो नखों में समा गए थे, रात-दिन देवी-देवता मनाया करती थीं, वहाँ पान चबाने, आईना देखने और माँग-चोटी करने के सिवा दूसरा कोई काम ही न था। ऐसी औरतों पर कभी विश्वास न करे।

विशालसिंह—सब देखता हूँ और समझता हूँ, निरा गधा नहीं हूँ।

वसुमती—यही तो रोना है कि तुम देखकर भी नहीं देखते, समझकर भी नहीं समझते। जहाँ उसने मुसकराकर, आँखें मटकाकर बातें कीं, मस्त हो गए। लल्लो-चप्पो किया करते हो। थरथर काँपते रहते हो कि कहीं रानी नाराज न हो जायँ। आदमी में सब ऐब हों, किन्तु मेहर-बस न हो। ऐसी कोई बड़ी सुन्दर भी तो नहीं है।

रामप्रिया—एक समय सखि सुअर सुन्दर! जवानी में कौन नहीं सुन्दर होता?

वसुमती—उसके माथे से तो तुम्हारे तलुवे अच्छे। सात जन्म ले, तो भी तुम्हारे गर्द को न पहुँचे।

विशालसिंह—मैं मेहर-बस हूँ?

वसुमती—और क्या हो?

विशालसिंह—मैं उसे ऐसी-ऐसी बातें कहता हूँ कि वह भी याद करती

पृथ्वी पाताल में चली गयी है या किसी विराट् जन्तु ने उसे निगल लिया है। मोमवत्तियों का प्रकाश तिमिर सागर में पाँव रखते काँपता था। विशालसिंह भोग के पदार्थ थालियों में भरवा-भरवाकर वाहर रखवाने में लगे हुए थे। कोई केले छील रहा था, कोई खीरे काटता था, कोई दोनों में प्रसाद सजा रहा था। एका-एक रोहिणी एक चादर ओढ़े हुए घर से निकली और वाहर की ओर चली। विशालसिंह दहलीज के द्वार पर खड़े थे। इस भरी सभा में उसे यों निश्शंक भाव से निकलते देखकर उनका रक्त खौलने लगा। जरा भी न पूछा, कहाँ जाती हो, क्या वात है। मूर्ति की भाँति खड़े रहे। दिल ने कहा—जिसने इतनी वेहयाई की, उससे और क्या आशा की जा सकती है? वह जहाँ जाती हो, जाए; जो जी में आए, करे। जव उसने मेरा सिर ही नीचा कर दिया, तो मुझे उसकी क्या परवा? वेहया, निर्लज्ज तो है ही, कुछ पूछूँ और गालियाँ देने लगे, तो मुँह में और भी कालिख लग जाए। जव उसको मेरी परवा नहीं, तो मैं क्यों उसके पीछे दौड़ूँ? और लोग अपने-अपने काम में लगे हुए थे। रोहिणी पर किसी की निगाह न पड़ी।

इतने में चक्रधर उनसे कुछ पूछने आये, तो देखा कि महरी उनके सामने खड़ी है और क्रोध से आँखें लाल किए कह रहे हैं—अगर वह मेरी लौंडी नहीं है, तो मैं भी उसका गुलाम नहीं हूँ। अगर वह स्त्री होकर इतना आपे से वाहर हो सकती है, तो मैं पुरुष होकर उसके पैरों पर सिर न रखूँगा। इच्छा हो जाय, मैंने तिलांजलि दे दी। अव इस घर में कदम न रखने दूँगा। (चक्रधर को देखकर) आपने भी तो उसे देखा होगा?

चक्रधर किसे? मैं तो केले छील रहा था। कौन गया है?

विशालसिंह - मेरी छोटी पत्नीजी रूठकर वाहर चली गयी हैं। आपसे घर का वास्ता है। आज औरतों में किसी वात पर तकरार हो गई। अव तक तो मुँह फुलाए पड़ी रहीं, अव यह सनक सवार हुई। मेरा धर्म नहीं है कि मैं उसे मनाने जाऊँ।! आप धक्के खायगी। उसके सिर पर कुबुद्धि सवार है।

चक्रधर—किधर गयी हैं महरी?

महरी—क्या जानूँ, वावूजी? मैं तो वरतन माँज रही थी। सामने ही गयी होंगी।

चक्रधर ने लपककर लालटेन उठा ली और वाहर निकलकर दाएँ-वाएँ निगाहें दौड़ाते, तेजी से कदम वढ़ाते हुए चले। कोई दो सौ कदम गये होंगे कि रोहिणी एक वृक्ष के नीचे खड़ी दिखलाई दी। ऐसा मालूम होता था कि वह छिपने के लिए कोई जगह तलाश कर रही है। चक्रधर उसे देखते ही लपककर समीप जा पहुँचे और कुछ कहना ही चाहते थे कि रोहिणी खुद वोली—क्या मुझे पकड़ने आये हो? अपना भला चाहते हो तो लौट जाओ; नहीं तो अच्छा न होगा। मैं उन पापियों का मुँह न देखूँगी।

चक्रधर—आप इस अँधेरे में कहाँ जाएँगी? हाथ को हाथ सूझता नहीं।

लौंगी—अँधेरे में डर उसे लगता है, जिसका कोई अपना हो। जिसका संसार में कोई नहीं, उसे किसका डर? प्राण काटने वाले अपने होते हैं, पराए प्राण नहीं काटते। चाकर बन देखा, अब आराम से टाँगें पसारकर सोऊँगी, अब तो कोई फिकर नहीं।

चक्रधर—आप ठाकुर साहब के साथ बड़ा अन्याय कर रही हैं। बेचारे लज्जा और शोक से मरे जा रहे हैं।

लौंगी—क्यों बातें बनाते हो? वह ठाकुर हैं, और मेरे लिए? मैं जिस दिन मर जाऊँगी, उस दिन घी के चिराग जलेंगे। संसार में ऐसे अभागे प्राणी भी होते हैं। उनके मरने-जीने की क्या कहूँ? ईश्वर उन्हें नरक में भी ठौर न दे। सोचे थे, बेटी सयानी हो जाएगी, तो इस नाते कटेंगे। यहाँ जिस दिन डोली में उतरी, उसी दिन से सिर पर विपत्ति सवार हुई। पुरुष रोगी हो, बूढ़ा हो, दरिद्र हो; पर नीच न हो। ऐसा नीच और निर्दयी आदमी संसार में न होगा। नीचों के साथ नीच बनना ही पड़ता है।

चक्रधर—आपके यहाँ रहने से ठाकुर साहब का कितना अपमान हो रहा है, इसकी आपको जरा भी फिक्र नहीं?

लौंगी—तुम्हीं ने तो मुझे रोक रक्खा है।

चक्रधर—आखिर आप कहाँ जा रही हैं?

लौंगी—तुम पूछने वाले कौन होते हो? जहाँ जी चाहेगा, जाऊँगी। उनके गाँव में मेरी रची हुई थी; उन्होंने मुझे घर से निकलते भी देखा था। क्या इतना समझ नहीं है कि अच्छा हुआ, सिर से बला टली। दुतकार सहकर आँखों से दूर जाना अच्छा है।

चक्रधर—आपको मेरे साथ चलना होगा।

लौंगी—तुम्हें यह कहने का क्या अधिकार है?

चक्रधर—जो अधिकार सचेत को अचेत पर, सज्ञान को अज्ञान पर होता है, वही अधिकार मुझे आपके ऊपर है। अन्धे को कुएँ में गिरने से बचाना हर एक प्राणी का धर्म है।

लौंगी—मैं न अचेत हूँ, न अन्धी। क्यों होते हो? मैं बावली नहीं हो गई हूँ। जिस घर में मेरा रहना-सोना, हँसना-बोलना देख-देखकर दूसरों की छाती फटती है, जहाँ कोई अपनी बात तक नहीं पूछता, जहाँ तरह-तरह के आरोप लगाए जाते हैं, उस घर में कदम न रखूँगी।

यह कहकर लौंगी आगे बढ़ी कि चक्रधर ने सामने खड़े होकर कहा—आप आगे नहीं जा सकतीं।

लौंगी—जबरदस्ती रोकोगे?

चक्रधर—हाँ, जबरदस्ती रोकूँगा।

रोहिणी—सामने से हट जाओ।

चक्रधर—मैं आपको कदम भी आगे न रखने दूँगा। सोचिए, आप अपनी अन्य बहिनों को किस कुमार्ग पर ले जा रही हैं? जब वे देखेंगी कि बड़े-बड़े घरों की स्त्रियाँ भी रूठकर घर से निकल खड़ी होती हैं, तो उन्हें भी जरा-जरा सी बात पर ऐसा ही साहस होगा या नहीं? नीति के विरुद्ध कोई काम करने का फल अपने ही तक नहीं रहता, दूसरों पर उसका और भी बुरा असर पड़ता है।

रोहिणी—मैं चुपके से चली जाती थी, तुम्हीं तो ढिंढोरा पीट रहे हो।

चक्रधर—जिस तरह रण से भागते हुए सिपाही को देखकर लोगों को उससे घृणा होती है—यहाँ तक कि उसका वध कर डालना भी पाप नहीं समझा जाता, उसी तरह कुल में कलंक लगानेवाली स्त्रियों से भी सबको घृणा हो जाती है और कोई उनकी सूरत तक नहीं देखना चाहता। हम चाहते हैं कि सिपाही गोली और आग के सामने अटल खड़ा रहे। उसी तरह हम यह भी चाहते हैं कि स्त्री सब झेलकर अपनी मर्यादा का पालन करती रहे! हमारा मुँह हमारी देवियों से उज्ज्वल है और जिस दिन हमारी देवियाँ इस भाँति मर्यादा की हत्या करने लगेंगी, उसी दिन हमारा सर्वनाश हो जायगा।

रोहिणी रुँधे हुए कण्ठ से बोली—तो क्या चाहते हो कि मैं फिर उसी आग में जलूँ?

चक्रधर—हाँ, यही चाहता हूँ। रणक्षेत्र में फूलों की वर्षा नहीं होती। मर्यादा की रक्षा करना उससे कहीं कठिन है।

रोहिणी—लोग हँसेंगे कि घर से निकली तो थी बड़े दिमाग से, आखिर झख मारकर लौट आयी।

चक्रधर—ऐसा वही कहेंगे, जो नीच और दुर्जन हैं। समझदार लोग तं आपकी सराहना ही करेंगे।

रोहिणी ने कई मिनट तक आगा-पीछा करने के बाद कहा—अच्छा चलिए आप भी क्या कहेंगे। कोई बुरा कहे या भला। हाँ, कुँवर साहब को इतना जरू समझा दीजिएगा कि जिन महारानी को आज वह घर की लक्ष्मी समझे हुए वह एक दिन उनको बड़ा धोखा देगी। मैं कितनी ही आपे से बाहर हो जाऊँ, अपना ही प्राण दूँगी; वह बिगड़ेगी तो प्राण लेकर छोड़ेगी। आप किसी मौके जरूर समझा दीजिएगा।

यह कहकर रोहिणी घर की ओर लौट पड़ी; लेकिन चक्रधर का उ ऊपर कहाँ तक असर पड़ा और कहाँ तक स्वयं अपनी सहज बुद्धि का, इ अनुमान कौन कर सकता है? वह लौटते वक्त लज्जा से सिर नहीं गड़ाए हुए गर्व से उसकी गर्दन उठी हुई थी। उसने अपनी टेक को मर्यादा की वेदी बलिदान कर दिया था; पर इसके साथ ही उन व्यंग्य वाक्यों की रचना भी ली थी, जिससे वह कुँवर साहब का स्वागत करना चाहती थी।

जब दोनों आदमी घर पहुँचे, तो विशालसिंह अभी तक वहाँ मूर्तिवत् खड़े थे, महरी भी खड़ी थी। भक्त जन अपना-अपना काम छोड़कर लालटेन की ओर ताक रहे थे। सन्नाटा छाया हुआ था।

रोहिणी ने देहलीज में कदम रखा; मगर ठाकुर साहब ने उसकी ओर आँख उठा कर भी न देखा। जब वह अन्दर चली गयी, तो उन्होंने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया और बोले—मैं तो समझता था किसी तरह न आएगी; मगर आप खींच ही लाए। क्या बहुत बिगड़ती थी?

चक्रधर ने कहा—आपको कुछ नहीं कहा। मुझे तो बहुत समझदार मालूम होती है। हाँ, मिजाज नाजुक है; बात बर्दाश्त नहीं कर सकती।

विशालसिंह—मैं यहाँ से टला तो नहीं, लेकिन सच पूछिए तो ज्यादती मेरी ही थी। मेरा क्रोध बहुत बुरा है। अगर आप न पहुँच जाते, तो बड़ी मुश्किल पड़ती। जान पर खेल जानेवाली स्त्री है। आपका यह एहसान कभी न भूलूँगा। देखिए तो, सामने कुछ रोशनी सी मालूम हो रही है बैण्ड भी बज रहा है। क्या माजरा है?

चक्रधर—हाँ, मशालें और लालटेनें हैं। बहुत से आदमी भी साथ हैं।

और लोग भी आँगन से उतर आये और सामने देखने लगे। सैकड़ों आदमी कतार बाँधे मशालों और लालटेनों के साथ चले आ रहे थे, आगे-आगे दो अश्वारोही भी नजर आते थे। बैण्ड की मनोहर ध्वनि आ रही थी। सब खड़े-खड़े देख रहे थे; पर किसी की समझ में न आता था कि माजरा क्या है।

11

सभी लोग बड़े कुतूहल से आनेवालों को देख रहे थे। कोई दस बारह मिनट में वह विशालसिंह के घर के सामने आ पहुँचे। आगे-आगे दो घोड़ों पर मुंशी वज्रधर और ठाकुर हरिसेवकसिंह थे। पीछे कोई पचीस तीस आदमी साफ-सुथरे कपड़े पहने चले आते थे। दोनों तरफ कई झण्डी बरदार थे, जिनकी झण्डियाँ हवा में लहरा रही थीं। सबसे पीछे बाजे वाले थे। मकान के सामने पहुँचते ही दोनों सवार घोड़ों से उतर पड़े और हाथ बाँधे हुए कुँवर साहब के सामने आकर खड़े हो गए। मुंशीजी की सज-धज निराली थी। सिर पर एक शमला था, देह पर एक नीचा जामा। ठाकुर साहब भी हिन्दुस्तानी लिबास में थे। मुंशीजी खुशी से मुसकराते थे, पर ठाकुर साहब का मुख मलिन था।

ठाकुर साहब बोले—दीनबन्धु, हम सब आपके सेवक आपकी सेवा में यह शुभ-सूचना देने के लिए हाजिर हुए हैं कि महारानी ने राज्य से वि
तीर्थयात्रा को प्रस्थान किया है और अब हमें श्रीमान की छत्रछाया के

लेने का वह स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम सदैव ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आज से श्रीमान् हमारे भाग्यविधाता हुए। यह पत्र है, जो महारानी ने श्रीमान् के नाम लिख रखा था।

यह कहकर ठाकुर साहब ने रानी का पत्र विशालसिंह के हाथ में रख दिया। कुँवर साहब ने एक ही निगाह में उसे आद्योपांत पढ़ लिया और उनके मुख पर मन्द हास्य की आभा झलकने लगी। पत्र जेब में रखते हुए बोले— यद्यपि महारानी की तीर्थयात्रा का समाचार जानकर मुझे अत्यन्त खेद हो रहा है; लेकिन इस बात का सच्चा आनन्द भी है कि उन्होंने निवृत्ति मार्ग पर पग रखा; क्योंकि ज्ञान ही से मुक्ति प्राप्त होती है। मेरी ईश्वर से यही विनय है कि उसने मेरी गर्दन पर जो कर्त्तव्य-भार रखा है, उसे सँभालने की मुझे शक्ति दे और प्रजा के प्रति मेरा जो धर्म है, उसके पालन करने की भी शक्ति प्रदान करे। आप लोगों को मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं यथासाध्य अपना कर्तव्य पालन करने में ऊँचे आदर्शों को सामने रखूँगा; लेकिन सफलता बहुत कुछ आप ही लोगों की सहानुभूति और सहकारिता पर निर्भर है, और मुझे आशा है कि आप मेरी सहायता करने में किसी प्रकार की कोताही न करेंगे। मैं इस समय यह भी जता देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं अत्याचार का घोर शत्रु हूँ और ऐसे महापुरुषों को, जो प्रजा पर अत्याचार करने के अभ्यस्त हो रहे हैं, मुझसे जरा भी नरमी की आशा न रखनी चाहिए।

इस कथन में शिष्टता की मात्रा अधिक और नीति की बहुत कम थी, फिर भी सभी राज्य कर्मचारियों को यह बातें अप्रिय जान पड़ीं। सबके कान खड़े हो गए और हरिसेवक को तो ऐसा मालूम हुआ कि यह निशाना मुझी पर है। उनके प्राण सूख गए। सभी आपस में कानाफूसी करने लगे।

कुँवर साहब ने लोगों को ले जाकर फर्श पर बैठाया और खुद मसनद लगाकर बैठे। नजराने की निरर्थक रस्म अदा होने लगी। बैण्ड ने बधाई देनी शुरू की। चक्रधर ने पान और इलायची से सबका सत्कार किया। कुँवर साहब का जी बार-बार चाहता था कि घर में जाकर यह सुख-संवाद सुनाऊँ; पर मौका न देखकर जब्त किए हुए थे। मुंशी वज्रधर अब तक खामोश बैठे थे। ठाकुर हरिसेवक को यह खुशखबरी सुनाने का मौका देकर उन्होंने अपने ऊपर कुछ कम अत्याचार न किया था। अब उनसे चुप न रहा गया। बोले—हुजूर, आज सबसे पहले मुझी को यह हाल मालूम हुआ।

हरिसेवक ने इसका खण्डन किया—मैं भी तो आपके साथ ही पहुँच गया था।

वज्रधर—आप मुझसे जरा देर बाद पहुँचे। मेरी आदत है कि बहुत सवेरे उठता हूँ। देर तक सोता, तो एक दिन भी तहसीलदारी न निभती। बड़ी हुकूमत की जगह है, हुजूर! वेतन तो कुछ ऐसा ज्यादा न था; पर हुजूर, अपने इलाके का बादशाह था। खैर, ड्योढ़ी पर पहुँचा तो सन्नाटा छाया हुआ था। न दरबान

का पता, न सिपाही का। घबराया कि माजरा क्या है। बेधड़क अन्दर चला गया। मुझे देखते ही गुजराती रोती हुई दौड़ी और तुरन्त रानी साहब का खत लाकर मेरे हाथ में रख दिया। रानी जी ने उससे शायद यह खत मेरे ही हाथ में देने को कहा था।

हरिसेवक—यह तो कोई बात नहीं। मैं पहले पहुँचता, तो मुझे खत मिलता। आप पहले पहुँचे, आपको मिल गया।

वज्रधर—आप नाराज क्यों होते हैं? मैंने तो केवल अपना विचार प्रकट किया है। वह खत पढ़कर मेरी जो दशा हुई, बयान नहीं कर सकता। कभी रोता था, कभी हँसता था। बस, यही जी चाहता था कि उड़कर हुजूर को खबर दूँ। ठीक उसी समय ठाकुर साहब पहुँचे। है न यही बात, दीवान साहब?

हरिसेवक—मुझे बाहर खबर मिल गई थी। आदमियों को चौकसी रखने की ताकीद कर रहा था।

वज्रधर—आपने बाहर से जो कुछ किया हो, मुझे उसकी खबर नहीं, अन्दर आप उसी वक्त पहुँचे, जब मैं खत लिए खड़ा था। मैंने आपको देखते ही कहा—सब कमरों में ताला लगवा दीजिए और दफ्तर में किसी को न जाने दीजिए।

हरिसेवक—इतनी मोटी-सी बात के लिए मुझे आपकी सलाह की आवश्यकता न थी।

वज्रधर—यह मेरा मतलब नहीं। अगर मैंने तहसीलदारी की है तो आपने भी दीवानी की है। सरकारी नौकरी न सही, फिर भी काम एक ही है। जब हर एक कमरे में ताला पड़ गया, दफ्तर का दरवाजा बन्द कर दिया गया, तो सलाह होने लगी कि हुजूर को कैसे खबर दी जाए। कोई कहता था, आदमी दौड़ाया जाए, कोई मोटर से खबर भेजना चाहता था। मैंने यह मुनासिब नहीं समझा। इतनी उम्र तक भाड़ नहीं झोंका किया है। जगदीशपुर खबर भेजकर सब कर्मचारियों को बुलाने की राय दी। दीवान साहब को भी मेरी राय पसन्द आयी। इसी कारण इतनी देर हुई। हुजूर, सारे दिन दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए। आज दोहरी खुशी का दिन है। गुस्ताखी माफ, मिठाइयाँ मिलवाइए और महफिल जमाइए। एक हफ्ते तक गाना होना चाहिए। हुजूर, यह देना दिलाना, खाना खिलाना याद रहता है।

विशालसिंह—अब इस वक्त तो मजन होने दीजिए, कल यहीं महफिल जमेगी।

वज्रधर—हुजूर मैंने पहले ही से गाने-बजाने का इन्तजाम कर लिया है। लोग आते ही होंगे। शहर के अच्छे-अच्छे उस्ताद बुलाए हैं। हुजूर, एक से एक गुनी हैं। सभी का मुजरा होगा।

अभी तहसीलदार साहब ने बात पूरी भी न की थी कि झिनकू ने आकर सलाम किया और बोला—दीनानाथ, उस्ताद लोग आ गए हैं।

तो हाजिर हों।

मुंशीजी तुरन्त बाहर गए और उस्तादों को हाथों हाथ ले आए। 10-12 आदमी थे, सबके सब बूढ़े, किसी का मुंह पोपला, किसी की कमर झुकी हुई, कोई आँखों का अन्धा। उनका पहनावा देखकर ऐसा अनुमान होता था कि कम से कम तीन शताब्दी पहले के मनुष्य हैं। वही नीची अचकन, जिस पर हरी गोट लगी हुई, वही चुनावदार पाजामा, वही उलझी हुई, तार-तार पगड़ी, कमर में पटका बंधा हुआ। दो-तीन उस्ताद नंग-धड़ङ्ग थे, जिनके बदन पर एक लंगोटी के सिवा और कुछ न था। यही सरस्वती के उपासक थे और इन्हीं पर उनकी कृपादृष्टि थी।

उस्तादों ने अन्दर कुंवर साहब और अन्य सज्जनों को झुक-झुककर सलाम किया और घुटने तोड़-तोड़ बैठे। मुंशीजी ने उनका परिचय कराना शुरू किया। यह उस्ताद मेडूंखां हैं, महाराज अलवर के दरबारी हैं, वहां से हजार रुपए सालाना वजीफा मिलता है। आप सितार बजाने में अपना सानी नहीं रखते। किसी के यहां आते-जाते नहीं, केवल भगवद्भजन किया करते हैं। यह चन्दू महाराज हैं, पखावज के पक्के उस्ताद। ग्वालियर के महाराज इनसे लाख कहते हैं कि आप दरबार में रहिए। दो हजार रुपये महीने तक देते हैं, लेकिन आपको काशी से प्रेम है। छोड़कर नहीं जाते। यह उस्ताद फजलू हैं, राग-रागनियों के फिकैत, स्वरों से रागिनियों की तसवीर खींच देते हैं। एक बार आपने लाट साहब के सामने गाया था। जब गाना बन्द हुआ, तो साहब ने आपके पैरों पर अपनी टोपी रख दी और घंटों छाती पीटते रहे। डॉक्टरों ने जब दवा दी, तो उनका नशा उतरा।

विशालसिंह—यहां वह रागिनी न गवाइएगा, नहीं तो लोग लोट-पोट हो जाएँगे। यहां तो डॉक्टर भी नहीं है।

वज्रधर—हुजूर, रोज-रोज यह बातें थोड़े ही होती हैं। बड़े से बड़े कलांवन्त को भी जिन्दगी में केवल एक बार गाना नसीब होता है। फिर लाख सिर मारें, वह बात नहीं पैदा होती है।

परिचय के बाद गाना शुरू हुआ। फजलू ने मलार छेड़ा और मुंशीजी झूमने लगे। फजलू भी मुंशीजी ही को अपना कमाल दिखाते थे। उनके सिवा और उनकी निगाह में कोई था ही नहीं। उस्ताद लोग 'वाह-वाह' का तार बांधे हुए थे; मुंशीजी आँखें बन्द किए सिर हिला रहे थे और महफिल के लोग एक-एक करके बाहर चले जा रहे थे। दो-चार सज्जन बैठे थे। वे वास्तव में सो रहे थे। फजलू को इसकी जरा भी परवा नहीं थी कि लोग उसका गाना पसन्द करते हैं या नहीं। उस्ताद उस्तादों के लिए गाते हैं। गुणी गुणियों की ही निगाह में सम्मान पाने का इच्छुक होता है। जनता की उसे परवाह नहीं होती। अगर उस महफिल में अकेले मुंशीजी होते, तो भी फजलू इतना ही मस्त होकर गाता। धनी लोग गरीबों की क्या परवाह करते हैं? विद्वान् मूर्खों को कब ध्यान में लाते हैं? इसी भांति गुणी

जन अनाड़ियों की परवा नहीं करते। उनकी निगाह में ममंज्ञ का स्थान धन वैभव के स्वामियों से कहीं ऊँचा होता है।

मलार के बाद फजलू ने 'निर्गुण' गाना शुरू किया; रागिनी का नाम उस्ताद ही बता सकते हैं। उस्तादों के मुख से सभी रागिनियाँ समान रूप धारण करती हुई मालूम होती हैं। आग में पिघलकर सभी धातुएँ एक-सी हो जाती हैं। मुंशीजी को इस राग ने मतवाला कर दिया। पहले बैठे-बैठे झूमते थे, फिर खड़े होकर झूमने लगे। झूमते-झूमते, आप ही आप उनके पैरों में एक गति-सी होने लगी। हाथ के साथ पैरों से भी ताल देने लगे। यहाँ तक कि वह नाचने लगे। उन्हें इसकी ज़रा भी झेंप न थी कि लोग दिल में क्या कहते होंगे। गुणी को अपना गुण दिखाते शर्म नहीं आती। पहलवान को अखाड़े में ताल ठोककर उतरते क्या शर्म। जो लड़ना नहीं जानते, वे ढकेलने से भी अखाड़े में नहीं जाते। सभी कर्म-चारी मुँह फेर-फेरकर हँसते थे। जो लोग बाहर चले गए थे, वे भी यह ताण्डव नृत्य देखने के लिए आ पहुँचे। यहाँ तक कि विशालसिंह भी हँस रहे थे। मुंशीजी के बदले देखनेवालों को झेंप हो रही थी; लेकिन मुंशीजी अपनी धुन में मग्न थे। गुणी गुणियों के सामने अनुरक्त हो जाता है। अनाड़ी लोग तो हँस रहे थे और गुणी लोग नृत्य का आनन्द उठा रहे थे। नृत्य ही अनुराग की चरम सीमा है।

नाचते-नाचते आनन्द से विह्वल होकर मुंशीजी गाने लगे। उनका मुख अनुराग से प्रदीप्त हो रहा था। आज बड़े सौभाग्य से और बहुत दिनों के बाद यह स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिला था। उनकी बूढ़ी हड्डियों में इतनी चपलता कहाँ से आ गई, इसका निश्चय करना कठिन है। इस समय उनकी फुर्ती और चुस्ती जवानों को भी लज्जित करती थी। उनका उछलकर आगे आना, फिर उछलकर पीछे आना, झुकना और मुड़ना, और एक-एक अंग को फेरना वास्तव में आश्चर्यजनक था। इतने में कृष्ण के जन्म का मुहूर्त आ पहुँचा। सारी महफ़िल खड़ी हो गई और सभी उस्तादों ने एक स्वर से मंगलगान शुरू किया। साजों के मेले ने समाँ बाँध दिया। केवल दो ही प्राणी ऐसे थे, जिन्हें इस समय भी चिन्ता घेरे हुए थी। एक तो ठाकुर हरिसेवकसिंह, दूसरे कुँवर विशाल-सिंह। एक को यह चिन्ता लगी हुई थी कि देखें, कल क्या मुसीबत आती है दूसरे को यह फ़िक्र थी कि इस दुष्ट से क्योंकर पुरानी कसर निकालें। चक्रधर अब तक लज्जा से मुँह छिपाए बाहर खड़े थे, मंगल गान समाप्त होते ही आकर प्रसाद बाँटने लगे। किसी ने मोहन भोग का थाल उठाया, किसी ने फलों का। कोई प्रसाद बाँटने लगा। हरबोंग सा मच गया। कुँवर साहब ने मौका पाया, तो उठे मुंशी वज्रधर को इशारे से बुला, दालान में ले जा... लगे—दीवान जी ने तो मौका पाकर खूब हाथ साफ़ किए होंगे? ... वज्रधर—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं देखी। ... इसी तरह मुशायरे तक ... हड़ताल करते रहे। घर तक न गए।

विशालसिंह—यह सब तो आपके कहने से किया। आप न होते, तो न जाने क्या गजब ढाते।

वज्रधर—मेरी बातों का यह मतलब न था कि वह आपसे कीना रखते हैं। इन छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देना उनका काम नहीं है। मुझे तो यह फिक्र थी कि दफ्तर के कागज तैयार हो जाएँ। मैं किसी की बुराई न करूँगा। दीवान साहब को आपसे अदावत थी, यह मैं मानता हूँ। रानी साहब का नमक खाते थे और आपका बुरा चाहना उनका धर्म था; लेकिन अब वह आपके सेवक हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि वह उतनी ही ईमानदारी से आपकी सेवा करेंगे।

विशालसिंह—आपको पुरानी कथा मालूम नहीं। इसने मुझ पर बड़े-बड़े जुल्म किए हैं। इसी के कारण मुझे जगदीशपुर छोड़ना पड़ा। बस चला होता, तो इसने मुझे कत्ल करा दिया होता!

वज्रधर—गुस्ताखी माफ कीजिएगा। आपका बस चलता, तो क्या रानीजी की जान बच जाती, या दीवान साहब जिन्दा रहते? उन पिछली बातों को भूल जाइए। भगवान् ने आज आपको ऊँचा रुतबा दिया है। अब आपको उदार होना चाहिए। ऐसी बातें आपके दिल में न आनी चाहिए। मातहतों से उनके अफसर के विषय में कुछ पूछताछ करना अफसर को जलील कर देना है। मैंने इतने दिनों तहसीलदारी की; लेकिन नायब साहब ने तहसीलदार के विषय में चपरासियों से कभी कुछ नहीं पूछा। मैं तो खैर इन मामलों को समझता हूँ; लेकिन दूसरे मातहतों से यदि आप ऐसी बातें करेंगे, तो वह अपने अफसर की हजारों बुराइयाँ आपसे करेंगे। मैंने ठाकुर साहब के मुँह से एक बात भी ऐसी नहीं सुनी, जिससे यह मालूम हो कि वह आपसे कोई अदावत रखते हैं।

विशालसिंह ने कुछ लज्जित होकर कहा—मैं आपको ठाकुर साहब का मातहत नहीं, अपना मित्र समझता हूँ; और इसी नाते से मैंने आपसे यह बात पूछी थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि सबसे पहला वार इन्हीं पर करूँगा; लेकिन आपकी बातों ने मेरा विचार पलट दिया। आप भी उन्हें समझा दीजिएगा कि मेरी तरफ से कोई शंका न रखें। हाँ, प्रजा पर अत्याचार न करें।

वज्रधर—नौकर अपने मालिक का रुख देखकर ही काम करता है। रानीजी को हमेशा रुपये की तंगी रहती थी। दस लाख की आमदनी भी उनके लिए काफी न होती थी! ऐसी हालत में ठाकुर साहब को मजबूर होकर प्रजा पर सख्ती करनी पड़ती थी। वह कभी आमदनी और खर्च का हिसाब न देखती थीं। जिस वक्त जितने रुपये की उन्हें जरूरत पड़ती थी, ठाकुर साहब को देने पड़ते थे। जहाँ तक मुझे मालूम है, इस वक्त रोकड़ में एक पैसा भी नहीं है। गद्दी के उत्सव के लिए रुपयों का कोई न कोई और प्रबन्ध करना पड़ेगा। दो ही उपाय हैं—या तो कर्ज लिया जाये, अथवा प्रजा से कर वसूलने के सिवा ठाकुर साहब और क्या कर सकते हैं।

विशालसिंह—गद्दी के उत्सव के लिए मैं प्रजा का गला नहीं दबाऊँगा। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि उत्सव मनाया ही न जाय।

वज्रधर—हुजूर यह क्या फरमाते हैं? ऐसा भी कहीं हो सकता है?

विशालसिंह—खैर, देखा जायगा। जरा अन्दर जाकर रानियों को भी खुश-खबरी दे आऊँ!

यह कहकर कुँवर साहब घर में गये। सबसे पहले रोहिणी के कमरे में कदम रखा। वह पीछे की तरफ की खिड़की खोले खड़ी थी। उस अन्धकार में उसे अपने भविष्य का रूप खिंचा हुआ नजर आता था। पति की निष्ठुरता ने आज उसकी मदान्ध आँखें खोल दी थी। वह घर से निकलने की भूल स्वीकार करती थी। लेकिन कुँवर साहब का उसको मनाने न जाना बहुत अखर रहा था। इस अपराध का इतना कठोर दण्ड! ज्यों-ज्यों वह स्थिति पर विचार करती थी, उसका अप-मानित हृदय और भी तड़प उठता था।

कुँवर साहब ने कमरे में कदम रखते ही कहा—रोहिणी, ईश्वर ने आज हमारी अभिलाषा पूरी की। जिस बात की आशा थी, वह पूरी हो गई।

रोहिणी—तब तो घर में रहना और भी मुश्किल हो जायगा। जब कुछ न था, तभी मिजाज न मिलता था। अब तो आकाश पर चढ़ जायगा। काहे को कोई जीने पाएगा?

विशालसिंह ने दुःखित होकर कहा—प्रिये, यह इन बातों का समय नहीं है। ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने हमारी विनय सुन ली।

रोहिणी—जब अपना कोई रहा ही नहीं, तो राजपाट लेकर चाटूँगी?

विशालसिंह को क्रोध आया; लेकिन इस भय से कि बात बढ़ जायगी, कुछ बोले नहीं। वहाँ से वसुमती के पास पहुँचे। वह मुँह लपेटे पड़ी हुई थी। जगाकर बोले—क्या सोती हो, उठो, खुशखबरी सुनाएँ।

वसुमती—पटरानीजी को तो सुना ही आये, मैं सुनकर क्या करूँगी? अब तक जो बात मन में थी, वह आज तुमने खोल दी। तो यहाँ बचा हुआ सत्तू खाने वाले पाहुने नहीं हैं?

विशालसिंह—क्या कहती हो? मेरी समझ में नहीं आता।

वसुमती—हाँ, अभी भोले नादान बच्चे हो, समझ में क्यों आएगा? गर्दन पर छुरी फेर रहे हो, ऊपर से कहते हो कि तुम्हारी बातें समझ में नहीं आतीं। ईश्वर मौत भी नहीं दे देते कि इस आये दिन की दाँता-किलकिल से छूटती। यह जलन अब नहीं सही जाती। पीछेवाली आगे आयी, आगेवाली कोने में। मैं यहाँ से बाहर पाँव निकालती, तो सिर काट लेते, नहीं तो कैसी खुशामदें कर रहे हो। किसी के हाथों में भी जस नहीं, किसी की लातों में भी जस है।

विशालसिंह दुःखी होकर बोले—यह बात नहीं है, वसुमती! तुम र . . . कर नादान बनती हो। मैं इधर ही आ रहा था। ईश्वर से

अँधेरा देखकर चला गया; देखूँ क्या बात है।

वसुमती—मुझसे बातें न बनाओ, समझ गए। तुम्हें तो ईश्वर ने नाहक मूँछें दे दीं। औरत होते तो किसी भले आदमी का घर बसता। जाँघ तले की स्त्री सामने से निकल गयी और तुम टुकुर-टुकुर ताकते रहे। मैं कहती हूँ, आखिर तुम्हें यह क्या हो गया है? उसने कुछ कर करा तो नहीं दिया? जैसे काया ही पलट हो गई! जो एक औरत को काबू में नहीं रख सकता, वह रियासत का भार क्या सँभालेगा?

यह कहकर उठी और झल्लायी हुई छत पर चली गयी। विशालसिंह कुछ देर उदास खड़े रहे, तब रामप्रिया के कमरे में प्रवेश किया। वह चिराग के सामने बैठी कुछ लिख रही थी। पति की आहट पाकर सिर ऊपर उठाया, तो आँखों में आँसू भरे हुए हैं। विशालसिंह ने चौंककर पूछा - क्या बात है, प्रिये, रो क्यों रही हो? मैं तुम्हें एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ।

रामप्रिया ने आँसू पोंछते हुए कहा—सुन चुकी हूँ; मगर आप उसे खुशखबरी कैसे कहते हैं। मेरी प्यारी बहिन सदा के लिए संसार से चली गयी, क्या यह खुशखबरी है? अब तक और कुछ नहीं था, तो उसकी कुशल क्षेम का समाचार तो मिलता रहता था। अब क्या मालूम होगा कि उस पर क्या बीत रही है। दुखिया ने संसार का कुछ सुख न देखा। उसका तो जन्म ही व्यर्थ हुआ। रोते ही रोते उम्र बीत गयी।

यह कहकर रामप्रिया फिर सिसक-सिसककर रोने लगी।

विशालसिंह—उन्होंने पत्र में तो लिखा है कि मेरा मन संसार से विरक्त हो गया है।

रामप्रिया—इसको विरक्त होना नहीं कहते। यह तो जिन्दगी से घबराकर भाग जाना है। जब आदमी को कोई आशा नहीं रहती, तो वह मर जाना चाहता है। यह विराग नहीं है। विराग ज्ञान से होता है, और उस दशा में किसी को घर से निकल भागने की जरूरत नहीं होती। जिसे फूलों की सेज पर भी नींद नहीं आती थी, वह पत्थरों की चट्टानों पर कैसे सोएगी? बहिन से बड़ी भूल हुई। क्या अन्त समय ठोकरें खाना ही उसके कर्म में लिखा था?

यह कहकर वह फिर सिसकने लगी। विशालसिंह को उसका रोना बुरा मालूम हुआ। बाहर आकर महफिल में बैठ गए। मेडूं खाँ सितार बजा रहे थे। सारी महफिल तन्मय हो रही थी। जो लोग फजलू का गाना न सुन सके थे, वे भी इस वक्त सिर घुमाते और झूमते नजर आते थे। ऐसा मालूम होता था, मानो सुधा का अनन्त प्रवाह स्वर्ग की सुनहरी शिलाओं से गले मिल-मिलकर नन्हीं-नन्हीं फुहारों में किलोल कर रहा हो। सितार के तारों से स्वर्गीय तितलियों की कतारें-सी निकल निकलकर समस्त वायुमण्डल में अपने झीने परों से नाच रही थीं। उसका आनन्द उठाने के लिए लोगों के हृदय कानों के पास आ बैठे थे।

किन्तु इस आनन्द और सुधा के अनन्त प्रवाह में एक प्राणी हृदय की ताप
विकल हो रहा था। वह राजा विशालसिंह थे, सारी बारात हँसती थी, दूल्हा
रहा था।

राजा साहब ! ऐश्वर्य के उपासक थे। तीन पीढ़ियों से उनके पुरखे यही उपा
सना करते चले आते थे। उन्होंने स्वयं इस देवता की तन-मन से अराधना की थी
आज देवता जब प्रसन्न हुए थे। तीन पीढ़ियों की अविरल भक्ति के बाद उनके
दर्शन मिले थे। इस समय घर के सभी प्राणियों को पवित्र हृदय से उनकी वन्दना
करनी चाहिए थी, सबको दौड़-दौड़कर उनके चरणों को धोना और उनकी आरती
करनी चाहिए थी। इस समय ईर्ष्या, द्वेष और क्षोभ को हृदय में पालना उस देवता
के प्रति घोर अभक्ति थी। राजा साहब को महिलाओं पर दया न आती, क्रोध
आता था, सोच रहे थे, जब अभी से ईर्ष्या के मारे इनका यह हाल है, तो आगे
क्या होगा। तब तो आये दिन, तलवारें चलेंगी। इनकी सजा यह है कि इन्हें इसी
जगह छोड़ दूँ। लड़ें जितना लड़ने का बूता हो, रोएँ जितनी रोने की शक्ति हो।
जो रोने के लिए बनाया गया हो, उसे हँसाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। इन्हें राज-
भवन से जाकर गले का हार क्यों बनाऊँ ? उस सुख को, जिसका मेरे जीवन के
साथ ही अन्त हो जाना है, इन क्रूर क्रीड़ाओं से क्यों नष्ट करूँ।

12

दूसरी वर्षा भी आधी से ज्यादा बीत गयी; लेकिन चक्रधर ने माता-पिता से
अहिल्या का वृत्तान्त गुप्त ही रखा। जब मुंशीजी पूछते—वहाँ क्या बात कर
आये ? आखिर यशोदानन्दन को विवाह करना है या नहीं ? न आते हैं, न चिट्ठी-
पत्री लिखते हैं, अजीब आदमी हैं। न करना हो तो साफ-साफ कह दें। करना हो,
तो उसकी तैयारी करें। ख्वाहमख्वाह झमेले में फँसा रखा है—तो चक्रधर कुछ
इधर उधर की बातें करके टाल जाते। उधर यशोदानन्दन बार-बार लिखते, तुमने
मुंशीजी से सलाह की या नहीं। अगर तुम्हें उनसे कहते शर्म आती हो, तो मैं आकर
कहूँ ? आखिर इस तरह कब तक टालोगे ? अहिल्या तुम्हारे सिवा किसी और से
विवाह न करेगी, यह मानी हुई बात है। फिर उसे वियोग का व्यर्थ क्यों कष्ट देते
हो ? चक्रधर इन पत्रों के जवाब में भी यही लिखते कि मैं खुद फिक्र में हूँ। ज्यों
ही मौका मिला, जिक्र करूँगा मुझे विश्वास है कि पिताजी राजी हो जाएँगे।

जन्माष्टमी के उत्सव के बाद मुंशीजी घर आये, तो उनके हौसले बढ़े हुए थे।
राजा साहब के साथ ही साथ उनके सौभाग्य का सूर्य उदय होता हुआ मालूम होता
था। अब वह अपने ही शहर के किसी रईस के घर चक्रधर की शादी कर सकते
थे। अब इस बात की जरूरत न होगी कि लड़की के पिता से विवाह

घेरा देखकर चला गया; देखूं क्या बात है ।

वसुमती—मुझसे बातें न बनाओ, समझ गए । तुम्हें तो ईश्वर ने नाहक मूँछें दीं । औरत होते तो किसी भले आदमी का घर बसता । जांघ तले की स्त्री सामने निकल गयी और तुम टुकुर-टुकुर ताकते रहे । मैं कहती हूँ, आखिर तुम्हें यह या हो गया है ? उसने कुछ कर करा तो नहीं दिया ? जैसे काया ही पलट हो ई ! जो एक औरत को काबू में नहीं रख सकता, वह रियासत का भार क्या भालेगा ?

यह कहकर उठी और झल्लायी हुई छत पर चली गयी । विशालसिंह कुछ देर दास खड़े रहे, तब रामप्रिया के कमरे में प्रवेश किया । वह चिराग के सामने बैठी छ लिख रही थी । पति की आहट पाकर सिर ऊपर उठाया, तो आँखों में आँसू रे हुए हैं । विशालसिंह ने चौंककर पूछा - क्या बात है, प्रिये, रो क्यों रही हो ? तुम्हें एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ ।

रामप्रिया ने आंसू पोंछते हुए कहा—सुन चुकी हूँ; मगर आप उसे खुशखबरी कैसे कहते हैं । मेरी प्यारी बहिन सदा के लिए संसार से चली गयी, क्या यह खुश-खबरी है ? अब तक और कुछ नहीं था, तो उसकी कुशल क्षेम का समाचार तो मिलता रहता था । अब क्या मालूम होगा कि उस पर क्या बीत रही है । दुखिया ने संसार का कुछ सुख न देखा । उसका तो जन्म ही व्यर्थ हुआ । रोते ही रोते उम्र बीत गयी ।

यह कहकर रामप्रिया फिर सिसक-सिसककर रोने लगी ।

विशालसिंह—उन्होंने पत्र में तो लिखा है कि मेरा मन संसार से विरक्त हो गया है ।

रामप्रिया—इसको विरक्त होना नहीं कहते । यह तो जिन्दगी से घबराकर भाग जाना है । जब आदमी को कोई आशा नहीं रहती, तो वह मर जाना चाहता है । यह विराग नहीं है । विराग ज्ञान से होता है, और उस दशा में किसी को घर से निकल भागने की जरूरत नहीं होती । जिसे फूलों की सेज पर भी नींद नहीं आती थी, वह पत्थरों की चट्टानों पर कैसे सोएगी ? बहिन से बड़ी भूल हुई । क्या अन्त समय ठोकरें खाना ही उसके कर्म में लिखा था ?

यह कहकर वह फिर सिसकने लगी । विशालसिंह को उसका रोना बुरा मालूम हुआ । बाहर आकर महफिल में बैठ गए । मेडूं खाँ सितार बजा रहे थे । सारी महफिल तन्मय हो रही थी । जो लोग फजलू का गाना न सुन सके थे, वे भी इस वक्त सिर घुमाते और झूमते नजर आते थे । ऐसा मालूम होता था, मानो सुधा का अनन्त प्रवाह स्वर्ग की सुनहरी शिलाओं से गले मिल-मिलकर नन्हीं-नन्हीं फुहारों में किलोल कर रहा हो । सितार के तारों से स्वर्गीय तितलियों की कतारें-सी निकल निकलकर समस्त वायुमण्डल में अपने झीने परों से नाच रही थीं । उसका आनन्द उठाने के लिए लोगों के हृदय कानों के पास आ बैठे थे ।

किन्तु इस आनन्द और सुधा के अनन्त प्रवाह में एक प्राणी हृदय की ताप से विकल हो रहा था। वह राजा विशालसिंह थे, सारी बारात हँसती थी, दूल्हा रो रहा था।

राजा साहब ! ऐश्वर्य के उपासक थे। तीन पीढ़ियों से उनके पुरखे यही उपासना करते चले आते थे। उन्होंने स्वयं इस देवता की तन-मन से अराधना की थी। आज देवता जब प्रसन्न हुए थे। तीन पीढ़ियों की अविरल भक्ति के बाद उनके दर्शन मिले थे। इस समय घर के सभी प्राणियों को पवित्र हृदय से उनकी वन्दना करनी चाहिए थी, सबको दौड़-दौड़कर उनके चरणों को धोना और उनकी आरती करनी चाहिए थी। इस समय ईर्ष्या, द्वेष और क्षोभ को हृदय में पालना उस देवता के प्रति घोर अभक्ति थी। राजा साहब को महिलाओं पर दया न आती, क्रोध आता था, सोच रहे थे, जब अभी से ईर्ष्या के मारे इनका यह हाल है, तो आगे क्या होगा। तब तो आये दिन, तलवारें चलेंगी। इनकी सजा यह है कि इन्हें इसी जगह छोड़ दूँ। लड़ें जितना लड़ने का सूना हो, रोएँ जितनी रोने की शक्ति हो। जो रोने के लिए बनाया गया हो, उसे हँसाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। इन्हें राजभवन ले जाकर गले का हार क्यों बनाऊँ ? उस सुख को, जिसका मेरे जीवन के साथ ही अन्त हो जाता है, इन क्रूर क्रीडाओं से क्यों नष्ट करूँ।

12

दूसरी वर्षा भी आधी से ज्यादा बीत गयी; लेकिन चक्रधर ने माता-पिता से अहिल्या का वृत्तान्त गुप्त ही रखा। जब मुंशीजी पूछते—वहाँ क्या बात कर आये ? आखिर यशोदानन्दन को विवाह करना है या नहीं ? न आते हैं, न चिट्ठी-पत्री लिखते हैं, अजीब आदमी हैं। न करना हो तो साफ-साफ कह दें। करना हो, तो उसकी तैयारी करें। ख्वाहमख्वाह झमेले में फँसा रखा है—तो चक्रधर कुछ इधर उधर की बातें करके टाल जाते। उधर यशोदानन्दन बार-बार लिखते, तुमने मुंशीजी से सलाह की या नहीं। अगर तुम्हें उनसे कहते शर्म आती हो, तो मैं आकर कहूँ ? आखिर इस तरह कब तक टालोगे ? अहिल्या तुम्हारे सिवा किसी और से विवाह न करेगी, यह मानी हुई बात है। फिर उसे वियोग का व्यर्थ क्यों कष्ट देते हो ? चक्रधर इन पत्रों के जवाब में भी यही लिखते कि मैं खुद फिक्र में हूँ। ज्यों ही मौका मिला, जिक्र करूँगा। मुझे विश्वास है कि पिताजी राजी हो जाएँगे।

जन्माष्टमी में उत्सव के बाद मुंशीजी घर आये, तो उनके हौसले बढ़े हुए थे। राजा साहब के साथ ही साथ उनके सौभाग्य का सूर्य उदय होता हुआ मालूम होता था। अब वह अपने ही शहर के किसी रईस के घर चक्रधर की शादी कर सकते थे। अब इस बात की जरूरत न होगी कि लड़की के पिता से विवाह का खर्च माँगा

जाय। अब वह मनमाना दहेज ले सकते थे और धूमधाम से बारात निकाल सकते थे। राजा साहब जरूर उनकी मदद करेंगे, लेकिन मुंशी यशोदानन्दन को वचन दे चुके थे, इसलिए उनसे एक बार पूछ लेना उचित था। अगर उनकी तरफ से जरा भी विलम्ब हो, तो साफ कह देना चाहते थे कि मुझे आपके यहाँ विवाह करना मंजूर नहीं। यों दिल में निश्चय करके एक दिन भोजन करते समय उन्होंने चक्रधर से कहा—मुंशी यशोदानन्दन भी कुछ ऊल-जलूल आदमी हैं। अभी तक कानों में तेल डाले हुए बैठे हैं। क्या समझते हैं कि मैं गरजू हूँ?

चक्रधर—उनकी तरफ से तो देर नहीं है। वह तो मेरे खत का इन्तजार कर रहे हैं।

वज्रधर—मैं तो तैयार हूं; लेकिन अगर उन्हें कुछ पशोपेश हो, तो मैं उन्हें मजबूर नहीं करना चाहता। उन्हें अख्तियार है, जहाँ चाहे करें। यहाँ सैकड़ों आदमी मुँह खोले हुए हैं। उस वक्त जो बात थी, वह अब नहीं है। तुम आज लिख दो कि या तो इसी जाड़े में शादी करें, या कहीं और बातचीत करें। उन्हें समझता क्या हूँ! तुम देखोगे कि उनके जैसे आदमी इसी द्वार पर नाक रगड़ेंगे। आदमी को बिगड़ते देर लगती है, बनते देर नहीं लगती। ईश्वर ने चाहा, तो एक बार फिर धूम से तहसीलदारी करूँगा।

चक्रधर ने देखा कि अब अवसर आ गया है। इस वक्त चूके तो फिर न जाने कब ऐसा अच्छा मौका मिले। आज निश्चय ही कर लेना चाहिए। बोले—उन्हें तो कोई पशोपेश नहीं। पशोपेश जो कुछ होगा, आप ही की तरफ से होगा। बात यह है कि वह कन्या मुंशी यशोदानन्दन की पुत्री नहीं है।

वज्रधर पुत्री नहीं है! वह तो लड़की ही बताते थे। तुम्हारे सामने की तो बात है। खैर, पुत्री न होगी, भतीजी होगी, भाँजी होगी, नातिनी होगी, बहिन होगी। मुझे आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से, जब लड़की तुम्हें पसन्द है और वह अच्छा दहेज दे सकते हैं, तो मुझे और किसी बात की चिन्ता नहीं।

चक्रधर—वह लड़की उन्हें किसी मेले में मिली थी। तब उसकी उम्र तीन-चार बरस की थी। उन्हें उस पर दया आ गई, घर लाकर पाला, पढ़ाया, लिखाया।

वज्रधर—(स्त्री से) कितना दगाबाज आदमी है! क्या अभी तक लड़की के माँ, बाप का पता नहीं चला?

चक्रधर— जी नहीं, मुन्शीजी ने उनका पता लगाने की चेष्टा की, पर कोई फल न निकला।

वज्रधर—अच्छा, तो यह किस्सा है! वह झूठा आदमी है, बना हुआ मक्कार।

निर्मला—जो लोग मीठी बातें करते हैं, उनके पेट में छुरी छिपा रहती है। न जाने किस जाति की लड़की है। क्या ठिकाना? तुम साफ-साफ लिख दो, मुझे

नहीं करना है। बस !

वज्रधर-- मैं तुमसे तो सलाह नहीं पूछता हूँ। तुम्हीं ने इतने दिन नेकनामी के साथ तहसीलदारी नहीं की है। मैं खुद जानता हूँ, ऐसे धोखेबाजों के साथ कैसे पेश आना चाहिए।

खाना खाकर दोनों आदमी उठे, तो मुन्शीजी ने कहा—कलम-दावात लाओ, मैं इसी वक्त यशोदानन्दन को खत लिख दूँ। बिरादरी का वास्ता न होता, तो हरजाने का दावा कर देता।

चक्रधर आरक्त मुख और संकोच रुद्ध कण्ठ से बोले—मैं तो वचन दे आया हूँ।

निर्मला—चल, झूठा कहीं का, खा मेरी कसम !

चक्रधर—सच अम्मां, तुम्हारे सिर की कसम !

वज्रधर—तो यह क्यों नहीं कहते कि तुमने सब कुछ आप ही आप तय कर लिया है। फिर मुझसे क्या सलाह पूछते हो ? आखिर विद्वान् हो, बालिग हो, अपना भला-बुरा सोच सकते हो, मुझसे पूछने की जरूरत ही क्या ! लेकिन तुमने लाख एम० ए० पास कर लिया हो, वह तजुरबा कहाँ से लाओगे, जो मुझे है ? इसीलिए तो वह मक्कार तुम्हें यहाँ से ले गया था। तुमने लड़की सुन्दर देखी, रीझ गए; मगर याद रखो, स्त्री में सुन्दरता ही सबसे बड़ा गुण नहीं है। मैं तुम्हें हर-गिज यह शादी न करने दूँगा।

चक्रधर—अगर और लोग भी यही सोचने लगें तो सोचिए, उस बालिका क्या दशा होगी ?

वज्रधर—तुम कोई शहर के काजी हो ? तुमसे मतलब ? बहुत होगा, जहर खा लेगी। तुम्हीं को उसकी सबसे ज्यादा फिक्र क्यों है ? सारा देश तो पड़ा हुआ है।

चक्रधर—अगर दूसरों को अपने कर्तव्य का विचार न हो, तो इसका यह मतलब नहीं कि मैं भी अपने कर्तव्य का विचार न करूँ।

वज्रधर—कैसी बेतुकी बातें करते हो, जी ! जिस लड़की के माँ-बाप का पता नहीं, उससे विवाह करके क्या खानदान का नाम डुबोओगे ? ऐसी बात करते हुए तुम्हें शर्म भी नहीं आती ?

चक्रधर—मेरा खयाल है कि स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही उसमें मुख्य वस्तु है। इसके सिवा और सभी बातें गौण हैं।

वज्रधर—तुम्हारे सिर नई रोशनी का भूत तो नहीं सवार हुआ था। एकाएक यह क्या कायापलट हो गई ?

चक्रधर—मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा तो यही है कि आप लोगों की सेवा करता जाऊँ, आपकी मरजी के खिलाफ कोई काम न करूँ, लेकिन सिद्धान्त के विषय में मजबूर हूँ।

वज्रधर—सेवा करना नहीं चाहते, मुंह में कालिख लगाना चाहते हो; मगर याद रखो, तुमने यह विवाह किया तो अच्छा न होगा। ईश्वर वह दिन न लाए कि मैं अपने कुल में कलंक लगते देखूं।

चक्रधर—तो मेरा भी यही निश्चय है कि मैं और कहीं विवाह न करूँगा।

यह कहते हुए चक्रधर बाहर चले आए और बाबू यशोदानन्दन को एक पत्र लिखकर सारा किस्सा बयान किया। उसके अन्तिम शब्द ये थे—'पिताजी राजी नहीं होते और यद्यपि मैं सिद्धान्त के विषय में उनसे दबना नहीं चाहता; लेकिन उनसे अलग रहने और बुढ़ापे में उन्हें इतना बड़ा सदमा पहुँचाने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं बहुत लज्जित होकर आपसे क्षमा चाहता हूँ। अगर ईश्वर की यही इच्छा है, तो मैं जीवन पर्यन्त अविवाहित ही रहूँगा, लेकिन यह असंभव है कि कहीं और विवाह कर लूं। जिस तरह अपनी इच्छा से विवाह करके माता-पिता को दुखी करने की कल्पना नहीं कर सकता, उसी तरह उनकी इच्छा से विवाह करके जीवन व्यतीत करने की कल्पना मेरे लिए असह्य है।

इसके बाद उन्होंने दूसरा पत्र अहिल्या के नाम लिखा। यह काम इतना आसान न था; प्रेम पत्र की रचना कवित्त की रचना से कहीं कठिन होती है। कवि चौड़ी सड़क पर चलता है, प्रेमी तलवार की धार पर। तीन बजे कहीं जाकर चक्रधर यह पत्र पूरा कर पाया। उसके अन्तिम शब्द ये थे—'हे प्रिये, मैं अपने माता पिता का वैसा ही भक्त हूँ, जैसा कोई और बेटा हो सकता है। उनकी सेवा में अपने प्राण तक दे सकता हूँ, किन्तु यदि इस भक्ति और आत्मा की स्वाधीनता में विरोध आ पड़े, तो मुझे आत्मा की रक्षा करने में जरा भी संकोच न होगा। अगर मुझे यह भय न होता कि माताजी अवज्ञा से रो-रोकर प्राण दे देंगी और पिताजी देश-विदेश मारे-मारे फिरेंगे, तो मैं यह असह्य यातना न सहता। लेकिन मैं सब कुछ तुम्हारे ही फैसले पर छोड़ता हूँ, केवल इतनी ही याचना करता हूँ कि मुझ पर दया करो।'

दोनों पत्रों को डाकघर में डालते हुए वह मनोरमा को पढ़ाने चले गए।

मनोरमा बोली—आज आप बड़ी जल्दी आ गये; लेकिन देखिए, मैं आपको तैयार मिली। मैं जानती थी कि आप आ रहे होंगे, सच!

चक्रधर ने मुसकराकर पूछा तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं आ रहा हूँ?

मनोरमा—यह न बताऊँगी; किन्तु मैं जान गई थी। अच्छा कहिए तो आपके विषय में कुछ और बताऊं। आज आप किसी न किसी बात पर रोए हैं। बताइए, सच है कि नहीं?

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—झूठी बात है। मैं क्यों रोता, कोई बालक हूँ?

मनोरमा खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—बाबूजी, कभी-कभी आप बड़ी मौलिक बात कहते हैं। क्या रोना और हँसना बालकों ही के लिए है? जवान और बूढ़े नहीं रोते?

यह कहकर मनोरमा ने वह लेख उठा लिया और तुरन्त फ़ाड़कर खिड़की के ...र फेंक दिया। चक्रधर 'हाँ-हाँ' करते रह गए। जब वह फिर अपनी जगह पर ...कर बैठी, तो चक्रधर ने गम्भीर स्वर से कहा—तुम्हारे मन में ऐसे कुत्सित ...चारों को स्थान पाते देखकर मुझे दुःख होता है।

मनोरमा ने सजल नयन होकर कहा—अब मैं ऐसा लेख कभी न लिखूंगी।

चक्रधर—लिखने की बात नहीं है। तुम्हारे मन में ऐसे भाव आने ही न ...चाहिए। काल पर हम विजय पाते हैं, अपनी सुकीर्ति से, यश से, व्रत से। परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है। काल पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि कृत्रिम साधनों से भोग-विलास में प्रवृत हो, वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखें और अपनी आत्मा को धोखा दें। लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है, अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना। आत्मा पर विजय पाने का आशय निर्लज्जता या विषय-वासना नहीं, बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है। यह मैं नहीं कहता कि तुमने जो कुछ लिखा है, वह यथार्थ नहीं है। उनकी नग्न यथार्थता ही ने उन्हें इतना घृणित बना दिया है। यथार्थ का रूप अत्यन्त भयंकर होता है और हम यथार्थ को ही आदर्श मान लें, तो संसार नरक के तुल्य हो जाय। हमारी दृष्टि मन की दुर्बलता पर पड़नी चाहिए। बल्कि दुर्बलताओं में भी सत्य और सुन्दर की खोज करनी चाहिए। दुर्बलताओं की ओर हमारी प्रवृत्ति स्वयं इतनी बलवती है कि उसे उधर ढकेलने की जरूरत नहीं। ऐश्वर्य का एक सुख और है, जिसे तुमने न जाने क्यों छोड़ दिया? जानती हो, वह क्या है?

मनोरमा—अब उसकी और व्याख्या करके मुझे लज्जित न कीजिए।

चक्रधर—तुम्हें लज्जित करने के लिए नहीं, तुम्हारा मनोरंजन करने के लिए बताता हूँ। वह पुरानी बातों को भूल जाना है। ऐश्वर्य पाते ही हमें अपना पूर्व जीवन विस्मृत हो जाता है। हम अपने पुराने हमजोलियों को नहीं पहचानते। ऐसा भूल जाते हैं, मानो कभी देखा ही न था। मेरे जितने धनी मित्र थे, वे मुझे भूल गए। कभी सलाम करता हूँ, तो हाथ तक नहीं उठाते। ऐश्वर्य का यह एक खास लक्षण है। कौन कहता है कि कुछ दिनों के बाद तुम्हीं मुझे न भूल जाओगी!

मनोरमा—मैं आपको भूल जाऊंगी! असम्भव है। मुझे तो ऐसा मालू... होता है कि पूर्व जन्म में भी मेरा और आपका किसी न किसी रूप में साथ था। पहले ही दिन से मुझे आपसे इतनी श्रद्धा हो गई, मानो पुराना परिचय हो। जब कभी कोई बात सोचती हूँ, तो आप उसमें अवश्य पहुंच जाते हैं। अगर ऐश... पाकर आपको भूल जाने की सम्भावना हो, तो मैं उसकी ओर आंख उठाकर न देखूंगी।

चक्रधर ने मुसकराकर कहा—जब हृदय यही रहे तब तो।

मनोरमा—यही रहेगा, देख लीजिएगा। मैं मरकर भी आपको नहीं भूल सकती।

इतने में ठाकुर हरिसेवक आकर बैठ गए। आज वह बहुत प्रसन्नचित्त मालूम होते थे। अभी थोड़ी ही देर पहले राजभवन से लौटकर आये थे। रात को नशा जमाने का अवसर न मिला था, उसकी कसर इस वक्त पूरी कर ली थी। आँखें चढ़ी हुई थीं। चक्रधर से बोले—आपने कल महाराजा साहब के यहाँ उत्सव का प्रबन्ध जितनी सुन्दरता से किया, उसके लिए आपको बधाई देता हूँ। आप न होते, तो सारा खेल बिगड़ जाता। महाराजा साहब बड़े उदार हैं। अब तक मैं उनके विषय में कुछ और ही समझे हुए था। कल उनकी उदारता और सज्जनता ने मेरा संशय दूर कर दिया। आपसे तो बिलकुल मित्रों का सा बर्ताव करते हैं।

चक्रधर—जी हाँ, अभी तक तो उनके बारे में कोई शिकायत नहीं है।

हरिसेवक—महाराज को एक प्राइवेट सेक्रेटरी की जरूरत तो पड़ेगी ही। आप कोशिश करें; तो आपको अवश्य ही यह जगह मिल जायगी। आप घर के आदमी हैं, आपके हो जाने से बड़ा इतमीनान हो जायगा। एक सेक्रेटरी के बगैर महाराजा साहब का कार्य नहीं चल सकता। कहिए तो जिक्र करूँ?

चक्रधर—जी नहीं, अभी तो मेरा इरादा कोई स्थायी नौकरी करने का नहीं है, दूसरे मुझे विश्वास भी नहीं है कि मैं उस काम को सँभाल सकूँगा।

हरिसेवक—अजी, काम करने से सब आ जाता है और आपकी योग्यता मेरे सामने है। मनोरमा को पढ़ाने के लिए कितने ही मास्टर आये, कोई भी दो-चार महीने से ज्यादा न ठहरा। आप जब से आये हैं, इसने बहुत खासी तरक्की कर ली है। मैं अब तक आपकी तरक्की नहीं कर सका, इसका मुझे खेद है। इस महीने से आपको 50 रु० महीने मिलेंगे, यद्यपि मैं इसे भी आपकी योग्यता और परिश्रम को देखते हुए बहुत कम समझता हूँ।

लौंगी देवी भी आ पहुँची। कही-बदी बात थी। ठाकुर साहब का समर्थन करके बोलीं—देवता रूप हैं, देवता रूप! मेरी तो इन्हें देखकर भूख-प्यास बन्द हो जाती है।

हरिसेवक—तो तुम इन्हीं को देख लिया करो, खाने का कष्ट न उठाना पड़े।

लौंगी—मेरे ऐसे भाग्य कहाँ! क्यों बेटा, तुम नौकरी क्यों नहीं कर लेते?

चक्रधर—जितना आप देती हैं, मेरे लिए उतना ही काफी है।

लौंगी इसी से शादी-ब्याह नहीं करते? अब की लाला (वज्रधर) आते हैं, तो उनसे कहती हूँ, लड़के को कब तक छूटा रखोगे?

हरिसेवक—शादी यह खुद ही नहीं करते, यह बेचारे व स्वाधीन रहना चाहते हैं।

लौंगी—तो कोई रोजगार क्यों नहीं करते, बेटा?

चक्रधर—अभी इस चरखे में नहीं पड़ना चाहता।

हरिसेवक—यह और ही विचार के आदमी हैं। मायाफांस में नहीं पड़ना चाहते।

लौंगी—धन्य है, वेटा! धन्य! तुम सच्चे साधु हो।

इस तरह की वातें करके ठाकुर साहव चले गये। लौंगी भी उनके पीछे-पीछे चली गयी। मनोरमा सिर झुकाए दोनों प्राणियों की वातें सुन रही थी और किसी शंका से उसका दिल कांप रहा था। किसी आदमी में स्वभाव के विपरीत आचरण देखकर शंका होती है। आज दादाजी इतने उदार क्यों हो रहे हैं? आज तक इन्होंने किसी को पूरा वेतन भी नहीं दिया, तरक्की करने का जिक्र ही क्या। आज विनय और दया की मूर्ति क्यों वने जाते हैं, इसमें अवश्य कोई रहस्य है। वावूजी से कोई कपट लीला तो नहीं करना चाहते हैं? जरूर यही वात है। कैसे इन्हें सचेत कर दूं?

वह यही सोच रही थी कि गुरुसेवकसिंह कन्धे पर वन्दूक रखे, शिकारी कपड़े पहने एक कमरे से निकल आये और वोले—कहिए! महाशय, दादाजी तो आज आपसे वहुत प्रसन्न मालूम होते थे।

चक्रधर ने कहा—यह उनकी कृपा है।

गुरुसेवक—कृपा के धोखे में न रहिएगा। ऐसे कृपालु नहीं हैं। इनका मारा पानी भी नहीं मांगता। इस डाइन ने इन्हें पूरा राक्षस वना दिया है। शर्म भी नहीं आती। आपसे जरूर कोई मतलव गांठना चाहते हैं।

चक्रधर ने मुसकराकर कहा—लौंगी अम्मां से मेल नहीं हुआ।

गुरुसेवक—मेल? मैं उससे मेल करूंगा! मर जाय, तो कन्धा तक न दूं। डाइन है, लंका की डाइन, उसके हथकंडों से वचते रहिएगा। दादाजी को तो इसने वुद्धू वना छोड़ा है। दादाजी जव किसी पर सख्ती करते हैं, यो तुरन्त घाव पर मरहम रखने पहुंच जाती है। आदमी धोखे में आकर समझता है, यह दया और क्षमा की देवी है! वह क्या जाने कि यही आग लगानेवाली है और वुझानेवाली भी। इसका चरित्र समझने के लिए मनोविज्ञान के किसी वड़े पण्डित की जरूरत है।

चक्रधर ने आकाश की ओर देखा, तो घटा घिर आयी थी। पानी वरसा ही चाहता था। उठकर वोले – आप इस विद्या में वहुत कुशल मालूम होते हैं।

जव वह वाहर निकल गये, तो गुरुसेवक ने मनोरमा से पूछा—आज दोनों इन्हें क्या पढ़ा रहे थे?

मनोरमा—कोई खास वात तो नहीं थी।

गुरुसेवक—यह महाशय भी वने हुए मालूम होते हैं। सरल जीवनवालों से वहुत घवराता हूं। जिसे यह राग अलापते देखो, समझ जाओ कि या तो उसके लिए अंगूर खट्टे हैं, या स्वांग रचकर कोई वड़ा शिकार मारना चाहता है।

मनोरमा—वावूजी उन आदमियों में नहीं हैं।

गुरुसेवक—तुम क्या जानो! ऐसे गुरुघंटालों को मैं खूब पहचानता हूँ।

मनोरमा—नहीं भाई साहब, बाबूजी के विषय में आप धोखा खा रहे हैं। महाराजा साहब इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाना चाहते हैं, लेकिन यह मंजूर नहीं करते।

गुरुसेवक—सच! उस जगह का वेतन तो चार-पाँच सौ से कम न होगा।

मनोरमा—इससे क्या कम होगा। चाहें तो इन्हें अभी यह जगह मिल सकती है। महाराजा साहब इन्हें बहुत मानते हैं; लेकिन यह कहते हैं, मैं स्वाधीन रहना चाहता हूँ। यहाँ भी अपने घरवालों के बहुत दबाने से आते हैं।

गुरुसेवक—मुझे वह जगह मिल जाय, तो बड़ा मजा आए।

मनोरमा—मैं तो समझती हूँ, इसका दुगना वेतन मिले, तो भी बाबूजी स्वीकार न करेंगे। सोचिए, कितना ऊँचा आदर्श है?

गुरुसेवक—मुझे किसी तरह वह जगह मिल जाती, तो जिन्दगी बड़े चैन से कटती।

मनोरमा—अब गाँवों का सुधार न कीजिएगा?

गुरुसेवक—वह भी करता रहूँगा, यह भी करता रहूँगा। राजमंत्री होकर प्रजा की सेवा करने का जितना अवसर मिल सकता है, उतना स्वाधीन रहकर नहीं। कोशिश करके देखूँ, इसमें तो कोई बुराई नहीं है।

यह कहते हुए वह कमरे से चले गये।

मेघों का दल उमड़ा चला आता था। मनोरमा खिड़की के सामने खड़ी आकाश की ओर भयातुर नेत्रों से देख रही थी। अभी बाबूजी घर न पहुँचे होंगे। पानी आ गया तो जरूर भीग जायँगे। मुझे चाहिए था कि उन्हें रोक लेती। भैया न आ जाते, तो शायद वह भी खुद ही बैठते। ईश्वर करे, वह घर पहुँच गए हों।

13

मुद्दत के बाद जगदीशपुर के भाग जागे। राजभवन आबाद हुआ। बरसात में मकानों की मरम्मत न हो सकती थी, इसलिए क्वार तक शहर ही में गुजर करना पड़ा। कार्तिक लगते ही एक ओर जगदीशपुर के राजभवन की मरम्मत होने लगी, दूसरी ओर गद्दी के उत्सव की तैयारियाँ शुरू हुईं। शहर से सामान लद-लदकर जगदीशपुर जाने लगा। राजा साहब स्वयं एक बार रोज जगदीशपुर जाते; लेकिन रहते शहर में ही। रानियाँ जगदीशपुर चली गयी थीं और राजा साहब को अब उनसे चिढ़-सी हो गई थी। घण्टे दो घण्टे के लिए भी वहाँ [illegible] समय गृहकलह सुनने में कट जाता था और कोई काम देखने को

:। रानियों में पहले ही सी धमचख मची रहती थी। राजा साहब ने जीवन का या अध्याय शुरू कर दिया था।

राजा साहब ताकीद करते थे कि प्रजा पर जरा भी सख्ती न होने पाए। दीवान साहब से उन्होंने जोर देकर कह दिया था कि बिना पूरी मजदूरी दिये किसी से काम न लीजिए, लेकिन यह उनकी शक्ति के बाहर था कि आठों पहर बैठे रहें। उनके पास अगर कोई शिकायत पहुँचती, तो कदाचित् वह राज कर्मचारियों को फाड़ खाते। लेकिन प्रजा सहनशील होती है, जब तक प्याला भर न जाय, वह जबान नहीं खोलती। फिर गद्दी के उत्सव में थोड़ा बहुत कष्ट होना स्वाभाविक समझकर और भी कोई न बोलता था। अपना काम तो बारहों मास करते ही हैं, मालिक की भी तो कुछ सेवा होनी चाहिए। यह ख्याल करके सभी लोग उत्सव की तैयारियों में लगे हुए थे। सुन रखा था कि राजा साहब बड़े दयालु, प्रजावत्सल हैं, इससे लोग खुशी से इस अवसर पर योग दे रहे थे। समझते थे, महीने-दो महीने का झंझट है, फिर तो चैन ही चैन है। रानी साहब के समय की सी धाँधली तो इनके समय में न होगी।

तीन महीने तक सारी रियासत के बढ़ई, मिस्त्री, दरजी, चमार, कहार सब दिल तोड़कर काम करते रहे। चक्रधर को रोज खबरें मिलती रहती थीं कि प्रजा पर बड़े-बड़े अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन वह राजा साहब से शिकायत करके उन्हें असमंजस में न डालना चाहते थे। अकसर खुद जाकर मजदूरों और कारीगरों को समझाते थे। 15 ही मील का तो रास्ता था। रेलगाड़ी आध घण्टे में पहुँचा देती थी। इस तरह तीन महीने गुजर गए। राजभवन का कलेवर नया हो गया। सारे कस्बे में रोशनी के फाटक बन गए, तिलकोत्सव का विशाल पण्डाल तैयार हो गया। चारों तरफ भवन में, पण्डाल में, कस्बे में सफाई और सजावट नजर आती थी। कर्मचारियों को नई वर्दियाँ बनवा दी गईं। प्रान्त भर के रईसों के नाम निमंत्रण-पत्र भेज दिए और रसद का सामान जमा होने लगा। वसंत ऋतु थी, चारों तरफ वसंती रंग की बहार नजर आती थी। राजभवन वसंती रंग से पुताया गया था। पण्डाल भी वसंती था। मेहमानों के लिए जो कैम्प बनाए थे, वे भी वसंती थे। कर्मचारियों की वर्दियाँ भी वसंती। दो मील के घेरे में वसंती ही वसंती था। सूर्य के प्रकाश से सारा कंचनमय हो जाता था। ऐसा मालूम होता था, मानो स्वयं ऋतुराज के अभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं।

लेकिन अब तक बहुत कुछ काम बेगार से चल गया था। मजूरों को भोजन मात्र मिल जाता था, अब नकद रुपये की जरूरत सामने आ रही थी। राजाओं का आदर सत्कार और अँगरेज हुक्काम की दावत-तवाजा तो बेगार में न हो सकती थी! कलकत्ते से थिएटर की कम्पनी बुलाई गई थी, मथुरा की रासलीला मण्डली को नेवता दिया गया था। खर्च का तखमीना पाँच लाख से ऊपर था। प्रश्न था ये रुपये कहाँ से आएँ। खजाने में झंझी कौड़ी न थी। असामियों से छमाही लगा

पहले ही वसूल किया जा चुका था। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। मुहूर्त आता था और कुछ निश्चय न होता था। यहाँ तक कि केवल 15 दिन और रह गए।

संध्या का समय था। राजा साहब उस्ताद मेहँदी खाँ के साथ बैठे सितार का अभ्यास कर रहे थे। राज्य पाकर उन्होंने अब तक केवल यही एक व्यसन पाला था। वह कोई नई बात करते हुए डरते थे कि कहीं लोग कहने लगें कि ऐश्वर्य पाकर मतवाला हो गया, अपने को भूल गया। वह छोटे-बड़े सभी से बड़ी नम्रता से बोलते और यथाशक्ति किसी पहलू पर भी न बिगड़ते थे। मेहँदी खाँ इस वक्त उन्हें डाँट रहे थे—सितार बजाना कोई मुँह का नेवाला नहीं है—कि दीवान साहब और मुंशीजी आकर खड़े हो गए।

विशालसिंह ने पूछा—कोई जरूरी काम है?

ठाकुर—जरूरी काम न होता, तो हुजूर को इस वक्त क्यों कष्ट देने आता?

मुंशी—दीवान साहब तो आते हिचकते थे। मैंने कहा कि इंतजाम की बात में कैसी हिचक? चलकर साफ-साफ कहिए। तब डरते-डरते आए हैं।

ठाकुर—हुजूर, उत्सव को अब केवल एक सप्ताह रह गया है और अभी तक रुपये की कोई सबील नहीं हो सकी। अगर आज्ञा हो, तो किसी बैंक से 5 लाख कर्ज ले लिया जाए।

राजा—हरगिज नहीं। आपको याद है तहसीलदार साहब, मैंने आपसे क्या कहा था? मैंने उस वक्त तो कर्ज ही नहीं लिया, जब कौड़ी-कौड़ी का मोहताज था। कर्ज का तो आप जिक्र ही न करें।

मुंशी—हुजूर, कर्ज और फर्ज के रूप में तो केवल जरा-सा अन्तर है; पर अर्थ में जमीन और आसमान का फर्क है।

दीवान—तो अब महाराज क्या हुक्म देते हैं?

राजा—ये हीरे-जवाहिरात ढेरों पड़े हुए हैं। क्यों न इन्हें निकाल डालिए? किसी जौहरी को बुलाकर उनके दाम लगवाइए!

दीवान—महाराज, इसमें तो रियासत की बदनामी है।

मुंशी—घर के जेवर ही तो आबरू हैं। वे घर से गए और आबरू गई!

राजा—हाँ, बदनामी तो जरूर है; लेकिन दूसरे उपाय ही क्या है?

दीवान—मेरी तो राय है कि असामियों पर हल पीछे 10 रु० चन्दा लगा दिया जाए।

राजा—मैं अपने तिलकोत्सव के लिए आसामियों पर जुल्म न करूँगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि उत्सव ही न हो।

दीवान—महाराज, रियासतों में पुरानी प्रथा है। सब आसामी खुशी से देंगे, किसी को आपत्ति न होगी।

मुंशी—गाते-बजाते आएँगे और दे जाएँगे।

राजा—मैं किस मुँह से उनसे रुपये लूँ? गद्दी पर बैठ रह

सामी क्यों इतना जब्र सहें ?

वान—महाराज, यह तो परस्पर का व्यवहार है। रियासत भी तो अवसर र हर तरह से आसामियों की सहायता करती है। शादी-गमी में रियासत ड़ियाँ मिलती हैं, सरकारी चरावर में लोगों की गोएँ चरती हैं। और भी ी बातें हैं। जब रियासत को अपना नुकसान उठाकर प्रजा की मदद करनी है, तब प्रजा राजा की शादी-गमी में क्यों न शरीक हो ?

राजा—अधिकांश आसामी गरीब हैं; उन्हें कष्ट होगा।

मुंशी—हुजूर, आसामियों को जितना गरीब समझते हैं, उतने गरीब वे नहीं । एक-एक आदमी लड़के-लड़कियों की शादी में हजारों उड़ा देता है। दस रुपये रकम इतनी ज्यादा नहीं कि किसी को अखर सके। मेरा तो पुराना तजुरबा ..। तहसीलदार था, तो हाकिमों को डाली देने के लिए बात-की-बात में हजारों रुपये वसूल कर लेता था।

राजा—मैं आसामियों को किसी भी हालत में कष्ट नहीं देना चाहता। इससे तो कहीं अच्छी बात होगी कि उत्सव को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया जाए; लेकिन अगर आप लोगों का विचार है कि किसी को कष्ट न होगा और लोग खुशी से मदद देंगे तो आप अपनी जिम्मेदारी पर वह काम कर सकते हैं। मेरे कानों तक कोई शिकायत न आए।

दीवान—हुजूर, शिकायत तो थोड़ी-बहुत हर हालत में होती ही है। इससे बचना असम्भव है। अगर कोई शिकायन न होगी, तो यही होगी कि महाराज साहब की गद्दी हो गई और हमारा मुँह भी न मीठा हुआ, कोई जलसा तक न हुआ। अगर किसी से कुछ न लीजिए, केवल तिलकोत्सव में शरीक होने के लिए बुलाइए, तब भी लोग शिकायत से बाज न आएँगे। नेवते को तलबी समझेंगे और रोएंगे कि हम अपने काम-धन्धे छोड़कर कैसे जाएँ। रोना तो उनकी घुट्टी में पड़ गया है। रियासत का कोई नौकर जा पड़ता है, उसे उपले तक नहीं मिलते, और कोई धूर्त जटा बढ़ाकर पहुँच जाता है, तो महीनों उसका आदर सत्कार होता है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध ही ऐसा है। प्रजाहित के लिए भी कोई काम कीजिए, तो उसमें भी लोगों को शंका होती है। हल पीछे 10 रु० बैठा देने से कोई 5 लाख रुपये हाथ आएँगे। रही रसद; वह तो बेगार में मिलती है। आपकी अनुमति की देर है।

मुंशी—जब सरकार ने यह कह दिया कि आप अपनी जिम्मेदारी पर वसूल कर सकते हैं, तो अनुमति का क्या प्रश्न ? इसका मतलब तो इतना गहरा नहीं कि बहुत डूबने से मिले। आप महाजनों को देखते हैं, मालिक मुनीम को लिख है कि फलाँ काम के लिए रुपया दे दो, मुनीम हीले-हवाले करके टाल देता हमारी अँगरेजी सरकार ही को देखिए। ऊपरवाले हुक्काम कितनी मुलामियत बातें करते हैं; लेकिन उनके मातहत खूब जानते हैं किसके साथ कैसा व

लिए आसामी क्यों इतना जब्र सहें ?

दीवान—महाराज, यह तो परस्पर का व्यवहार है। रियासत भी तो अवसर पड़ने पर हर तरह से आसामियों की सहायता करती है। शादी-गमी में रियासत से लकड़ियाँ मिलती हैं, सरकारी चरावर में लोगों की गौएँ चरती हैं। और भी कितनी बातें हैं। जब रियासत को अपना नुकसान उठाकर प्रजा की मदद करनी पड़ती है, तब प्रजा राजा की शादी-गमी में क्यों न शरीक हो ?

राजा—अधिकांश आसामी गरीब हैं; उन्हें कष्ट होगा।

मुंशी—हुजूर, आसामियों को जितना गरीब समझते हैं, उतने गरीब वे नहीं हैं। एक-एक आदमी लड़के-लड़कियों की शादी में हजारों उड़ा देता है। दस रुपये की रकम इतनी ज्यादा नहीं कि किसी को अखर सके। मेरा तो पुराना तजुरबा है। तहसीलदार था, तो हाकिमों को डाली देने के लिए बात-की-बात में हजारों रुपये वसूल कर लेता था।

राजा—मैं आसामियों को किसी भी हालत में कष्ट नहीं देना चाहता। इससे तो कहीं अच्छी बात होगी कि उत्सव को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया जाए; लेकिन अगर आप लोगों का विचार है कि किसी को कष्ट न होगा और लोग खुशी से मदद देंगे तो आप अपनी जिम्मेदारी पर वह काम कर सकते हैं। मेरे कानों तक कोई शिकायत न आए।

दीवान—हुजूर, शिकायत तो थोड़ी-बहुत हर हालत में होती ही है। इससे बचना असम्भव है। अगर कोई शिकायत न होगी, तो यही होगी कि महाराज साहब की गद्दी हो गई और हमारा मुँह भी न मीठा हुआ, कोई जलसा तक न हुआ। अगर किसी से कुछ न लीजिए, केवल तिलकोत्सव में शरीक होने के लिए बुलाइए, तब भी लोग शिकायत से बाज न आएँगे। नेवते को तलबी समझेंगे और रोएँगे कि हम अपने काम-धन्धे छोड़कर कैसे जाएँ। रोना तो उनकी घुट्टी में पड़ गया है। रियासत का कोई नौकर जा पड़ता है, उसे उपले तक नहीं मिलते, और कोई धूर्त जटा बढ़ाकर पहुँच जाता है, तो महीनों उसका आदर सत्कार होता है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध ही ऐसा है। प्रजाहित के लिए भी कोई काम कीजिए, तो उसमें भी लोगों को शंका होती है। हल पीछे 10 रु० बैठा देने से कोई 5 लाख रुपये हाथ आएँगे। रही रसद; वह तो बेगार में मिलती है। आपकी अनुमति की देर है।

मुंशी—जब सरकार ने यह कह दिया कि आप अपनी जिम्मेदारी पर वसूल कर सकते हैं, तो अनुमति का क्या प्रश्न ? इसका मतलब तो इतना गहरा नहीं है कि बहुत डूबने से मिले। आप महाजनों को देखते हैं, मालिक मुनीम को लिखता है कि फलाँ काम के लिए रुपया दे दो, मुनीम हीले-हवाले करके टाल देता है। हमारी अँगरेजी सरकार ही को देखिए। ऊपरवाले हुक्काम कितनी मुलामियत से बातें करते हैं; लेकिन उनके मातहत खूब जानते हैं किसके साथ कैसा बर्ताव

करना चाहिए। चलिए, हुजूर को तकलीफ न दीजिए। मेहूँखां, बस यही समझ लो कि निहाल हो जाओगे।

राजा—बस, इतना खयाल रखिए कि किसी को कष्ट न होने पाए। आपको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि आसामी लोग सहर्ष आकर शरीक हों।

मुंशी—हुजूर का फरमाना बहुत वाजिब है। अगर हुजूर सख्ती करने लगेंगे, तो उन गरीबों के आँसू कौन पोंछेगा, उन्हें तसकीन कौन देगा? हुकूमत करने के लिए तो आपके गुलाम हम हैं। सूरज जलाता भी है, रोशनी भी देता है। जलानेवाले हम हैं, रोशनी देनेवाले आप हैं। दुआ का हक आपका है, गालियों का हक हमारा। चलिए, दीवान साहब, अब हुजूर को सितार का शौक करने दीजिए।

दोनों आदमी वहाँ से चले, तो दीवान साहब ने कहा—ऐसा न हो कि शोर-गुल मचे, हमारी जान आफत में फँसे।

मुंशी जी बोले—यह सब बगुला भगत-पन है। मैं तो खूब पहचानता हूँ। गरीबों का जिक्र ही क्या, हमें कभी एक पैसे का नुकसान हो जाता है, तो कितना बुरा मालूम होता है। जिससे आप 10 रुपये ऐंठ लेंगे, क्या वह खुशी से देगा? इसका मतलब यही है कि धड़ल्ले से रुपये की वसूली कीजिए। किसी राजा ने आज तक न कहा होगा कि प्रजा को सताकर रुपये वसूल कीजिए। लेकिन चन्दे जब वसूल होने लगे और शोर मचा, तो किसी ने कर्मचारियों की तम्बीह नहीं की। यही हमेशा से होता है और यही अब भी हो रहा है।

हुक्म मिलने की देर थी। कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुक्म पाते ही बाग-बाग हो गए। फिर तो वह अन्धेर मचा कि सारे इलाके में कुहराम पड़ गया। आसामियों ने नए राजा साहब से दूसरी आशाएँ बाँध रखी थीं। यह बला सिर पड़ी, तो झल्ला गए। यहाँ तक कि कर्मचारियों के अत्याचार देखकर चक्रधर का भी खून उबल पड़ा। समझ गए कि राजा साहब भी कर्म-चारियों के पंजे में आ गए। उनसे कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। चारों तरफ लूट-खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोक-पीट तो साधारण बात थी। किसी के बैल खोल लिए जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितनों ही के खेत कटवा लिए गए। बे-दखली और इजाफे की धमकियाँ दी जाती थीं। जिसने खुशी से दिये, उसका तो 10 रु० ही में गला छूटा। जिसने हीले-हवाले किए, कानून बघारा, उसे 10 रु० के बदले 20 रु०, 30 रु०, 40 रु० देने पड़े। आखिर विवश होकर एक दिन चक्रधर ने राजा साहब से शिकायत कर ही दी।

राजा साहब ने त्योरी बदलकर कहा—मेरे पास तो आज तक कोई आसामी शिकायत करने नहीं आया। जब उनको कोई शिकायत नहीं है, तो आप उनकी तरफ से क्यों वकालत कर रहे हैं?

चक्रधर—आपको आसामियों का स्वभाव तो मालूम होगा? उन्हें आपसे

शिकायत करने का क्योंकर साहस हो सकता है ?

राजा—यह मैं नहीं मानता। आसामी ऐसे बे सींग की गाय नहीं होते। जिसको किसी बात की अखर होती है, वह चुप नहीं बैठा रहता। उसका चुप रहना ही इस बात का प्रमाण है कि उसे अखर नहीं, या है तो बहुत कम। आपके पिताजी और दीवान साहब यही दो आदमी कर्ता-धर्ता हैं, आप उनसे क्यों नहीं कहते ?

चक्रधर—तो आपसे कोई आशा न रखूं ?

रारजा—मैं अपने कर्मचारियों से अलग कुछ नहीं हूँ।

चक्रधर ने इसका और कुछ जवाब न दिया। दीवान साहब या मुंशीजी से इस मामले में सहायता की याचना करना अंधे के आगे रोना था। क्रोध तो ऐसा आया कि इसी वक्त जगदीशपुर चलूं और सारे आदमियों से कह दूं, अपने घर जाओ। देखूं, लोग क्या करते हैं। समिति के सेवकों के साथ रियासत में दौरा करना शुरू करूं, देखूं लोग कैसे रुपये वसूल करते हैं; पर राजा साहब की बदनामी का खयाल करके रुक गए। अभी राजभवन ही में थे कि मुंशीजी अपना पुराना तहसीलदारी के दिनों का ओवरकोट डाले, मोटरकार से उतरे और इन्हें देखकर बोले—तुम यहाँ क्या करने आये थे ? अपने लिए कुछ नहीं कहा ?

चक्रधर—अपने लिए क्या कहता ? सुनता हूं, रियासत में बड़ा अन्धेर मचा हुआ है।

वज्रधर—यह सब तुम्हारे आदमियों की शरारत है। तुम्हारी समिति के आदमी जा-जाकर आसामियों को भड़काते रहते हैं। इन्हीं लोगों की शह पाकर वे सब शेर हो गए हैं, नहीं तो किसी की मजाल न थी कि चूं करता। न जाने तुम्हारी अक्ल कहाँ गई है !

चक्रधर—हम लोग तो केवल इतना ही चाहते हैं कि आसामियों पर सख्ती न की जाय और आप लोगों ने इसका वादा भी किया था; फिर यह मारधाड़ क्यों हो रही है ?

वज्रधर—इसीलिए कि आसामियों से कह दिया गया है कि राजा साहब किसी पर जब्र नहीं करना चाहते। जिसकी खुशी हो दे, जिसकी हो न दे। तुम अपने आदमियों को बुला लो, फिर देखो, कितनी आसानी से काम हो जाता है। नशे का जोश ताकत नहीं है। ताकत वह है, जो अपने बदन में हो। जब तक प्रजा खुद न सँभलेगी, कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। तुम कहाँ-कहाँ उन पर हाथ रखते फिरोगे ? चौकीदार से लेकर बड़े हाकिम तक सभी उनके दुश्मन हैं। मान लो, हमने छोड़ दिया; मगर थानेदार है, पटवारी है, कानूनगो है, माल के हुक्काम हैं। सभी उनकी जान के गाहक हैं। तुम फकीर बन जाओ, सारी दुनिया तो तुम्हारे लिए संन्यास न लेगी ? तुम आज ही अपने आदमियों को बुला लो। अब तक तो हम लोग उनका लिहाज करते आये हैं; लेकिन रियासत के सिपाही उनसे बेतरह

बिगड़े हुए हैं। ऐसा न हो कि मार-पीट हो जाय।

चक्रधर यहाँ से अपने आदमियों को बुला लेने का वादा करके तो चले, लेकि... दिल में आगा-पीछा हो रहा था। कुछ समझ में न आता था कि क्या करन... चाहिए। इसी सोच में पड़े हुए मनोरमा के यहाँ चले गये।

मनोरमा उन्हें उदास देखकर बोली—आप बहुत चिन्तित से मालूम होते हैं? घर में तो सब कुशल है?

चक्रधर—हाँ, कोई बात नहीं। लाओ देखूँ, तुमने क्या काम किया है?

मनोरमा—आप मुझसे छिपा रहे हैं। आप जब तक न बताएँगे, मैं कुछ न पढ़ूँगी। आप तो यों कभी मुरझाए न रहते थे।

चक्रधर—क्या कहूँ मनोरमा, अपनी दशा देखकर कभी-कभी रोना आ जाता है। सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फिर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी फेरने से बाज नहीं आते। इतनी दुर्दशा पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। जिनसे लड़ना चाहिए, उनके तो तलुवे चाटते हैं और जिनसे गले मिलना चाहिए, उनकी गर्दन दबाते हैं। और यह सारा जुल्म हमारे पढ़े-लिखे भाई ही कर रहे हैं। जिसे कोई अख्तियार मिल गया, वह फौरन दूसरों को पीसकर पी जाने की फिक्र करने लगता है। विद्या ही से विवेक होता है; पर जब रोगी असाध्य हो जाता है, दवा भी उस पर विष का काम करती है। हमारी शिक्षा ने हमें पशु बना दिया है। राजा साहब की जात से लोगों को कैसी-कैसी आशाएँ थीं; लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छः महीने भी नहीं हुए और इन्होंने भी वही पुराना ढंग अख्तियार कर लिया। प्रजा से डण्डों के जोर से रुपये वसूल किए जा रहे हैं और कोई फरियाद नहीं सुनता। सबसे ज्यादा रोना तो इस बात का है कि दीवा... साहब और मेरे पिताजी ही राजा साहब के मंत्री और अत्याचार के मुख्य कारण हैं।

सरल हृदय प्राणी अन्याय की बात सुनकर उत्तेजित हो जाते हैं। मनोरमा ने ...द्दंड होकर कहा—आप आसामियों से क्यों नहीं कहते कि किसी को एक कौड़ी भी न दें। कोई देगा ही नहीं, तो ये लोग कैसे ले लेंगे?

चक्रधर को हँसी आ गई। बोले—तुम मेरी जगह होतीं, तो आसामियों को ...ना कर देती?

मनोरमा—अवश्य। खुल्लमखुल्ला कहती, खबरदार! राजा के आदमियों ...कोई एक पैसा भी न दे। मैं तो राजा के आदमियों को इतना पिटवाती कि ...र इलाके में जाने का नाम ही न लेते।

चक्रधर ने फिर हँसकर कहा—और दीवान साहब से क्या कहतीं?

मनोरमा—उनसे भी यही कहती कि आप चुपके से घर ...

...ा न होगा। आप मेरे पूज्य पिता हैं, मैं आपकी सेवा कर...

...ों का खून न घुसने दूँगी। गरीबों को सताकर अपना घर...

सा बड़ा तीर मार लिया। वीर तो तब बखानूँ, जब सबलों से ताल ठोकिए। अभी एक गोरा आ जाय, तो घर में दुम दबाकर भागेंगे। उस वक्त जबान भी न खुलेगी। उससे जरा आँखें मिलाइए तो देखिए, ठोकर जमाता है या नहीं! उससे तो बोलने की हिम्मत नहीं, बेचारे दीनों को सताते फिरते हैं। यह तो मरे को मारना हुआ। हुकूमत इसे नहीं कहते। यह चोरी भी नहीं है। यह केवल मुर्दे और गिद्ध का तमाशा है।

चक्रधर ये बातें सुनकर पुलकित हो उठे। मुसकराकर बोले—अगर दीवान साहब खफा हो जाते?

मनोरमा—तो खफा हो जाते! किसी के खफा होने के डर से सच्ची बात पर परदा थोड़ा ही डाला जाता है। अगर आज वह आ गए, तो मैं आज ही जिक्र करूँगी।

यह कहते-कहते मनोरमा कुछ चिन्तित-सी हो गई और चक्रधर भी विचार में पड़ गए। दोनों के मन में एक ही भाव उठ रहे थे—इसका फल क्या होगा? वह सोचती थी, कहीं लालाजी ने गुस्से में आकर बाबूजी को अलग कर दिया तो? चक्रधर सोच रहे थे, यह शंका मुझे क्यों इतना भयभीत कर रही है! इस विषय पर फिर कुछ बातचीत न हुई; लेकिन चक्रधर यहाँ से पढ़ाकर चले, तो उनके मन में प्रश्न हो रहा था—क्या अब यहाँ मेरा आना उचित है? आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अंतस्तल को देखा, तो उसमें कितने ही ऐसे भाव छिपे हुए थे, जिन्हें यहाँ न रहना चाहिए था। रोग जब तक कष्ट न देने लगे, हम उसकी परवा नहीं करते! बालक की गालियाँ हँसी में उड़ जाती हैं; लेकिन सयाने लड़के की गालियाँ कौन सहेगा?

14

गद्दी के कई दिन पहले ही से मेहमानों का आना शुरू हो गया और तीन दिन बाकी ही थे कि सारा कैम्प भर गया। दीवान साहब ने कैम्प ही में बाजार लगवा दिया था, वहीं रसद-पानी का भी इन्तजाम था। राजा साहब स्वयं मेहमानों की खातिरदारी करते रहते थे; किन्तु जमघट बहुत बड़ा था। आठों पहर हरबोंग सा मचा रहता था।

बड़े-बड़े नरेश आये थे। कोई चुने हुए दरबारियों के साथ, कोई लाव-लश्कर लिए हुए। कहीं ऊदी वर्दियों की बहार थी, तो कहीं केसरिए बाने की। कोई रत्न जटित आभूषण पहने, कोई अँगरेजी सूट में लैस; कोई इतना विद्वान कि विद्वान में शिरोमणि, कोई इतना मूर्ख कि मूर्ख मण्डली की शोभा! कोई पाँच घण्टे स्नान करता था और कोई सात घण्टे पूजा। कोई दो बजे रात को सोकर उठता था, कोई

दो बजे दिन को। रात-दिन तबले ठनकते रहते थे। कितने महाशय ऐसे भी थे, जिनका दिन अँगरेजी कैम्प का चक्कर लगाने में ही कटता था। दो-चार सज्जन प्रजावादी भी थे। सरकार और उनकी टुकड़ी के और लोग इन लोगों का सेवा-सम्मान विशेष रूप से करते थे; किन्तु विद्वान् या मूर्ख, राजसत्ता के स्तम्भ या लोकसत्ता के भक्त, सभी अपने को ईश्वर का अवतार समझते थे, सभी गरूर के नशे में मतवाले, सभी विलासिता में डूबे हुए। एक भी ऐसा नहीं, जिसमें चरित्र-बल हो, सिद्धान्त प्रेम हो, मर्यादा भक्ति हो।

नरेशों की सम्मान-लालसा पग-पग पर अपना जलवा दिखाती थी। वह मेरे आगे क्यों चले, उन्हें मेरे पीछे रहना चाहिए था। उनका पूर्वज हमारे पुरुखाओं का करदाता था। बातें करने में, अभिवादन में, भोजन करने के लिए बैठने में, महफिल में, पान और इलायची लेने में, यही अनैक्य और द्वेष का भाव प्रकट होता रहता था। राजा विशालसिंह और कर्मचारियों का बहुत-सा समय चिरौरी विनती करने में कट जाता था। कभी-कभी तो इन महान् पुरुषों को शान्त करने के लिए राजा साहब को हाथ जोड़ना और उनके पैरों पर सिर रखना पड़ता था। दिल में पछताते थे कि व्यर्थ ही यह आडम्बर रचा। भगवान् किसी भाँति कुशल से यह उत्सव समाप्त कर दें, अब कान पकड़े कि ऐसी भूल कभी न होगी। किसी अनिष्ट की शंका उन्हें हरदम उद्विग्न रखती थी। मेहमानों से तो काँपते रहते थे; पर अपने आदमियों से जरा-जरा सी बात पर बिगड़ जाते थे जो मुँह में आता, बक डालते थे।

अगर शान्ति थी तो अँगरेजी कैम्प में। न नौकरों में तकरार थी, न बाजार वालों से जूती पैजार थी। सबकी चाय का एक समय, डिनर का एक समय, विश्राम का एक समय, मनोरंजन का एक समय। सब एक साथ थिएटर देखते, एक साथ हवा खाने जाते। न बाहर गन्दगी थी, न मन में मलिनता। नरेशों के कैम्प में पराधीनता का राज्य था और अँगरेजी कैम्प में स्वाधीनता का। स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणों को।

उधर रनिवास में भी खूब जमघट था। महिलाओं का रूप-रंग देखकर आँखों में चकाचौंध हो जाती थी। रत्न और कंचन ने उनकी कान्ति को और भी उज्ज्वल कर दिया था। कोई पारसी वेश में थी, कोई अँगरेजी वेश में और कोई अपने ठेठ स्वदेशी ठाठ में। युवतियाँ इधर-उधर चहकती फिरती प्रौढ़ाएँ आँखें मटका रही थीं। वासना उम्र के साथ बढ़ती जाती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आँखों के सामने था। अँगरेजी फैशनवालियाँ औरों को गँवारिनें समझती थीं और गँवारिनें उन्हें कुलटा कहती थीं। मजा यह था कि सभी महिलाएँ ये बातें अपनी सहेलियों और लौंडियों से भी कहने में संकोच न करती थीं। ऐसा मालूम होता था कि ईश्वर ने स्त्रियों को निन्दा और परिहास के लिए ही रचा है। मन और तन में कितना अंतर हो सकता है, इसका कुछ अनुमान हो जाता था। मनोरमा को महिलाओं के सेवा-

सा बड़ा तीर मार लिया। वीर तो तब बखानूँ, जब सबलों से ताल ठोकिए। अभी एक गोरा आ जाय, तो घर में दुम दबाकर भागेंगे। उस वक्त जबान भी न खुलेगी। उससे जरा आँखें मिलाइए तो देखिए, ठोकर जमाता है या नहीं! उससे तो बोलने की हिम्मत नहीं, बेचारे दीनों को सताते फिरते हैं। यह तो मरे को मारना हुआ। हुकूमत इसे नहीं कहते। यह चोरी भी नहीं है। यह केवल मुर्दे और गिद्ध का तमाशा है।

चक्रधर ये बातें सुनकर पुलकित हो उठे। मुसकराकर बोले—अगर दीवान साहब खफा हो जाते?

मनोरमा—तो खफा हो जाते! किसी के खफा होने के डर से सच्ची बात पर परदा थोड़ा ही डाला जाता है। अगर आज वह आ गए, तो मैं आज ही जिक्र करूँगी।

यह कहते-कहते मनोरमा कुछ चिन्तित-सी हो गई और चक्रधर भी विचार में पड़ गए। दोनों के मन में एक ही भाव उठ रहे थे—इसका फल क्या होगा? वह सोचती थी, कहीं लालाजी ने गुस्से में आकर बाबूजी को अलग कर दिया तो? चक्रधर सोच रहे थे, यह शंका मुझे क्यों इतना भयभीत कर रही है! इस विषय पर फिर कुछ बातचीत न हुई; लेकिन चक्रधर यहाँ से पढ़ाकर चले, तो उनके मन में प्रश्न हो रहा था—क्या अब यहाँ मेरा आना उचित है? आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अंतस्तल को देखा, तो उसमें कितने ही ऐसे भाव छिपे हुए थे, जिन्हें यहाँ न रहना चाहिए था। रोग जब तक कष्ट न देने लगे, हम उसकी परवा नहीं करते! बालक की गालियाँ हँसी में उड़ जाती हैं; लेकिन सयाने लड़के की गालियाँ कौन सहेगा?

14

गद्दी के कई दिन पहले ही से मेहमानों का आना शुरू हो गया और तीन दिन बाकी ही थे कि सारा कैम्प भर गया। दीवान साहब ने कैम्प ही में बाजार लगवा दिया था, वहीं रसद-पानी का भी इन्तजाम था। राजा साहब स्वयं मेहमानों की खातिरदारी करते रहते थे; किन्तु जमघट बहुत बड़ा था। आठों पहर हरबोंग सा मचा रहता था।

बड़े-बड़े नरेश आये थे। कोई चुने हुए दरबारियों के साथ, कोई लाव-लश्कर लिए हुए। कहीं ऊदी वर्दियों की बहार थी, तो कहीं केसरिए बाने की। कोई रत्न जटित आभूषण पहने, कोई अँगरेजी सूट में लैस; कोई इतना विद्वान कि विद्वा[ानों] में शिरोमणि, कोई इतना मूर्ख कि मूर्ख मण्डली की शोभा! कोई पाँच घण्टे स्न[ान] करता था और कोई सात घण्टे पूजा। कोई दो बजे रात को सोकर उठता था,

दो बजे दिन को। रात-दिन तबले ठनकते रहते थे। कितने महाशय ऐसे भी जिनका दिन अँगरेजी कैम्प का चक्कर लगाने मे ही कटता था। दो-चार सज प्रजावादी भी थे। चक्रधर और उनकी टुकड़ी के और लोग इन लोगो का मे सम्मान विशेष रूप से करते थे; किन्तु विद्वान् या मूर्ख, राजसत्ता के स्तम्भ लोकसत्ता के भवन, सभी अपने को ईश्वर का अवतार समझते थे, सभी गरूर नशे में मतवाले, सभी विलासिता मे डूबे हुए। एक भी ऐसा नहीं, जिसमे चरित्र बल हो, सिद्धान्त प्रेम हो, मर्यादा भक्ति हो।

नरेशो की सम्मान-लालसा पग-पग पर अपना जलवा दिखाती थी। वह मेरे आगे क्यो चले, उन्हें मेरे पीछे रहना चाहिए था। उनका पूर्वज हमारे पुरखाओं का करदाता था। बातें करने मे, अभिवादन मे, भोजन करने के लिए बैठने मे, महफिल मे, पान और इलायची लेने मे, यही अनैक्य और द्वेष का भाव प्रकट होता रहता था। राजा विशालसिंह और कर्मचारियो का बहुत-सा समय चिरौरी विनती करने मे कट जाता था। कभी-कभी तो इन महान् पुरुषो को शान्त करने के लिए राजा साहब को हाथ जोड़ना और उनके पैरों पर सिर रखना पड़ता था। दिल मे पछताते थे कि व्यर्थ ही यह आडम्बर रचा। भगवान् किसी भाँति कुशल से यह उत्सव समाप्त कर दें, अब कान पकड़े कि ऐसी भूल कभी न होगी। किसी अनिष्ट की शंका उन्हें हरदम उद्विग्न रखती थी। मेहमानो से तो काँपते रहते थे, पर अपने आदमियो से जरा-जरा सी बात पर बिगड़ जाते थे जो मुँह मे आता, बक डालते थे।

अगर शान्ति थी तो अँगरेजी कैम्प मे। न नौकरो मे तकरार थी, न बाजार वालो से जूती पैजार थी। सबकी चाय का एक समय डिनर का एक समय, विश्राम का एक समय, मनोरंजन का एक समय। सब एक साथ थिएटर देखते, एक साथ हवा खाने जाते। न बाहर गन्दगी थी, न मन मे मलिनता। नरेशो के कैम्प मे पराधीनता का राज्य था और अँगरेजी कैम्प मे स्वाधीनता का। स्वाधीनता सद्गुणो को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणो को।

उधर रनिवास मे भी खूब जमघट था। महिलाओ का रंग-रूप देखकर आँखो चकाचौंध हो जाती थी। रत्न और कंचन ने उनकी कान्ति को और भी अलंकृत र दिया था। कोई पारसी वेश मे थी, कोई अँगरेजी वेश मे और कोई अपने ठेठ देशी ठाट मे। युवतियाँ इधर-उधर चहकती फिरती, प्रौढ़ाएँ आँखें मटका रही। वासना उम्र के साथ बढ़ती जाती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आँखो के सामने अँगरेजी फैशनवालियाँ औरो को गँवारिनें समझती थी और गँवारिनें उन्हें र कहती थी। मजा यह था कि सभी महिलाएँ ये बातें अपनी महरियो और यों से भी कहने मे संकोच न करती थी। ऐसा मालूम होता था कि ईश्वर ने को निन्दा और परिहास के लिए ही रचा है। मन और तन मे कितना अंतर ता है, इसका कुछ अनुमान हो जाता था। मनोरमा को महिलाओं के सेवा-

सत्कार का भार सौंपा गया था; किन्तु उसे यह चरित्र देखने में विशेष आनन्द आता था। उसे उनके पास बैठने में घृणा होती थी। हाँ, जब रानी रामप्रिया को बैठे देखती, तो उनके पास जा बैठती। इतने काँच के टुकड़ों में उसे वही एक रत्न नजर आता था।

मेहमानों के आदर-सत्कारकी तो यह धूम थी और वे मजदूर, जो छाती फाड़-फाड़कर काम कर रहे थे, भूखों मरते थे। कोई उनकी खबर तक न लेता था। काम लेने को सब थे, पर भोजन के लिए पूछनेवाला कोई न था। चमार पहर रात रहे, घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खींचना शुरू करते; मगर कोई उनका पुरसाँहाल न था। चपरासी बात-बात पर उन्हें गालियाँ सुनाते; क्योंकि उन्हें खुद बात-बात पर डाँट पड़ती थी। चपरासी सहते थे; क्योंकि उन्हें दूसरों पर अपना गुस्सा उतारने का मौका मिल जाता था। बेगारों से न सहा जाता था, इसीलिए कि उनकी आँतें जलती थीं। दिन भर धूप में जलते; रात भर क्षुधा की आग में। रानी के समय में बेगार इससे भी ज्यादा ली जाती थी; लेकिन रानी को स्वयं उन्हें खिलाने-पिलाने का खयाल था। बेचारे अब उन दिनों को याद कर-करके रोते थे। क्या सोचते थे, हुआ? असंतोष बढ़ता जाता था। न जाने कब सबके सब जान पर खेल जाएँ, हड़ताल कर दें, न जाने कब बारूद में चिनगारी पड़ जाय। दशा ऐसी भयंकर हो गई थी। राजा साहब को नरेशों ही की खातिरदारी से फुरसत न मिलती थी, यह सत्य है; किन्तु राजा के लिए ऐसे बहाने शोभा नहीं देते। उसकी निगाह चारों तरफ दौड़नी चाहिए। अगर उसमें इतनी योग्यता नहीं, तो उसे राज्य करने का कोई अधिकार नहीं।

संध्या का समय था। चारों तरफ चहल-पहल मची हुई थी। तिलक का मुहूर्त निकट आ गया था। हवन की तैयारियाँ हो रही थीं। सिपाहियों को वर्दी पहनकर खड़े हो जाने की आज्ञा दे दी गई थी कि सहसा मजदूरों के बाड़े से रोने-चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। किसी कैम्प में घास न थी और ठाकुर हरिसेवक हंटर लिए चमारों को पीट रहे थे। मुंशी वज्रधर की आँखें मारे क्रोध के लाल हो रही थीं। कितना अनर्थ है! सारा दिन गुजर गया और अभी तक किसी कैम्प में घास नहीं पहुँची! चमारों का यह हौसला! ऐसे बदमाशों को गोली मार देनी चाहिए।

एक चमार बोला—मालिक, आपको अख्तियार है। मार डालिए, मुदा पेट बाँधकर काम नहीं होता।

चौधरी ने हाथ बाँधकर कहा—हुजूर, घास तो रात ही को पहुँचा दी गई थी, मैं आप जाकर रखवा आया था। हाँ, इस बेला अभी नहीं पहुँची। आधे आदमी तो माँदे पड़े हुए हैं, क्या करूँ?

मुंशी—बदमाश! झूठ बोलता है, सुअर, डैम फूल, ब्लाडी, रैस्केल, शैतान

का बच्चा, अभी पोलो खेल होगा, घोड़े बिना खाए कैसे दौड़ेंगे ?

एक युवक ने कहा—हम लोग तो बिना खाए आठ दिन से घास दे रहे हैं, घोड़े क्या बिना खाए एक दिन भी न दौड़ेंगे ? क्या हम घोड़े से भी गए-गुजरे हैं ?

चौधरी डण्डा लेकर युवक को मारने दौड़ा; पर उनके पहले ही ठाकुर साहब ने झपटकर उसे चार-पाँच हंटर सड़ाप-सड़ाप लगा दिये। नंगी देह, चमड़ा फट गया, खून निकल आया।

चौधरी ने युवक और ठाकुर साहब के बीच खड़े होकर कहा—हुजूर, क्या मार ही डालेंगे ? लड़का है, कुछ अनुचित मुँह से निकल जाय तो क्षमा करनी चाहिए। राजा को दयावान होना चाहिए।

ठाकुर साहब आपे से बाहर हो रहे थे ! एक चमार का यह हौसला कि उनके सामने मुँह खोल सके। वही हंटर तानकर चौधरी को जमाया। बूढ़ा आदमी, उस पर कई दिन का भूखा, खड़ा भी मुश्किल से हो सकता था। हण्टर पड़ते ही जमीन पर गिर पड़ा। बाड़े में हलचल पड़ गई। हजारों आदमी जमा हो गए। कितने ही चमारों ने मारे डर के खुरपी और रस्सी उठा ली थी और घास छीलने जा रहे थे। चौधरी पर हण्टर पड़ते देखा, तो रस्सी खुरपी फेंक दी और आकर चौधरी को उठाने लगे।

ठाकुर साहब ने तड़पकर कहा—तुम सब अभी एक घंटे में घास लाओ, नहीं तो एक-एक की हड्डी तोड़ दी जायगी।

एक चमार बोला—हम यहाँ काम करने आये हैं, जान देने नहीं आये हैं। एक तो भूखों मरें, दूसरे लात खाएँ। हमारा जनम इसीलिए थोड़े ही हुआ है ? जिससे चाहे काम करवाइए; हम घर जाते हैं।

ठाकुर साहब फिर हण्टर फटकार कर बोले—कहाँ भागकर जाओगे ? गाँव में घुसने भी न पाओगे। क्या सरकारी काम को हँसी-खेल समझ लिया है ?

चमार—सरकार, अपना गाँव ले लें, हम छोड़कर चले जाएँगे।

ठाकुर—खेत छीन लिए जाएँगे। घर गिरा दिये जाएँगे। इस फेर में मत रहना।

चमार—आपको अख्तियार है, जो चाहे करें। हमें अब इस राज्य में नहीं रहना है। कुछ हाथ-पाँव थोड़े ही कटाए बैठे हैं। अगर कहीं ठिकाना [illegible]गा, तो मिरिच हमरा तो है ही।

मुंशी—जिसने बाड़े के बाहर कदम रखा, उसकी शामत आई [illegible] उड़ा दूँगा।

लेकिन चमारों के सिर पर भूत सवार था। बूढ़े चौधरी को [illegible] सब एक गोल में बाड़े के द्वार की ओर चले। सिपाहियों [illegible] थी। ठाकुर साहब ने खबर भेजी और बात-की-बात में उन सबने [illegible]

द्वार रोक लिया। सभी कैम्पों में खलबली पड़ गई। तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं। किसी ने कहा—चमारों ने दीवान साहब को मार डाला। किसी ने उड़ाया—सिपाहियों ने गोली चला दी और पचास चमार जान से मारे गए। चारों तरफ से दौड़-दौड़कर लोग तमाशा देखने आने लगे। बाड़े का द्वार भेड़ों के बाड़े का द्वार बना हुआ था। भीतर भेड़ें थीं घबराई हुई, बाहर कुत्ते थे झल्लाए हुए। भेड़ें लड़ना नहीं जानतीं; पर प्राण भय से भागना जानती हैं। वे उसी रास्ते से निकलेंगी, जो आँखों के सामने है। उस पर कुत्ते हों या शेर, घबराहट में भेड़ों को कुछ नहीं सूझता। सिपाहियों को अपनी वीरता दिखाने का ऐसा अवसर क्यों कभी मिला था। निहत्थों पर हथियार चलाने से आसान और क्या है? सभी संगीन चढ़ाए तैयार थे कि हुक्म मिले और अपनी निशानेबाजी के जौहर दिखाएँ।

राजा साहब अपने खेमे में तिलक के भड़कीले-सजीले वस्त्र धारण कर रहे थे। एक आदमी उनकी पाग सँवार रहा था। इन वस्त्रों में उनकी प्रतिभा भी चमक उठी थी। वस्त्रों में तेज बढ़ाने वाली इतनी शक्ति है, इसकी उन्हें कभी कल्पना भी न थी। यह खबर सुनी, तो तिलमिला गए। वह अपनी समझ में जा के सच्चे भक्त थे, उन पर कोई अत्याचार न होने देते थे, उनको लूटना नहीं, उनका पालन करना चाहते थे। जब वह प्रजा पर इतना प्राण देते थे, तो क्या प्रजा का धर्म न था कि वह भी उन पर प्राण देती; और फिर शुभ अवसर पर! जो लोग इतने कृतघ्न हैं, उन पर किसी तरह की रियायत करना व्यर्थ है। दयालुता दो प्रकार की होती है—एक में नम्रता होती है, दूसरी में आत्म-प्रशंसा। राजासाहब की दयालुता इसी प्रकार की थी। उन्हें यश की बड़ी इच्छा थी; पर यहाँ इस शुभ अवसर पर इतने राजाओं-रईसों के सामने ये दुष्ट लोग उनका अपमान करने पर तुले हुए थे। यह उन पाजियों की घोर नीचता थी और इसका जवाब इसके सिवा और कुछ नहीं था कि उन्हें खूब कुचल दिया जाता। सच है, सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है। मैं जितना ही इन लोगों को संतुष्ट रखना चाहता हूँ, उतने ही ये लोग शेर हो जाते हैं। चलकर अभी उन्हें इसका मजा चखाता हूँ। क्रोध से बावले होकर वह अपनी बन्दूक लिए खेमे से निकल आये और कई आदमियों के साथ बाड़े के द्वार पर जा पहुँचे।

चौधरी इतनी देर में झाड़-पोंछकर उठ बैठा था। राजा को देखते ही रोकर बोला—दुहाई है महाराज की! सरकार, बड़ा अन्धेर हो रहा है। गरीब लोग मारे जाते हैं।

राजा—तुम सब पहले बाड़े के द्वार से हट जाओ, फिर जो कुछ कहना है, मुझसे कहो। अगर किसी ने बाड़े के बाहर पाँव रखा, तो जान से मारा जायगा। दंगा किया तो तुम्हारी जान की खैरियत नहीं।

चौधरी—सरकार ने हमको काम करने के लिए बुलाया है कि जान लेने के लिए?

राजा—काम न करोगे, तो जान भी जायगी।

चौधरी—काम तो आपका करें, खाने किसके घर जायँ ?

राजा—क्या बेहूदा बातें करता है, चुप रहो। तुम सबके-सब मुझे बदनाम करना चाहते हो। हमेशा से लात खाते चले आये हो और वही तुम्हें अच्छा लगता है। मैंने तुम्हारे साथ भलमनसी का बर्ताव करना चाहा था; लेकिन मालूम हो गया कि लातों के देवता बातों से नहीं मानते। तुम नीच हो और नीच लातों के बगैर सीधा नहीं होता। तुम्हारी यही मरजी है, तो यही सही।

चौधरी—जब लात खाते थे, तब खाते थे, अब न खाएँगे।

राजा—क्यों ? अब कौन सुरखाब के पर लग गए हैं ?

चौधरी—वह समय ही लद गया है। क्या अब हमारी पीठ पर कोई नहीं कि मार खाते रहें और मुँह न खोलें ? अब तो सेवा समिती हमारी पीठ पर है। क्या वह कुछ भी न्याय न करेगी ? हमारी राय से मेम्बर चुने जाते हैं, क्या कोई हमारी फरियाद न सुनेगा ?

राजा—अच्छा ? तो तुम्हें सेवा-समितिवालों का घमण्ड है ?

चौधरी—हुई है, वह हमारी रक्षा करती है, तो क्यों न उसका घमण्ड करें ?

राजा साहब ओंठ चबाने लगे—तो यह समितिवालों की कारस्तानी है। चक्रधर मेरे साथ कपट चाल चल रहे हैं, लाला चक्रधर ? जिसका बाप मेरी खुशामद की रोटियाँ खाता है। जिसे मित्र समझता था, वही आस्तीन का साँप निकला। देखता हूँ, वह मेरा क्या कर लेता है। एक रुक्का बड़े साहब के नाम लिख दूँ, तो बचा के होश ठीक हो जायँ। इन मूर्खों के सिर से यह घमंड निकाल ही देना चाहिए। यह उद्दंड कीड़े फैल गए तो आफत मचा देंगे।

चौधरी तो ये बातें कर रहा था, उधर बाड़े में घोर कोलाहल मचा हुआ था। सरकारी आदमियों की सूरत देखकर जिनके प्राण-पखेरू उड़ जाते थे, वे इस समय निःशंक और निर्भय बन्दूकों के सामने मरने को तैयार खड़े थे। द्वार से निकलने का रास्ता न पाकर कुछ आदमियों ने बाड़े की लकड़ियाँ और रस्सियाँ काट डालीं और हजारों आदमी उधर से भरभराकर निकल पड़े, मानो कोई उमड़ी हुई नदी बाँध तोड़कर निकल पड़े। उसी वक्त एक ओर सशस्त्र पुलिस के जवान और दूसरी ओर से चक्रधर, समिति के कई युवकों के साथ आते हुए दिखाई दिए। चक्रधर ने निश्चय कर लिया था कि राजा साहब के आदमियों को उनके हाल पर छोड़ देंगे लेकिन यहाँ की खबरें सुन-सुनकर उनके कलेजे पर साँप-सा लोटता रहता था। ऐसे नाजुक मौके पर खड़े होकर तमाशा देखना उन्हें लज्जा मालूम होता था ! अब तक तो दूर ही से आदमियों को दिलासा देते रहे; आज की खबरों ने उन्हें आने के लिए मजबूर कर दिया।

उन्हें देखते ही हड़तालियों में जान सी पड़ गई, जैसे अबोध बालक अपनी माता को देखकर शेर हो जाए। हजारों आदमियों ने घेर लिया।

'भैया आ गए! भैया आ गए!' की ध्वनि से आकाश गूंज उठा।

चक्रधर को यहाँ की स्थिति उससे कहीं भयानक जान पड़ी, जितना उन्होंने समझा था। राजा साहब को यह जिद कि कोई आदमी यहाँ से जाने न पाए। आदमियों को यह जिद कि अब हम यहाँ एक क्षण भी न रहेंगे। सशस्त्र पुलिस सामने तैयार। सबसे बड़ी बात यह कि मुंशी वज्रधर खुद एक बन्दूक लिए पैंतरे बदल रहे थे, मानो सारे आदमियों को कच्चा ही खाएँगे।

चक्रधर ने ऊँची आवाज से कहा—क्यों भाइयो, तुम मुझे अपना मित्र समझते हो या शत्रु?

चौधरी—भैया, यह भी कोई पूछने की बात है। तुम हमारे मालिक हो, स्वामी हो, सहाय हो! क्या आज तुम्हें पहली ही बार देखा है?

चक्रधर—तो तुम्हें विश्वास है कि मैं जो कुछ कहूँगा और करूँगा, वह तुम्हारे ही भले के लिए होगा?

चौधरी—मालिक, तुम्हारे ऊपर विश्वास न करेंगे, तो और किस पर करेंगे? लेकिन इतना समझ लीजिए कि हम और सब कर सकते हैं, यहाँ नहीं रह सकते। यह देखिए (पीठ दिखाकर), कोड़े खाकर यहाँ किसी तरह न रहूँगा।

चक्रधर इस भीड़ से निकलकर सीधे राजा साहब के पास आए और बोले—महाराज, मैं आपसे कुछ विनय करना चाहता हूँ।

राजा साहब ने त्योरियाँ बदलकर कहा—मैं इस वक्त कुछ नहीं सुनना चाहता।

चक्रधर—आप कुछ न सुनेंगे, तो पछताएँगे।

राजा—मैं इन सबों को गोली मार दूंगा।

चक्रधर—दीन प्रजा के रक्त से राजतिलक लगाना किसी राजा के लिए मंगलकारी नहीं हो सकता। प्रजा का आशीर्वाद ही राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। मैं आपका सेवक हूँ, आपका शुभचिन्तक हूँ, इसीलिए आपकी सेवा में आया हूँ। मुझे मालूम है कि आपके हृदय में कितनी दया है और प्रजा से आपको कितना स्नेह है। यह सारा तूफान अयोग्य कर्मचारियों का खड़ा किया हुआ है। उन्हीं के कारण आज आप उन लोगों के रक्त के प्यासे बन गए हैं, जो आपकी दया और कृपा के प्यासे हैं। ये सभी आदमी इस वक्त झल्लाए हुए हैं। गोली चलाकर आप उनके प्राण ले सकते हैं; लेकिन उनका रक्त केवल इसी बाड़े में न सूखेगा, यह सारा विस्तृत कैम्प उस रक्त से सिंच जाएगा; उसकी लहरों के झोंके से यह विशाल मण्डप उखड़ जाएगा और यह आकाश में फहराती हुई ध्वजा भूमि पर गिर पड़ेगी। अभिषेक का दिन दान और दया का है, रक्तपात का नहीं। इस शुभ अवसर पर एक हत्या भी हुई, तो वह सहस्रों रूप धारण करके

ऐसा भयंकर अभिनय दिखाएगी कि सारी रियासत में हाहाकार मच जाएगा।

राजा साहब अपनी टेक पर अड़ना जानते थे; किन्तु इस समय उनका दिल काँप उठा। वही प्राणी, जो दिन भर गालियाँ बकता था, प्रातःकाल कोई मिथ्या शब्द मुँह से नहीं निकलने देता। वही दूकानदार, जो दिन भर टेनी मारता है, प्रातःकाल ग्राहक से मेलजोल तक नहीं करता। शुभ मुहूर्त पर हमारी मनोवृत्तियाँ धार्मिक हो जाती हैं। राजा साहब कुछ नरम होकर बोले —मैं खुद नहीं चाहता कि मेरी तरफ से किसी पर अत्याचार किया जाए; लेकिन इसके साथ ही यह भी नहीं चाहता कि प्रजा मेरे सिर पर चढ़ जाए। इन लोगों को अगर कोई शिकायत थी, तो इन्हें आकर मुझसे कहना चाहिए था। अगर मैं न सुनता, तो इन्हें अख्तियार था, जो चाहते करते; पर मुझसे न कहकर इन लोगों ने हेकड़ी करनी शुरू की, रात घोड़ों को घास नहीं दी और इस वक्त भागे जाते हैं। मैं यह घोर अपमान नहीं सह सकता।

चक्रधर—आपने इन लोगों को अपने पास आने का अवसर कब दिया? आपके द्वारपाल इन्हें दूर ही से भगा देते थे। आपको मालूम है कि इन गरीबों को एक सप्ताह से कुछ भोजन नहीं मिला?

राजा—एक सप्ताह से भोजन नहीं मिला! यह आप क्या कहते हैं? मैंने सख्त ताकीद कर दी थी कि हर एक मजदूर को इच्छापूर्ण भोजन दिया जाए। क्यों दीवान साहब, क्या बात है?

हरिसेवक—धर्मावतार, आप इन महाशय की बातों में न आइए। यह सारी आग इन्हीं की लगाई हुई है। प्रजा को बहकाना और भड़काना इन लोगों ने अपना धर्म बना रखा है। यहाँ से हर एक आदमी को दोनों वक्त भोजन दिया जाता था।

मुंशी—दीनबन्धु, यह लड़का बिलकुल नासमझ है। दूसरों ने जो कुछ कह दिया उसे सच समझ लेता है। तुमसे किसने कहा बेटा कि आदमियों को भोजन नहीं मिलता था? भण्डारी तो मैं हूँ, मेरे सामने जिन्स तौली जाती थी। मैं पूछ-पूछकर देता था। बारातियों की भी कोई इतनी खातिर न करता होगा। इतनी बात भी न जानता, तो तहसीलदारी क्या खाक करता?

राजा—मैं इसकी पूछताछ करूँगा।

हरिसेवक—हुजूर, इन्हीं लोगों ने आदमियों को उभारकर सरकश बना दिया है। ये लोग सबसे कहते फिरते हैं कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों को बराबर-बराबर बनाया है, किसी को तुम्हारे ऊपर राज्य करने का अधिकार नहीं है, किसी को तुमसे बेगार लेने का अधिकार नहीं। प्रजा ऐसी बातें सुन-सुनकर ... हो गई है।

राजा—इन बातों में तो मुझे बुराई नहीं नजर आती। मैं खुद प्रज... बातें कहना चाहता हूँ।

रिसेवक—हुजूर, ये लोग कहते हैं, जमीन के मालिक तुम हो। जो जमीन
उगाए, वही उसका मालिक है। राजा तो तुम्हारा गुलाम है।

राजा—बहुत ठीक कहते हैं। इसमें मुझे तो बिगड़ने की कोई बात नहीं
होती। वास्तव में प्रजा का गुलाम हूँ; बल्कि उसके गुलाम का गुलाम हूँ।

हरिसेवक—हुजूर, इन लोगों की बातें कहाँ तक कहूँ। कहते हैं, राजा को
बड़े महल में रहने का कोई हक नहीं। उसका संसार में कोई काम नहीं।

राजा—बहुत ही ठीक कहते हैं। आखिर मैं पड़े-पड़े खाने के सिवा और क्या
ता हूँ।

चक्रधर ने झुँझलाकर कहा—ठाकुर साहब, आप मेरे स्वामी हैं, लेकिन
मा कीजिए, आप मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं। मैंने प्रजा को उनके अधि-
कार अवश्य समझाए हैं; लेकिन यह कभी नहीं कहा कि राजा को संसार में रहने
का कोई हक नहीं; क्योंकि मैं जानता हूँ, जिस दिन राजाओं की जरूरत न रहेगी,
दिन उनका अन्त हो जाएगा। देश में उसी की राज्य व्यवस्था होती है,
सका अधिकार होता है।

राजा—मैं तो बुरा नहीं मानता, जरा भी नहीं। आपने कोई ऐसी बात नहीं
कही, जो और लोग न कहते हों। वास्तव में जो राजा के प्रति अपने कर्तव्य का
पालन न करे उसका जीना व्यर्थ है।

चक्रधर को मालूम हुआ कि राजा साहब मुझे बना रहे हैं। यह अवसर
मजाक का न था। हजारों आदमी साँस बन्द किए हुए सुन रहे थे कि ये लोग क्या
फैसला करते हैं और यहाँ इन लोगों को मजाक सूझ रहा है। गरम होकर बोले—
अगर आपके ये भाव सच्चे होते, तो प्रजा पर यह विपत्ति ही न आती। राजाओं
की यह पुरानी नीति है कि प्रजा का मन मीठी-मीठी बातों से भरें और अपने
कर्मचारियों को मनमाने अत्याचार करने दें। वह राजा जिसके कानों तक प्रजा
की पुकार न पहुँचने पाए, आदर्श नहीं कहा जा सकता।

राजा—किसी तरह नहीं। उसे गोली मार देनी चाहिए। जीता चुनवा देना
चाहिए। प्रजा का गुलाम है कि दिल्लगी है।

चक्रधर यह व्यंग्य न सह सके। उनकी स्वाभाविक सहन शक्ति ने उनका
साथ छोड़ दिया। चेहरा तमतमा उठा। बोले—जिस आदर्श के सामने आपको
सर झुकाना चाहिए, उसका मजाक उड़ाना आपको शोभा नहीं देता। समाज व
यह व्यवस्था अब थोड़े दिनों की मेहमान है और वह समय आ रहा है, जब या
राजा प्रजा का सेवक होगा या होगा ही नहीं। मैंने कभी यह अनुमान न किया
कि आपके वचन और कर्म में इतनी जल्दी इतना बड़ा भेद हो जाएगा।

क्रोध ने अब अपना यथार्थ रूप धारण किया। राजा साहब अभी तक
व्यंग्यों से चक्रधर को परास्त करना चाहते थे; लेकिन जब चक्रधर के वार
स्थल पर पड़ने लगे, तो उन्हें भी अपने शस्त्र निकालने पड़े। डपटकर बो

चक्रधर—तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उन्हें यहाँ से हटा ले जाऊँ।

यह कहकर चक्रधर मजदूरों की ओर चले। राजा साहब जानते थे कि इनका इशारा पाते ही सारे मजदूर हवा हो जायँगे, फिर सशस्त्र सेना भी उन्हें न रोक सकेगी। तिलमिलाकर बन्दूक लिये हुए चक्रधर के पीछे दौड़े और ऐसे जोर से उन पर कुन्दा चलाया कि सिर पर लगता तो शायद वहीं ठण्डे हो जाते। मगर कुशल हुई। कुन्दा पीठ में लगा और उसके झोंके से चक्रधर कई हाथ पर जा गिरे। उनका जमीन पर गिरना था कि पाँच हजार आदमी बाड़े को तोड़कर, सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैंप की ओर चले। रास्ते में जो कर्मचारी मिला, उसे पीटा। मालूम होता था, कैम्प में लूट मच गई है। दूकानदार अपनी दूकानें समेटने लगे। दर्शकगण अपनी धोतियाँ सँभालकर भागने लगे। चारों तरफ भगदड़ पड़ गई। जितने बेफिके, शोहदे, लुच्चे तमाशा देखने आये थे, वे सब उपद्रवकारियों में मिल गए। यहाँ तक कि नरेशों के कैम्प तक पहुँचते पहुँचते उनकी संख्या दूनी हो गई।

राजा-रईस अपनी वासनाओं के सिवा और किसी के गुलाम नहीं होते। वक्त की गुलामी भी उन्हें पसन्द नहीं। वे किसी नियम को अपनी स्वेच्छा में बाधा नहीं डालने देते। फिर उनको इसकी क्या परवाह कि सुबह है या शाम। कोई मीठी नींद के मजे लेता था, कोई गाना सुनता था, कोई स्नान-ध्यान में मग्न था और कुछ लोग तिलक मंडप जाने की तैयारियाँ कर रहे थे, कहीं भंग घुटती थी, कहीं कवित्त-चर्चा हो रही थी और कहीं नाच हो रहा था। कोई नाश्ता कर रहा था और कोई लेटा नौकरों से चम्पी करा रहा था। उत्तरदायित्वहीन स्वतन्त्रता अपनी विविध लीलाएँ दिखा रही थी। अगर उपद्रवी इस कैम्प में पहुँच जाते, तो महाअनर्थ हो जाता। न जाने कितने राजवंशों का अन्त हो जाता। किन्तु राजाओं की रक्षा उनका इकबाल करता है! अँग्रेजी कैम्प में 10-12 आदमी अभी शिकार खेलकर लौटे थे। उन्होंने जो यह हंगामा सुना, तो बाहर निकल आये और जनता पर अन्धाधुन्ध बन्दूकें छोड़ने लगे। पहले तो उत्तेजित जनता ने बंदूकों की परवा न की, उसे अपनी संख्या का बल था। लोग सोचते थे, मरते-मरते हममें से इतने आदमी कैम्प में पहुँच जायँगे कि नरेशों को कहीं भागने की भी जगह न मिलेगी। हम सारे प्रान्त को इन अत्याचारियों से मुक्त कर देंगे! ये सब भी तो अपनी प्रजा पर ऐसा ही अत्याचार करते होंगे।

जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो ज ती है।

गोलियों की पहली बाढ़ आयी। कई आदमी गिर गए।

चौधरी—देखो भाई, घबराना नहीं। जो गिरता है, उसे गिरने दो; आज ही तो दिल के हौसले भी निकले हैं। जय हनुमानजी की!

एक मजदूर—बढ़े आओ, बढ़े आओ, अब मार लिया है। आज ही तो…

उसके मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि गोलियों की दूसरी बाढ़ आयी और कई आदमियों के साथ दोनों नेताओं का काम तमाम कर गई। एक क्षण के लिए सबके पैर रुक गए। जो जहाँ था, वहीं खड़ा रह गया। समस्या थी कि आगे जायें या पीछे? सहसा एक युवक ने कहा—मारो, रुक क्यों गए? सामने पहुँचकर हिम्मत छोड़ देते हो! बढ़े चलो। जय दुर्गामाई की!

दूसरा बोला—आज जो मरेगा, वह बैकुण्ठ में जायगा। बोलो हनुमान जी की जय।.........

उसे भी गोली लगी और चक्कर खाकर गिर पड़ा।

इतने में दीवान साहब बन्दूक लिए पीछे दौड़ते हुए आ पहुँचे। गुरुसेवक भी उनके साथ थे। दोनों एक दूसरे रास्ते से कैम्प के द्वार पर पहुँच गए थे।

हरिसेवक—तुम मेरे पीछे खड़े हो जाओ और यहीं से निशाना लगाओ।

गुरुसेवक—अभी फैर न कीजिए। मैं जरा इन्हें समझा लूँ। समझाने से काम निकल जाय, तो रक्त क्यों बहाया जाय?

हरिसेवक—अब समझाने का मौका नहीं है। अभी दम के दम में सबके सब अंदर घुस आएँगे, तो प्रलय हो जायगी।

किन्तु गुरुसेवक के हृदय में दया थी। पिता की बात मानकर वह सामने आ गए और ललकारकर बोले—तुम लोग यहाँ क्यों आ रहे हो? यह न समझो कि तुम कैम्प के द्वार पर पहुँच गए हो। यहाँ आते-आते तुम आधे हो जाओगे।

एक मजदूर—कोई चिन्ता नहीं। मर-मरकर जीने से एक बार मर जाना अच्छा है। मारो, आगे बढ़ो, क्या हिम्मत छोड़ देते हो?

गुरुसेवक—आगे एक कदम भी रखा और गिरे! यह समझ लो कि तुम्हारे आगे मौत खड़ी है।

मजदूर—हम आज मरने लिए कमर बाँधकर ·

अंगरेजी कैम्प से फिर गोलियों की बाढ़ आई और कई आदमियों के साथ यह आदमी भी गिर गया, और उसके गिरते ही सारे समूह में खलबली पड़ गई। अभी तक इन लोगों को न मालूम था कि गोलियाँ किधर से आ रही हैं। समझ रहे थे कि इसी कैम्प से आती होंगी। अब शिकारी बढ़ आये थे और साफ नजर आ रहे थे।

एक चमार बोला—साहब लोग गोली चला रहे हैं।

दूसरा—गोरों की फौज है फौज।

तीसरा—चलो उन्हीं सबों को पकड़ें? मुर्गी के अंडे खा-खाकर खूब मोटाए हुए हैं।

चौथा—यही सब तो राजाओं को बिगाड़े हुए हैं। दो शिकार भी मिल गए, तो मेहनत सफल हो जायगी।

लेकिन कायरों की हिम्मत टूटने लगी थी। लोग चुपके-चु

चक्रधर—तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उन्हें यहाँ से हटा ले जाऊँ।

यह कहकर चक्रधर मजदूरों की ओर चले। राजा साहब जानते थे कि इनका इशारा पाते ही सारे मजदूर हवा हो जायेंगे, फिर सशस्त्र सेना भी उन्हें न रोक सकेगी। तिलमिलाकर बन्दूक लिये हुए चक्रधर के पीछे दौड़े और ऐसे जोर से उन पर कुन्दा चलाया कि सिर पर लगता तो शायद वहीं ठण्डे हो जाते। मगर कुशल हुई। कुन्दा पीठ में लगा और उसके झोंके से चक्रधर कई हाथ पर जा गिरे। उनका जमीन पर गिरना था कि पाँच हजार आदमी बाड़े को तोड़कर, सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैंप की ओर चले। रास्ते में जो कर्मचारी मिला, उसे पीटा। मालूम होता था, कैंप में लूट मच गई है। दूकानदार अपनी दूकानें समेटने लगे। दर्शकगण अपनी पोतियाँ सँभालकर भागने लगे। चारों तरफ भगदड़ पड़ गई। जितने बेफिक्रे, शोहदे, लुच्चे तमाशा देखने आये थे, वे सब उपद्रवकारियों में मिल गए। यहाँ तक कि नरेशों के कैंप तक पहुँचते पहुँचते उनकी संख्या दूनी हो गई।

राजा-रईस अपनी वासनाओं के सिवा और किसी के गुलाम नहीं होते। वक्त की गुलामी भी उन्हें पसन्द नहीं। वे किसी नियम को अपनी स्वेच्छा में बाधा नहीं डालने देते। फिर उनको इसकी क्या परवाह कि सुबह है या शाम। कोई मीठी नींद के मजे लेता था, कोई गाना सुनता था, कोई स्नान-ध्यान में मग्न था और कुछ लोग तिलक मंडप जाने की तैयारियाँ कर रहे थे, कहीं भंग घुटती थी, कहीं कवित्त-चर्चा हो रही थी और कहीं नाच हो रहा था। कोई नाश्ता कर रहा था और कोई लेटा नौकरों से चम्पी करा रहा था। उत्तरदायित्वहीन स्वतन्त्रता अपनी विविध लीलाएँ दिखा रही थी। अगर उपद्रवी इस कैम्प में पहुँच जाते, तो महाअनर्थ हो जाता। न जाने कितने राजवंशों का अन्त हो जाता। किन्तु राजाओं की रक्षा उनका इकबाल करता है! अँग्रेजी कैम्प में 10-12 आदमी अभी शिकार खेलकर लौटे थे। उन्होंने जो यह हंगामा सुना, तो बाहर निकल आये और जनता पर अन्धाधुन्ध बन्दूकें छोड़ने लगे। पहले तो उत्तेजित जनता ने बंदूकों की परवा न की, उसे अपनी सख्या का बल था। लोग सोचते थे, मरते-मरते हममें से इतने आदमी कैम्प में पहुँच जायँगे कि नरेशों को कहीं भागने की भी जगह न मिलेगी। हम सारे प्रान्त को इन अत्याचारियों से मुक्त कर देंगे! ये सब भी तो अपनी प्रजा पर ऐसा ही अत्याचार करते होंगे।

जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो ज ती है।

गोलियों की पहली बाढ़ आयी। कई आदमी गिर गए।

चौधरी—देखो भाई, घबराना नहीं। जो गिरता है, उसे गिरने दो; आज ही तो दिल के हौसले भी निकले हैं। जय हनुमानजी की!

एक मजदूर—बढ़े आओ, बढ़े आओ, अब मार लिया है। आज ही तो…

उसके मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि गोलियों की दूसरी बाढ़ आयी और कई आदमियों के साथ दोनों नेताओं का काम तमाम कर गई। एक क्षण के लिए सबके पैर रुक गए। जो जहाँ था, वहीं खड़ा रह गया। समस्या थी कि आगे जायें या पीछे? सहसा एक युवक ने कहा—मारो, रुक क्यों गए? सामने पहुँचकर हिम्मत छोड़ देते हो! बढ़े चलो। जय दुर्गामाई की!

दूसरा बोला - आज जो मरेगा, वह बैकुण्ठ में जायगा। बोलो हनुमान जी की जय!.........

उसे भी गोली लगी और चक्कर खाकर गिर पड़ा।

इतने में दीवान साहब बन्दूक लिए पीछे दौड़ते हुए आ पहुँचे। गुरुसेवक भी उनके साथ थे। दोनों एक दूसरे रास्ते से कैम्प के द्वार पर पहुँच गए थे।

हरिसेवक—तुम मेरे पीछे खड़े हो जाओ और यहीं से निशाना लगाओ।

गुरुसेवक—अभी फ़ैर न कीजिए। मैं जरा इन्हें समझा लूँ। समझाने से काम निकल जाय, तो रक्त क्यों बहाया जाय?

हरिसेवक—अब समझाने का मौका नहीं है। अभी दम के दम में सबके सब अंदर घुस आएँगे, तो प्रलय हो जायगी।

किन्तु गुरुसेवक के हृदय में दया थी। पिता की बात मानकर वह सामने आ गए और ललकारकर बोले—तुम लोग यहाँ क्यों आ रहे हो? यह न समझो कि तुम कैम्प के द्वार पर पहुँच गए हो। यहाँ आते-आते तुम आधे हो जाओगे।

एक मजदूर—कोई चिन्ता नहीं। मर-मरकर जीने से एक बार मर जाना अच्छा है। मारो, आगे बढ़ो, क्या हिम्मत छोड़ देते हो?

गुरुसेवक—आगे एक कदम भी रखा और गिरे! यह समझ लो कि तुम्हारे आगे मौत खड़ी है।

मजदूर—हम आज मरने लिए कमर बाँधकर ·

अंगरेजी कैम्प से फिर गोलियों की बाढ़ आई और कई आदमियों के साथ यह आदमी भी गिर गया, और उसके गिरते ही सारे समूह में खलबली पड़ गई। अभी तक इन लोगों को न मालूम था कि गोलियाँ किधर से आ रही हैं। समझ रहे थे कि इसी कैम्प से आती होंगी। अब शिकारी बढ़ आये थे और साफ नजर आ रहे थे।

एक चमार बोला—साहब लोग गोली चला रहे हैं।

दूसरा—गोरों की फौज है फौज।

तीसरा—चलो उन्हीं सबों को घेरें? मुर्गी के अंडे खा-खाकर खूब मोटाए हुए हैं।

चौथा—यही सब तो राजाओं को बिगाड़े हुए हैं। दो शिकार भी मिल गए, तो मेहनत सफल हो जायगी।

लेकिन कायरों की हिम्मत टूटने लगी थी। लोग चुपके-चुपके दायें-बायें से

रकने लगे थे।यहाँ प्राण देने से बाजार में लूट मचाना कहीं आसान था। देखते-खते पीछे के सभी आदमी खिसक गए। केवल आगे के लोग खड़े रह गए थे। न्हें क्या खबर थी कि पीछे क्या हो रहा है। वे अँगरेजों के कैम्प की तरफ मुड़े मौर एक ही हल्ले में अँगरेजी कैम्प के फाटक तक आ पहुँचे। अब तो यहाँ भी भगदड़ पड़ी। एक ओर नरेशों के कैम्प से मोटरें निकल-निकलकर पीछे की ओर से दौड़ती चली आ रही थीं। इधर अँगरेजी कैम्प से मोटरों का निकलना शुरू हुआ। एक क्षण में सारी लेडियाँ गायब हो गईं। मर्दों में भी आधे से ज्यादा निकल भागे। केवल वही लोग रह गए, जो मोरचे पर खड़े थे और जिनके लिए भागना मौत के मुँह में जाना था; मगर उन सबों के हाथों में मार्टिन और मांजर के यन्त्र थे। इधर ईश्वर की दी हुई लाठियाँ थीं; या जमीन से चुने हुए पत्थर। यद्यपि हड़तालियों का दल एक ही हल्ले में फाटक तक पहुँच गया; पर यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कोई बीस आदमी गिर पड़े। अगर इस वक्त 50 गज के अन्तर ।र भी इतने आदमी गिरे होते, तो शायद सबके पैर उखड़ जाते लेकिन यह विश्वास कि अब मार लिया है, उनके हौसले बढ़ाए हुए था। विजय के सम्मुख पहुँचकर कायर भी वीर हो जाते हैं, घर के समीप पहुँचकर थके हुए पथिक के पैरों में भी पर लग जाते हैं।

इन मनुष्यों के मुख पर इस समय हिंसा झलक रही थी। चेहरे विकृत हो गए थे। जिसने इन्हें इस दशा में न देखा हो, यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि वही दीनता के पुतले हैं, जिन्हें एक काठ की पुतली भी चाहे जो नाच नचा सकती थी। अँगरेज योद्धा अभी तक तो मोरचे पर खड़े बन्दूकें छोड़ रहे थे; लेकिन इस भयंकर दल को सामने देखकर उनके औसान जाते रहे। दो-चार तो भागे, दो-तीन मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। केवल पाँच फौजी अफसर अपनी जगह पर डटे रहे। उन्हें बचने की कोई आशा न थी और इसी निराशा ने उन्हें अदम्य साहस प्रदान कर दिया था। वे जान पर खेले हुए थे! क्षण-क्षण पर बन्दूकें चलाते थे; मानो बन्दूक की कलें हों। जो आगे बढ़ता था, उनके अचूक निशाने का शिकार हो जाता था। इधर ढेले और पत्थरों की वर्षा हो रही थी, जो फाटक तक मुश्किल से पहुँचती थी। अब सामने पहुँचकर लोगों ने आगे बढ़कर पत्थर चलाने शुरू किए यहाँ तक कि अंगरेज चोट खाकर गिर पड़े। एक का सिर फट गया था; दूसरे क बाँह टूट गई थी। केवल तीन आदमी रह गए, और वही इन आदमियों को रो रखने के लिए काफी थे। लेकिन उनके पास भी कारतूस न रह गए थे। कठि समस्या थी। प्राण बचने की कोई आशा नहीं। भागने की कल्पना ही से उ घृणा होती थी। जिन मनुष्यों को हमेशा पैरों से ठुकराया किए, जिन्हें कुली व और कुत्तों से भी नीच समझते रहे, उनके सामने पीठ दिखाना ऐसा अपमान जिसे वे किसी तरह न सह सकते थे। इधर हड़तालियों के हौसले बढ़ते जाते

शिकार, अब बेदम होकर गिरना चाहता था। हिंसा के मुँह से लार टपक रही थी।

एक आदमी ने कहा—हाँ बहादुरो, बस एक हल्ले की और कसर है; घुस पड़ो। अब कहाँ जाते हैं।

दूसरा बोला—फाँसी तो पड़ेंगे ही, अब क्यों छोड़ें?

सहसा एक आदमी पीछे से भीड़ को चीरता, बेतहाशा दौड़ा हुआ आकर बोला—बस, बस, क्या करते हो! ईश्वर के लिए हाथ रोको! क्या गजब करते हो! लोगों ने चकित होकर देखा, तो चक्रधर थे। सैकड़ों आदमी उन्मत्त होकर उनकी ओर दौड़े और उन्हें घेर लिया। जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूँजने लगा।

एक मजदूर ने कहा—हमें अपने एक सौ भाइयों के खून का बदला लेना है।

चक्रधर ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा—कोई एक कदम आगे न बढ़े। खबरदार!

मजदूर—मारो, बस एक हल्ला और!

चक्रधर—हम फिर कहते हैं, अब एक कदम भी आगे न उठे।

जिले के मैजिस्ट्रेट मिस्टर जिम ने कहा—बाबू साहब, खुदा के लिए हमें बचाइए।

फौज के कप्तान मिस्टर सिम बोले—हम हमेशा आपको दुआ देगा। हम सरकार से आपका सिफारिश करेगा।

एक मजदूर—हमारे एक सौ जवान भून डाले, तब आप कहाँ थे? मारो क्या खड़े हो, बाबूजी का क्या बिगड़ा है? मारे तो हम गए हैं न? मारो बढ़के।

चक्रधर ने उपद्रवियों के सामने खड़े होकर कहा—अगर तुम्हें खून की प्यास है, तो मैं हाजिर हूँ। मेरी लाश को पैरों से कुचलकर तुम आगे बढ़ सकते हो।

मजदूर—भैया, हट जाओ, हमने बहुत मार खाई है, बहुत सताए गए हैं, इस वक्त दिल की आग बुझा लेने दो!

चक्रधर—मेरा लहू इस ज्वाला को शान्त करने के लिए काफी नहीं है?

मजदूर—भैया, तुम सान्त-सान्त बका करते हो; लेकिन उसका फल क्या होता है। हमें जो चाहता है, मारता है; जो चाहता है, पीसता है, तो क्या हमीं सान्त बैठे रहें? सान्त रहने से तो और भी हमारी दुरगत होती है। हमें सान्त रहना मत सिखाओ। हमें मारना सिखाओ, तभी हमारा उद्धार कर सकोगे।

चक्रधर—अगर अपनी आत्मा की हत्या करके हमारा उद्धार भी होता है, तो हम आत्मा की हत्या न करेंगे। संसार को मनुष्य ने नहीं बनाया है, ईश्वर ने बनाया है। भगवान् ने उद्धार के जो उपाय बताए हैं; उनसे काम लो और ईश्वर पर भरोसा रखो।

मजदूर—हमारी फाँसी तो हो ही जायगी। तुम माफी तो न दिला सकोगे।

मिस्टर जिम—हम किसी को सजा न देंगे।

मिस्टर सिम—हम सबको इनाम दिलाएगा।

चक्रधर—इनाम मिले या फाँसी, इसकी क्या परवा। अभी तक तुम्हारा दामन खून के छींटों से पाक है; उसे पाक रखो। ईश्वर की निगाह में तुम निर्दोष हो। अब अपने को कलंकित मत करो, जाओ।

मजदूर—अपने भाइयों का खून कभी हमारे सिर से न उतरेगा; लेकिन तुम्हारी यही मरजी है, तो लौट जाते हैं। आखिर फाँसी पर तो चढ़ना ही है।

चक्रधर कुन्दे की चोट से कुछ देर तक तो अचेत पड़े रहे थे। जब होश आया, तो देखा कि दाहिनी ओर हड़तालियों का एक दल अँगरेजी कैम्प के द्वार पर खड़ा है, बायीं ओर बाजार लुट रहा है और सशस्त्र पुलिस के सिपाही हड़तालियों के साथ मिले हुए दुकानें लूट रहे हैं और विशाल तिलक-मण्डप से अग्नि की ज्वाला उठ रही है। वह उठे और अंगरेजी कैम्प की ओर भागे। वहीं उनके पहुँचने की सबसे ज्यादा जरूरत थी। बाजार में रक्तपात का भय न था। रक्षक स्वयं लुटेरे बने हुए थे। उन्हें लूट से कहाँ फुरसत थी कि हड़तालियों का शिकार करते? अँगरेजी कैम्प में ही स्थिति सबसे भयावह थी। इस नाजुक मौके पर वह न पहुँच जाते, तो किसी अँगरेज की जान न बचती, सारा कैम्प लुट जाता और खेमे राख के ढेर हो जाते। हड़तालियों की रक्षा करनी तो उन्हें बदी न थी; लेकिन विदेशियों को उन्होंने मौत के मुँह से निकाल लिया। एक क्षण में सारा कैम्प साफ हो गया। एक भी मजदूर न रह गया।

इन आदमियों के जाते ही वे लोग भी इनके साथ हो लिए; जो पहले लूट के लालच से चले आए थे। जिस तरह पानी आ जाने से कोई मेला उठ जाता है, ग्राहक, दुकानदार और दुकानें सब न जाने कहाँ लुप्त हो जाती हैं, उसी भाँति एक क्षण में सारे कैम्प में सन्नाटा छा गया। केवल तिलक-मण्डप से अभी तक आग की ज्वाला निकल रही थी। राजा साहब और उनके साथ के कुछ गिने-गिनाए आदमी उसके सामने चुपचाप खड़े मानो किसी मृतक की दाह-क्रिया कर रहे हों। बाजार लुटा, गोलियाँ चलीं, आदमी मक्खियों की तरह मारे गए; पर राजा मण्डप के सामने ही खड़े रहे। उन्हें अपनी सारी मनोकामनाएँ, अग्नि राशि में भस्म होती हुई मालूम होती थीं।

अँधेरा छा गया था। घायलों के कराहने की आवाजें आ रही थीं। चक्रधर और उनके साथ के युवक उन्हें सावधानी से उठा-उठाकर एक वृक्ष के नीचे जमा कर रहे थे। कई आदमी तो उठाते-ही-उठाते सुरलोक सिधारे। कुछ सेवक उन्हें ले जाने की फिक्र करने लगे। कुछ लोग शेष घायलों की देख-भाल में लगे। रियासत का डाक्टर सज्जन मनुष्य था। यहाँ से सन्देश जाते ही आ पहुँचा। उसकी सहायता ने बड़ा काम किया। आकाश पर काली घटा छायी हुई थी। चारों तरफ अँधेरा था। तिलक मण्डप की आग भी बुझ चुकी थी। उस अन्धकार में ये लोग लालटेन लिये घायलों को अस्पताल ले जा रहे थे।

एकाएक कई सिपाहियों ने आकर चक्रधर को पकड़ लिया और अँगरेजी कैम्प की तरफ ले चले। पूछा, तो मालूम हुआ कि जिम साहब का यह हुक्म है। चक्रधर ने सोचा—मैंने ऐसा कोई अपराध तो नहीं किया है, जिसका यह दण्ड हो। फिर यह पकड़-धकड़ क्यों ? सम्भव है, मुझसे कुछ पूछने के लिए बुलाया हो और ये मूर्ख सिपाही उसका आशय न समझकर मुझे यों पकड़े लिए जाते हों। यह सोचते हुए वह मिस्टर जिम के खेमे में दाखिल हुए।

देखा, तो वहाँ कचहरी लगी हुई है। सशस्त्र पुलिस के सिपाही, जिन्हें अब लूट में फुरसत मिल चुकी थी, द्वार पर संगीनें चढ़ाए खड़े थे। अन्दर मिस्टर जिम और मिस्टर सिम रौद्र रूप धारण किए सिगार पी रहे थे, मानो क्रोधाग्नि मुँह से निकल रही हो। राजा साहब मिस्टर जिम के बगल में बैठे थे। दीवान साहब क्रोध से आँखें लाल किए मेज पर हाथ रखे कुछ कह रहे थे और मुंशी वज्रधर हाथ बाँधे एक कोने में खड़े थे।

चक्रधर को देखते ही मिस्टर जिम ने कहा—राजा साहब कहता है कि यह सब तुम्हारी शरारत है। तुम और तुम्हारा साथी लोग बहुत दिनों से रियासत के आदमियों को भड़का रहा है, और आज भी तुम न आता, तो यह दंगा न मचता!

चक्रधर आवेश में आकर बोले—अगर राजा साहब, आपका ऐसा विचार है, तो इसका मुझे दुःख है। हम लोग जनता में जागृति अवश्य फैलाते हैं, उनमें शिक्षा का प्रचार करते हैं, उन्हें स्वार्थान्ध अमलों के फन्दों से बचाने का उपाय करते हैं, और उन्हें अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का उपदेश देते हैं। हम चाहते हैं कि वे मनुष्य बनें और मनुष्यों की भाँति संसार में रहें। वे स्वार्थ के दास बनकर कर्मचारियों की खुशामद न करें, भयवश अपमान और अत्याचार न सहें। अगर इसे कोई भड़काना समझता है, तो समझे। हम तो इसे अपना कर्तव्य समझते हैं।

जिम—तुम्हारे उपदेश का यह नतीजा देखकर कौन कह सकता है कि तुम उन्हें नहीं भड़काता ?

चक्रधर—यहाँ उन आदमियों पर अत्याचार हो रहा था और उन्हें यहाँ से चले जाने का या काम न करने का अधिकार था। अगर उन्हें शान्ति के साथ चले जाने दिया जाता, तो यह नौबत कभी नहीं आती।

राजा—हमें परम्परा से बेगार लेने का अधिकार है और उसे हम नहीं छोड़ सकते। आप आदमियों को बेगार देने से मना करते हैं, और आज के हत्याकाण्ड का सारा भार आपके ऊपर है।

चक्रधर—कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आये हैं।

जिम—हम तुम्हारे ऊपर बगावत का मुकदमा चलाएगा। तुम dangerous (खतरनाक) आदमी है।

राजा—हुजूर, मैं इनके साथ कोई सख्ती नहीं करना चाहता, केवल यह

प्रतिज्ञा लिखाना चाहता हूँ कि यह अथवा इनके सहकारी लोग मेरी रियासत में न जायें।

चक्रधर—मैं ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। दीनों पर अत्याचार होते देखकर दूर खड़े रहना वह दशा है, जो हम किसी तरह नहीं सह सकते। अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि राजा साहब के विचार मेरे विचारों से पूरे-पूरे मिलते थे। उन्हें अपने विचारों को बदलने के नए कारण हो गए हों, मेरे लिए कोई कारण नहीं।

राजा - मेरे प्रजा-हित के विचारों में कोई अन्तर नहीं हुआ है, मैं अब भी प्रजा का सेवक हूँ, लेकिन आप उन्हें राजनीतिक यन्त्र बनाना चाहते हैं, और इसी उद्देश्य से आप उनके हितचिन्तक बनते हैं। मैं उन्हें राजनीति में नहीं डालना चाहता। आप उनके आत्मसम्मान की रक्षा करते हैं और मैं उनके प्राणों की। बस, आपके और मेरे विचारों में केवल यही अन्तर है।

मिस्टर जिम ने सब-इन्स्पेक्टर से कहा—इनको हवालात में रखो, कल इजलास पर पेश करो।

वज्रधर ने आगे बढ़कर जिम के पैरों पर पगड़ी रख दी और बोले—हुजूर, यह गुलाम का लड़का है। हुजूर, इसकी जांबख्शी करें। हुजूर का पुराना गुलाम हूँ। जब खुरजे में तहसीलदार था, तब हुजूर से सनद अता फरमायी थी, हुजूर!

मिस्टर जिम—ओ! तहसीलदार साहब, यह तुम्हारा लड़का है? तुमने उसको घर से निकाल क्यों नहीं दिया? सरकार तुमको इसलिए पेंशन नहीं देता कि तुम बागियों को पाले। हम तुम्हारा पेंशन बन्द कर देगा। पेंशन इसलिए दिया जाता है कि तुम सरकार का वफादार नौकर बना रहे।

वज्रधर—हुजूर मेरे मालिक हैं। आज इसका कुसूर माफ कर दिया जाय। आज से मैं इसे घर से निकलने ही न दूंगा।

चक्रधर ने पिता को तिरस्कार भाव से देखकर कहा—आप क्यों ऐसी बातों से मुझे लज्जित करते हैं! मिस्टर जिम और राजा साहब मुझे जेल के बाहर भी कैद करना चाहते हैं। मेरे लिए जेल की कैद इस कैद से कहीं आसान है।

वज्रधर—बेटा, मैं अब थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ। मुझे मर जाने दो, फिर तुम्हारे जी में जो आये, करना। मैं मना करने न आऊँगा।

हरिसेवक—तहसीलदार साहब, आप व्यर्थ हैरान होते हैं। आपका काम समझा देना है। वह समझदार है। अपना भला-बुरा समझ सकते हैं। जब वह खुद आग में कूद रहे, तो आप कब तक उन्हें रोकिएगा?

वज्रधर—मेरी यह अर्ज है हुजूर, कि मेरी पेंशन पर रेप न आये।

जिम— तुमको इस मुकदमें में शहादत देना होगा। तुमने अच्छा शहादत दिया, तो तुम्हारा पेंशन बहाल रखा जायगा।

चक्रधर—लीजिए, आपकी पेंशन बहाल हो गई, केवल मेरे विरुद्ध गवाही भर दे दीजिएगा।

राजा – बाबू चक्रधर, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। आप प्रतिज्ञा लिखकर शौक से घर जा सकते हैं। मैं आपको तंग नहीं करना चाहता। हाँ, इतना ही चाहता हूँ कि ऐसे हंगामे न मचे हों।

चक्रधर –राजा साहब, क्षमा कीजिएगा, जब तक असन्तोष के कारण दूर न होंगे, ऐसी दुर्घटनाएँ होंगी और फिर होंगी। मुझे आप पकड़ सकते हैं, कैद कर सकते हैं। इससे चाहे आपको शान्ति हो, पर वह असन्तोष अणुमात्र भी कम न होगा, जिससे प्रजा का जीवन असह्य हो गया है। असन्तोष को भड़काकर आप प्रजा को शान्त नहीं कर सकते। हाँ, कायर बना सकते हैं। अगर आप उन्हें कर्म-हीन, बुद्धिहीन, पुरुषार्थहीन मनुष्य का तन धारण करनेवाले सियार और सुअर बनाना चाहते हैं, तो बनाइए, पर इससे न आपकी कीर्ति होगी, न ईश्वर प्रसन्न होंगे और न स्वयं आपकी आत्मा ही तुष्ट होगी।

15

राजाओं-महाराजाओं को क्रोध आता है, तो उनके सामने जाने की हिम्मत नहीं पड़ती। जाने क्या गजब हो जाय, क्या आफत आ जाय। विशालसिंह किसी को फाँसी न दे सकते थे, यहाँ तक कि कानून की रू से वह किसी को गालियाँ भी न दे सकते थे। कानून उनके लिए भी था, वह भी सरकार की प्रजा थे; किन्तु नौकरी तो छीन सकते थे, जुरमाना तो कर सकते थे। इतना अख्तियार क्या थोड़ा है? सारी रात गुजर गई, पर राजा साहब अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। उनकी पलकें तक न झपकी थीं। आधी रात तो उनकी तलवार हरिसेवक पर खिंची रही; इसी बुड्ढे खूसट के कुप्रबन्ध ने यह सारा तूफान खड़ा किया। उसके बाद तलवार के वार अपने ऊपर होने लगे। मुझे इस उत्सव की जरूरत ही क्या थी? रियासत मुझे मिल ही चुकी थी। टीके-तिलक के हिमाकत में क्यों पड़ा? पिछले पहर क्रोध ने फिर पहलू बदला और तलवार की चोटें चक्रधर पर पड़ने लगीं। यह सारी शरारत इसी लौंडे की है। न्याय, धर्म और परोपकार सब बहुत अच्छी बातें हैं; लेकिन हर एक काम के लिए एक अवसर होता है। इसने प्रजा में असन्तोष की आग भड़कायी। दो-चार दिन आधे ही पेट खाकर रह जाते, तो क्या मजदूरों की जान निकल जाती? अपने घर ही पर उन्हें कौन दोनों वक्त पकवान मिलता है। जब बारहों मास एक वक्त आधे पेट खाकर रहते हैं, तो यहाँ रमद के लिए दंगा कर बैठना साफ बतला रहा है कि यह दूसरों का मन था। आप तो तलुवे सहलाता फिरता है और आप परोपकारी बनते फिरते हैं। पाँच साल तक चक्की न पिसवायी, तो नाम नहीं!

राजभवन में सन्नाटा छाया हुआ था। रोहिणी ने तो जन्माष्टमी

ही राजा साहब से बोलना चालना छोड़ दिया था। यों पड़ी रहती थी, जैसे कोई चिड़िया पिंजरे में वसुमती को अपने पूजा-पाठ से फुरसत न थी। अब उसे राम और कृष्ण दोनों ही की पूजा-अर्चना करनी पड़ती थी। केवल रामप्रिया घबराती हुई इधर-उधर दौड़ रही थी। कभी चुपके-चुपके कोपभवन के द्वार तक जाती, कभी खिड़की से झाँकती; पर राजा साहब की त्योरियाँ देखकर उलटे पाँव लौट आती। डरती थी कि कहीं वह कुछ खा न लें, कहीं भाग न जायँ। निर्बल क्रोध ही तो वैराग्य है।

वह इसी चिन्ता में विकल थी कि मनोरमा आकर सामने खड़ी हो गई। उसकी दोनों आँखें बीरबहूटी हो रही थीं, भँवें चढ़ी हुईं, मानो किसी गुण्डे ने सती को छेड़ दिया हो।

रामप्रिया ने पूछा—कहाँ थी, मनोरमा?

मनोरमा—ऊपर ही तो थी। राजा साहब कहाँ हैं?

रामप्रिया ने मनोरमा के मुख की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। हृदय आँखों में रो रहा था। बोली—क्या करोगी पूछकर?

मनोरमा—उनसे कुछ कहना चाहती हूँ।

रामप्रिया—कहीं उनके सामने जाना मत। कोप-भवन में हैं। मैं तो खुद उनके सामने जाते डरती हूँ।

मनोरमा—आप बतला तो दें।

रामप्रिया—नहीं, मैं न बताऊँगी। कौन जानता है, इस वक्त उनके हृदय पर क्या बीत रही है। खून का घूंट पी रहे होंगे! सुनती हूँ, तुम्हारे गुरुजी ही की यह सारी करामात है। देखने में तो बड़े ही सज्जन मालूम होते हैं; पर हैं एक छटे हुए।

मनोरमा तीर की भाँति कमरे से निकलकर वसुमती के पास जा पहुँची। वसुमती अभी स्नान करके आयी थी और पूजा करने जा रही थी कि मनोरमा को सामने देखकर चौंक पड़ी। मनोरमा ने पूछा—आप जानती हैं, राजा साहब कहाँ हैं?

वसुमती ने रुखाई से कहा—होंगे जहाँ उनकी इच्छा होगी। मैं तो पूछने भी न गयी। जैसे राम राधा से, वैसे ही राधा राम से।

मनोरमा—आपको मालूम नहीं?

वसुमती—मैं होती कौन हूँ? न सलाह में, न बात में। बेगानों की तरह घर में पड़ी दिन काट रही हूँ? वह बैठी हुई हैं। उनसे पूछो, जानती होंगी।

मनोरमा रोहिणी के कमरे में आयी। वह गाव तकिए लगाए ठस्से से मसनद पर बैठी हुई थी। सामने आईना था। नाइन केश गूंथ रही थी। मनोरमा को देखकर मुस्करायीं। पूछा—कैसे चलीं?

मनोरमा—आपको मालूम है, राजा साहब इस वक्त कहा मिलेंगे? मुझे

उनसे कुछ कहना है।

रोहिणी—कहीं बैठे अपने नसीबों को रो रहे होंगे। यह मेरी हाय का फल है! कैसा तमाशा पड़ा है कि याद ही करते होंगे। ईश्वर बड़ा न्यायी है। मैंने तो चिन्ता करनी ही छोड़ दी। जिन्दगी रोने के लिए थोड़े ही है। सच पूछो, तो इतना सुख मुझे कभी न था। पर में आग लगे या वज्र गिरे, मेरी बला से!

मनोरमा—मुझे सिर्फ इतना बता दीजिए कि वह कहाँ हैं?

रोहिणी—मेरे हृदय में! उसे बाणों से छेद रहे रहे हैं।

मनोरमा निराश होकर वहाँ से भी निकली। वह इस राजभवन में पहले ही पहल आयी थी। अंदाज से दीवानखाने की तरफ चली। जब रानियों के यहाँ नहीं तो अवश्य दीवानखाने में होंगे। द्वार पर पहुँचकर वह जरा ठिठक गई। झाँककर अन्दर देखा, राजा साहब कमरे में टहलते थे और मूँछें ऐंठ रहे थे। मनोरमा अंदर चली गयी। पछतायी कि व्यर्थ रानियों से पूछती फिरी।

राजा साहब उसे देखकर चौंक पड़े। कोई दूसरा आदमी होता, तो शायद वह उस पर झल्ला पड़ते, निकल जाने को कहते, किन्तु मनोरमा के मान प्रदीप्त सौन्दर्य ने उन्हें परास्त कर दिया। खौलते हुए पानी ने दहकती हुई आग को शान्त कर दिया। उन्होंने पहले उसे एक बार देखा था। तब वह बालिका थी। आज वही बालिका नवयुवती हो गयी थी। यह एक रात की भीषण चिन्ता, दारुण वेदना और दुस्सह तापसृष्टि थी। राजा साहब के सम्मुख आने पर भी उसे जरा भी भय या संकोच न हुआ। सरोष नेत्रों से ताकती हुई बोली—उसका कण्ठ आवेश से काँप रहा था—महाराज, मैं आपसे यह पूछने आयी हूँ कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु है या उनमें कुछ अन्तर है?

राजा साहब ने विस्मित होकर कहा—मैंने तुम्हारा आशय नहीं समझा, मनोरमा! बात क्या है? तुम्हारी त्योरियाँ चढ़ी हुई हैं। क्या किसी ने कुछ कहा है या मुझसे नाराज हो? यह भँवें क्यों तनी हुई हैं?

मनोरमा—मैं आपके सामने फरियाद करने आयी हूँ।

राजा—क्या तुम्हें किसी ने कटु वचन कहे हैं?

मनोरमा—मुझे किसी ने कटुवचन कहे होते, तो फरियाद करने न आती। अपने लिए आपको कष्ट न देती; लेकिन आपने अपने तिलकोत्सव के दिन एक ऐसे प्राणी पर अत्याचार किया, जिस पर मेरी असीम भक्ति है, जिसे मैं देवता समझती हूँ, जिसका हृदय कमल के जलसिंचित दल की भाँति पवित्र और कोमल है, जिसमें संन्यासियों का सा त्याग और ऋषियों का सा सत्य है, जिसमें बालकों की सी सरलता और योद्धाओं की सी वीरता है। आपके न्याय और धर्म की चर्चा उसी पुरुष के मुँह से सुना करती थी। अगर यही उसका यथार्थ रूप है, भय है कि इस आतंक के आधार पर बने हुए राजभवन का शीघ्र जायगा और आपकी सारी कीर्ति स्वप्न की भाँति मिट जायगी। जिस

ये निर्दय हाथ बाबू चक्रधर पर उठे, अगर उस समय मैं वहाँ होती; तो कदाचित् कुन्दे का वह वार मेरी ही गर्दन पर पड़ता। मुझे आश्चर्य होता है कि उन पर आपके हाथ उठे क्योंकर! उसी समय से मेरे मन में विचार हो रहा है कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु तो नहीं है?

मनोरमा के मुख से ये जलते हुए शब्द सुनकर राजा दंग रह गए। उनका क्रोध प्रचण्ड वायु के इस झोंके से आकाश पर छाए हुए मेघ के समान उड़ गया। आवेश में भरी हुई सरल हृदया बालिका से वाद-विवाद करने के बदले उन्हें उस पर अनुराग उत्पन्न हो गया। सौन्दर्य के सामने प्रभुत्व भीगी बिल्ली बन जाता है। आसुरी शक्ति भी सौन्दर्य के सामने सिर झुका देती है। राजा साहब नम्रता से बोले—चक्रधर को तुम कैसे जानती हो?

मनोरमा—वह मुझे अँगरेजी पढ़ाने आया करते हैं।

राजा—कितने दिनों से?

मनोरमा—बहुत दिन हुए।

राजा—मनोरमा, मेरे दिल में बाबू चक्रधर की इज्जत थी और है, उसकी चर्चा करते हुए शर्म आती है। जब उन पर इन्हीं कठोर हाथों से मैंने आघात किया, तो अब ऐसी बातें सुनकर तुम्हें विश्वास न आएगा। तुमने बहुत ठीक कहा है कि प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु है। एक वस्तु चाहे न हो; पर उनमें फूस और चिनगारी का सम्बन्ध अवश्य है। मुझे याद नहीं आता कि कभी मुझे इतना क्रोध आया हो। अब मुझे याद आ रहा है कि यदि मैंने धैर्य से काम लिया होता, तो चक्रधर चमारों को जरूर शान्त कर देते। जनता पर उसी आदमी का असर पड़ता है, जिसमें सेवा का गुण हो। यह उनकी सेवा ही है, जिसने उन्हें इतना सर्वप्रिय बना दिया है। अँगरेजों की प्राणरक्षा करने में उन्होंने जितनी वीरता से काम लिया, उसे अलौकिक कहना चाहिए। वह द्रोहियों के सामने जाकर न खड़े हो जाते, तो शायद इस वक्त जगदीशपुर पर गोली की वर्षा होती और मेरी जो दशा होती, उसकी कल्पना ही से रोएं खड़े होते हैं। वह वीरात्मा है और उनके साथ मैंने जो अन्याय किया है, उसका मुझे जीवनपर्यन्त दुःख रहेगा।

विनय क्रोध को निगल जाता है। मनोरमा शान्त होकर बोली—केवल दुःख प्रकट करने से तो अन्याय का घाव नहीं भरता?

राजा—क्या करूँ मनोरमा, अगर मेरे वश की बात होती, तो मैं इसी क्षण जाता और चक्रधर को अपने कन्धे पर बैठाकर लाता; पर अब मेरा कुछ अख्तियार नहीं है। अगर उनकी जगह मेरा ही पुत्र होता, तो भी कुछ न कर सकता।

मनोरमा—आप मिस्टर जिम से कह सकते हैं?

राजा—हाँ, कह सकता हूँ, पर आशा नहीं कि वह मानें। राजनीतिक अपराधियों के साथ ये लोग जरा भी रिआयत नहीं करते, उनके विषय में कुछ सुनना

नहीं चाहते। हाँ, एक बात हो सकती है; अगर चक्रधरजी यह प्रतिज्ञा कर लें कि अब वह कभी सार्वजनिक कामों में भाग न लेंगे, तो शायद मिस्टर जिम उन्हें छोड़ दें। तुम्हें आशा है कि चक्रधर यह प्रतिज्ञा करेंगे ?

मनोरमा ने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—न; मुझे इसकी आशा नहीं। वह अपनी खुशी से कभी ऐसी प्रतिज्ञा न करेंगे।

राजा—तुम्हारे कहने से न मान जायेंगे ?

मनोरमा—मेरे कहने से क्या, वह ईश्वर के कहने से भी न मानेंगे और अगर मानेंगे भी, तो उसी क्षण मेरे आदर्श से गिर जायेंगे। मैं यह कभी न चाहूँगी कि वह उन अधिकारों को छोड़ दें, जो उन्हें ईश्वर ने दिये हैं। आज के पहले मुझे उनसे वही स्नेह था, जो किसी को एक सज्जन आदमी से हो सकता है। मेरी भक्ति उन पर न थी। उनकी प्रणवीरता ही ने मुझे उनका भक्त बना दिया है; उनकी निर्भीकता ही ने मेरी श्रद्धा पर विजय पायी है।

राजा ने बड़ी दीनता से पूछा—जब यह जानती हो, तो मुझे क्यों जिम के पास भेजती हो ?

मनोरमा—इसलिए कि सच्चे आदमी के साथ सच्चा बर्ताव होना चाहिए। किसी को उसकी सच्चाई का या सज्जनता का दण्ड न मिलना चाहिए। इसी में आपका भी कल्याण है। जब तक चक्रधर के साथ न्याय न होगा, आपके राज्य में शान्ति न होगी। आपके माथे पर कलंक का टीका लगा रहेगा।

राजा—क्या करूँ, मनोरमा। अच्छे सलाहकार न मिलने से मेरी यह दशा हुई। ईश्वर जानता है, मेरे मन में प्रजाहित के लिए कैसे-कैसे हौसले थे। मैं अपनी रियासत में रामराज्य का युग लाना चाहता था; पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पर रहे हैं, जिनसे मुझे घृणा थी। न जाने वह कौन सी शक्ति है, जो मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करने पर मजबूर कर देती है। मेरे पास कोई ऐसा मन्त्री नहीं है, जो मुझे सच्ची सलाहें दिया करे। मैं हिंसक जन्तुओं से घिरा हुआ हूँ। सभी स्वार्थी हैं, कोई मेरा मित्र नहीं। इतने आदमियों के बीच में मैं अकेला, निस्सहाय, मित्रहीन प्राणी हूँ। एक भी ऐसा हाथ नहीं, जो मुझे गिरते देखकर सँभाल ले। मैं अभी मिस्टर जिम के पास जाऊँगा और साफ-साफ कह दूँगा कि मुझे बाबू चक्रधर से कोई शिकायत नहीं है।

मनोरमा के सौन्दर्य ने राजा साहब पर जो जादू का सा असर डाला था, वही असर उनकी विनय और शालीनता ने मनोरमा पर किया। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गई। नरम होकर बोली—जब उनके पास जाने से आपको कोई आशा ही नहीं है, तो व्यर्थ क्यों कष्ट उठाइएगा ? मैं आपसे यह कहूँगी। मैंने आपका इतना समय नष्ट किया, इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मेरी कुछ बातें अगर कटु और अप्रिय लगी हों•••

राजा ने बात काटकर कहा—मनोरमा, सुधा वृष्टि भी किसी को कड़वी और अप्रिय लगती है ? मैंने ऐसी मधुर वाणी कभी न सुनी थी। तुमने मुझ पर जो अनुग्रह किया है, उसे कभी न भूलूंगा।

मनोरमा कमरे से चली गयी। विशालसिंह द्वार पर खड़े उसकी ओर ऐसे तृषित नेत्रों से देखते रहे, मानो उसे पी जायेंगे। जब वह आँखों से ओझल हो गई तो वह कुरसी पर लेट गए। उनके हृदय में एक विचित्र आकांक्षा अंकुरित हो रही थी।

किन्तु वह आकांक्षा क्या थी ! मृगतृष्णा ! मृगतृष्णा !

16

संध्या हो गई। 'ऐसी उमस है कि सांस लेना कठिन है, और जेल की कोठरियों में यह उमस और भी असह्य हो गई। एक भी खिड़की नहीं, एक भी जंगला नहीं। उस पर मच्छरों का निरन्तर गान कानों के परदे फाड़े डालता है। सबके सब दावत खाने के पहले गा-गाकर मस्त हो रहे हैं। एक आध मरभुक्खे पत्तलों की राह न देखकर कभी-कभी रक्त का स्वाद ले लेते हैं; लेकिन अधिकांश मण्डली उस समय का इन्तजार कर रही है, जब निद्रादेवी उनके सामने पत्तल रखकर कहेंगी—प्यारे, आओ जितना खा सको खाओ; जितना पी सको पियो। रात तुम्हारी है और भण्डार भरपूर।

यहीं एक कोठरी में चक्रधर को भी स्थान दिया गया है। स्वाधीनता की देवी अपने सच्चे सेवकों को यही पद प्रदान करती है।

वह सोच रहे हैं—यह भीषण उत्पात क्यों हुआ ? हमने तो कभी भूलकर भी किसी से यह प्रेरणा नहीं की। फिर लोगों के मन में यह बात कैसे समायी ? इस प्रश्न का उन्हें यही उत्तर मिल रहा है कि यह हमारी नीयत का नतीजा है। हमारी शान्त शिक्षा की तह में द्वेष छिपा हुआ था। हम भूल गये थे कि संगठित शक्ति आग्रहमय होती है; अत्याचार से उत्तेजित हो जाती है। अगर हमारी नीयत साफ होती, तो जनता के मन में कभी राजाओं पर चढ़ दौड़ने का आवेश न होता; लेकिन क्या जनता राजाओं के कैम्प की तरफ न जाती, तो पुलिस उन्हें बिना रोकटोक अपने घर जाने देती ? कभी नहीं। सवार के लिए घोड़े का अड़ जाना या बिगड़ जाना एक बात है। जो छेड़-छेड़कर लड़ना चाहे, उससे कोई क्योंकर बचे ? फिर अगर प्रजा अत्याचार का विरोध न करे, तो उसके संगठन से फायदा ही क्या ? इसीलिए तो उसे सारे उपदेश दिये जाते हैं। कठिन समस्या है। या तो प्रजा को उनके हाल पर छोड़ दूं, उन पर कितने ही जुल्म हों, उनके निकट न जाऊँ; या ऐसे उपद्रवों के लिए तैयार रहूं। राज्य पशुबल का प्रत्यक्ष

रूप है। वह साधु नहीं है, जिसका बल धर्म है; वह विद्वान् नहीं है, जिसका बल तर्क है। वह सिपाही है, जो डण्डे के जोर से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। इसके सिवा उसके पास कोई दूसरा साधन ही नहीं।

यह सोचते-सोचते उन्हें अपना ख्याल आया। मैं तो कोई आन्दोलन नहीं कर रहा था। किसी को भड़का नहीं रहा था। जिन लोगों की प्राणरक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाली, वही मेरे साथ यह सलूक कर रहे हैं। इतना भी नहीं देख सकते कि जनता पर किसी का असर हो। उनकी इच्छा इसके सिवा और क्या है कि सभी आदमी अपनी-अपनी आँखें बन्द कर रखें, उन्हें अपने आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ देखने का हक नहीं। अगर सेवा करना पाप है, तो यह पाप तो मैं उस वक्त तक करता रहूँगा, जब तक प्राण रहेंगे। जेल की क्या चिन्ता? सेवा करने के लिए सभी जगह मौके हैं। जेल में तो और भी ज्यादा। लालाजी को दुःख होगा अम्मा जी रोएँगी! लेकिन मजबूरी है। जब बाहर भी जबान और हाथ-पाँव बाँधे जाएँगे, तो जैसे जेल, वैसे बाहर। हाँ, जरा उसका विस्तार अधिक है। मैं किसी तरह प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। वह भी जेल ही है।

वह इसी सोच-विचार में पड़े हुए थे कि एकाएक मुंशी वज्रधर कमरे में दाखिल हुए। उनकी देह पर एक पुरानी अचकन थी, जिसका मैल उसके असली रंग को छिपाए हुए था, नीचे एक पतलून था जो कमरबन्द न होने के कारण खिसककर इतना नीचा हो गया था कि घुटनों के नीचे एक झोला सा पड़ गया था। संसार में कपड़े से ज्यादा बेवफा और कोई वस्तु नहीं होती। हमारा घर बचपन से बुढ़ापे तक हर अवस्था में हमारा है। वस्त्र हमारा होते हुए भी हमारा नहीं रहता। आज जो वस्त्र हमारा है, वह कल हमारा न रहेगा। उसे हमारे सुख-दुःख की जरा भी चिन्ता नहीं होती, फौरन बेवफाई कर जाता है। हम जरा बीमार हो जायें, किसी स्थान का जलवायु जरा हमारे अनुकूल हो जाय कि बस, हमारे प्यारे वस्त्र, जिनके लिए हमने दर्जी की दुकान की खाक छान डाली थी, हमारा साथ छोड़ देते हैं। उन्हें अपना बनाओ, अपने नहीं होते। अगर जबरदस्ती गले लगाओ, तो चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, हम तुम्हारे नहीं। वे केवल हमारी पूर्वावस्था के चिह्न होते हैं।

मुंशी वज्रधर की अचकन भी, जो उनकी अल्पकालीन लेकिन ऐतिहासिक तहसीलदारी की यादगार थी; पुकार-पुकारकर कहती थी—मैं अब इनकी नहीं। किन्तु तहसीलदार साहब हुकूमत के जोर से चिपटाए हुए थे। तुम कितनी ही बेवफाई करो, मेरी कितनी ही बदनामी करो, छोड़ने का नहीं। अच्छे दिनों में तो तुमने हमारे साथ चैन किए, इन बुरे दिनों में तुम्हें क्यों छोड़ूँ? यों तो भूत और वर्तमान के संग्राम की मूर्ति बने हुए तहसीलदार साहब चक्रधर के पास जाकर बोले—क्या करते हो बेटा? यहाँ तो बड़ा अँधेरा है। चलो, बाहर इक्का खड़ा है; बैठ लो। इधर ही से साहब के बँगले पर होते चलेंगे। जो कुछ वह कहें,

देना। बात ही कौन सी है ? हमें कौन किसी से लड़ाई करनी है। कल ही से दौड़ लगा रहा हूँ। बारे आज दोपहर को जाके सीधा हुआ। पहले वहुत यों-त्यों करता रहा, लेकिन मैंने पिण्ड न छोड़ा। मेम साहब के पास पहुँचकर रोने लगा। इस फन में तुम जानो उस्ताद हूँ। सरकारी मुलाजिमत और वह भी तहसीलदारी सब कुछ सिखा देती है। अँगरेजों को तो तुम जानते ही हो, मेमों के गुलाम होते हैं। मेम ने जाकर हजरत को डाँटा क्यों तहसीलदार साहब को दिक कर रहे हो ? अभी उनके लड़के को छोड़ दो, नहीं तो घर से निकल जाओ। यह डाँट पड़ी, तो हजरत के होश ठिकाने हुए। बोले—वैल, तहसीलदार साहब, हम आपका बहुत इज्जत करता है। आपको हम नाउम्मेद नहीं करना चाहता, लेकिन जब तक आपका बेटा इस बात का कौल न करे कि वह फिर कभी गोलमाल न करेगा, तब तक हम उसे नहीं छोड़ सकता। हम अभी जेलर को लिखता है कि उससे पूछो राजी है ? मैंने कहा—हुजूर, मैं खुद जाता हूँ और उसे हुजूर की खिदमत में लाकर हाजिर करता हूँ। या वहाँ न चलना चाहो, तो यहीं एक हलफनामा लिख दो। देर करने से क्या फायदा तुम्हारी अम्माँ रो-रोकर जान दे रही हैं।

चक्रधर ने सिर नीचा करके कहा—अभी तो मैंने कुछ निश्चय नहीं किया। सोचकर जवाब दूंगा। आप नाहक इतने हैरान हुए।

वज्रधर—कैसी बातें करते हो, यहाँ नाक कटी जा रही है, घर से निकलना मुश्किल हो गया है और तुम कहते हो, सोचकर जवाब दूंगा। इसमें सोचने की बात ही क्या है ? इस तहसीलदारी की लाज तो रखनी है। की तो थोड़े ही दिन, लेकिन आज तक लोग याद करते हैं और हमेशा याद करेंगे। कोई हाकिम इलाके में आया नहीं कि उससे मिलने दौड़ा। रसद के ढेर लगा देता था। हाकिमों के नौकर-चाकर तक खाते-खाते ऊब जाते थे। जमींदारों की तो मेरे नाम से जान निकल जाती थी। जिम साहब ने मेरी तारीफी चिट्ठियाँ पढ़ीं, तो दंग रह गए। इज्जत को तो निभाना ही पड़ेगा। चलो, हलफनामा लिख दो। घर में कल से आग नहीं जली।

चक्रधर—मेरी आत्मा किसी तरह अपने पाँव में बेड़ियाँ डालने पर राजी नहीं होती।

वज्रधर—मौका देखकर सब कुछ किया जाता है, बेटा ! दुनिया में कोई किसी का नहीं होता। यही राजा साहब पहले तुमसे कितनी मुहब्बत से पेश आते थे। अब अपने सिर पर पड़ी, तो कैसी सारी बला तुम्हारे सिर ठेलकर निकल गये। दीवान साहब का लड़का गुरुसेवक पहले जाति के पीछे कैसा लट्ठ लिए फिरता था। कल डिप्टी कलक्टरी में नामजद हो गया। कहाँ तो हमसे हमदर्दी करता था, कहाँ अब विद्रोहियों के खिलाफ जलसा करने के लिए दौड़-धूप कर रहा है। जब सारी दुनिया अपना मतलब निकालने की धुन में है, तो तुम्हीं दुनिया की फिक्र में क्यों अपने को बरबाद करो ? दुनिया जाय जहन्नुम में। हमें

अपने काम से काम है या दुनिया के झगड़ों मे ?

चक्रधर—अगर और लोग अपने मतलब के बन्दे हो जायँ और स्वार्थ के लिए अपने सिद्धान्तों से मुँह मोड़ बैठें तो कोई वजह नहीं कि मैं भी उन्हीं की नकल करूँ। मैं ऐसे लोगों को अपना आदर्श नहीं बना सकता। मेरे आदर्श इनसे बहुत ऊँचे हैं।

वज्रधर—बस, तुम्हारी इसी जिद पर मुझे गुस्सा आता है। मैंने भी अपनी जवानी में इस तरह के खिलवाड़ किए हैं, और उन लोगों को कुछ-कुछ जानता हूँ, जो अपने को जाति के सेवक कहते हैं। बस; मुँह न खुलवाओ। सब अपने-अपने मतलब के बन्दे हैं, दुनिया को लूटने के लिए यह सारा स्वाँग फैला रखा है। हाँ, तुम्हारे जैसे दो चार उल्लू भले ही फँस जाते हैं, जो अपने को तबाह कर डालते हैं। मैं तो सीधी सी बात जानता हूँ—जो अपने घरवालों की सेवा न कर सका, वह जाति की सेवा कभी कर ही नहीं सकता, घर सेवा की सीढ़ी का पहला डण्डा है। इसे छोड़कर तुम ऊपर नहीं जा सकते।

चक्रधर जब अब भी प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पर राजी न हुए, तो मुंशीजी निराश होकर बोले—अच्छा बेटा लो, अब कुछ न कहूँगे। जो तुम्हारी खुशी हो, वह करो। मैं जानता था कि तुम जन्म के जिद्दी हो, मेरी एक न सुनोगे, इसीलिए आता ही न था; लेकिन तुम्हारी माता ने मुझे कुरेदकर भेजा। कह दूँगा, नहीं माना। सब कुछ करके हार गया, सब्र करके बैठो; उसे अपनी बात और अपनी शान माँ-बाप से प्यारी है। जितना रोना हो, रो लो।

कठोर से कठोर हृदय में भी मातृस्नेह की कोमल स्मृतियाँ संचित होती हैं। चक्रधर कातर होकर बोले—आप माताजी को समझाते रहिएगा। कह दीजिएगा मुझे जरा भी तकलीफ नहीं है, मेरे लिए रंज न करें।

वज्रधर ने इतने दिनों तक यों ही तहसीलदारी न की थी। ताड़ गए कि अब की निशाना ठीक पड़ा। बेपरवाही से बोले—मुझे क्या गरज पड़ी है कि किसी के लिए झूठ बोलूँ। बिना किसी मतलब के झूठ बोलना मेरी नीति नहीं। जो आँखों से देख रहा हूँ, वही कहूँगा। रोएँगी, रोएँ; इसमें मेरा क्या अख्तियार है। रोना तो उनकी तकदीर ही में लिखा है। जब से तुम आए हो, एक घूँट पानी तक मुँह में नहीं डाला। इसी तरह दो-चार दिन और रहीं, तो प्राण निकल जाएँगे। तुम्हारे सिर का बोझ टल जाएगा! यह लो, वार्डर मुझे बुलाने आ रहे हैं। वक्त पूरा हो गया।

चक्रधर ने दीन भाव से कहा—अम्माँजी को एक बार यहाँ न लाइएगा?

वज्रधर—तुम्हें इस दशा में देखकर तो उन्हें जो दो चार दिन जीना है, वह भी न जिएँगी। क्या कहते हो? इकरारनामा लिखना हो, तो मेरे साथ दफ्तर में चलो।

चक्रधर करुणा से विह्वल हो गए। बिना कुछ कहे हुए मुंशीजी के साथ दफ्तर

की ओर चले। मुंशीजी के चेहरे की झुर्रियाँ एक क्षण के लिए मिट गईं। चक्रधर को गले लगाकर बोले—जीते रहो बेटा, तुमने मेरी बात मान ली। इससे बढ़कर और क्या खुशी की बात होगी।

दोनों आदमी दफ्तर में आये, तो जेलर ने कहा—कहिए, तहसीलदार साहब, आपकी हार हुई न ? मैं कहता न था, वह न सुनेंगे। आजकल के नौजवान अपनी बात के आगे किसी की नहीं सुनते।

चक्रधर—जरा कलम-दावात तो निकालिए। और बातें फिर होंगी।

दारोगा—(चक्रधर से) क्या आप इकरारनामा लिख रहे हैं ! निकल गई सारी शेखी ! इसी पर इतनी दून की लेते थे।

चक्रधर पर घड़ों पानी पड़ गया। मन की अस्थिरता पर लज्जित हो गए। जाति-सेवकों से सभी दृढ़ता की आशा रखते हैं, सभी उसे आदर्श पर बलिदान होते देखना चाहते हैं। जातीयता के क्षेत्र में आते ही उसके गुणों की परीक्षा अत्यन्त कठोर नियमों से होने लगती है और दोषों की सूक्ष्म नियमों से। परले सिरे का कुचरित्र मनुष्य भी साधुवेश रखनेवालों से ऊँचे आदर्श पर चलने की आशा रखता है, और उन्हें आदर्श से गिरते देखकर उनका तिरस्कार करने में संकोच नहीं करता ! जेलर के कटाक्ष ने चक्रधर की झपकी हुई आँखें खोल दीं। तुरन्त उत्तर दिया—मैं जरा वह प्रतिज्ञापत्र देखना चाहता हूँ।

तहसीलदार साहब ने जेलर की मेज से वह कागज उठा लिया और चक्रधर को दिखाते हुए बोले—बेटा, इसमें कुछ नहीं है। जो कुछ मैं कह चुका हूँ, वही बातें जरा कानूनी ढंग से लिखी गई हैं।

चक्रधर ने कागज को सरसरी तौर से देखकर कहा—इसमें तो मेरे लिए कोई जगह ही नहीं रही। घर पर कैदी बना रहूँगा। मेरा ऐसा ख्याल न था। अपने हाथों अपने पाँवों में बेड़ियाँ न डालूँगा। जब कैद ही होना है, तो कैदखाना क्या बुरा है ? अब या तो अदालत से बरी होकर आऊँगा, या सजा के दिन काटकर।

यह कहकर चक्रधर अपनी कोठरी में चले आए और एकान्त में खूब रोए। आँसू उमड़ रहे थे; पर जेलर के सामने कैसे रोते ?

एक सप्ताह बाद मिस्टर जिम के इजलास में मुकदमा चलने लगा। तहसीलदार साहब ने न कोई वकील खड़ा किया, न अदालत में आये। यहाँ तो गवाहों के बयान होते थे, और वह सारे दिन जिम के बँगले पर बैठे रहते थे। साहब बिगड़ते थे, धमकाते थे; पर वह उठने का नाम न लेते। जिम जब बँगले से निकलते, तो द्वार पर मुंशीजी खड़े नजर आते थे। कचहरी से आते, तो भी उन्हें वहीं खड़ा पाते। मारे क्रोध के लाल हो जाते। दो एक बार घूँसा भी ताना; लेकिन मुंशीजी को सिर नीचा किए देख दया आ गई। अक्सर यह साहब के दोनों बच्चों को खिलाया करते, कन्धे पर लेकर दौड़ते, मिठाइयाँ ला-लाकर खिलाते और मेम

साहब को हँसनेवाले लतीफे सुनाते।

आखिर एक दिन साहब ने पूछा— तुम मुझसे क्या चाहता है?

वज्रधर ने अपनी पगड़ी उतारकर साहब के पैरों पर रख दी और हाथ जोड़कर बोले— हुजूर सब जानते हैं, मैं क्या अर्ज करूँ। सरकार के खिदमत में सारी उम्र कट गई। मेरे देवता तो, ईश्वर तो, जो कुछ हैं, आप ही हैं। आपके सिवा मैं और किसके द्वार पर जाऊँ? किसके सामने रोऊँ? इन पके बालों पर तरस खाइए। मर जाऊँगा हुजूर, इतना बड़ा सदमा उठाने की ताकत अब नहीं रही।

जिम— हम छोड़ नहीं सकता, किसी तरह नहीं।

वज्रधर— हुजूर जो चाहे करें। मेरा तो आपसे कहने ही भर का अख्तियार है। हुजूर को दुआ देता हुआ मर जाऊँगा; पर दामन न छोड़ूँगा?

जिम— तुम अपने लड़के को क्यों नहीं समझाता?

वज्रधर— हुजूर नालायक है, और क्या कहूँ। खुदा सताए दुश्मन को भी ऐसी औलाद न दे। जी तो यही चाहता है कि हुजूर कम्बख्त का मुँह न देखूँ; लेकिन कलेजा नहीं मानता। हुजूर, माँ-बाप का दिल कैसा होता है, इसे तो हुजूर भी जानते हैं।

अदालत में रोज खासी भीड़ हो जाती। वे सब मजदूर, जिन्होंने हड़ताल की थी, एक बार चक्रधर के दर्शनों को आ जाते; यदि चक्रधर को छोड़ने के लिए एक सौ आदमियों की जमानत माँगी जाती, तो उसके मिलने में बाधा न होती। सब जानते थे कि इन्हें हमारे पापों का प्रायश्चित करना पड़ रहा है। शहर से भी हजारों आदमी आ पहुँचते थे। कभी-कभी राजा विशालसिंह भी आकर दर्शकों की गैलरी में बैठ जाते। लेकिन और कोई आये या न आये, सबेरे या देर से आये, किन्तु मनोरमा रोज ठीक दस बजे कचहरी में आ जाती और अदालत के उठने तक अपनी जगह पर मूर्ति की भाँति बैठी रहती। उसके मुख पर अब पहले की सी अरुण आभा, वह चपलता, वह प्रफुल्लता नहीं है। उसकी जगह दृढ़ संकल्प, विशाल करुणा, अलौकिक धैर्य और गहरी चिन्ता का फीका रंग छाया हुआ है, मानो कोई विरागिनी है, जिसके मुख पर हास्य की मृदु रेखा कभी खिंची ही नहीं। वह न किसी से बोलती है, न मिलती है। उसे देखकर सहसा कोई यह नहीं कह सकता कि यह वही आमोदप्रिय बालिका है, जिसकी हँसी दूसरों को हँसाती थी।

यहाँ बैठी हुई मनोरमा कल्पनाओं का संसार रचा करती है। उस संसार में प्रेम ही प्रेम है, आनन्द ही आनन्द है। उसे अनायास कहीं से अतुल धन मिल जाता है, कदाचित् कोई देवी प्रसन्न हो जाती है। इस विपुल धन को वह चक्रधर के चरणों पर अर्पण कर देती है, फिर भी चक्रधर उसके राजा नहीं होते, वह अब भी उसके आश्रमी ही रहते हैं। उन्हें आश्रय ही देने के लिए वह रानी बनती है, अपने लिए वह कोई मसूबे नहीं बाँधती। जो कुछ सोचती है, चक्रधर के लिए। चक्रधर से प्रेम नहीं है, केवल भक्ति है। चक्रधर को वह मनुष्य नहीं, देवता समझती है।

सन्ध्या का समय था। आज पूरे 15 दिनों की कार्रवाई के बाद मिस्टर जिम ने दो साल की कैद का फैसला सुनाया था। यह कम से कम सजा थी, जो उस धारा के अनुसार दी जा सकती थी।

चक्रधर हँस-हँसकर मित्रों से विदा हो रहे थे। सबकी आँखों में जल भरा हुआ था। मजदूरों का दल इजलास के द्वार पर खड़ा 'जय-जय' का शोर मचा रहा था। कुछ स्त्रियाँ खड़ी रो रही थीं। सहसा मनोरमा आकर चक्रधर के सम्मुख खड़ी हो गई। उसके हाथ में एक फूलों का हार था। वह उसने उनके गले में डाल दिया और बोली—अदालत ने तो आपको सजा दे दी, पर इतने आदमियों में से एक भी ऐसा न होगा जिसके दिल में आपसे सौगुना प्रेम न हो गया हो। आपने हमें सच्चे साहस, सच्चे आत्मबल और सच्चे कर्त्तव्य का रास्ता दिखा दिया। जाइए, जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे पूरा कीजिए, हमारी शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।

उसने इसी अवसर के लिए कई दिन से वाक्य रट रखे थे। इस भाँति उद्‌गारों को न बांध रखने से वह आवेश में जाने क्या कह जाती।

चक्रधर ने केवल दबी आँखों से मनोरमा को देखा, कुछ बोल न सके। उन्हें शर्म आ रही थी कि लोग दिल में क्या ख्याल कर रहे होंगे। सामने राजा विशाल-सिंह, दीवान साहब, ठाकुर गुरुसेवक और मुंशी वज्रधर खड़े थे। बरामदे में हजारों आदमियों की भीड़ थी। धन्यवाद के शब्द उनकी जबान पर आकर रुक गए। वह दिखाना चाहते थे कि मनोरमा की यह वीरभक्ति उनकी बालक्रीड़ा मात्र है।

एक क्षण में सिपाहियों ने चक्रधर को बन्द गाड़ी में बिठा दिया और जेल की ओर ले चले। धीरे-धीरे कमरा खाली हो गया। मिस्टर जिम ने भी चलने की तैयारी की। तहसीलदार साहब के सिवा अब कमरे में और कोई न था। जब जिम कठघरे से नीचे उतरे, तो मुंशी आँखों में आँसू भरे उनके पास आये और बोले—मिस्टर जिम, मैं तुम्हें आदमी समझता था, पर तुम पत्थर निकले। मैंने तुम्हारी जितनी खुशामद की, उतनी अगर ईश्वर की करता, तो मोक्ष पा जाता। मगर तुम न पसीजे। रिआया का दिल यों मुट्‌ठी में नहीं आता। यह धांधली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक यहाँ के लोगों की आँखें बन्द हैं। यह मजा बहुत दिनों तक न उठा सकोगे।

यह कहते हुए मुंशीजी कमरे से बाहर आये। जिम ने कुपित नेत्रों से देखा, पर कुछ बोला नहीं।

चक्रधर जेल पहुंचे, तो शाम हो गई थी। जाते-ही-जाते उनके कपड़े उतार लिए गए और जेल के वस्त्र मिले। लोटा और तसला भी दिया गया। गर्दन में लोहे का नम्बर डाल दिया गया। चक्रधर जब ये कपड़े पहनकर खड़े हुए, तो उनके मुख पर विचित्र शान्ति की झलक दिखाई दी, मानो किसी ने जीवन का

लक्ष्य पा लिया हो उन्होंने वही किया, जो उनका कर्तव्य था और कर्तव्य का पालन ही चित्त की शान्ति का मूल मन्त्र है।

रात को जब वह लेटे, तो मनोरमा की सूरत आँखों के सामने फिरने लगी। उसकी एक-एक बात याद आने लगी और हर बात में कोई न कोई गुप्त आशय भी छिपा हुआ मालूम होने लगा। लेकिन इसका अन्त क्या? मनोरमा, तुम क्यों मेरे झोपड़े में आग लगाती हो? तुम्हें मालूम है, तुम मुझे किधर खींचे लिए जाती हो? ये बातें कल तुम्हें भूल जाएँगी। किसी राजा-रईस से तुम्हारा विवाह हो जाएगा, फिर भूलकर भी न याद करोगी। देखने पर शायद पहचान भी न सको। मेरे हृदय में क्यों अपने प्रेम के घरौंदे बना रही हो? तुम्हारे लिए जो खेल है, वह मेरे लिए मौत है। मैं जानता हूँ, यह तुम्हारी बालक्रीड़ा है; लेकिन मेरे लिए वह आग की चिनगारी है। तुम्हारी आत्मा कितनी पवित्र है, हृदय कितना सरल! धन्य होंगे उसके भाग्य, जिसकी तुम हृदयेश्वरी बनोगी; मगर इस अभागे को कभी अपनी सहानुभूति और सहृदयता से वंचित मत करना। मेरे लिए इतना ही बहुत है!

17

राजा विशालसिंह की जवानी कब की गुजर चुकी थी, किन्तु प्रेम से उनका हृदय अभी तक वंचित था। अपनी तीनों रानियों में केवल वसुमती के प्रेम की कुछ भूली हुई-सी याद उन्हें आती थी। प्रेम वह प्यास नहीं है, जिससे आदमी छक जाए, उसकी तृष्णा सदैव बनी रहती है। राजा साहब को अब अपनी रानियाँ गँवारिनें-सी जँचती थीं, जिन्हें इसका जरा भी ज्ञान न था कि अपने को इस नई परिस्थिति के अनुकूल कैसे बनाएँ, कैसे जीवन का आनन्द उठाएँ। वे केवल आभूषणों ही पर टूट रही थीं। रानी देवप्रिया के बहुमूल्य आभूषणों के लिए तो वह संग्राम छिड़ा कि कई दिन तक आपस में गालियाँ-सी चलती रहीं। राजा साहब पर क्या बीत रही है, राज्य की क्या दशा है इसकी किसी को सुध न थी। उनके लिए जीवन में यदि कोई वस्तु थी, तो वह रत्न और आभूषण थे। यहाँ तक कि रामप्रिया भी अपने हिस्से के लिए लड़ने-झगड़ने में संकोच न करती थी। इस आभूषण प्रेम के सिवा उनकी रुचि या विचार में कोई विकास न हुआ। कभी-कभी तो उनके मुँह से ऐसी बातें निकल जातीं कि रानी देवप्रिया के समय की लौंडियाँ-बाँदियाँ मुँह मोड़कर हँसने लगतीं। उनका यह व्यवहार देखकर राजा साहब का दिल उनसे खट्टा होता जाता था।

यों अपने-अपने ढंग पर तीनों ही उनसे प्रेम करती थीं; वसुमती के प्रेम में ईर्ष्या थी, रोहिणी के प्रेम में शासन। और रामप्रिया का प्रेम तो सह[illegible]

सीमा के अन्दर ही रह जाता था। कोई राजा के जीवन को सुखमय न बना सकती थी, उनकी प्रेम तृष्णा को तृप्त न करती थी। उन सरोवरों के बीच में वह प्यास से तड़प रहे थे उस पथिक की भांति, जो गन्दे तालाबों के सामने प्यास से व्याकुल हो। पानी बहुत था, पर पीने लायक नहीं। उसमें दुर्गन्ध थी, विष के कीड़े थे। इसी व्याकुलता की दशा में मनोरमा मीठे, ताजे जल की गागर लिए हुए सामने से आ निकली— नहीं, उसने उन्हें जल पीने को निमन्त्रित किया— और वह उसकी ओर लपके, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।

राजा साहब के हृदय में नई-नई प्रेम कल्पनाएं अंकुरित होने लगीं। उसकी एक-एक बात उन्हें अपनी ओर खींचती थी। वेष कितना सुन्दर था! वस्त्रों से सुरुचि झलकती थी, आभूषणों से सुबुद्धि। वाणी कितनी मधुर थी, प्रतिभा में डूबी हुई, एक-एक शब्द हृदय की पवित्रता में रँगा हुआ। कितनी अद्भुत रूप छटा है, मानो ऊषा के हृदय से ज्योतिर्मय मधुर संगीत कोमल, सरस शीतल ध्वनि निकल रही हो। वह अकेली आयी थी, पर यह विशाल दीवानखाना भरा-सा मालूम होता था। हृदय कितना उदार है, कितना कोमल! ऐसी रमणी के साथ जीवन कितना आनन्दमय, कितना कल्याणमय हो सकता है! जो बालिका एक साधारण व्यक्ति के प्रति इतनी श्रद्धा रख सकती है, वह अपने पति के साथ कितना प्रेम करेगी, कल्पना से उनका चित्त फूल उठता था। जीवन स्वर्ग तुल्य हो जाएगा। और अगर परमात्मा की कृपा से किसी पुत्र का जन्म हुआ, तो कहना ही क्या! उसके शौर्य और तेज के सामने बड़े-बड़े नरेश कांपेंगे। बड़ा प्रतापी, मनस्वी, कर्मशील राजा होगा, जो कुल को उज्ज्वल कर देगा। राजा साहब को इसकी लेश मात्र भी शंका न थी कि मनोरमा उन्हें वरने की इच्छा भी करेगी या नहीं। उनके विचार में अतुल सम्पत्ति अन्य सभी त्रुटियों को पूरा कर सकती थी।

दीवान साहब से पहले वह खिंचे रहते थे। अब उनका विशेष आदर-सत्कार करने लगे। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करते। दो-तीन बार उनके मकान पर भी गए और अपनी सज्जनता की छाप लगा आए। ठाकुर साहब की भी कई बार दावत की। आपस में घनिष्ठता बढ़ने लगी। हर्ष की बात यह थी कि मनोरमा के विवाह की बातचीत और कहीं नहीं हो रही थी। मैदान खाली था। इन अवसरों पर मनोरमा उनके साथ कुछ इस तरह दिल खोलकर मिली कि राजा साहब की आशाएं और भी चमक उठीं। क्या उसका उनसे हँस-हंसकर बातें करना, बार-बार उनके पास आकर बैठ जाना और उनकी बातों को ध्यान से सुनना, रहस्यपूर्ण नेत्रों से उनकी ओर ताकना और नित्य नई छवि दिखाना, उसके मनोभावों को प्रकट न करता था? रहे दीवान साहब, वह सांसारिक जीव थे और स्वार्थ सिद्धि के ऐसे अच्छे अवसर को कभी न छोड़ सकते थे, चाहे समाज इसका तिरस्कार ही क्यों न करे। हां, अगर शंका थी, तो लौंगी की ओर से थी।

वह राजा साहब का आना-जाना पसन्द न करती थी। वह उनके इरादों को भाँप गई थी और उन्हें दूर ही रखना चाहती थी। मनोरमा को बार-बार आँखों से इशारा करती थी कि अन्दर जा। किसी-न-किसी बहाने से उसे पटाने की चेष्टा करती रहती थी। उसका मुँह बन्द करने के लिए राजा साहब उससे लल्लो-चप्पो की बातें करते और एक बार एक कीमती साड़ी भी उसको भेंट की, पर उसने उसकी ओर देखे बिना ही उसे लौटा दिया। राजा साहब के मार्ग में यही एक कंटक था और उसे हटाए बिना वह अपने लक्ष्य पर न पहुँच सकते थे। बेचारे इसी उधेड़-बुन में पड़े रहते थे। आखिर उन्होंने मुंशीजी को अपना भेदिया बनाना निश्चय किया। वही ऐसे प्राणी थे, जो इस कठिन समस्या को हल कर सकते थे। एक दिन उन्हें एकान्त में बुलाया और राज सम्बन्धी बातें करने लगे।

राजा—इलाके का क्या हाल है? फसल तो अबकी बहुत अच्छी है।

मुंशी—हुजूर, मैंने अपनी उम्र में ऐसी अच्छी फसल नहीं देखी। अगर पूरब के इलाके में 200 कुएँ बन जाते, तो फसल दुगुनी हो जाती। पानी का वहाँ बड़ा कष्ट है।

राजा—मैं खुद इसी फिक्र में हूँ। कुएँ क्या, मैं तो एक नहर बनवाना चाहता हूँ। अरमान तो दिल में बड़े-बड़े थे; मगर सामने अँधेरा देखकर कुछ हौसला नहीं होता। सोचता हूँ, किसके लिए यह जंजाल बढ़ाऊँ।

इस भूमिका के बाद विवाह की चर्चा अनिवार्य थी।

राजा—मैं अब क्या विवाह करूँगा? जब ईश्वर ने अब तक संतान न दी, तो अब कौन-सी आशा है?

मुंशी—गरीबपरवर, अभी आपकी उम्र ही क्या है। मैंने 80 बरस की उम्र में आदमियों के भाग्य जागते देखे हैं।

राजा—फिर मुझसे अपनी कन्या का विवाह कौन करेगा?

मुंशी—अगर आपका जरा-सा इशारा पा गया होता, तो अब तक कभी की बहू जी घर में आ गई होती। राजा से अपनी कन्या का विवाह करना किसे बुरा लगता है?

राजा—लेकिन मुझे तो अब ऐसी स्त्री चाहिए, जो सुशिक्षित हो विचारशील हो। राज्य के मामलों को समझती हो, अँगरेजी रहन-सहन से परिचित हो। बड़े-बड़े अफसर आते हैं। उनकी मेमों का आदर-सत्कार कर सके। घर अँगरेजी ढंग से सजा सके। बातचीत करने में चतुर हो। बाहर निकलने से न झिझके। ऐसी स्त्री आसानी से नहीं मिल सकती। मिली भी तो उसमें चरित्र-दोष अवश्य होंगे। जहाँ ऐसी स्त्रियों को देखता हूँ, भ्रष्ट ही पाता हूँ। मैं तो ऐसी स्त्री चाहता हूँ, जो इन गुणों के साथ निष्कलंक हो। ऐसी एक कन्या मेरी निगाह में है, लेकिन वहाँ मेरी रसाई नहीं हो सकती।

मुंशी—क्या इसी शहर में है?

राजा शहर में ही नहीं, घर ही में समझिए।

मुंशी—अच्छा, समझ गया। मैं तो चकरा गया कि इस शहर में ऐसा कौन राजा रईस है, जहाँ हुजूर की रसाई नहीं हो सकती। वह तो सुनकर निहाल हो जाएँगे, दौड़ते हुए करेंगे। कन्या सचमुच देवी है। ईश्वर ने उसे रानी बनने ही के लिए बनाया है। ऐसी विचारशील लड़की मेरी नजर से नहीं गुजरी।

राजा—आप जरा घरवालों को आजमाइए तो। आप जानते हैं न, दीवान साहब के घर की स्वामिनी लौंगी है ?

मुंशी—वह क्या करेगी।

राजा—वही सब कुछ करेगी। दीवान साहब को तो उसने भेड़ा बना रखा है। और, है भी अभिमानिनी। न उस पर लालच का कुछ दाँव चलता है, न खुशामद का।

मुंशी—हुजूर, उसकी कुंजी मेरे पास है। खुशामद से तो उसका मिजाज और भी बढ़ता है। कितनी ही बड़े दरजे पर पहुँच जाए, पर है तो वह नीच जात। उसे धमकाकर, मारने का भय दिखाकर, आप उससे जो काम चाहें करा सकते हैं। नीच जात बातों से नहीं, लातों ही से मानती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुंशीजी दीवान साहब के मकान पर पहुँचे। दीवान साहब मनोरमा के साथ गंगास्नान को गए हुए थे। लौंगी अकेली बैठी हुई थी। मुंशीजी फूले न समाए। ऐसा ही मौका चाहते थे। जाते ही जाते विवाह की बात छेड़ दी।

लौंगी ने कहा—तहसीलदार साहब, कैसी बातें करते हो ? अपनी रानी को धन के साथ बेचना थोड़े ही है। ब्याह जोड़ का होता है कि ऐसा बेजोड़ ? लड़की कंगाल को दे, पर बूढ़े को न दे। गरीब रहेगी तो क्या, जन्म भर का रोना-झींकना तो न रहेगा।

मुंशी—तो राजा बूढ़े हैं ?

लौंगी—और नहीं क्या छैला जवान हैं ?

मुंशी—अगर यह विवाह न हुआ, तो समझ लो कि ठाकुर साहब कहीं के न रहेंगे। तुम नीच जात राजाओं का स्वभाव क्या जानो ? राजा लोगों को जहाँ किसी बात की धुन सवार हो गई, फिर उसे पूरा किए बिना न मानेंगे, चाहे उनका राज्य ही क्यों न मिट जाए। राजाओं की बात को दुलखना हँसी नहीं है, क्रोध में आकर न जाने क्या हुक्म दे बैठें। बात तो समझती ही नहीं हो, सब धान बाईस पसेरी ही तौलना चाहती हो।

लौंगी—यह तो अनोखी बात है कि या तो अपनी बेटी दे, या मेरा गाँव छोड़। ऐसी धमकी देकर थोड़े ही ब्याह होता है।

मुंशी—राजाओं-महाराजाओं का काम इसी तरह होता है। अभी तुम इन राजा साहब को जानती नहीं हो। सैकड़ों आदमियों को भुनवा के रख दिया, किसी

ने पूछा तक नहीं। अभी चाहें जिसे लुटवा लें, चाहे जिसके घर में आग लगवा दें। अफसरों से दोस्ती है ही, कोई उनका कर ही क्या सकता है? जहाँ एक अच्छी-सी डाली भेज दी, काम निकल गया।

लौंगी—तो यों कहो कि पूरे डाकू हैं।

मुंशी—डाकू कहो, लुटेरे कहो, सभी कुछ हैं। बात जो थी, मैंने साफ-साफ कह दी। यह चारपाई पर बैठकर पान चबाना भूल जायगा।

लौंगी—तहसीलदार साहब, तुम तो धमकाते हो, जैसे हम राजा के हाथों बिक गए हों। रानी रूठेंगी, अपना सोहाग लेंगी। अपनी नौकरी ही लेंगे, ले जाएँ। भगवान् का दिया खाने को बहुत है।

मुंशी—अच्छी बात है, मगर याद रखना, खाली नौकरी से हाथ धोकर गला न छूटेगा। राजा लोग जिसे निकालते हैं, कोई-न-कोई दाग भी जरूर लगा देते हैं। एक झूठा इलजाम भी लगा देंगे, तो कुछ करते-धरते न बनेगा। यही कह दिया कि इन्होंने सरकारी रकम उड़ा ली है, तो बताओ क्या होगा? समझ से काम लो। बड़ों से रार मोल लेने में अपना निबाह नहीं है। तुम अपना मुँह बन्द रखो, हम दीवान साहब को राजी कर लेंगे। अगर तुमने भाँजी मारी, तो बला तुम्हारे ही सिर आएगी। ठाकुर साहब चाहे इस वक्त तुम्हारा कहना मान जाएँ, पर जब चरखे में फँसेंगे, तो सारा गुस्सा तुम्हीं पर उतारेंगे। कहेंगे, तुम्हीं ने मुझे चौपट किया। सोचो जरा।

लौंगी गहरे सोच में पड़ गई। वह और सब कुछ सह सकती थी, दीवान साहब का क्रोध न सह सकती थी। वह भी जानती थी कि दीवान साहब के दिल में ऐसा खयाल आना असम्भव नहीं है। मनोरमा के रंगढंग से भी उसे मालूम हो गया था कि वह राजा साहब को दुतकारना नहीं चाहती। जब वे लोग राजी हैं, तो मैं क्यों बोलूँ? कहीं पीछे से कोई आफत आई, तो मेरे ही सिर के बाल नोंचे जाएँगे। मुंशी जी ने भले चेता दिया, नहीं तो मुझसे बिना बोले कब रहा जाता?

अभी उसने कुछ जवाब न दिया था कि दीवान साहब स्नान करके लौट आए। उन्हें देखते ही लौंगी ने इशारे से ही बुलाया और अपने कमरे में ले जाकर उनके कान में बोली—राजा साहब ने मनोरमा के ब्याह के लिए सन्देश भेजा है।

ठाकुर—तुम्हारी क्या सलाह है?

लौंगी—जो तुम्हारी इच्छा हो, मेरी सलाह क्या पूछते हो!

ठाकुर—यही मेरी बात का जवाब है? मुझे अपनी इच्छा से करना होता, तो पूछता ही क्यों?

लौंगी—मेरी बात मानोगे तो हुई नहीं, पूछने से फायदा?

ठाकुर—कोई बात बता दो, जो मैंने तुम्हारी इच्छा से न की हो?

लौंगी—कोई बात भी मेरी इच्छा से नहीं होती। एक बात हो, तुम्हीं कोई बात बता दो, जो मेरी इच्छा से हुई हो? तुम करते ह

हाँ, मैं अपना धर्म समझ के भूँक लेती हूँ।

ठाकुर—तुम्हारी इन्हीं बातों पर मेरा मारने को जी चाहता है। तू क्या चाहती है कि मैं अपनी जवान कटवा लूँ?

लौंगी—उसकी परीक्षा तो अभी हुई जाती है। तब पूछती हूँ कि मेरी इच्छा से हो रहा है कि विना इच्छा के। मैं कहती हूँ, मुझे यह विवाह एक आँख नहीं भाता। मानते हो?

ठाकुर—हाँ मानता हूँ! जाकर मुंशी जी से कहे देता हूँ।

लौंगी—मगर राजा साहब बुरा मान जाएँ, तो?

ठाकुर—कुछ परवा नहीं।

लौंगी—नौकरी जाती रहे, तो?

ठाकुर—कुछ परवा नहीं। ईश्वर का दिया बहुत है, और न भी हो तो क्या? एक बात निश्चय कर ली, तो उसे करके छोड़ेंगे चाहे उसके पीछे प्राण ही क्यों न चले जाएँ।

लौंगी—मेरे सिर के बाल तो न नोंचने लगोगे कि तूने ही मुझे चौपट किया? अगर ऐसा करना हो, तो मैं साफ कहती हूँ, मंजूर कर लो। मुझे बाल नुचवाने का बूता नहीं हैं।

ठाकुर—क्या मुझे बिलकुल गया-गुजरा समझती है? मैं जरा झगड़े से बचता। हूँ, तो तूने समझ लिया कि इनमें कुछ दम नहीं है। लत्ते-लत्ते उड़ जाऊँ, पर विशालसिंह से लड़की का विवाह न करूँ? तूने समझा क्या है? लाख गया बीता हूँ तो भी क्षत्रिय हूँ।

दीवान साहब उसी जोश में उठे, आकर मुंशीजी से बोले—आप राजा साहब से जाकर कह दीजिए कि हमें विवाह करना मंजूर नहीं।

लौंगी भी ठाकुर साहब के पीछे-पीछे आयी थी। मुंशीजी ने उसकी तरफ तिरस्कार से देखकर कहा – आप इस वक्त गुस्से में मालूम होते हैं। राजा साहब नें बड़ी मिन्नत करके और बहुत डरते-डरते आपके पास यह सन्देशा भेजा है। आपने मंजूर न किया, तो मुझे भय है कि वह जहर न खा लें।

लौंगी—भला, जब जहर खाने लगेंगे, तब देखी जाएगी। इस वक्त आप जाकर यही कह दीजिए।

मुंशी—दीवान साहब, इस मामले में जरा-समझकर फैसला कीजिए।

लौंगी—राजा साहब के दौलत के सिवा और क्या है? दौलत ही तो संसार में सब कुछ नहीं।

मुंशी—सब कुछ न हो, लेकिन इतनी तुच्छ भी नहीं।

लौंगी—शादी-ब्याह के मामले में मैं उसे तुच्छ समझती हूँ।

मुंशी—यह मैं कब कहता हूँ कि दौलत संसार की सब चीजों से बढ़कर है! आप लोगों की दुआ से जानता हूँ कि सुख का मूल सन्तोष है। एक आदमी जल

और स्थल के सारे रत्न पाकर गरीब रह सकता है, दूसरा फटे वस्त्रों और रूखी रोटियों में भी धनी हो सकता है।

सहसा मनोरमा आकर खड़ी हो गई। यह वाक्य उसके कान में भी पड़ गया। समझी, धन की निन्दा हो रही है। बात काटकर बोली—इसे सन्तोष नहीं, मूर्खता कहना चाहिए।

ठाकुर—अगर सन्तोष मूर्खता है, तो संसार भर के नीति ग्रन्थ, उपनिषदों से लेकर कुरान तक मूर्खता के ढेर लग जाएँगे। सन्तोष से अधिक और किसी तप की महिमा नहीं गायी गई है। धन ही पाप, द्वेष और अन्याय का मूल है।

मनोरमा—संसार के धर्मग्रन्थ, उपनिषदों से लेकर कुरान तक, उन लोगों के रचे हुए हैं, जो रोटियों के मोहताज थे। उन्होंने अंगूर खट्टे समझकर धन की निन्दा की तो कोई आश्चर्य नहीं। अगर कुछ ऐसे आदमी हैं, जो धनी होकर भी धन की निन्दा करते हैं, तो मैं उन्हें धूर्त समझती हूँ, जिन्हें अपने सिद्धान्त पर व्यवहार करने का साहस नहीं।

ठाकुर साहब ने समझा, मनोरमा ने यह व्यंग उन्हीं पर किया है। चिढ़कर बोले—ऐसे लोग भी तो हो गए हैं, जिन्होंने धन ही नहीं, राज-पाट पर भी लात मार दी है।

मनोरमा—ऐसे आदमियों के नाम उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। मेरी समझ में तो धन ही सुख और कल्याण का मूल है। संसार में जितना परोपकार होता है, धनियों ही के हाथों होता है।

ठाकुर—संसार में जितना अत्याचार होता है, वह भी तो धनियों ही के हाथों होता है।

मनोरमा—हाँ मानती हूँ, धन से अत्याचार भी होता है, लेकिन काँटे से फूल का आदर कम नहीं होता। संसार में धन सर्वप्रधान वस्तु है। जिन्दगी का कौन-सा काम है, जो धन के बिना चल सके? धर्म भी बिना धन के नहीं हो सकता। यही कारण है कि संसार ने धन को जीवन का लक्ष्य मान लिया है। धन का निरादर करके हमने प्रभुत्व खो दिया और यदि हमें संसार में रहना है, तो हमें धन की उपासना करनी पड़ेगी! इसी में लोक-परलोक में हमारा उद्धार होगा।

मुंशीजी ने विजय गर्व से हँसकर कहा—कहिए, दीवान साहब, मेरी डिग्री हुई कि अब भी नहीं।

ठाकुर—मुझे मालूम होता है, धन के माहात्म्य पर इसने कोई लेख लिखा था और वही पढ़ सुनाया। क्यों मनोरमा, है न यही बात?

मनोरमा—अभी तो मैंने यह लेख नहीं लिखा, लेकिन लिखूँगी तो उसमें यही विचार प्रकट करूँगी। मेरे शब्दों में कदाचित आपको दुराग्रह का भाव झलकता हुआ मालूम होता हो। इसका कारण यह है कि मैं अभी एक अंगरेजी की किताब पढ़े चली आती हूँ जिसमें सन्तोष ही का गुणानुवाद किया गया है।

मुंशीजी ने देखा, मनोरमा के मन की थाह लेने का अच्छा अवसर है। ठाकुर साहब की ओर आँखें मारकर बोले—मनोरमा, मेरे विचार तुम्हारे विचारों से बिलकुल मिलते हैं। धन से जितना अधर्म होता है, अगर ज्यादा नहीं, तो उतना ही धर्म भी होता है; लेकिन कभी-कभी ऐसे भी मौके आ जाते हैं, जब धन के मुकाबले में और कितनी ही बातों का लिहाज करना पड़ता है। कन्या का विवाह ऐसा ही मौका है। मेरी कन्या का विवाह होने वाला है। मेरे सामने इस वक्त दो वर हैं। एक तो अधेड़ आदमी है; पर दौलत उसके घर में गुलामी करती रहती है, दूसरा एक सुन्दर युवक है, बहुत ही होनहार, लेकिन गरीब। बताओ, किससे कन्या का विवाह करूँ?

ठाकुर— अगर कन्या की बात है, तो मैं यही सलाह दूँगा कि आप दौलत पर न जाइए। उसी युवक से विवाह कीजिए।

लौंगी—ऐसा तो होना ही चाहिए। ब्याह जोड़े का अच्छा होता है। ऐसा ब्याह किस काम का कि वह बहू का बाप मालूम हो, बेचारी कन्या के दिन रोते ही बीतें।

मुंशी—और तुम्हारी क्या राय है, मनोरमा?

मनोरमा ने कुछ लजाते हुए कहा—आप जैसा उचित समझें, करें।

मुंशी—नहीं; इस विषय में तुम्हारी राय बुड्ढों की राय से बढ़कर है।

मनोरमा—मैं तो समझती हूँ कि जो दिन खाने-पहनने, सैर-तमाशे के होते हैं, अगर वे किसी गरीब आदमी के साथ चक्की चलाने और चौका-बरतन करने में कट गए तो जीवन का सुख ही क्या? हाँ, इतना मैं अवश्य कहूँगी कि उम्र का एक साल एक लाख से कम मूल्य नहीं रखता।

यह कहकर मनोरमा चली गयी। उसके जाने के बाद दीवान साहब कई मिनट तक ज़मीन की ओर ताकते रहे। अन्त में लौंगी से बोले—तुमने इसकी बातें सुनीं?

लौंगी—सुनीं क्यों नहीं, क्या बहरी हूँ?

ठाकुर—फिर?

लौंगी—फिर क्या, लड़के हैं, जो मुँह में आया बकते हैं, उनके बकने से क्या होता है। माँ-बाप का धर्म है कि लड़कों के हित ही की करें। लड़का माहुर माँगे तो क्या माँ-बाप उसे माहुर दे देंगे? कहिए मुंशीजी!

मुंशी—हाँ, यह तो ठीक है; लेकिन जब लड़के अपना भला-बुरा समझने लगें तो उनका रुख देखकर ही काम करना चाहिए।

लौंगी—जब तक माँ-बाप जीते हैं, तब तक लड़कों को बोलने का अख्तियार ही क्या है? आप जाकर राजा साहब से यही कह दीजिए।

मुंशी—दीवान साहब, आपका भी यही फैसला है?

ठाकुर—साहब, मैं इस विषय में सोचकर जवाब दूँगा। हाँ, आप मेरे दोस

हैं; इस नाते आपसे इतना कहता हूँ कि आप कुछ इस तरह गोल-मोल बातें कीजिए कि मुझ पर कोई इल्जाम न आने पाए। आपने तो बहुत दिनों अफसरी की है, और अफसर लोग ऐसी बातें करने में निपुण भी होते हैं।

मुंशीजी मन में लौंगी को गालियाँ देते हुए यहाँ से चले। जब फाटक के पास पहुँचे, तो देखा कि मनोरमा एक वृक्ष के नीचे घास पर लेटी हुई है। उन्हें देखते ही वह उठकर खड़ी हो गई। मुंशीजी जरा ठिठक गए और बोले—क्यों मनोरमा रानी, तुमने जो मुझे सलाह दी, उस पर खुद अमल कर सकती हो?

मनोरमा ने शर्म से सुर्ख होकर कहा – यह तो मेरे माता-पिता के निश्चय करने की बात है।

मुंशीजी ने सोचा, अगर जाकर राजा साहब से कह देता हूँ कि दीवान साहब ने साफ इनकार कर दिया, तो मेरी किरकिरी होती है। राजा साहब कहेंगे, फिर गये ही किस बिरते पर थे? शायद यह भी समझें कि इसे मामला तय करने की तमीज ही नहीं। तहसीलदारी नहीं की, भाड़ झोंकता रहा, इसलिए आपने जाकर दून की हाँकनी शुरू की—हुजूर, बुढ़िया बला की चुड़ैल है, हत्थे पर तो आती ही नहीं, इधर भी झुकती है, उधर भी; और दीवान साहब तो निरे मिट्टी के ढेले हैं।

राजा साहब ने अधीर होकर पूछा—आखिर आप तय क्या कर आये?

मुंशी—हुजूर के इकबाल से फतह हुई, मगर दीवान साहब खुद आपसे शादी की बातचीत करते झेंपते हैं। आपकी तरफ से बातचीत शुरू हो, तो शायद उन्हें इनकार न होगा। मनोरमा रानी तो सुनकर खुश हुई।

राजा—अच्छा! मनोरमा खुश हुई। खूब हँसी होगी। आपने कैसे जाना कि खुश है?

मुंशी—हुजूर, सब कुछ साफ-साफ कह डाला, उम्र का फर्क कोई चीज नहीं, आपस में मुहब्बत होनी चाहिए। मुहब्बत के साथ दौलत भी हो, तो क्या पूछना। हाँ, दौलत इतनी होनी चाहिए, जो किसी तरह कम न हो। और कितनी ही बातें इसी किस्म की हुईं। बराबर मुसकराती रहीं।

राजा—तो मनोरमा को पसन्द है?

मुंशी—उन्हीं की बातें सुनकर तो लौंगी भी चकरायी।

राजा—तो मैं आज ही बातचीत शुरू कर दूँ? कायदा तो यही है कि उधर से 'श्रीगणेश' होता, लेकिन राजाओं में अक्सर पुरुष की ओर से भी छेड़छाड़ होती है। पश्चिम में तो सनातन से यही प्रथा चली आयी है। मैं आज ठाकुर साहब की दावत करूँगा और मनोरमा को भी बुलाऊँगा। आप भी जरा तकलीफ कीजिएगा।

राजा साहब ने बाकी दिन दावत के सामान करने में काटा। हजामत बनवायी। एक भी पका बाल न रहने दिया। उबटन मलवाया। से-अच्छी अचकन निकाली, केसरिये रंग का रेशमी साफा

मोतियों की माला डाली, आँखों में सुरमा लगाया, माथे में केशर का तिलक लगाया; कमर में रेशमी कमरबन्द लपेटा, कन्धे पर शाह रूमाल रखा, मखमली गिलाफ में रखी हुई तलवार कमर से लटकायी और यों सज-सजाकर जब वह खड़े हुए, तो खासे छैला मालूम होते थे। ऐसा बाँका जवान शहर में किसी ने कम देखा होगा। उनके सौम्य स्वरूप और सुगठित शरीर पर यह वस्त्र और आभूषण खूब खिल रहे थे।

निमंत्रण तो जा ही चुका था। रात के नौ बजते-बजते दीवान साहब और मनोरमा आ गए। राजा साहब उनका स्वागत करने दौड़े। मनोरमा ने उनकी ओर देखा तो मुसकरायी, मानो कह रही थी—ओ हो! आज तो कुछ और ही ठाठ हैं। उसने आज और ही वेष रचा था। उसकी देह पर एक भी आभूषण न था। केवल एक सुफेद साड़ी पहने हुए थी। उसका रूप माधुर्य कभी इतना प्रस्फुटित न हुआ था। अलंकार भावों के अभाव का आवरण है। सुन्दरता को अलंकारों की जरूरत नहीं। कोमलता अलंकारों का भार नहीं सह सकती।

दीवान साहब इस समय बहुत चिन्तित मालूम होते थे। उनकी रक्षा करने के लिए यहाँ लौंगी न थी और बहुत जल्द उनके सामने एक भीषण समस्या आनेवाली थी। दावत की मंशा वह खूब समझ रहे थे। कुछ समझ में न आता था, क्या कहूँगा। लौंगी ने चलते-चलते उनसे समझा के कह दिया था—'हाँ' न करना। साफ-साफ कह देना, यह बात नहीं हो सकती। मगर ठाकुर साहब उन वीरों में थे, जिनकी पीठ पर पाली में भी हाथ फेरने की जरूरत रहती है। बेचारे बिल-सा ढूँढ़ रहे थे कि कहाँ भाग जाऊँ। सहसा मुंशी वज्रधर आ गए। दीवान साहब की आँखें सी मिल गईं। दौड़े और उन्हें लेकर एक अलग कमरे में सलाह करने लगे। मनोरमा पहले ही झूलेघर में आकर इधर-उधर टहल रही थी। अब न वह हरियाली थी, न वह रौनक, न वह सफाई। सन्नाटा छाया हुआ था। राजा साहब ने उसे इधर आते देख लिया। वह उससे एकान्त में बातें करना चाहते थे। मौका पाया, तो उसके सामने आकर खड़े हो गए।

मनोरमा ने कहा—रानीजी के सामने इस झूले-घर में कितनी रौनक थी। अब जिधर देखती हूँ, सूना-ही-सूना दिखाई देता है।

राजा—अब तुम्हीं से इसकी फिर रौनक होगी, मनोरमा! यह भी मेरे हृदय की तरह तुम्हारी ओर आँखें लगाए बैठा है।

प्रणय के ये शब्द पहली बार मनोरमा के कानों में पड़े। उसका मुखमंडल लज्जा से आरक्त हो गया। वह सहमी-सी खड़ी रही। कुछ बोल न सकी।

राजा साहब फिर बोले—मनोरमा, यद्यपि मेरे तीन रानियाँ हैं, पर मेरा हृदय अब तक अक्षुण्ण है, उस पर आज तक किसी का अधिकार नहीं हुआ। कदाचित् वह अज्ञात रूप से तुम्हारी राह देख रहा था। तुमने मेरी रानियों को देखा है, उनकी बातें भी सुनी हैं। उनमें ऐसी कौन है, जिसकी प्रेमोपासना की जाए? मुझे

तो यही आश्चर्य होता है कि इतने दिन उनके साथ कैसे काटे !

मनोरमा ने गम्भीर होकर कहा—मेरे लिए यह सौभाग्य की बात होगी कि आपकी प्रेम पात्री बनूँ; पर···मुझे भय है कि मैं आदर्श पत्नी न बन सकूँगी। कारण तो नहीं बतला सकती, मैं स्वयं नहीं जानती; पर मुझे यह भय अवश्य है। मेरी हार्दिक इच्छा सदैव यही है कि किसी बन्धन में न पड़ूँ। पक्षियों की भाँति स्वाधीन रहना चाहती हूँ।

राजा ने मुसकराते हुए कहा—मनोरमा, प्रेम तो कोई बन्धन नहीं है।

मनोरमा—प्रेम बन्धन न हो; पर धर्म तो बन्धन है। मैं प्रेम के बन्धन से नहीं घबराती, धर्म के बन्धन से घबराती हूँ। आपको मुझ पर बड़ी कठोरता से शासन करना होगा। मैं आपको अपनी कुंजी पहले ही से बताए देती हूँ। मैं आपको धोखा नहीं देना चाहती। मुझे आपसे प्रेम नहीं है। शायद हो भी न सकेगा। (मुसकराकर) मैं रानी तो बनना चाहती हूँ; पर किसी राजा की रानी नहीं। हाँ, आपको प्रसन्न रखने की चेष्टा करूँगी। जब आप मुझे भटकते देखें टोक दें। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं प्रेम करने के लिए नहीं, केवल विलास करने के लिए ही बनाई गई हूँ।

राजा—तुम अपने ऊपर जुल्म कर रही हो, मनोरमा! तुम्हारा वेष तुम्हारी बातों का विरोध कर रहा है। तुम्हारे हृदय में वह प्रकाश है, जिसकी एक ज्योति मेरे समस्त जीवन के अंधकार का नाश कर देगी।

मनोरमा—मैं दोनों हाथों से धन उड़ाऊँगी। आपको बुरा तो न लगेगा? मैं धन की लौंडी बनकर नहीं, उसकी रानी बनकर रहूँगी।

राजा—मनोरमा, राज्य तुम्हारा है, धन तुम्हारा है, मैं तुम्हारा हूँ। सब तुम्हारी इच्छा के दास होंगे।

मनोरमा—मुझे बातें करने की तमीज नहीं है। यह तो आप देख ही रहे हैं। सौतेली अम्माँ कहती हैं कि तू बातें करती है, तो लाठी-सी मारती है।

राजा—मनोरमा, उषा में अगर संगीत होता, तो वह भी इतना कोमल न होता।

मनोरमा—पिताजी से तो अभी आपकी बातें नहीं हुईं?

राजा—अभी तो नहीं, मनोरमा, अवसर पाते ही करूँगा; पर कहीं इनकार कर दिया तो?

मनोरमा—मेरे भाग्य का निर्णय वही कर सकते हैं। मैं उनका अधिकार नहीं छीनूँगी।

दोनों आदमी बरामदे में पहुँचे, तो मुंशीजी और दीवान साहब खड़े थे। मुंशीजी ने राजा साहब से कहा—हुजूर को मुबारक देता हूँ।

दीवान—मुंशीजी···

मुंशी—हुजूर, आज जलसा होना चाहिए। (मनोरमा से) महारानी

सोहाग सदा सलामत रहे ।

दीवान—जरा मुझे सोच…

मुंशी—जनाव, शुभ काम में सोच-विचार कैसा ? भगवान जोड़ी सलामत रखें !

सहसा बाग में बैंड बजने लगा और राजा के कर्मचारियों का समूह इधर-उधर से आ-आकर राजा साहब को मुबारकबाद देने लगा । दीवान साहब सिर झुकाए खड़े थे । न कुछ कहते बनता था, न सुनते । दिल में मुंशीजी को हजारों गालियां दे रहे थे कि इसने मेरे साथ कैसी चाल चली ! आखिर यह सोचकर दिल को समझाया कि लौंगी से सब हाल कह दूंगा । भाग्य में यही बदा था, तो मैं करता क्या ? मनोरमा भी तो खुश है ।

बारह बजते-बजते मेहमान लोग सिधारे । राजा साहब के पांव जमीन पर न पड़ते थे । सारे आदमी सो रहे थे; पर वह बगीचे में हरी-हरी घास पर टहल रहे थे । चैत्र की शीतल, सुखद, मन्द समीर; चन्द्रमा की शीतल, सुखद, मन्द छटा और बाग की शीतल, सुखद, मन्द सुगन्ध में उन्हें कभी ऐसा उल्लास, ऐसा आनन्द न प्राप्त हुआ था । मन्द समीर में मनोरमा थी, चन्द्र की छटा में मनोरमा थी, शीतल सुगन्ध में मनोरमा थी, और उनके रोम-रोम में मनोरमा थी । सारा विश्व मनोरमामय हो रहा था ।

18

चक्रधर को जेल में पहुंचकर ऐसा मालूम हुआ कि एक नई दुनिया में आ गए जहां मनुष्य ही मनुष्य है, ईश्वर नहीं । उन्हें ईश्वर के दिये हुए वायु और प्रकाश के मुश्किल से दर्शन होते थे । मनुष्य के रचे हुए संसार में मनुष्य की कितनी हत्या हो सकती हैं, इसका उज्ज्वल प्रमाण सामने था । भोजन ऐसा मिलता था, जिसे शायद कुत्ते भी सूंघकर छोड़ देते । वस्त्र ऐसे, जिन्हें कोई भिखारी भी पैरों से ठुकरा देता, और परिश्रम इतना करना पड़ता था, जितना बैल भी न कर सके । जेल शासन का विभाग नहीं, पाशविक व्यवसाय है, आदमियों से जबरदस्ती काम लेने का बहाना, अत्याचार का निष्कंटक साधन । दो रुपये रोज का काम लेकर, दो आने का खाना खिलाना ऐसा अन्याय है, जिसकी कहीं नजीर नहीं मिल सकती । जिस परिश्रम से एक कुनबे का पालन होता हो, वह अपना पेट भी नहीं भर सकता । इन्साफ तो हम तब जानें, जब अपराधी को दंड दीजिए, उससे खूब काम लीजिए; लेकिन उनकी मेहनत के पैसे उसके घर पहुंचा दीजिए । अपराधी के साथ उसके घरवालों की प्राण-हत्या न कीजिए । अगर यह कहिए कि अपराधी घरवालों की सलाह से अपराध करता है, तो उसका प्रमाण दीजिए । बहुत से

कुकर्म ऐसे होते हैं, जिनकी घरवालों को गन्ध तक नहीं मिलती। ऐसी दशा में घरवालों को क्यों दण्ड दिया जाए? फिर नाबालिगों का क्या दोष? वह तो कुकर्म में शरीक नहीं होते। उनका क्यों खून करते हो? आदि से अन्त तक सारा व्यापार घृणित, जघन्य, पैशाचिक और निंद्य है। अनीति की भी अक्ल यहाँ दंग है, दुष्टता भी यहाँ दाँतों तले उँगली दबाती है।

मगर कुछ ऐसे भी भाग्यवान् हैं, जिनके लिए ये जेल कल्पवृक्ष से कम नहीं। बैल अनाज पैदा करता है, तो अनाज का भूसा खाता है। कभी-कभी खली-चोकर और दाना भी उसके कंठतले पहुँच जाता है। कैदी बैल से भी गया-गुजरा है। वह नाना प्रकार के शाक-भाजी और फल-फूल पैदा करता है; पर उसकी गन्ध भी उसे नहीं मिलती। नित्यप्रति सब्जी, फल और फूलों से भरी हुई डालियाँ हुक्काम के बँगलों पर पहुँच जाती है। कैदी देखता है और किस्मत ठोककर रह जाता है।

चक्रधर को चक्की पीसने का काम दिया गया। प्रातःकाल गेहूँ तौलकर दे दिया जाता और संध्या तक उसे पीसना जरूरी था। कोई उज्र या बहाना न सुना जाता था। बीच में केवल एक बार खाने की छुट्टी मिलती थी। इसके बाद फिर चक्की में जुत जाना पड़ता था। वह बराबर सावधान रहते थे कि किसी कर्मचारी को उन्हें कुछ कहने का मौका न मिले, लेकिन गालियों से बात करना जिनकी आदत हो, उन्हें कोई क्योंकर रोकता? प्राय. रोज फटकार और गालियाँ खानी पड़ती थीं। और उनकी रातें सोने के बदले रोने और दिल को शान्त करने में कट जाती थीं।

किन्तु विपत्ति का अन्त यहीं तक न था। कैदी लोग उन पर ऐसी अश्लील, ऐसी अपमानजनक बातें कसते थे कि क्रोध और घृणा से उनका रक्त खौल उठता, पर लहू का घूँट पीकर रह जाते थे। न कोई शिकायत सुननेवाला था, न घाव पर मरहम रखनेवाला। सबसे बड़ी मुसीबत का सामना रात को होता था, जब दरवाजे बन्द हो जाते थे और अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए बाहुबल के सिवा कोई साधन न होता था। उनके कमरे में पाँच कैदी रहते थे। उनमें धन्नासिंह नाम का एक ठाकुर भी था, बहुत ही बलिष्ठ और गजब का शैतान। वह उनका नेता था। वे सब इतना शोर मचाते, इतनी गन्दी, घृणोत्पादक बातें करते कि चक्रधर को कानों में उँगलियाँ डालनी पड़ती थीं। उन्हें प्रतिक्षण यह भय रहता था कि ये सब न जाने कब मेरी दुर्गति कर डालें। रात को जब तक वे सो न जाएँ, वह खुद न सोते थे। हुक्म तो यह था कि कोई कैदी तम्बाकू भी न पीने पाए, पर यहाँ गाँजा, भंग, शराब, अफीम—यहाँ तक कि कोकेन भी न जाने किस तिकड़म से पहुँच जाते थे। नशे में वे इतने उद्दंड हो जाते, मानो नर तनधारी राक्षस हों।

धीरे-धीरे चक्रधर को इन आदमियों से सहानुभूति होने लगी। सोचा, इन परिस्थितियों में पड़कर ऐसा कौन प्राणी है, जिसका पतन न हो जाएगा? बहुत दिनों से सेवा-कार्य करते रहने पर भी पहले उनको कैदियों से मिलने-जुलने

झिझक होती थी। उनकी गन्दी बातें सुनकर वह घृणा से मुँह फेर लेते थे। उन्हें सभी श्रेणी के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था; पर ऐसे निर्लज्ज, गालियाँ खाकर हँसनेवाले, दुर्व्यसनों में डूबे हुए, मुँहफट, बेहया आदमी उन्होंने अब तक न देखे थे। उन्हें न गालियों की लाज थी, न मार का भय। कभी-कभी उन्हें ऐसी-ऐसी अस्वाभाविक ताड़नाएँ मिलती थीं कि चक्रधर के रोएँ खड़े हो जाते थे, मगर मजाल कि किसी कैदी की आँखों में आँसू आए, वह व्यापार देख-देखकर चक्रधर अपने कष्टों को भूल जाते थे। कोई कैदी उन्हें गाली देता, तो चुप हो जाते और इस ताक में रहते थे कि कब इसके साथ सज्जनता दिखाने का अवसर मिले।

तहसीलदार साहब का हुक्काम से मेल-जोल था ही। रियासत में नौकर हुए थे, यह मेल-जोल और भी बढ़ गया था। उन लोगों को देहातों से ला-लाकर कोई न कोई सौगात भेजते रहते थे। उसी मुलाहज़े की बदौलत उन्हें समय-समय पर चक्रधर के पास खाने-पीने की चीजें भेजने में कोई दिक्कत न होती थी। चक्रधर इन चीजों को पाते ही कैदियों में बाँट देते। ऐसी लूट मचती कि कभी-कभी उनको अपने मुँह में जरा-सा भी रखने की नौबत न आती। जेल के छोटे कर्मचारी तो चाहते थे कि हमीं सब कुछ हड़प कर जाएँ, इसलिए जब वे चीजें उनके हाथ न लगकर कैदियों को मिल जाती थीं, तो वे इसकी कसर चक्रधर से निकालते थे—काम लेने में और भी सख्ती करते, जरा-जरा सी बात पर गालियाँ देने पर तैयार हो जाते, लेकिन कैदियों पर चक्रधर की सज्जनता का कुछ-न-कुछ असर अवश्य होता था। चक्रधर के साथ उनका बर्ताव कुछ नम्र होता जाता था। जहाँ चक्रधर की हँसी उड़ाते थे, उन्हें मुँह चिढ़ाते थे, वहाँ अब उनकी बातों की ओर ध्यान देने लगे। आत्मा को आत्मा ही की आवाज जगा सकती है।

चक्रधर का जीवन कभी इतना आदर्श न था। कैदियों को मौका मिलने पर धर्म-कथाएँ सुनाते, ईश्वर की दया और क्रोध का स्वरूप दिखाते। ईश्वर अपने भक्तों से कितना प्रसन्न होता है। उनके पापों को कितनी दया से क्षमा कर देता है। ईश्वर भक्तों की कथा इसका उज्ज्वल प्रमाण थी। केवल पश्चात्ताप का भाव मन में आना चाहिए। अजामिल और वाल्मीकि तर गए, तो क्या तुम और हम न तरेंगे? इन कथाओं को कैदी लोग इतने चाव से सुनते, मानो एक-एक शब्द उनके हृदय पर अंकित हो जाता था; किन्तु इनका असर बहुत जल्दी मिट जाता था, इतनी जल्दी कि आश्चर्य होता था। उधर कथा हो रही है और उधर लात-मुक्के चल रहे हैं। कभी वे इन कथाओं पर अविश्वासपूर्ण टीकाएँ करते और बात हँसी में उड़ा देते। एक कहता—लो धन्नासिंह, अब हम लोग बैकुण्ठ चलेंगे, कोई डर नहीं है। भगवान् क्षमा कर ही देंगे, वहाँ खूब जलसा रहेगा। दूसरा कहता—धन्नासिंह मैं तुझे न जाने दूंगा, ऊपर से ऐसा ढकेलूंगा कि हड्डियाँ टूट जाएँगी। भगवान् से कह दूंगा कि ऐसे पापी को बैकुण्ठ में रखोगे, तो तुम्हारे नरक में सियार लोटेंगे। तीसरा कहता—यार, वहाँ गाँजा मिलेगा कि नहीं? अगर गाँजे

को तरसना पड़ा, तो वैकुण्ठ ही किस काम का? वैकुण्ठ तो तब जानें कि वहाँ ताड़ी और शराब की नदियाँ हों। चौथा कहता—अजी, यहाँ से बोरियों गाँजा और चरस लेते चलेंगे, वहाँ के रखवाले क्या घूस न खाते होंगे? उन्हें कुछ भी दे-दिलाकर काम निकाल लेंगे। जब यहाँ जुटा लिया, तो वहाँ भी जुटा ही लेंगे। पर ऐसी अभक्तिपूर्ण आलोचनाएँ सुनकर भी चक्रधर हताश न होते। शनैः-शनैः उनकी भक्ति-चेतना स्वयं दृढ़ होती चली जाती थी। भक्ति की ऐसी शिक्षा उन्हें कदाचित् और कहीं न मिल सकती।

बलवान् आत्माएँ प्रतिकूल दशाओं ही में उत्पन्न होती हैं। कठिन परिस्थितियों में उनका धैर्य और साहस, उनकी सहृदयता और सहिष्णुता, उनकी बुद्धि और प्रतिभा अपना मौलिक रूप दिखाती है। आत्मोन्नति के लिए कठिनाइयों से बढ़कर कोई विद्यालय नहीं, कठिनाइयों ही में ईश्वर के दर्शन होते हैं और हमारी उच्चतम शक्तियाँ विकास पाती हैं। जिसने कठिनाइयों का अनुभव नहीं किया, उसका चरित्र बालू की भीत है, जो वर्षा के पहले ही झोंके में गिर पड़ती है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। महान् आत्माएँ कठिनाइयों का स्वागत करती हैं, उनसे घबराती नहीं; क्योंकि यहाँ आत्मोत्कर्ष के जितने मौके मिलते हैं, उतने और किसी दशा में नहीं मिल सकते। चक्रधर इस परिस्थिति को एक शिक्षार्थी की दृष्टि से देखते थे और विचलित न होते थे। उन्हें विश्वास था कि प्रकृति उन्हीं प्राणियों को परीक्षा में डालती है, जिनके द्वारा उसे संसार में कोई महान् उद्देश्य पूरा कराना होता है।

इस भाँति कई महीने गुजर गए। एक दिन संध्या समय चक्रधर दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद बैठे संध्या कर रहे थे कि कई कैदी आपस में बातें करते हुए निकले—आज इस दारोगा की खबर लेनी चाहिए। जब देखो, गालियाँ दिया करता है, सीधे मुँह तो बात ही नहीं करता। बात-बात पर मारने दौड़ता है। हम भी तो आदमी हैं, कहाँ तक सहें! अब आता ही होगा। ऐसा मारो कि जन्म भर को दाग हो जाए! यही न होगा कि साल दो साल की मीयाद और बढ़ जाएगी। बचा की आदत तो छूट जाएगी। चक्रधर इस तरह की बातें अक्सर सुनते थे, इस लिए उन्होंने इस पर कुछ विशेष ध्यान न दिया; मगर भोजन के समय ज्योंही दारोगा साहब आकर खड़े हुए और एक कैदी को देर में आने के लिए मारने दौड़े कि कई कैदी चारों तरफ से दौड़ पड़े और 'मारो-मारो' का शोर मच गया। दारोगाजी की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। कहीं भागने का रास्ता नहीं, कोई मददगार नहीं। चारों तरफ दीन नेत्रों से देखा, जैसे कोई बकरा भेड़ियों के बीच फँस गया हो। सहसा धन्नासिंह ने आगे बढ़कर दारोगाजी की गर्दन पकड़ी और इतनी जोर से दबाया कि उनकी आँखें बाहर निकल आईं। चक्रधर ने देखा, अब हुआ चाहता है, तो तीर की तरह झपटे, कैदियों के बीच में घुसकर धन्ना का हाथ पकड़ लिया और बोले—हट जाओ, क्या करते हो?

घन्नासिंह का हाथ ढीला पड़ गया; लेकिन अभी तक उसने गर्दन न छोड़ी।

चक्रधर—छोड़ो ईश्वर के लिए।

घन्नासिंह—जाओ भी, बड़े ईश्वर की पूंछ बने हो। जब यह रोज गालियाँ देता है, बात-बात पर हंटर जमाता है, तब ईश्वर कहाँ सोया रहता है, जो इस घड़ी जाग उठा? हट जाओ सामने से, नहीं तो सारा बाबूपन निकाल दूँगा। पहले इससे पूछो, अब तो किसी को गालियाँ न देगा, मारने तो न दौड़ेगा?

दारोगा—कसम कुरान की, जो कभी मेरे मुंह से गाली का एक हरफ भी निकले।

घन्नासिंह—कान पकड़ो।

दारोगा—कान पकड़ता हूँ।

घन्नासिंह—जाओ बचा, भले का मुंह देखकर उठे थे, नहीं तो आज जान न बचती; यहाँ कौन कोई रोनेवाला बैठा हुआ है।

चक्रधर—दारोगाजी, कहीं ऐसा न कीजिएगा कि जाकर वहाँ से सिपाहियों को चढ़ा लाइए और इन गरीबों को भुनवा डालिए।

दारोगा—लाहौल बिला कूवत! इतना कमीना नहीं हूँ।

दारोगा चलने लगे, तो घन्नासिंह ने कहा—मियाँ, गारद-सारद बुलायी, तो तुम्हारे हक में बुरा होगा, समझाए देते हैं। हमको क्या, न जीने की खुशी है, न मरने का रंज; लेकिन तुम्हारे नाम को कोई रोनेवाला न रहेगा।

दारोगाजी तो यहाँ से जान बचाकर भागे; लेकिन दफ्तर में जाते ही गारद के सिपाहियों को ललकारा, हाकिम-जिला को टेलीफोन किया और खुद बन्दूक लेकर समर के लिए तैयार हुए। दम के दम में सिपाहियों का दल संगीनें चढ़ाए आ पहुँचा और लपककर भीतर घुस पड़ा। पीछे-पीछे दारोगाजी भी दौड़े। कैदी चारों ओर से घिर गए।

चक्रधर पर चारों ओर से बौछार पड़ने लगी।

घन्नासिंह—अब कहो, भगतजी, छुड़वा तो दिया, जाकर समझाते क्यों नहीं? गोली चली तो?

एक कैदी—गोली चली, तो पहले इन्हीं की चटनी की जाएगी।

चक्रधर—तुम लोग अब भी शान्त रहोगे, तो गोली न चलेगी। मैं इसका जिम्मा लेता हूँ।

घन्नासिंह—तुम उन सबों से मिले हुए हो। हमें फंसाने के लिए यह ढोंग रचा है।

दूसरा कैदी—दगाबाज है, मारके गिरा दो।

चक्रधर—मुझे मारने से अगर तुम्हारी भलाई होती हो, तो यही सही।

तीसरा कैदी—तुम जैसे सीधे आप हो, वैसे ही सबको समझते हो; लेकिन तुम्हारे कारन हम लोग सेंत-मेंत में पिटे कि नहीं?

धन्नासिंह—सीधा नहीं, उनसे मिला हुआ है। भगत सभी दिन के मेले होते हैं। कितनों को देख चुका।

तीसरा कैदी—तुम्हारी ऐसी-तैसी, तुम्हें फाँसी दिलाकर उन्हें राज ही तो मिल जाएगा। छोटा मुँह, बड़ी बात !

चक्रधर ने आगे बढ़कर कहा—दारोगाजी, आखिर आप क्या चाहते हैं? इन गरीबों को क्यों घेर रखा है !

दारोगा ने सिपाहियों की आड़ से कहा—यही उन सब बदमाशों का सरगना है। खुदा जाने, किस हिकमत से उन सबों को मिलाए हुए है। इसे गिरफ्तार कर लो। बाकी जितने हैं, उन्हें खूब मारो, मारते-मारते हलवा निकाल लो सूअर के बच्चों का ! इनकी हिम्मत कि मेरे साथ गुस्ताखी करें।

चक्रधर—आपको कैदियों को मारने का कोई मजाज नहीं है···

धन्नासिंह—जबान सँभाल के दारोगाजी !

दारोगा—मारो इन सूअरों को।

सिपाही कैदियों पर टूट पड़े और उन्हें बन्दूकों के कुन्दों से मारना शुरू किया। चक्रधर ने देखा कि मामला संगीन हुआ चाहता है, तो बोले—दारोगाजी, खुदा के वास्ते यह गजब न कीजिए।

कैदियों में खलबली पड़ गई। कुछ इधर-उधर से फावड़े, कुदालें और पत्थर ला-लाकर लड़ने पर तैयार हो गए। मौका नाजुक था। चक्रधर ने बड़ी दीनता से कहा—मैं आपको फिर समझाता हूँ।

दारोगा—चुप रह सूअर का बच्चा !

इतना सुनना था कि चक्रधर बाज की तरह लपककर दारोगा जी पर झपटे। कैदियों पर कुन्दों की मार पड़नी शुरू हो गई थी। चक्रधर को बढ़ते देखकर उन सबने पत्थरों की वर्षा शुरू की। भीषण संग्राम होने लगा।

एकाएक चक्रधर ठिठक गए। ध्यान आ गया, स्थिति और भयंकर हो जाएगी। अभी सिपाही बन्दूक चलाना शुरू कर देंगे। लाशों के ढेर लग जाएँगे। अगर हिंसक भावों को दबाने का कोई मौका हो सकता है, तो वह यही मौका है। ललकारकर बोले—पत्थर न फेंको, पत्थर न फेंको ! सिपाहियों के हाथों से बन्दूक छीन लो।

सिपाहियों ने संगीनें चढ़ानी चाहीं; लेकिन उन्हें इसका मौका न मिल सका। एक-एक सिपाही पर दस-दस कैदी टूट पड़े और दम के दम में उनकी बन्दूकें छीन लीं। सिपाहियों ने रोब के बल पर आक्रमण किया था। उन्हें विश्वास था कि कुन्दों की मार पड़ते ही कैदी भाग जाएँगे। अब उन्हें मालूम हुआ कि हम धोखे में थे। फिर वे एक साथ में नहीं, इधर-उधर बिखरे खड़े थे। इससे उनकी शक्ति और भी कम हो गई थी। उन पर आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ चारों तरफ से चोट पड़ सकती थी। संगीनें चढ़ाकर भी वे किसी तरह न बच सकते थे। कैदियों में पिल

उनकी सबसे बड़ी भूल थी। उनके ऐसे हाथ-पाँव फूले, होश ऐसे गायब हुए छ निश्चय न कर सके कि इस समय क्या करना चाहिए। कैदियों ने तुरन्त ी मुश्कें चढ़ा दीं और बन्दूकें ले-लेकर उनके सिर पर खड़े हो गए। यह सब पाँच मिनट में हो गया। ऐसा दाँव पड़ा कि वही लोग जो जरा देर पहले ी जताते थे, कैदियों को पाँव की धूल समझते थे, अब उन्हीं कैदियों के सामने दया-प्रार्थना कर रहे थे, घिघियाते थे, मत्थे टेकते थे और रोते थे। दारोगाजी सूरत तो तसवीर खींचने योग्य थी। चेहरा फक, हवाइयाँ उड़ी हुईं, थर-थर प रहे थे कि देखें, जान बचती है या नहीं।

कैदियों ने देखा, इस वक्त हमारा राज्य है, तो पुराने बदले चुकाने पर तैयार गए। धन्नासिंह लपका हुआ दारोगा के पास आया और जोर से एक धक्का कर बोला—क्यों खाँ साहब, उखाड़ लूँ दाढ़ी के एक-एक बाल ?

चक्रधर—धन्नासिंह हट जाओ।

धन्नासिंह—मरना तो है ही, अब इन्हें क्यों छोड़ें ?

चक्रधर—हम कहते हैं, हट जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा।

धन्नासिंह—अच्छा हो चाहे बुरा, हमारे साथ इन लोगों ने जो सलूक किए उसका मजा चखाए बिना न छोड़ेंगे।

एक कैदी—हमारी जान तो जाती ही है, पर इन लोगों को न छोड़ेंगे।

दूसरा कैदी—एक-एक की हड्डियाँ तोड़ दो। दो-दो चार-चार साल और सही। अभी कौन सुख भोग रहे हैं, जो सजा को डरें ? आखिर घूम-घामके यहीं तो फिर आना है।

चक्रधर—मेरे देखते तो यह अनर्थ न हो पाएगा। हाँ, मर जाऊँ तो जो चाहे करना !

धन्नासिंह—अगर ऐसे बड़े धर्मात्मा हो, तो इनको क्यों नहीं समझाया ? देखते नहीं हो, कितनी साँसत होती है। तुम्हीं कौन बचे हुए हो। कुत्तों को भी मारते दया आती है। क्या हम कुत्तों से भी गए-बीते हैं ?

इतने में सदर फाटक पर शोर मचा। जिला-मैजिस्ट्रेट मिस्टर जिम सशस्त्र पुलिस के सिपाहियों और अफसरों के साथ आ पहुँचे थे। दारोगाजी ने अन्दर आते वक्त किवाड़ बन्द कर लिये थे, जिसमें कोई कैदी भागने न पाए। यह शोर सुनते ही चक्रधर समझ गया कि पुलिस आ गई। बोले—अरे भाई, क्यों अपनी जान के दुश्मन हुए हो। बन्दूकें रख दो और फौरन जाकर किवाड़ खोल दो। पुलिस आ गई।

धन्नासिंह—कोई चिन्ता नहीं। हम भी इन लोगों का वारा-न्यारा कर डालते हैं। मरते ही हैं, तो दो-चार को मार के मरें।

कैदियों ने फौरन संगीनें चढ़ायीं और सबसे पहले धन्नासिंह दारोगाजी पर झपटा। करीब था कि संगीन की नोक उनके सीने में चुभे कि चक्रधर यह कहते

हुए, 'धन्नासिंह ईश्वर के लिए...' दारोगाजी के सामने आकर खड़े हो गए। धन्नासिंह वार कर चुका था। चक्रधर के कन्धे पर संगीन का भरपूर हाथ पड़ा। आधी संगीन धँस गई। दाहिने हाथ से कन्धे को पकड़कर बैठ गए। कैदियों ने उन्हें गिरते देखा, तो होश उड़ गए। आ-आकर उनके चारों तरफ खड़े हो गए। घोर अनर्थ की आशंका ने उन्हें स्तंभित कर दिया। भगत को चोट आ गई—ये शब्द उनकी पशु-वृत्तियों को दबा बैठे।

धन्नासिंह ने बन्दूक फेंक दी और फूट-फूटकर रोने लगा। मैंने भगत के प्राण लिए! जिस भगत ने गरीबों की रक्षा करने के लिए सजा पाई, जो हमेशा उनके लिए अफसरों से लड़ने को तैयार रहता था, जो नित्य उन्हें अच्छे रास्ते पर ले जाने की चेष्टा करता था, जो उसके बुरे व्यवहारों को हँस-हँसकर सह लेता था, वही भगत धन्नासिंह के हाथ जख्मी पड़ा है। धन्नासिंह को कई कैदी पकड़े हुए हैं। ग्लानि के आवेश में वह बार-बार चाहता है कि अपने को उनके हाथों से छुड़ाकर वही संगीन अपनी छाती में चुभा ले; लेकिन कैदियों ने इतने जोर से जकड़ रखा है कि उसका कुछ बस नहीं चलता।

दारोगा ने मौका पाया तो सदर फाटक की तरफ दौड़े कि उसे खोल दूँ। धन्नासिंह ने देखा कि यह हजरत, जो सारे फिसाद की जड़ हैं, बेदाग बचे जाते हैं, तो उसकी हिंसक वृत्तियों ने इतना जोर मारा कि एक ही झटके में वह कैदियों के हाथ से मुक्त हो गया और बन्दूक उठाकर उनके पीछे दौड़ा। चक्रधर के खून का बदला लेना जरूरी था। करीब था कि दारोगाजी पर फिर वार पड़े कि चक्रधर फिर सँभलकर उठे और एक हाथ से अपना कन्धा पकड़े, लड़खड़ाते हुए चले। धन्नासिंह ने उन्हें आते देखा, तो उसके पाँव रुक गए। भगत अभी जीते हैं, इसकी उसे इतनी खुशी हुई कि वह बन्दूक लेकर पीछे की ओर चला और उनके चरणों पर गिर रखकर रोने लगा। ऐसी सच्ची खुशी उसे अपने जीवन में कभी न हुई थी!

चक्रधर ने कहा—सिपाहियों को छोड़ दो।

धन्नासिंह—बहुत अच्छा, भैया! तुम्हारा जी कैसा है?

चक्रधर—देखना चाहिए, बचता हूँ या नहीं।

धन्नासिंह—दारोगा के बच जाने का कलंक रह गया।

सहसा मिस्टर जिम सशस्त्र पुलिस के साथ जेल में दाखिल हुए। उन्हें देखते ही सारे कैदी भर में भागे। केवल दो आदमी चक्रधर के पास खड़े रहे। धन्नासिंह उनमें एक था। सिपाहियों ने छूटते ही अपनी-अपनी बन्दूकें सँभालीं और एक कतार में खड़े हो गए।

जिम—वेल दारोगा, क्या हाल है?

दारोगा—हुजूर के अकबाल से फतह हो गई। कैदी भाग गए।

जिम—यह कौन आदमी पड़ा है?

दारोगा—इसी ने हम लोगों की मदद की है, हुजूर। चक्रधर नाम है।

जिम—अच्छा ! यह चक्रधर है, जो बगावत के मामले में हमारे इजलास से सजा पाया था।

दारोगा—जी हाँ, हुजूर ! अभी उसी के बदौलत हमारी जान बची। जो जख्म उसके कन्धे में है, यह शायद इस वक्त मेरे सीने में होता।

जिम—इसने कैदियों को भड़काया होगा ?

दारोगा—नहीं हुजूर, इसने तो कैदियों को समझा-बुझाकर ठंडा किया।

जिम—तुम कुछ नहीं समझता। यह लोग पहले कैदियों को भड़काता है, फिर उनके तरफ से हाकिम लोगों से लड़ता है, जिसमें कैदी समझें कि यह हमारी तरफ से लड़ रहा है। यह कैदियों को मिलाने का हिकमत है। वह कैदियों को मिलाकर जेल का काम बन्द कर देना चाहता है।

दारोगा—देखने में तो हुजूर, बहुत सीधा मालूम होता है, दिल का हाल खुदा जाने।

जिम—खुदा के जानने से कुछ नहीं होगा, तुमको जानना चाहिए। तुमको हर एक कैदी पर निगाह रखनी चाहिए। यही तुम्हारा काम है। यह आदमी कैदियों से मजहब की बातचीत तो नहीं करता ?

दारोगा—मजहबी बातें तो बहुत करता है, हुजूर ! इसी से कैदियों ने उसे 'भगत' का लकब दे दिया है।

जिम—ओह ! तब तो यह बहुत ही खतरनाक आदमी है। मजहबवाले आदमी पर बहुत कड़ी निगाह रखनी चाहिए। कोई पढ़ा-लिखा आदमी दिल से मजहब को नहीं मानता। मजहब पढ़े-लिखे आदमियों के लिए नहीं है। उनके लिए तो Ethics काफी है। जब कोई पढ़ा-लिखा आदमी मजहब की बात करे, तो फौरन समझ लो कि वह कोई साजिश करना चाहता है। Religion (धर्म) के साथ Politics (राजनीति) बहुत खतरनाक हो जाता है। यह आदमी कैदियों से बड़ी हमदर्दी करता होगा।

दारोगा—जी हाँ, हमेशा !

जिम—सरकारी हुक्म को खूब मानता होगा।

दारोगा—जी हाँ, हमेशा !

जिम—कभी कोई शिकायत न करता होगा ? कड़े से कड़े काम खुशी से करता होगा ?

दारोगा—जी हाँ, शिकायत नहीं करता। ऐसा बेजबान आदमी तो मैंने कभी देखा ही नहीं।

जिम—ऐसा आदमी निहायत खौफनाक होता है। उस पर कभी एतबार नहीं करना चाहिए। हम इस पर मुकदमा चलाएगा। इसको बहुत कड़ी सजा देगा। सिपाहियों को दफ्तर में बुलाओ। हम सबका बयान लिखेगा।

दारोगा—हुजूर, पहले तो उसे डाक्टर साहब को दिखा लूँ? ऐसा न हो कि मर जाय, गुलाम को दाग लगे।

जिम—वह मरेगा नहीं। ऐसा खौफनाक आदमी कभी नहीं मरता; और मर भी जायगा, तो हमारा कोई नुकसान नहीं।

दारोगा—जरा हुजूर उसकी हालत देखें। चेहरा जर्द हो गया है, खून से जमीन लाल हो गई है।

जिम—कुछ परवा नहीं।

यह कहकर साहब दफ्तर की ओर चले। धन्नासिंह अब तक इन्तजार में खड़ा था कि डाक्टर साहब आते होंगे। जब देखा कि जिम साहब इधर मुखातिब भी न हुए, तो उसने चक्रधर को गोद में उठाया और अस्पताल की ओर चला।

19

ठाकुर हरिसेवकसिंह दावत खाकर पहुँचे, तो डर रहे थे कि लौंगी पूछेगी तो क्या जवाब दूँगा। अगर यह कहूँ कि मुंशीजी के मेरे साथ चाल चली, तो जिन्दा न छोड़ेगी, तानों से कलेजा छलनी कर देगी। जो कहूँ कि मनोरमा को पसन्द है, तो मैं क्या करता, तो भी न बचने पाऊँगा। चुड़ैल वकीलों की तरह तो बहस करती है। बस, उसे राजी करने की एक ही तरकीब है। किसी पंडित को फाँसना चाहिए, जो उसके सामने यह कह दे कि राजा साहब की आयु 125 वर्ष की है। जब तक इस बात का उसे विश्वास न आ जायगा, वह किसी तरह न राजी होगी।

ज्यों ही ठाकुर साहब घर में पहुँचे, लौंगी ने पूछा—वहाँ क्या बातचीत हुई?

दीवान—शादी ठीक हो गई और क्या!

लौंगी—और मैंने इतना समझा जो दिया था?

दीवान—भाग्य भी तो कोई चीज है!

लौंगी—भाग्य पर वह भरोसा करता है, जिसमें पौरुष नहीं होता। लड़की को डुबा दिया, ऊपर से शरमाते नहीं, कहते हो भाग्य भी कोई चीज है!

दीवान—तुम मुझे जैसा गधा समझती हो, वैसा गधा नहीं हूँ। मैंने राजा साहब की कुंडली एक बड़े विद्वान ज्योतिषी को दिखलायी और जब उसने कह दिया कि राजा साहब की उम्र बहुत बड़ी है, कोई संकट नहीं है, तब आकर मैंने मंजूर कर लिया।

लौंगी—राजा ने किसी पंडित को सिखा पढ़ाकर खड़ा कर दिया होगा।

दीवान—क्या मुझे बिलकुल अनाड़ी ही समझ लिया है?

लौंगी—अनाड़ी तो तुम हो ही, न जाने किस तरह दीवानी कर ...
अच्छा बताओ, वह कौन पंडित था?

दीवान—इसी शहर के नामी पंडित हैं। मेरी उनसे पुरानी मुलाकात है। वह मुझे कभी धोखा न देंगे। अगर कोई बात गड़बड़ होती, तो वह साफ-साफ कह देते। हम और वह अलग एक कमरे में बैठे थे। उन्होंने बड़ी देर तक कुंडली को देखकर कहा—कोई शंका की बात नहीं, आप भगवान का नाम लेकर विवाह स्वीकार लीजिए। राजा साहब की आयु 125 वर्ष की है।

लौंगी—तुम कल उन पंडितजी को यहाँ बुला लेना। जब तक मेरे सामने न कह देंगे, मुझे विश्वास न आएगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल लोंगी ने पंडित की रट लगायी और दीवान साहब को विवश होकर मुंशी वज्रधर के पास जाना पड़ा।

वज्रधर सारी कथा सुनकर बोले—आपने यह बुरा रोग पाल रखा है। एक बार डाँटकर कह दीजिए—चुपचाप बैठी रह, तुझे इन बातों मे क्या मतलब? फिर देखूं वह कैसे बोलती है !

दीवान—भाई इतनी हिम्मत मुझमें नहीं है। वह कभी जरा रूठ जाती है, तो मेरे हाथ-पाँव फूल जाते हैं। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि बिना उसके मैं जिन्दा कैसे रहूँगा। मैं तो उससे बिना पूछे भोजन भी नहीं कर सकता। वह मेरे घर की लक्ष्मी है। आपकी किसी ज्योतिषी से जान-पहचान है ?

मुंशी—जान-पहचान तो बहुतों से है; लेकिन देखना तो यह है कि काम कससे निकल सकता है। कोई अच्छा आदमी तो यह स्वांग भरने न जायगा। कोई पंडित बनाना पड़ेगा।

दीवान—वह तो बड़ी मुश्किल हुई।

मुंशी—मुश्किल क्या हुई। मैं अभी बनाए देता हूँ। ऐसा पंडित बना दूंगा कि कोई भांप न सके। इन बातों में क्या रखा है ?

यह कहकर मुंशीजी ने झिनकू को बुलाया। वह एक ही छँटा हुआ था। फौरन तैयार हो गया। घर जाकर माथे पर तिलक लगाया। गले में रामनामी चादर डाली, सिर पर एक टोपी रखी और एक बस्ता बगल में दबाए आ पहुँचा। मुंशी जी उसे देखकर बोले—यार जरा-सी कसर रह गई। तोंद के बगैर पंडित कुछ जँचता नहीं। लोग यही समझते हैं कि इनको तर माल नहीं मिलते, जभी तो तांत हो रहे हैं। तोंदल आदमी की शान ही और होती है; चाहे पंडित बने, चाहे सेठ, चाहे तहसीलदार ही क्यों न बन जाए। उसे सब कुछ भला मालूम होता है। मैं तोंदल होता तो अब तक न जाने किस ओहदे पर होता। सच पूछो, तो तोंद न रहने के कारण अफसरों पर मेरा रोब न जमा। बहुत घी-दूध खाया, पर तकदीर में बड़ा आदमी होना न बदा था, तोंद न निकली, न निकली। तोंद बना लो, नहीं तो उल्लू बनाकर निकाल दिये जाओगे, या किसी तोंदूमल को पकड़ो।

झिनकू—सरकार, तोंद होती, तो आज मारा-मारा क्यों फिरता ? मुझे

भी न लोग झिनकू उस्ताद कहते ! कभी तबला न होता तो तोंद ही बजा देता; मगर तोंद न रहने में कोई हरज नहीं है, यहाँ कई पंडित बिना तोंद के भी हैं।

मुंशी—कोई बड़ा पंडित भी है बिना तोंद का ?

झिनकू—नहीं सरकार, कोई बड़ा पंडित तो नहीं है। तोंद के बिना कोई बड़ा हो कैसे जायगा ? कहिए तो कुछ कपड़े लपेटूँ ?

मुंशी—तुम तो कपड़े लपेट कर विदरोगी से मालूम होगे। तकदीर पेट पर सबसे ज्यादा चमकती है, इसमें शक नहीं; लेकिन और अंगों पर भी तो कुछ न कुछ असर होता ही है; यह राग न चलेगा, भाई किसी और को फाँसो।

झिनकू—सरकार, अगर मालकिन को खुश न कर दूँ, तो नाक काट लीजिएगा। कोई अनाड़ी थोड़े ही हूँ !

खैर तीनों आदमी मोटर पर बैठे और एक क्षण में घर जा पहुँचे। दीवान साहब ने जाकर कहा—पंडितजी आ गए, बड़ी मुश्किल से आए हैं।

इतने में मुंशीजी भी आ पहुँचे और बोले—कोई नया आसन बिछाइएगा। कुरसी पर नहीं बैठते। आज न जाने क्या समझकर इस वक्त आ गए, नहीं तो दोपहर के पहले कोई लाख रुपये दे तो नहीं आते।

पंडितजी बड़े गर्व के साथ मोटर से उतरे और जाकर आसन पर बैठे। लौंगी ने उनकी ओर ध्यान से देखा और तीव्र स्वर में बोली—आप जोतसी हैं ? ऐसी ही सूरत होती है जोतसियों की ? मुझे तो कोई भाँड़ से मालूम होते हो !

मुंशीजी ने दाँतों तले जबान दबा ली; दीवान साहब ने छाती पर हाथ रखा और झिनकू के चेहरे पर तो मुर्दनी सी छा गई। कुछ जवाब देते ही न बन पड़ा। आखिर मुंशीजी बोले—यह क्या गजब करती हो, लौंगी रानी ! अपने घर पर बुलाकर महात्माओं की यह इज्जत की जाती है ?

लौंगी—लाला, तुमने बहुत दिनों तहसीलदारी की है, तो मैंने भी धूप में बाल नहीं पकाए हैं। एक बहुरूपिए को लाकर खड़ा कर दिया, ऊपर से कहते हैं। जोतसी है ; ऐसी ही सूरत होती है जोतसी की ? मालूम होता है, महीनों से दाने की सूरत नहीं देखी। मुझे क्रोध तो इन दीवान पर आता है, तुम्हें क्या कहूँ ?

झिनकू—माता, तूने मेरा बड़ा अपमान किया है। अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरूँगा। तुमको इसका फल मिलेगा, अवश्य मिलेगा।

लौंगी—लो, बस, चले ही जाओ मेरे घर से ! धूर्त, पाखण्डी कहीं का। बड़ा जोतसी है, तो बता मेरी उम्र कितनी है ? लाला अगर तुम्हें धन का लोभ हो तो जितना चाहो, मुझसे ले जाओ। मेरी बिटिया को कुएँ में न ढकेलो। क्यों उसके दुश्मन बने हुए हो ? जो कुछ कर रहे हो, उसका सारा दोष तुम्हारे ही सिर जायगा। तुम इतना भी नहीं समझते कि बूढ़े आदमी के साथ कोई लड़की कैसे सुख से रह सकती है ! धन से बूढ़े जवान तो नहीं हो जाते।

झिनकू—माता जी, राजा साहब की आयु, ज्योतिष विद्या के अनुसार

लौंगी—तू फिर वोला ? चुपका खड़ा क्यों नहीं रहता ।
झिनकू—दीवान साहव, अव नहीं ठहर सकता ।
लौंगी—क्यों, ठहरोगे क्यों नहीं ? दच्छिना तो लेते जाओ !
यह कहते हुए लौंगी ने कोठरी में जाकर कजलौटे से काजल निकाला और न्त वाहर आ, एक हाथ से झिनकू को पकड़ा, दूसरे से उसके मुँह पर काजल त दिया। वहुत उछले-कूदे, वहुत फड़फड़ाए: पर लौंगी ने जव भर भी न लने दिया, मानों वाज ने कवूतर को दवोच लिया हो। दीवान अव अपनी हँसी रोक सके। मारे हँसी के मुँह से वात तक न निकलती थी। मुंशीजी अभी तक झनकू की विद्या का राग अलाप रहे थे और लौंगी झिनकू को दवोचे हुए चिल्ला रही थी—थोड़ा चूना लाओ, तो इसे पूरी दच्छिना दे दूँ ! मेरे धन्य भाग कि आज जोतसीजी के दर्शन हुए !

आखिर मुंशीजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने लौंगी का हाथ पकड़कर चाहा कि झिनकू का गला छुड़ा दें। लौंगी ने झिनकू को तो न छोड़ा; एक हाथ से तो उसकी गर्दन पकड़े हुए थी, दूसरे हाथ से मुंशी जी की गर्दन पकड़ ली और बोली—मुझसे जोर दिखाते हो, लाला ? वड़े मर्द हो, तो छुड़ा लो गर्दन ! वहुत दूध-घी वेगार में लिया होगा। देखें, वह जोर कहाँ है ?

दीवान—मुंशीजी, आप खड़े क्या हैं, छुड़ा लीजिए गर्दन।

मुंशीजी—मेरी यह सांसत हो रही है और आप खड़े हँस रहे हैं।

दीवान—तो क्या कर सकता हूँ। आप भी तो देवनी से जोर अजमाने चले थे। आज आपको मालूम हो जायगा कि मैं इससे क्यों इतना दवता हूँ।

लौंगी—जोतसी जी, अपनी विद्या का जोर क्यों नहीं लगाते ? क्यों रे अव तो कभी जोतसी न वनेगा ?

झिनकू—नहीं माताजी, वड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिए।

लौंगी ने दीवान साहव की ओर सरोष नेत्रों से देखकर कहा—मुझसे यह चाल चली जाती है, क्यों ? लड़की को राजा से व्याहकर तुम्हारा मरतवा वढ़ जायगा, क्यों ? धन और मरतवा सन्तान से भी ज्यादा प्यारा है, क्यों ? लगा दो आग घर में। घोंट दो लड़की का गला। अभी मर जायगी; मगर जन्म-भर के दुःख से तो छूट जायगी। धन और मरतवा अपने पौरुष से मिलता है। लड़की वेचकर धन नहीं कमाया जाता। यह नीचों का काम है, भलेमानसों का नहीं। मैं तुम्हें इतना स्वार्थी न समझती थी, लाला साहव ! तुम्हारे मरने के दिन आ गए हैं, क्यों पाप की गठरी लादते हो ? मगर तुम्हें समझाने से क्या होगा ? इसी पाखण्ड से तुम्हारी उम्र कट गई, अव क्या सँभलोगे ! मरती वार भी पाप करना वदा था। क्या करते ! और तुम भी सुनलो, जोतसीजी ! अव कभी भूलकर भी यह स्वाँग न भरना। धोखा देकर पेट पालने से मर जाना अच्छा है। जाओ।

यह कहकर लौंगी ने दोनों आदमियों को छोड़ दिया। झिनकू तो वगगु

भागा, लेकिन मुंशीजी वहीं सिर झुकाए खड़े रहे। जरा देर के बाद बोले—दीवान साहब, अगर आपकी मरजी हो, तो मैं जाकर राजा साहब से कह दूँ कि दीवान साहब को मंजूर नहीं है।

दीवान—अब भी आप मुझसे पूछ रहे हैं? क्या अभी कुछ और साँसत कराना चाहते हैं?

मुंशी—साँसत तो मेरी यह क्या करती, मैंने औरत समझकर छोड़ दिया।

दीवान—आप आज जाके साफ-साफ कह दीजिएगा।

लौंगी—क्या साफ-साफ कह दीजिएगा? अब क्या साफ-साफ कहलाते हो? किसी को खाने का नेवता न दो, तो वह बुरा न मानेगा; लेकिन नेवता देकर अपने द्वार से भगा दो तो तुम्हारी जान का दुश्मन हो जायगा। अब साफ-साफ कहने का अवसर नहीं रहा। जब नेवता दे चुके, तब तो खिलाना ही पड़ेगा, चाहे लोटा-थाली बेचकर ही क्यों न खिलाओ। कहके मुकरने से बैर हो जायगा।

दीवान—बैर की चिन्ता नहीं। नौकरी की मैं परवा नहीं करता।

लौंगी—हाँ, तुमने तो कारूँ का खजाना घर में गाड़ रखा है। इन बातों से अब काम न चलेगा। अब तो जो होनी थी, हो चुकी। राम का नाम लेकर ब्याह करो। पुरोहित को बुलाकर साइत-सगुन पूछ-ताछ लो और लगन भेज दो। एक ही लड़की है, दिल खोलकर काम करो।

मुंशीजी को अपनी साँसत का पुरस्कार मिल गया। मारे खुशी के बगलें बजाने लगे। विरोध की अन्तिम क्रिया हो गई।

आज ही से विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। दीवान साहब स्वभाव के कृपण थे, कम से कम खर्च में काम निकालना चाहते थे; लेकिन लौंगी के आगे उनकी एक न चलती थी। उसके पास रुपये न जाने कहाँ से निकलते आते थे, मानो किसी रसिक के प्रेमोद्‌गार हों। तीन महीने तैयारियों में गुजर गए। विवाह का मुहूर्त निकट आ गया।

सहसा एक दिन शाम को खबर मिली कि जेल में दंगा हो गया और चक्रधर के कन्धे में गहरा घाव लगा है। बचना मुश्किल है।

मनोरमा के विवाह की तैयारियाँ तो हो ही रही थीं और यों भी देखने में वह बहुत खुश नजर आती थी; पर उसका हृदय सदैव रोता रहता था। कोई अज्ञात भय, कोई अलक्षित वेदना, कोई अतृप्त कामना, कोई गुप्त चिन्ता, हृदय को मथा करती थी। अन्धों की भाँति इधर-उधर टटोलती थी; पर न चलने का मार्ग मिलता था, न विश्राम का आधार। उसने मन में एक बात निश्चय की थी और उसी में सतुष्ट रहना चाहती थी; लेकिन कभी-कभी वह जीवन इतना शून्य, इतना अँधेरा, इतना नीरस मालूम होता कि घंटों वह मूर्छित सी बैठी रहती; मानो कहीं कुछ नहीं है, अनन्त आकाश में केवल वही अकेली है!

यह भयानक समाचार सुनते ही मनोरमा को हौलदिल-सा हो गया। आकर

लौंगी से बोली—लौंगी अम्माँ, मैं क्या करूँ ? बाबूजी को देखे बिना अब नहीं रहा जाता। क्यों अम्माँ, घाव अच्छा हो जायगा न ?

लौंगी ने करुण नेत्रों से देखकर कहा—अच्छा क्यों न होगा, बेटी ! भगवान् चाहेंगे, तो जल्द अच्छा हो जायगा।

लौंगी मनोरमा के मनोभावों को जानती थी। उसने सोचा, इस अबला को कितना दुःख है ! मन-ही-मन तिलमिलाकर रह गई। हाय ! चारे पर गिरनेवाली चिड़िया को मोती चुगाने की चेष्टा की जा रही है। तड़प-तड़पकर पिंजड़े में प्राण देने के सिवा वह और क्या करेगी ! मोती में चमक है, वह अनमोल है; लेकिन उसे कोई खा तो नहीं सकता। उसे गले में बाँध लेने से क्षुधा तो न मिटेगी।

मनोरमा ने फिर पूछा—भगवान सज्जन लोगों को क्यों इतना कष्ट देते हैं, अम्माँ ? बाबूजी का सा सज्जन दूसरा कौन होगा। उनको भगवान इतना कष्ट दे रहे हैं ! मुझे कभी कुछ नहीं होता; कभी सिर भी नहीं दुखता। मुझे क्यों कभी कुछ नहीं होता, अम्माँ ?

लौंगी—तुम्हारे दुश्मन को कुछ हो बेटी, तुम तो कभी घड़ी भर चैन न पाती थीं। तुम्हें गोद में लिये रात भर भगवान् का नाम लिया करती थी।

सहसा मनोरमा के मन में एक बात आयी। उसने बाहर आकर मोटर तैयार करायी और दम के दम में राजभवन की ओर चली। राजा साहब इसी तरफ आ रहे थे। मनोरमा को देखा, तो चौंके। मनोरमा घबरायी हुई थी।

राजा—तुमने क्यों कष्ट किया ? मैं तो आ रहा था।

मनोरमा—आपको जेल के दंगे की खबर मिली ?

राजा—हाँ, मुंशी वज्रधर अभी कहते थे।

मनोरमा—मेरे बाबूजी को गहरा घाव लगा है।

राजा—हाँ, यह भी सुना।

मनोरमा—तब भी आपने उन्हें जेल से बाहर अस्पताल में लाने के लिए कार्रवाई नहीं की ? आपका हृदय बड़ा कठोर है।

राजा ने कुछ चिढ़कर कहा—तुम्हारे जैसा हृदय कहाँ से लाऊँ !

मनोरमा—मुझसे माँग क्यों नहीं लेते ? बाबूजी को बहुत गहरा घाव लगा है, और अगर यत्न न किया गया, तो उनका बचना कठिन है। जेल में जैसा इलाज होगा, आप जानते ही हैं। न कोई आगे, न कोई पीछे; न मित्र, न बन्धु। आप साहब को एक खत लिखिए कि बाबूजी को अस्पताल में लाया जाय।

राजा—साहब मानेंगे ?

मनोरमा—इतनी जरा सा बात न मानेंगे ?

राजा—न जाने दिल में क्या सोचें।

मनोरमा—आपको अगर बहुत मानसिक कष्ट हो रहा हो, तो रहने दीजिए मैं खुद साहब से मिल लूँगी।

राजा साहब यह तिरस्कार सुनकर काँप उठे। कातर होकर बोले—मुझे किस बात का कष्ट होगा। अभी जाता हूँ।

मनोरमा—लौटिएगा कब तक?

राजा—कह नहीं सकता।

यह कहकर राजा साहब मोटर पर जा बैठे और शोफर से मिस्टर जिम के बँगले पर चलने को कहा। मनोरमा की निष्ठुरता से उनका चित्त बहुत खिन्न था। मेरे आराम और तकलीफ का इसे जरा भी खयाल नहीं। चक्रधर से न जाने क्यों इतना स्नेह है। कहीं उससे प्रेम तो नहीं करती? नहीं, यह बात नहीं। सरल हृदय बालिका है। ये कौशल क्या जाने। चक्रधर आदमी ही ऐसा है कि दूसरों को उससे मुहब्बत हो जाती है। जवानी में सहृदयता कुछ अधिक होती ही है। कोई मायाविनी स्त्री होती, तो मुझसे अपने मनोभावों को गुप्त रखती। जो कुछ करना होता, चुपके-चुपके करती; पर इसके निश्छल हृदय में कपट कहाँ? जो कुछ कहती है, मुझी से कहती है; जो कष्ट होता है, मुझी को सुनाती है। मुझ पर पूरा विश्वास करती है। ईश्वर करे, साहब से मुलाकात हो जाय और वह मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें! जिस वक्त मैं आकर यह शुभ समाचार कहूँगा, कितनी खुश होगी।

यह सोचते हुए राजा साहब मिस्टर जिम के बँगले पर पहुँचे। शाम हो गई थी। साहब बहादुर सैर करने जा रहे थे। उनके बँगले में वह ताजगी और सफाई थी कि राजा साहब का चित्त प्रसन्न हो गया। उनके यहाँ दर्जनों माली थे, पर बाग इतना हरा-भरा न रहता था। यहाँ की हवा में आनन्द था। इकबाल हाथ बाँधे हुए खड़ा मालूम होता था। नौकर-चाकर कितने सलीकेदार थे, घोड़े कितने समझदार, पौधे कितने सुन्दर, यहाँ तक कि कुत्तों के चेहरे पर भी इकबाल की आभा झलक रही थी।

राजा साहब को देखते ही जिम साहब ने हाथ मिलाया और पूछा—आपने जेल में दंगे का हाल सुना?

राजा—जी हाँ! सुनकर बड़ा अफसोस हुआ।

जिम—सब उसी का शरारत है, उसी बागी नौजवान का।

राजा—हुजूर का मतलब चक्रधर से है?

जिम—हाँ, उसी से! बहुत ही खौफनाक आदमी है। उसी ने कैदियों को भड़काया है।

राजा—लेकिन अब तो उसको अपने किए की सजा मिल गई। अगर बच भी गया, तो महीनों चारपाई से न उठेगा।

जिम—ऐसे आदमी के लिए इतनी ही सजा काफी नहीं। हम उस पर मुकदमा चलाएगा।

राजा—मैंने सुना है कि उसके कन्धे में गहरा जख्म है और आपसे यह कः

करता हूँ कि उसे शहर के बड़े अस्पताल में रखा जाय, जहाँ उसका अच्छा इलाज हो सके। आपकी इतनी कृपा हो जाय, तो उस गरीब की जान बच जाय और जिले में आपका नाम हो जाय। मैं इसका जिम्मा ले सकता हूँ कि अस्पताल में उसकी पूरी निगरानी रखी जायगी।

जिम—हम एक बागी के साथ कोई रिआयत नहीं कर सकता। आप जानता है, मुगलों या मरहठों का राज होता, तो ऐसे आदमी को क्या सजा मिलता? खाल खींच लिया जाता, उसके दोनों हाथ काट लिये जाते। हम अपने दुश्मन को कोई रिआयत नहीं कर सकता।

राजा—हुजूर, दुश्मनों के साथ रिआयत करना उनको सबसे बड़ी सजा देना है। आप जिस पर दया करें, वह कभी आपसे दुश्मनी नहीं कर सकता। वह अपने किए पर लज्जित होगा और सदैव के लिए आपका भक्त हो जायगा।

जिम—राजा साहब, आप समझता नहीं। ऐसा सलूक उस आदमी के साथ किया जाता है, जिसमें कुछ आदमियत बाकी रह गया हो। बागी का दिल बालू का मैदान है। उसमें पानी की बूंद भी नहीं होती, और न उसे पानी से सींचा जा सकता है। आदमी में जितना धर्म और शराफत है, उसके मिट जाने पर वह बागी हो जाता है। उसे भलमनसी से आप नहीं जीत सकता।

राजा साहब को आशा थी कि साहब मेरी बात आसानी से मान लेंगे। साहब के पास वह रोज ही कोई न कोई तोहफा भेजते रहते थे। उनकी जिद पर चिढ़-कर बोले—जब मैं आपको विश्वास दिला रहा हूँ कि उस पर अस्पताल में काफी निगरानी रखी जायगी, तो आपको मेरी अर्ज मानने में क्या आपत्ति है?

जिम ने मुसकराकर कहा—यह जरूरी नहीं कि मैं आपसे अपनी पालिसी बयान करूँ।

राजा—मैं उसकी जमानत करने को तैयार हूँ।

जिम—(हँसकर) आप उसकी जबान की जमानत तो नहीं कर सकते? हजारों आदमी उसे देखने को रोज आएगा। आप उन्हें रोक तो नहीं सकते? गँवार लोग यही समझेगा कि सरकार इस आदमी पर बड़ा जुल्म कर रही है। उसे देख-देखकर लोग भड़केगा। इसको आप कैसे रोक सकते हैं?

राजा साहब के जी में आया कि इसी वक्त यहाँ से चल दूँ और फिर इसका मुँह न देखूँ। पर खयाल किया, मनोरमा बैठी मेरी राह देख रही होगी। यह खबर सुनकर उसे कितनी निराशा होगी। ईश्वर! इस निर्दयी के हृदय में थोड़ी सी दया डाल दो! बोले—आप यह हुक्म दे सकते हैं कि उनके निकट सम्बन्धियों के सिवा कोई उसके पास न जाने पाए!

जिम—मेरे हुक्म में इतनी ताकत नहीं है कि वह अस्पताल को जेल बना दे।

यह कहते-कहते मिस्टर जिम फिटन पर बैठे और सैर करने चल दिये।

राजा साहब को एक क्षण के लिए मनोरमा पर क्रोध आ गया। उसी के कारण मैं यह अपमान सह रहा हूँ, नहीं तो मुझे क्या गरज पड़ी थी कि इसकी इतनी खुशामद करता। जाकर कहे देता हूँ, कि साहब नहीं मानते, मैं क्या करूँ। मगर उसके आँसुओं के भय ने फिर कातर कर दिया। आह! उसका कोमल हृदय टूट जायगा। आँखों में आँसू की झड़ी लग जायगी। नहीं, मैं कभी इसका पिण्ड न छोड़ूँगा। मेरा अपमान हो, इसकी चिन्ता नहीं। लेकिन उसे दुःख न हो।

थोड़ी देर तक तो राजा साहब बाग में टहलते रहे। फिर मोटर पर जा बैठे और घंटे भर इधर-उधर घूमते रहे। आठ बजे वह लौटकर आये, तो मालूम हुआ, अभी साहब नहीं आये। फिर लौटे, इसी तरह घंटे-घंटे भर के बाद वह तीन बार आये, मगर साहब बहादुर अभी तक न लौटे थे।

सोचने लगे, इतनी रात गए अगर मुलाकात हो भी गई, तो बातचीत करने का मौका कहाँ? शराब के नशे में चूर होगा। आते ही आते सोने चला जायगा। मगर कम से कम मुझे देखकर इतना तो समझ जायगा कि यह बेचारे अभी तक खड़े हैं। शायद दया आ जाय।

एक बजे के करीब बग्घी की आवाज आयी। राजा साहब मोटर से उतरकर खड़े हो गए। जिम भी फिटन से उतरा। नशे से आँखें सुर्ख थीं। लड़खड़ाता हुआ चल रहा था। राजा को देखते ही बोला—ओ, ओ, तुम यहाँ क्यों खड़ा है? भाग जाओ, अभी जाओ, भागो!

राजा—हुजूर, मैं हूँ राजा विशालसिंह।

जिम—ओ! हैम राजा, अभी निकल जाओ। तुम भी बागी है। तुम बागी का सिफारिश करता है, बागी को पनाह देता है। सरकार का दोस्त बनता है। अभी निकल जाओ। राजा और रैयत सब एक है। हम किसी पर भरोसा नहीं करता। अपने और का भरोसा है। राजा का काम बागियों को पकड़वाना, उनका पता लगाना है। उनका सिफारिश करना नहीं। अभी निकल जाओ।

यह कहकर वह राजा साहब की ओर झपटा। राजा साहब बहुत ही बलवान् मनुष्य थे। वह ऐसे-ऐसे दो को अकेले काफी थे; लेकिन परिणाम के भय ने उन्हें पंगु बना दिया था। एक घूँसा भी लगाया और पाँच करोड़ रुपये की जायदाद हाथ से निकली। वह घूँसा बहुत महँगा पड़ेगा। परिस्थिति भी उनके प्रतिकूल थी। इतनी रात को उसके बँगले पर आना इस बात का सबूत समझा जायगा कि उनकी नीयत अच्छी नहीं थी। दीन भाव से बोले—साहब, इतना जुल्म न कीजिए। इसका जरा भी ख्याल न कीजिएगा कि मैं शाम से अब तक आपके दरवाजे पर खड़ा हूँ? कहिए तो आपके पैरों पड़ूँ। जो कहिए, करने को हाजिर हूँ। मेरी अर्ज कबूल कीजिए।

जिम—कभी नहीं होगा, कभी नहीं होगा। तुम मतलब का आदमी है। हम तुम्हारी चालों को खूब समझता है।

राजा—इतना तो आप कर ही सकते हैं कि मैं उनका इलाज करने के लिए अपना डाक्टर जेल के अन्दर भेज दिया करूँ ?

जिम—ओ डैमिट ! बक-बक मत करो। सुअर, अभी निकल जाओ, नहीं तो हम ठोकर मारेगा।

अब राजा साहब से जब्त न हुआ। क्रोध ने सारी चिन्ताओं को, सारी कमजोरियों को निगल लिया। राज्य रहे या जाय, बला से ! जिम ने ठोकर चलायी ही थी कि राजा साहब ने उसकी कमर पकड़कर इतने जोर से पटका कि वह चारों खाने चित्त जमीन पर गिर पड़ा। फिर उठना चाहता था कि राजा साहब छाती पर चढ़ बैठे और उसका गला जोर से दबाया। कौड़ी सी आँखें निकल आयीं। मुँह से फिचकुर बहने लगा। सारा नशा, सारा क्रोध, सारा रोब, सारा अभिमान, रफूचक्कर हो गया।

राजा ने गला छोड़कर कहा—गला घोंट दूँगा, इस फेर में मत रहना। कच्चा ही चबा जाऊँगा। चपरासी या अहलकार नहीं हूँ कि तुम्हारी ठोकरें सह लूँगा।

जिम—राजा साहब, आप सचमुच नाराज हो गया। मैं तो आपसे दिल्लगी करता था। आप तो पहलवान है। आप दिल्लगी में बुरा मान गया !

राजा—बिलकुल नहीं। मैं भी दिल्लगी कर रहा हूँ। अब तो आप फिर मेरे साथ दिल्लगी न करेंगे ?

जिम—कभी नईं, कभी नईं।

राजा—मैंने जो अर्ज की थी, वह आप मानेंगे या नहीं ?

जिम—मानेंगे, मानेंगे; हम सुबह होते ही हुक्म देगा।

राजा—दगा तो न करोगे ?

जिम—कभी नईं, कभी नईं। आप भी किसी से यह बात न कहना।

राजा—दगा की, तो इसी तरह फिर पटकूँगा, याद रखना। यह कहकर राजा साहब मिस्टर जिम को छोड़कर उठ गए। जिम भी गर्द झाड़कर उठा और राजा साहब से बड़े तपाक के साथ हाथ मिलाकर उन्हें रुखसत किया। जरा भी शोरगुल न हुआ। जिम साहब के साईस के सिवा और किसी ने मल्लयुद्ध नहीं देखा था, और उसकी मारे डर के बोलने की हिम्मत न पड़ी।

राजा साहब दिल में सोचते जाते थे कि देखें, वादा पूरा करता है या मुकर जाता है। कहीं कल कोई शरारत न करे। उँह, देखी जायगी। इस वक्त तो ऐसी पटकनी दी है कि बचा याद करते होंगे। यह सब वादे के तो सच्चे होते हैं। सुबह देखूँगा। अगर हुक्म न दिया, तो फिर जाऊँगा। इतना डर तो उसे भी होगा कि मैंने दगा की, तो वह भी कलई खोल देगा। सज्जनता से तो नहीं, इस भय से जरूर वादा पूरा करेगा। मनोरमा अपने घर चली गई होगी। तड़के ही जाकर उसे यह खबर सुनाऊँगा। खिल उठेगी। आह ! उस वक्त उसकी छवि देखने ही योग्य होगी।

राजा साहब घर पहुँचे, तो डेढ़ बज गया था; पर अभी तक सोता न पड़ा था। नौकर-चाकर उनकी राह देख रहे थे। राजा साहब मोटर से उतरकर ज्यों ही बरामदे में पहुँचे, तो देखा मनोरमा खड़ी है। राजा साहब ने विस्मित होकर पूछा—क्या तुम अभी घर नहीं गयीं? तब से यहीं हो? रात तो बहुत बीत गई।

मनोरमा—एक किताब पढ़ रही थी। क्या हुआ?

राजा—कमरे में चलो, बताता हूँ।

राजा साहब ने सारी कथा आदि से अन्त तक बड़े गर्व के साथ खूब नमक-मिर्च लगाकर बयान की। मनोरमा तन्मय होकर सुनती रही। ज्यों-ज्यों वह वृत्तान्त सुनती थी, उसका मन राजा साहब की ओर खिंचा जाता था। मेरे लिए इन्होंने इतना कष्ट, इतना अपमान सहा। वृत्तान्त समाप्त हुआ, तो वह प्रेम और भक्ति से गद्गद होकर राजा साहब के पैरों पर गिर पड़ी और काँपती हुई आवाज से बोली—मैं आपका यह एहसान कभी न भूलूँगी।

आज ज्ञात रूप से उसके हृदय में प्रेम का अंकुर पहली बार जमा। वह एक उपासक की भाँति अपने उपास्य देव के लिए बाग में फूल तोड़ने आयी थी; पर बाग की शोभा देखकर उस पर मुग्ध हो गई। फूल लेकर चली, तो बाग की सुरम्य छटा उसकी आँखों में समायी हुई थी। उसके रोम-रोम से यही ध्वनि निकलती थी—आपका एहसान कभी न भूलूँगी। स्तुति के शब्द उसके मुँह तक आकर रह गए।

वह घर चली, तो चारों ओर अन्धकार और सन्नाटा था; पर उसके हृदय में प्रकाश फैला हुआ था और प्रकाश में संगीत की मधुर ध्वनि प्रवाहित हो रही थी। एक क्षण के लिए वह चक्रधर की दशा भी भूल गई, जैसे मिठाई हाथ में लेकर बालक अपने छिदे हुए कान की पीड़ा भूल जाता है।

20

मिस्टर जिम ने दूसरे दिन हुक्म दिया कि चक्रधर को जेल से निकालकर बाहर के बड़े अस्पताल में रखा जाय। वह उन जिद्दी आदमियों में न थे, जो मार खाकर भी बेहयाई करते हैं। सबेरे परवाना पहुँचा। राजा साहब भी तड़के ही उठकर जेल पहुँचे। मनोरमा वहाँ पहले ही से मौजूद थी; लेकिन चक्रधर ने साफ कह दिया—मैं यहीं रहना चाहता हूँ। मुझे और कहीं भेजने की जरूरत नहीं।

दारोगा—आप कुछ सिड़ी तो नहीं हो गए हैं? कितनी कोशिश से तो राजा साहब ने यह हुक्म दिलाया, और आप सुनते ही नहीं? क्यों जान देने पर तुले हो? यहाँ इलाज-विलाज खाक न होगा।

चक्रधर—कई आदमियों को मुझसे भी ज्यादा चोट आई है। मेरा मरना-जीना उन्हीं के साथ होगा। उनके लिए ईश्वर है, तो मेरे लिए भी ईश्वर है।

दारोगा ने बहुत समझाया, राजा साहब ने भी समझाया, मनोरमा ने रो-रोकर मिन्नतें कीं; लेकिन चक्रधर किसी तरह राजी न हुए। तहसीलदार साहब को अन्दर आने की आज्ञा न मिली; लेकिन शायद उनके समझाने का भी कुछ असर न होता। दोपहर तक सिर-मगजन करने के बाद लोग निराश होकर लौटे।

मुंशीजी ने कहा—दिल नहीं मानता; पर जी यही चाहता है कि इस लौंडे का मुंह न देखूं!

राजा—इसमें बात ही क्या थी। मेरी सारी दौड़धूप मिट्टी में मिल गई।

मनोरमा कुछ न बोली। चक्रधर जो कुछ कहते या करते थे, उसे उचित जान पड़ता था। भक्त को आलोचना से प्रेम नहीं। चक्रधर का यह विशाल त्याग उसके हृदय में खटकता था; पर उसकी आत्मा को मुग्ध कर रहा था। उसकी आँखें गर्व से मतवाली हो रही थीं।

मिस्टर जिम को यह खबर मिली, तो तिलमिला उठे, मानो किसी रईस ने एक भिखारी को पैसे जमीन पर फेंककर अपनी राह ली हो। कीर्ति का इच्छुक जब दान करता है, तो चाहता है कि नाम हो, यश मिले। दान का अपमान उससे नहीं सहा जाता। जिम ने समझा था कि चक्रधर की आत्मा का मैंने दमन कर दिया। अब उसे मालूम हुआ कि मैं धोखे में था। वह आत्मा अभी तक मस्तक उठाए उसकी ओर ताक रही थी। जिम ने मन में ठान लिया कि मैं उसे कुचलकर छोड़ूंगा।

चक्रधर दो महीने अस्पताल में पड़े रहे। दवा दर्पण तो जैसी हुई, वही जानते होंगे; लेकिन जनता की दुआओं में जरूर असर था। हजारों आदमी नित्य उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते थे और मनोरमा को तो दान, व्रत और तप के सिवाय और कोई काम न था। जिन बातों को वह पहले ढकोसला समझती थी, उन्हीं बातों में अब उसकी आत्मा को शान्ति मिलती थी। पहली बार उसे प्रार्थना शक्ति का विश्वास हुआ। कमजोरी ही में हम लकड़ी का सहारा लेते हैं।

चक्रधर तो अस्पताल में पड़े थे, इधर उन पर नया अभियोग चलाने की तैयारियां हो रही थीं। ज्यों ही वह चलने-फिरने लगे, उनपर मुकदमा चलने लगा। जेल के भीतर ही इजलास होने लगा। ठाकुर गुरुसेवकसिंह आजकल डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे। उन्हीं को यह मुकदमा सिपुर्द किया गया।

हमारे ठाकुर साहब बड़े जोशीले आदमी थे। यह जितने जोश से किसानों का संगठन करते थे, अब उतने ही जोश से कैदियों को सजाएं भी देते थे। पहले उन्होंने निश्चय किया था कि सेवा में ही अपना जीवन बिता दूंगा; लेकिन चक्रधर की दशा देखकर आँखें खुल गईं। समझ गए कि इन परिस्थितियों में सेवा कार्य टेढ़ी खीर है। जीवन का उद्देश्य यही तो नहीं है कि हमेशा एक पैर जेल में रहे;

हमेशा प्राण सूली पर रहें, खुफिया पुलिस हमेशा ताक में बैठी रहे, भगवद्गीता का पाठ करना मुश्किल हो जाए। यह तो न स्वार्थ है, न परमार्थ, केवल आग में कूदना है, तलवार पर गर्दन रखना है। सेवा कार्य को दूर से सलाम किया और सरकार के सेवक बन बैठे। खानदान अच्छा था ही, सिफारिश भी काफी थी, जगह मिलने में कोई कठिनाई न हुई। अब वह बड़े ठाट से रहते थे। रहन-सहन भी बदल डाला, खान-पान भी बदल डाला। उस समाज में घुल-मिल गए, जिसकी वाणी में, वेश में, व्यवहार में पराधीनता का चोखा रंग चढ़ा होता है। उन्हें लोग अब 'साहब' कहते हैं। 'साहब' हैं भी पूरे 'साहब'; बल्कि 'साहबों' से भी दो अंगुल ऊँचे। किसी को छोड़ना तो जानते ही नहीं। कानून की मंशा चाहे कुछ हो, कड़ी से कड़ी सजा देना उनका काम है। उनका नाम सुनकर बदमाशों की नानी मर जाती है। विधाताओं को उन पर जितना विश्वास है, उतना और किसी हाकिम पर नहीं है, इसी लिए यह मुकदमा उनके इजलास में भेजा गया है।

ठाकुर साहब सरकारी काम में जरा भी रू-रियायत न करते थे; लेकिन यह मुकदमा पाकर वह धर्मसंकट में पड़ गए। धन्नासिंह और अन्य अपराधियों के विषय में कोई चिन्ता न थी, उनकी मीयाद बढ़ा सकते थे, काल कोठरी में डाल सकते थे, सेशन सिपुर्द कर सकते थे; पर चक्रधर को क्या करें! अगर सजा देते हैं, तो जनता में मुँह दिखाने लायक नहीं रहते। मनोरमा तो शायद उनका मुँह न देखे। छोड़ते हैं, तो अपने समाज में तिरस्कार होता है, क्योंकि वहाँ सभी चक्रधर से खार खाए बैठे थे। ठाकुर साहब के कानों में किसी ने यह बात भी डाल दी थी कि इसी मुकदमे पर तुम्हारे भवि[illegible]

मुकदमे को पेश हुए आज [illegible]
की रिमझिम वर्षा का आनन्द उ[illegible]
रही थी। घुड़दौड़ नहीं, संग्राम था। एक दल आगे वेग से भागा चला जाता था और उसके पीछे विजेताओं का काला दल तोपें दागता, भाले चमकाता, गम्भीर भाव से बढ़ रहा था, मानो भगोड़ों का पीछा करना अपनी शान के खिलाफ समझता हो।

सहसा मनोरमा मोटर से उतरकर उनके समीप हो कुर्सी पर बैठ गई।

गुरुसेवक ने पूछा—कहाँ से आ रही हो?

मनोरमा—घर ही से आ रही हूँ। जेलवाले मुकदमे में क्या हो रहा है?

गुरुसेवक—अभी तो कुछ नहीं हुआ। गवाहों के बयान हो रहे हैं।

मनोरमा—बाबूजी पर जुर्म साबित हो गया?

गुरुसेवक—हो भी गया और नहीं भी हुआ।

मनोरमा—मैं नहीं समझी।

गुरुसेवक—इसका मतलब यह है कि जुर्म का साबित होना या न होना दोनों बराबर हैं, और मुझे मुलजिमों को सजा करनी पड़ेगी। अगर बरी कर दूँ, तो

सरकार अपील करके उन्हें फिर सजा दिला देगी। हाँ, मैं वदनाम हो जाऊँगा। मेरे लिए यह आत्म-बलिदान का प्रश्न है, सारी देवता मंडली मुझ पर कुपित हो जायगी।

मनोरमा—तुम्हारी आत्मा क्या कहती है?

गुरुसेवक—मेरी आत्मा क्या कहेगी? मौन है।

मनोरमा—मैं यह न मानूँगी। आत्मा कुछ न कुछ जरूर कहती है, अगर उससे पूछा जाए। कोई माने या न माने, यह उसका अख्तियार है। तुम्हारी आत्मा भी अवश्य तुम्हें सलाह दे रही होगी और उसकी सलाह मानना तुम्हारा धर्म है। वावूजी के लिए सजा का दो एक साल वढ़ जाना कोई वात नहीं, वह निरपराध हैं और यह विश्वास उन्हें तस्कीन देने को काफी है; लेकिन तुम कहीं के न रहोगे। तुम्हारे देवता तुमसे भले ही सन्तुष्ट हो जाएँ; पर तुम्हारी आत्मा का सर्वनाश हो जाएगा।

गुरुसेवक—चक्रधर विलकुल वेकसूर तो नहीं हैं। पहले-पहल जेल के दारोगा पर वही गर्म पड़े थे। वह उस वक्त जब्त कर जाते, तो यह फिसाद न खड़ा होता। यह अपराध उनके सिर से कैसे दूर होगा?

मनोरमा—आपके कहने का यह मतलव है कि वह गालियाँ खाकर चुप रह जाते? क्यों?

गुरुसेवक—जव उन्हें मालूम था कि मेरे विगड़ने से उपद्रव की सम्भावना है, तो मेरे खयाल में उन्हें चुप ही रह जाना चाहिए था।

मनोरमा—और मैं कहती हूँ कि उन्होंने जो कुछ किया, वही उनका धर्म था। आत्मसम्मान की रक्षा हमारा सवसे पहला धर्म है। आत्मा की हत्या करके अगर स्वर्ग भी मिले, तो वह नरक है। आपको अपने फैसले में साफ-साफ लिखना चाहिए कि वावूजी वेकसूर हैं। आपको सिफारिश करनी चाहिए कि एक महान् संकट में अपने प्राणों को हथेली पर लेकर, जेल के कर्मचारियों की जान वचाने के वदले में उनकी मीयाद घटा दी जाए। सरकार अपील करे, इससे आपको कोई प्रयोजन नहीं। आपका कर्तव्य वही है, जो मैं कह रही हूँ।

गुरुसेवक ने अपनी नीचता को मुसकराहट से छिपाकर कहा—आग में कूद पड़ूँ?

मनोरमा—धर्म की रक्षा के लिए आग में कूद पड़ना कोई नई वात नहीं है। आखिर आपको किस वात का डर है? यही न, कि आपसे आपके अफसर नाराज हो जाएँगे? आप शायद डरते हों कि कहीं आप अलग न कर दिए जाएँ। इसकी जरा भी चिन्ता न कीजिए! मैं आशा करती हूँ···मुझे विश्वास है कि आपका नुकसान न होने पाएगा।

गुरुसेवक अपनी स्वार्थपरता पर झेंपते हुए वोले—नौकरी की मुझे परवा नहीं है मनोरमा! मैं इन लोगों के कमीनेपन से डरता हूँ। इनको फौरन खयाल

होगा कि मैं भी उसी टुकड़ी में मिला हुआ हूँ, और आश्चर्य नहीं कि मैं भी किसी जुल्म में फाँस दिया जाऊँ। मुझे इनके साथ मिलने-जुलने से इनकी नीचता का कई बार अनुभव हो चुका है। इनमें उदारता और सज्जनता नाम को भी नहीं होती। बस, अपने मतलब के यार हैं। इनका धर्म, इनकी राजनीति, इनका न्याय, इनकी सभ्यता केवल एक शब्द में आ जाती है, और वह शब्द है—'स्वार्थ'। मैं सब कुछ सह सकता हूँ, जेल के कष्ट नहीं सह सकता। जानता हूँ, यह मेरी कमजोरी है; पर क्या करूँ ? मुझमें तो इतना साहस नहीं।

मनोरमा—भैयाजी, आपकी यह सारी शंकाएं निर्मूल हैं। मैं आपका जरा भी नुकसान न होने दूँगी। गवाहों के बयान हो गए कि नहीं ?

गुरुसेवक—हाँ, हो गए। अब तो केवल फैसला सुनाना है।

मनोरमा—तो लिखिए, लाऊँ कलम-दावात ?

गुरुसेवक—लिख लूँगा, जल्दी क्या है ?

मनोरमा—मैं बिना लिखवाए यहाँ से जाऊँगी ही नहीं। यही इरादा करके आज आयी हूँ।

गुरुसेवक—जरा घर में जाकर लोगों से मिल आओ। शिकायत करती थी कि अभी से हमें भूल गई।

मनोरमा—टालमटोल न कीजिए। मैं सब सामान यहीं लाये देती हूँ। आपको इसी वक्त लिखना पड़ेगा।

गुरुसेवक—तो तुम कब तक बैठी रहोगी ? फैसला लिखना कोई मुँह का कौर थोड़े ही है।

मनोरमा—आधी रात तक खत्म हो जाएगा ? आज न होगा, कल होगा ? मैं फैसला पढ़कर ही यहाँ से जाऊँगी। तुम दिल से चक्रधर को निर्दोष मानते हो, केवल स्वार्थ और भय तुम्हें दुविधा में डाले हुए हैं। मैं देखना चाहती हूँ कि तुम कहाँ तक सत्य का निर्वाह करते हो।

सहसा दूसरी मोटर आ पहुँची। इस पर राजा साहब बैठे हुए थे। गुरुसेवक बड़े तपाक से उन्हें लेने दौड़े। राजा ने उनकी ओर विशेष ध्यान न दिया। मनोरमा के पास आकर बोले—तुम्हारे घर से चला आ रहा हूँ। वहाँ पूछा तो मालूम हुआ—कहीं गयी हो; पर यह किसी को न मालूम था कि कहाँ। वहाँ से पार्क गया, पार्क से चौक पहुँचा, सारे जमाने की खाक छानता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। मैं कितनी बार कह चुका हूँ कि घर से चला करो, तो जरा बतला दिया करो।

मनोरमा—मैंने समझा था, आपके आने के वक्त तक लौट आऊँगी।

राजा—खैर, अभी कुछ ऐसी देर नहीं हुई। कहिए, डिप्टी साहब, [illegible] ज तो अच्छे हैं ? कभी-कभी भूलकर हमारी तरफ भी आ जाया कीजिए। [illegible] मे) चलो, नहीं तो शायद जोर से पानी आ जाय।

मनोरमा—मैं तो आज न जाऊँगी।

राजा—नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। वे लोग हमारी राह देख रहे होंगे।

मनोरमा—मेरा तो जाने को जी नहीं चाहता।

राजा—तुम्हारे बगैर सारा मजा किरकिरा हो जाएगा, और मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा। मैं तुम्हें जबरदस्ती ले जाऊँगा।

यह कहकर राजा साहब ने मनोरमा का हाथ आहिस्ता से पकड़ लिया और उसे मोटर की तरफ खींचा। मनोरमा ने एक झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और त्योरियाँ बदलकर बोली—एक बार कह दिया कि मैं न जाऊँगी।

राजा—आखिर क्यों?

मनोरमा—अपनी इच्छा!

गुरुसेवक—हुजूर, यह मुझसे जबरदस्ती जेलवाले मुकदमे का फैसला लिखाने बैठी हुई हैं। कहती हैं, बिना लिखवाए न जाऊँगी।

गुरुसेवक ने तो यह बात दिल्लगी से कही थी, पर समयोचित बात उनके मुँह से कम निकलती थी। मनोरमा का मुँह लाल हो गया। समझी कि यह मुझे राजा साहब के सम्मुख गिराना चाहते हैं। तनकर बोली—हाँ, इसीलिए बैठी हूँ, तो फिर? आपको यह कहते हुए शर्म आनी चाहिए थी। एक निरपराध आदमी को आपके हाथों स्वार्थमय अन्याय से बचाने के लिए मेरी निगरानी की जरूरत है। क्या यह आपके लिए शर्म की बात नहीं है? अगर मैं समझती कि आप निष्पक्ष होकर फैसला करेंगे, तो मेरे बैठने की क्यों जरूरत होती? आप मेरे भाई हैं, इसलिए मैं आपसे सत्याग्रह कर रही हूँ। आपकी जगह कोई दूसरा आदमी बाबूजी पर जान-बूझकर ऐसा घोर अन्याय करता, तो शायद मेरा बस चलता, तो उसके हाथ कटवा लेती। चक्रधर की मेरे दिल में जितनी इज्जत है, उसका आप लोग अनुमान नहीं कर सकते।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। गुरुसेवक का मुँह नन्हा सा हो गया, और राजा साहब तो मानो रो दिए। आखिर चुपचाप अपनी मोटर की ओर चले। जब वह मोटर पर बैठ गए, तो मनोरमा भी धीरे से उनके पास आई और स्नेह सिंचित नेत्रों से देखकर बोली—मैं कल आपके साथ अवश्य चलूँगी।

राजा ने सड़क की ओर ताकते हुए कहा—जैसी तुम्हारी खुशी।

मनोरमा—अगर इस मामले में सच्चा फैसला करने के लिए भैयाजी पर हाकिमों की अकृपा हुई, तो आपको भैयाजी के लिए कुछ फिक्र करनी पड़ेगी।

राजा—देखी जाएगी।

मनोरमा तनकर बोली—क्या कहा?

राजा—कुछ तो नहीं।

मनोरमा—भैयाजी को रियासत में जगह देनी होगी।

राजा—तो दे देना, मैं रोकता कब हूँ?

मनोरमा—कल चार बजे आने की कृपा कीजिएगा। मुझे आपके साथ आज न चलने का बड़ा दुःख है, पर मजबूर हूँ। मैं चली जाऊँगी, तो भैयाजी कुछ का कुछ कर बैठेंगे। आप नाराज तो नहीं हैं?

यह कहते-कहते मनोरमा की आँखें सजल हो गईं। राजा ने मन्त्र मुग्ध नेत्रों से उसकी ओर ताका और गद्गद होकर बोले—तुम इसकी जरा भी चिन्ता न करो। तुम्हारा इशारा काफी है। लो, अब खुश होकर मुसकरा दो। देखो, वह हँसी आयी!

मनोरमा मुसकरा पड़ी। पानी में कमल खिल गया। राजा साहब ने उससे हाथ मिलाया और चले गए। तब मनोरमा आकर अपनी कुरसी पर बैठ गई।

इस समय गुरुसेवक की दशा उस आदमी की सी थी, जिसके सामने कोई महात्मा धूनी रमाए बैठे हों, और बगल में कोई विहसित, विकसित रमणी मधुर संगीत अलाप रही हो। उसका मन तो संगीत की ओर आकर्षित होता है; लेकिन लज्जावश उधर न देखकर वह जाता है और महात्मा के चरणों पर सिर झुका देता है।

[illegible]

है, कभी घबराता है और कभी बैठ जाता है।

कुर्सी पर बैठे-बैठे मनोरमा को एक झपकी आ गई। सावन-भादों की ठंडी हवा निद्रामय होती है। उसका मन स्वप्न-साम्राज्य में जा पहुँचा। क्या देखती है कि उसके बचपन के दिन हैं। वह अपने द्वार पर सहेलियों के साथ खेल रही है। सहसा एक ज्योतिषी पगड़ी बाँधे, पोथी-पत्रे बगल में दबाए आता है। सब लड़कियाँ अपनी गुड़ियों का हाथ दिखाने के लिए दौड़ी हुई ज्योतिषी के पास आती हैं। ज्योतिषी गुड़िया के हाथ देखने लगता है। न जाने कैसे गुड़ियों के हाथ लड़कियों के हाथ बन जाते हैं। ज्योतिषी बालिका के हाथ देखकर कहता है—तेरा विवाह एक बड़े भारी अफसर से होगा। बालिका हँसते हुए अपने घर चली जाती है। तब ज्योतिषी दूसरी बालिका का हाथ देखकर कहता है—तेरा विवाह एक बड़े सेठ से होगा। तू पालकी में बैठकर चलेगी। यह बालिका भी खुश होकर घर चली जाती है। तब मनोरमा की बारी आती है। ज्योतिषी उसका हाथ देखकर चिन्ता में डूब जाते हैं और अन्त में संदिग्ध स्वर में कहते हैं—तेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है, तू उसके विरुद्ध करेगी और दुःख उठाएगी। यह कह कर वह चल पड़ते हैं; पर मनोरमा उनका हाथ पकड़कर कहती है— मुझे तो कुछ नहीं बताया। मुझे उसी तरह बता दीजिए, जैसे आपने मेरी [illegible] बताया है। ज्योतिषी झुँझलाकर कहते हैं—तू प्रेम को छोड़कर

ी; पर तेरा उद्धार प्रेम से होगा। यह कहकर ज्योतिषीजी अन्तर्धान हो गए
मनोरमा खड़ी रोती रह गई।

ही विचित्र दृश्य देखते-देखते मनोरमा की आँखें खुल गईं। उसकी आँखों से
तक आँसू बह रहे थे। सामने उसकी भावज खड़ी कह रही थी—घर में चलो
! मुझसे क्यों इतना भागती हो? क्या मैं कुछ छीन लूँगी? और गुरुसेवक
के सामने बैठे तजवीज लिख रहे थे। मनोरमा ने भावज से पूछा—भाभी,
मैं सो गई थी? अभी तो शाम हुई है।

गुरुसेवक ने कहा—शाम नहीं हुई है, वारह वज रहे हैं।

मनोरमा—तो आपने तजवीज लिख डाली होगी?

गुरुसेवक—वस, जरा देर में खत्म हुई जाती है।

मनोरमा ने काँपते हुए स्वर में कहा—आप यह तजवीज फाड़ डालिए।

गुरुसेवक ने वड़ी-वड़ी आँखें करके पूछा—क्यों, फाड़ क्यों डालूँ?

मनोरमा—यों ही! आपने इस मुकदमे का जिक्र ऐसे वेमौके कर दिया कि
राजा साहव नाराज हो गए होंगे। मुझे चक्रधर से कुछ रिश्वत तो लेनी नहीं है।
वह तीन वर्ष की जगह तीस वर्ष क्यों न जेल में पड़े रहें, पुण्य और पाप आपके
सिर। मुझसे कोई मतलव नहीं।

गुरुसेवक—नहीं मनोरमा, मैं अव यह तजवीज नहीं फाड़ सकता। वात यह
है कि मैंने पहले ही दिल में एक वात स्थिर कर ली थी, और सारी शहादतें
मुझे उसी रंग में रँगी नजर आती थीं। सत्य की मैंने तलाश न की थी, तो सत्य
मिलता कैसे? अव मालूम हुआ कि पक्षपात क्योंकर लोगों की आँखों पर परदा
डाल देता है। अव जो सत्य की इच्छा से वयानों को देखता हूँ, तो स्पष्ट मालूम
होता कि चक्रधर विलकुल निर्दोष हैं। जान-बूझकर अन्याय न करूँगा।

मनोरमा—आपने राजा साहव की त्योरियाँ देखीं?

गुरुसेवक—हाँ, खूव देखीं; पर उनकी अप्रसन्नता के भय से अपनी तजवीज
नहीं फाड़ सकता। यह पहली तजवीज है, जो मैंने पक्षपात रहित होकर लिखी है
और जितना संतोष आज मुझे अपने फैसले पर है, उतना और कभी न हुआ था।
अव तो कोई लाख रुपये भी दे, तो भी इसे न फाड़ूँ।

मनोरमा—अच्छा, तो लाइए, मैं फाड़ दूँ।

गुरुसेवक—नहीं मनोरमा, ऊँघते हुए आदमी को मत ठेलो, नहीं तो फिर
वह इतने जोर से गिरेगा कि उसकी आत्मा तक चूर-चूर हो जाएगी। मुझे तो
विश्वास है कि इस तजवीज से चक्रधर की पहली सजा भी घट जायगी। शायद
सत्य कलम को भी तेज कर देता है। मैं इन तीन घंटों में विना चाय एक प्याल
पिये 40 पृष्ठ लिख गया, नहीं तो हर दस मिनट में चाय पीनी ही पड़ती थी
विना चाय की मदद के कलम ही न चलती थी।

मनोरमा—लेकिन मेरे सिर इसका एहसान न होगा?

गुरुसेवक—सचाई आप ही अपना इनाम है, यह पुरानी कहावत है। सत्य से आत्मा भी बलवान हो जाती है। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, अब मुझे जरा भी भय नहीं है।

मनोरमा—अच्छा, अब मैं जाऊँगी। लालाजी घबरा रहे होंगे।

भाभी—हाँ, हाँ, जरूर जाओ, वहाँ माताजी के स्तनों में दूध उतर आया होगा। यहाँ कौन अपना बैठा हुआ है?

मनोरमा—भाभी, लोंगी अम्माँ को जितना नीच समझती हो, उतनी नीच नहीं हैं। तुम लोगों के लिए वह अब भी रोया करती हैं।

भाभी—अब बहुत बखान न करो, जी जलता है। वह तो मरती भी हो, तो भी देखने न जाऊँ। किसी दूसरे घर में होती, तो अभी तक बरतन माँजती होती। यहाँ आकर रानी बन गई। लो उठो चलो; आज तुम्हारा गाना सुनेंगी। बहुत दिनों के बाद पजे में आयी हो।

मनोरमा घर न जा सकी। भोजन करके भावज के साथ लेटी। बड़ी रात तक दोनों में बातें होती रहीं। आखिर भाभी को नींद आ गई; पर मनोरमा की आँखों में नींद कहाँ? वह तो पहले ही सो चुकी थी। वही स्वप्न उनके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था। वह बार-बार सोचती थी, इस स्वप्न का आशय क्या यही है कि राजा साहब से विवाह करके वह सचमुच अपना भाग्य पलट रही है? क्या वह प्रेम छोड़कर धन के पीछे दौड़ी जा रही है? वह प्रेम कहाँ है, जिसे उसने छोड़ दिया है? उसने तो उसे पाया ही नहीं। वह जानती है कि उसे कहाँ पा सकती है; पर पाए कैसे? वह वस्तु तो उसके हाथ से निकल गयी। वह मन में कहने लगी—बाबूजी, तुमने कभी मेरी ओर आँख उठाकर देखा है? नहीं, मुझे इसकी लालसा रह ही गई। तुम दूसरों के लिए मरना जानते हो, अपने लिए जीना भी नहीं जानते। तुमने एक बार मुझे इशारा भी कर दिया होता, तो मैं दौड़कर तुम्हारे चरणों में लिपट जाती। इस धन-दौलत पर लात मार देती, इस बन्धन को कच्चे धागे की भाँति तोड़ देती; लेकिन तुम इतने विद्वान होकर भी इतने सरल हृदय हो! इतने अनुरक्त होकर भी इतने विरक्त! तुम समझते हो, तुम्हारे मन का हाल नहीं जानती? मैं सब जानती हूँ, एक-एक अक्षर जानती हूँ; लेकिन क्या करूँ? मैंने अपने मन के भाव उससे अधिक प्रकट कर दिये थे, जितना मेरे लिए उचित था। मैंने बेशर्मी तक की, लेकिन तुमने मुझे न समझा, या समझने की चेष्टा ही न की। अब तो भाग्य मुझे उसी ओर लिये जा रहा है, जिधर मेरी चिता बनी हुई है। उसी चिता पर बैठने जाती हूँ। यही हृदयदाह मेरी चिता होगी और यही स्वप्न-सदेश मेरे जीवन का आधार होगा। प्रेम से मैं वंचित हो गई और अब मुझे सेवा ही से अपना जीवन सफल करना होगा। यह स्वप्न नहीं आकाशवाणी है! अभागिन इससे अधिक और क्या अभिलाषा रख सकती है?

यही सोचते-सोचते वह लेटे-लेटे यह गीत गाने लगी—

करूँ क्या, प्रेम समुद्र अपार !
स्नेह सिन्धु में मग्न हुई मैं, लहरें रही हिलोर,
हाथ न आये तुम जीवन धन, पाया कहीं न छोर,
करूँ क्या, प्रेम समुद्र अपार !
झूम-झूमकर जब इठलायी सुरभित स्निग्ध समीर,
नभ मंडल में लगा विचरने मेरा हृदय अधीर ।
करूँ क्या, प्रेम समुद्र अपार ।

21

हुक्म के इशारों पर नाचनेवाले गुरुसेवकसिंह ने जब चक्रधर को जेल के दंगे के इलजाम से बरी कर दिया, तो अधिकारी मंडल में सनसनी-सी फैल गई । गुरुसेवक से ऐसे फैसले की किसी को आशा न थी । फैसला क्या था, जिसका एक-एक शब्द वात्सल्य के रस में शराबोर था । जनता में धूम मच गई । ऐसे न्यायवीर और सत्यवादी प्राणी विरले ही होते हैं, सबके मुँह से यही बात निकलती थी । शहर के कितने ही आदमी तो गुरुसेवक के दर्शनों को आये और यह कहते हुए लौटे कि यह हाकिम नहीं, साक्षात् देवता है । अधिकारियों ने सोचा था, चक्रधर को 4-5 साल जेल में सड़ाएँगे, लेकिन अब तो खूँटा ही उखड़ गया; उछलें किस बिरते पर ? चक्रधर इलजाम से बरी ही न हुए, बल्कि उनकी पहली सजा भी एक साल घटा दी गई ।

मिस्टर जिम तो ऐसा जामे से बाहर हुए कि बस चलता, तो गुरुसेवक को गोली मार देते । और कुछ न कर सके, तो चक्रधर को तीसरे ही दिन आगरे भेज दिया, लेकिन ईश्वर न करे कि किसी पर हाकिम की टेढ़ी निगाह हो । चक्रधर की मियाद घटा दी गई, लेकिन कर्मचारियों को सख्त ताकीद कर दी गई थी कि को कैदी उनसे बोलने तक न पाए, उनके कमरे के द्वार तक भी न जाने पाए, यहाँ त कि कोई कर्मचारी भी उनसे न बोले । साल भर में दस साल की कैद का म चखाने की हिकमत सोच निकाली गई । मजा यह कि इस धुन में चक्रधर को क काम भी न दिया गया । बस, आठों पहर उसी चार हाथ लम्बी और तीन चौड़ी कोठरी में पड़े रहो ।

जेल के विधाताओं में चाहे जितने अवगुण हों, पर वे मनोविज्ञान के प होते हैं । किस दंड से आत्मा को अधिक से अधिक कष्ट हो सकता है, इसका सम्पूर्ण ज्ञान होता है । मनुष्य के लिए बेकारी से बड़ा और कोई कष्ट नहीं है वे खूब जानते हैं । चक्रधर के कमरे का द्वार दिन में केवल दो बार खुलत वार्डर खाना रखकर किवाड़ बन्द कर देता था । आह ! कालकोठरी ! तू

पशुता की सबसे क्रूर लीला, सबसे उज्ज्वल कीर्ति है। तू वह जादू है, जो मनुष्य को आँखें रहते अन्धा, कान रहते बहरा, जीभ रहते गूँगा बना देती है। कहाँ हैं सूर्य की वे किरणें, जिन्हें देखकर आँखों को अपने होने का विश्वास हो? कहाँ है वह वाणी, जो कानों को जगाए? मुख है, किन्तु ज्ञान तो भिन्नता में है। जहाँ दुर्गन्ध के सिवा और कुछ नहीं, वहाँ गंध-ज्ञान कैसे हो? बस, शून्य है, अंधकार है! वहाँ पंच भूतों का अस्तित्व ही नहीं। कदाचित् ब्रह्मा ने इस अवस्था की कल्पना ही न की होगी, कदाचित् उनमें यह सामर्थ्य ही न थी। मनुष्य की आविष्कार शक्ति कितनी विलक्षण है! धन्य हो देवता, धन्य हो!

चक्रधर के विचार और भाव इतनी जल्द बदलते रहते थे कि कभी-कभी उन्हें भ्रम होने लगता था कि मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूँ? कभी सोचते—ईश्वर ने ऐसी सृष्टि की रचना ही क्यों की, जहाँ इतना स्वार्थ, द्वेष और अन्याय है? क्या ऐसी पृथ्वी न बन सकती थी, जहाँ सभी मनुष्य, सभी जातियाँ प्रेम और आनन्द के साथ संसार में रहतीं? यह कौन-सा इन्साफ है कि कोई तो दुनिया के मजे उड़ाए, कोई धक्के खाए? एक जाति दूसरी का रक्त चूसे और मूँछों पर ताव दे? दूसरी कुचली जाए और दाने-दाने को तरसे? ऐसा अन्यायमय संसार ईश्वर की सृष्टि नहीं हो सकता। पूर्व संसार का सिद्धान्त ढोंग मालूम होता है, जो लोगों ने दुखियों और दुर्बलों के आँसू पोंछने के लिए गढ़ लिये हैं। दो-चार दिन यही संशय उनके मन को मथा करता। फिर एकाएक विचारधारा पलट जाती। अंधकार में प्रकाश की ज्योति फैल जाती, काँटों की जगह फूल नजर आने लगते। पराधीनता एक ईश्वरीय विधान का रूप धारण कर लेती, जिसमें विकास और जागृति का मंत्र छिपा हुआ है। नहीं, पराधीनता दंड नहीं है; यह शिक्षालय है, जो हमें स्वराज्य के सिद्धान्त सिखाता है, हमारे पुराने कुसंस्कारों को मिटाता है, हमारी मुँदी हुई आँखें खोलता है। इसके लिए ईश्वर का गिला करने की जरूरत नहीं। हमें उनको धन्यवाद देना चाहिए।

अन्त को इस अन्तर्द्वन्द्व में उनको आत्मा ने विजय पाई। सारी मन की अशांति, क्रोध और हिंसात्मक वृत्तियाँ उसी विजय में मग्न हो गईं। मन पर आत्मा का राज्य हो गया। इसकी परवा न रही कि ताजी हवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा मिलता है, कपड़े कितने मैले हैं, उनमें कितने चिलवे पड़े हुए हैं कि खुजाते-खुजाते देह में दिदोरे पड़ जाते हैं। इन कष्टों की ओर उनका ध्यान ही न जाता। मन अन्तर्जगत् की सैर करने लगा। यह नई दुनिया, जिसका अभी तक चक्रधर को बहुत कम ज्ञान था, इस लोक से कहीं ज्यादा पवित्र, उज्ज्वल और शांतिमय थी। यहाँ रवि की मधुर प्रभात किरणों में, इन्दु की मनोहर छटा में, वायु के कोमल संगीत में, आकाश की निर्मल नीलिमा में एक विचित्र ही आनन्द था। वह किसी समाधिस्थ योगी की भाँति घंटों इस अन्तर्लोक में विचरते रहते। शारीरिक कष्टों से अब उन्हें विराग-सा होने लगा। उनकी ओर ध्यान

देना वह तुच्छ समझते थे। कभी-कभी वह गाते। मनोरंजन के लिए कई खेल निकाले। अँधेरे में अपनी लुटिया लुढ़का देते और उसे एक ही खोज में उठा लाने की चेष्टा करते। अगर उन्हें किसी चीज की जरूरत मालूम होती, तो वह प्रकाश था। इसलिए नहीं कि वह अंधकार से ऊब गए थे; बल्कि इसलिए कि वह अपने मन में उमड़नेवाले भावों को लिखना चाहते थे। लिखने की सामग्रियों के लिए उनका मन तड़पकर रह जाता। धीरे-धीरे उन्हें प्रकाश की भी जरूरत न रही। उन्हें ऐसा विश्वास होने लगा कि मैं अँधेरे में भी लिख सकता हूँ। यही न होगा कि पंक्तियाँ सीधी न होंगी; पर पंक्तियों को दूर-दूर रखकर और शब्दों को अलग-अलग लिखकर वह इस मुश्किल को आसान कर सकते थे। सोचते, कभी यहाँ से बाहर निकलने पर उस लिखावट को पढ़ने में कितना आनन्द आएगा, कितना मनोरंजन होगा! लेकिन लिखने का सामान कहाँ? बस, यही एक ऐसी चीज थी, जिसके लिए वह कभी-कभार विकल हो जाते थे। विचार को ऐसे अथाह सागर में डूबने का मौका फिर न मिलेगा और ये मोती फिर हाथ न आएँगे; लेकिन कैसे मिलें?

चक्रधर के पास कभी-कभी एक बूढ़ा वार्डर भोजन लाया करता था। वह बहुत ही हँसमुख आदमी था। चक्रधर को प्रसन्नमुख देखकर दो-चार बातें कर लेता था। आह! उससे बातें करने के लिए चक्रधर लालायित रहते थे। उससे उन्हें बन्धुत्व-सा हो गया था। वह कई बार पूछ चुका था कि बाबूजी चरस तम्बाकू की इच्छा हो, तो हमसे कहना। चक्रधर को खयाल आया, क्यों न उससे एक पेंसिल और थोड़े से कागज के लिए कहूँ? इस उपकार का बदला कभी मौका मिला तो चुका दूँगा। कई दिनों तक तो वह इसी संकोच में पड़े रहे कि उससे कहूँ या नहीं। आखिर एक दिन उनसे न रहा गया, पूछ ही बैठे—क्यों जमादार, यहाँ कहीं कागज-पेंसिल तो मिलेगी?

बूढ़ा वार्डर उनकी पूर्व कथा सुन चुका था, कुछ लिहाज करता था। मालूम नहीं, किस देवता के आशीर्वाद से उसमें इतनी इंसानियत बच रही थी। और जितने वार्डर भोजन लाते, वे या तो चक्रधर को अनायास दो-चार ऐंड़ी-बैंड़ी सुना देते, या चुपके से खाना रखकर चले जाते। चक्रधर को चरित्र ज्ञान प्राप्त करने का यह बहुत ही अच्छा अवसर मिलता था। बूढ़े वार्डर ने सतर्क भाव से कहा—मिलने को तो मिल जाएगा; पर किसी ने देख लिया, तो क्या होगा?

इस वाक्य ने चक्रधर को सँभाल लिया। उनकी विवेक बुद्धि, जो क्षण भर के लिए मोह में फँस गई थी, जाग उठी। बोले—नहीं, मैं यों ही पूछता था। यह कहते-कहते लज्जा से उनकी जबान बन्द हो गई। जरा सी बात के लिए इतना पतन!

इसके बाद उस वार्डर ने फिर कई बार पूछा—कहो तो पिसिन कागद ला दूँ; मगर चक्रधर ने हर दफा यही कहा—मुझे जरूरत नहीं।

बाबू यशोदानंदन को ज्यों ही मालूम हुआ कि चक्रधर आगरा जेल में आ गए हैं, वह उनसे मिलने की कई बार चेष्टा कर चुके थे; पर आज्ञा न मिलती थी। साधारणतः कैदियों को छठे महीने अपने घर के किसी प्राणी से मिलने की आज्ञा मिल जाती थी। चक्रधर के साथ इतनी रियायत भी न की गई थी; पर यशोदानंदन अवसर पड़ने पर खुशामद भी कर सकते थे। अपना सारा जोर लगाकर अन्त में उन्होंने आज्ञा प्राप्त कर ही ली—अपने लिए नहीं, अहिल्या के लिए। उस विरहिणी की दशा दिनोदिन खराब होती जाती थी। जब से चक्रधर ने जेल में कदम रखा, उसी दिन से वह भी कैदियों की सी जिंदगी बसर करने लगी। चक्रधर जेल में भी स्वतंत्र थे, वह भाग्य को अपने पैरों पर झुका सकते थे। अहिल्या घर में भी कैद थी, वह भाग्य पर विजय न पा सकती थी। वह केवल एक बार बहुत थोड़ा सा खाती और वह भी रूखा-सूखा। वह चक्रधर को अपना पति समझती थी। पति की ऐसी कठिन तपस्या देखकर उसे आप ही आप बनाव-शृंगार से, खाने-पीने से, हँसने-बोलने से अरुचि होती थी। जहाँ पुस्तकों पर जान देती थी, वहाँ अब उनकी ओर आँख उठाकर न देखती। चारपाई पर सोना भी छोड़ दिया था। केवल जमीन पर एक कम्बल बिछाकर पड़ रहती। बैसाख जेठ की गरमी का क्या पूछना, घर की दीवारें तवे की तरह तपती हैं। घर भाड़ सा मालूम होता है। रात को खुले मैदान में भी मुश्किल से नींद आती है; लेकिन अहिल्या ने सारी गरमी एक छोटी सी बन्द कोठरी में सोकर काट दी।

माघ की सरदी का क्या पूछना? प्राण तक काँपते हैं। लिहाफ के बाहर मुँह निकालना मुश्किल होता है। पानी पीने से जूड़ी सी चढ़ आती है। लोग आग पर पतंगों की भाँति गिरते हैं; लेकिन अहिल्या के लिए वही कोठरी की जमीन थी और एक फटा हुआ कम्बल। सारा घर समझाता था—क्यों इस तरह प्राण देती हो? तुम्हारे प्राण देने से चक्रधर का कुछ उपकार होता, तो एक बात भी थी। व्यर्थ काया को क्यों कष्ट देती हो? इसका उसके पास यही जवाब था—मुझे जरा भी कष्ट नहीं! आप लोगों को न जाने कैसे मैदान में गरमी लगती है, मुझे तो कोठरी में खूब नींद आती है। आप लोगों को न जाने कैसे सरदी लगती है, मुझे तो कम्बल में ऐसी गहरी नींद आती है कि एक बार भी आँख नहीं खुलती। ईश्वर में पहले भी उसकी भक्ति कम न थी, अब तो उसकी धर्मनिष्ठा और भी बढ़ गई। प्रार्थना में इतनी शांति है, इसका उसे पहले अनुमान न था। जब वह हाथ जोड़कर आँखें बन्द करके ईश्वर से प्रार्थना करती, तो उसे ऐसा मालूम होता कि चक्रधर स्वयं मेरे सामने खड़े हैं। एकाग्रता और निरंतर ध्यान से उसकी आत्मा दिव्य होती जाती थी। इच्छाएँ आप ही आप गायब हो गईं। चित्त की वृत्ति ही बदल गई। उसे अनुभव होता था कि मेरी प्रार्थनाएँ उस मात[illegible]पूर्ण अंचल की भाँति, जो बालक को ढक लेता है, चक्रधर की रक्षा करती[illegible]

जिस दिन अहिल्या को मालूम हुआ कि चक्रधर से मिल[illegible]

, उसे आनंद के बदले भय होने लगा—वह न जाने कितने दुर्बल हो गए न जाने उनकी सूरत कैसी बदल गई होगी। कौन जाने, हृदय बदल गया यह भी शंका होती थी कि कहीं मुझे उनके सामने जाते ही मूर्च्छा न आ , कहीं मैं चिल्लाकर रोने न लगूं। अपने दिल को बार-बार मजबूत करती ।

प्रात:काल उसने उठकर स्नान किया और बड़ी देर तक बैठी वंदना करती ही। माघ का महीना था, आकाश में बादल छाए हुए थे, इतना कुहरा पड़ रहा । कि सामने की चीज न सूझती थी। सरदी के मारे लोगों का बुरा हाल था। रों की महरियां अंगीठियां लिये ताप रही थीं, धन्धा करने कौन जाए। मजदूरों को फाका करना मंजूर था; पर काम पर जाना मुश्किल मालूम होता था। दूकानदारों को दूकान की परवाह न थी, बैठे आग तापते थे; यमुना में नित्य स्नान करनेवाले भक्त जन भी आज तट पर नजर न आते थे। सड़कों पर, बाजार में, गलियों में, सन्नाटा छाया हुआ था। ऐसा ही कोई विपत्ति का मारा दूकानदार था, जिसने दूकान खोली हो। बस, अगर चलते-फिरते नजर आते थे, तो वे दफ्तर के बाबू थे, जो सरदी से सिकुड़े, जेब में हाथ डाले, कमर टेढ़ी किए, लपके चले जाते थे। अहिल्या इसी वक्त यशोदानंदनजी के साथ गाड़ी में बैठकर जेल चली। उसे उल्लास न था, शंका और भय से दिल कांप रहा था, मानो कोई अपने रोगी मित्र को देखने जा रहा हो।

जेल में पहुंचते ही एक औरत ने उसकी तलाशी ली और उसे पास के एक कमरे में ले गई, जहां एक टाट का टुकड़ा पड़ा था। उसने अहिल्या को उस टाट पर बैठने का इशारा किया। तब एक कुर्सी मँगवाकर आप उस पर बैठ गई और चौकीदार से कहा—अब यहां सब ठीक है, कैदी को लाओ।

अहिल्या का कलेजा धड़क रहा था। उस स्त्री को अपने समीप बैठे देखकर उसे कुछ ढाढ़स हो रहा था, नहीं तो शायद वह चक्रधर को देखते ही उनके पैरों से लिपट जाती। सिर झुकाए बैठी थी कि चक्रधर दो चौकीदारों के साथ कमरे में आए। उनके सिर पर कनटोप था और देह पर एक आधी आस्तीन का कुरता; पर मुख पर आत्मबल की ज्योति झलक रही थी। उसका रंग पीला पड़ गया था, दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे और आँखें भीतर को घुसी हुई थीं; पर मुख पर एक हल्की-सी मुसकराहट खेल रही थी। अहिल्या उन्हें देखकर चौंक पड़ी, उसकी आँखों से बे-अख्तियार आँसू निकल आए। शायद कहीं और देखती तो पहचान भी न सकती। घबराई-सी उठकर खड़ी हो गई। अब दोनों के दोनों खड़े हैं, दोनों के मन में हजारों बातें हैं, उद्गार पर उद्गार उठते हैं, दोनों एक दूसरे को कनखियों में देखते हैं, जिनमें प्रेम, आकांक्षा और उत्सुकता की लहरें सी उठ रही हैं; पर किसी के मुंह से शब्द नहीं निकलता। अहिल्या सोचती है, क्या पू[illegible] इनका एक-एक अंग अपनी दशा आप सुना रहा है। उसकी आँखों में बार-[illegible]

आँसू उमड़ आते हैं, पर पी जाती है। चक्रधर भी यही सोचते हैं, क्या पूछूँ, इसका एक-एक अंग इसकी तपस्या और वेदना की कथा सुना रहा है। बार-बार ठंडी साँसें खींचते हैं, पर मुँह नहीं खुलता। वह माधुर्य कहाँ है, जिस पर ऊषा की लालिमा बलि जाती थी? वह चपलता कहाँ है, वह मोहक छवि कहाँ है, जो मुखमण्डल की बलाएँ लेती थी। मालूम होता है, बरसों की रोगिणी है। आह! मेरे ही कारण इसकी यह दशा हुई है। अगर कुछ दिन और इसी तरह घुली, तो शायद प्राण ही न बचें। किन शब्दों में दिलासा दूँ, क्या कहकर समझाऊँ?

इसी असमंजस और कण्ठावरोध की दशा में खड़े-खड़े दोनों को 10 मिनट हो गए। शायद उन्हें खयाल ही न रहा कि मुलाकात का समय केवल 20 मिनट है। यहाँ तक कि उस लेडी को उनकी दशा पर दया आयी, घड़ी देखकर बोली—तुम लोग यों ही कब तक खड़े रहोगे? दस मिनट गुजर गये, केवल दस मिनट और बाकी हैं।

चक्रधर मानो समाधि से जाग उठे। बोले—अहिल्या, तुम इतनी दुबली क्यों हो? बीमार हो क्या?

अहिल्या ने सिसकियों को दबाकर कहा—नहीं तो, मैं बिलकुल अच्छी हूँ। आप अलबत्ता इतने दुबले हो गए हैं कि पहचाने नहीं जाते।

चक्रधर—खैर, मेरे दुबले होने के कारण हैं, लेकिन तुम क्यों ऐसी घुली जा रही हो? कम से कम अपने को इतना तो बनाए रखो कि जब मैं छूटकर आऊँ, तो मेरी कुछ मदद कर सको। अपने लिए नहीं, तो मेरे लिए तो तुम्हें अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। अगर तुमने इसी भाँति घुल-घुलकर प्राण दे दिये, तो शायद जेल से मेरी भी लाश ही निकले। तुम्हें वचन देना पड़ेगा कि तुम अब से अपनी ज्यादा फिक्र रखोगी। मेरी ओर से तुम निश्चिन्त रहो। मुझे यहाँ कोई तकलीफ नहीं है। बड़ी शान्ति से दिन कट रहे हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरे आत्म सुधार के लिए इस तपस्या की बड़ी जरूरत थी। मैंने अँधेरी कोठरी में जो कुछ पाया, वह पहले प्रकाश में रहकर न पाया था। मुझे अगर उसी कोठरी में सारा जीवन बिताना पड़े, तो भी मैं न घबराऊँगा। हमारे साधु-संत अपनी इच्छा से जीवन पर्यन्त कठिन से कठिन तपस्या करते हैं। मेरी तपस्या उनसे कहीं सरल और [illegible]

आई थी। अब तक मैं दूसरों का उपकार करने का स्वप्न देखा करता था। अब ज्ञात हुआ कि अपना उपकार ही दूसरों का उपकार है! जो अपना उपकार नहीं कर सकता, वह दूसरों का उपकार क्या करेगा? मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, यहाँ बड़े आराम से हूँ और इस परीक्षा में पड़ने से प्रसन्न हूँ। बाबूजी तो कुशल से हैं?

हिल्या—हाँ, आपको बराबर याद किया करते हैं। मेरे साथ वह भी आये यहाँ न आने पाए। अम्माँ और बावूजी में कई महीनों से खटपट है। वह हैं, बहुत दिन तो समाज की चिन्ता में दुवले हुए, अब आराम से घर बैठो, न्हीं ने समाज का ठीका ले लिया है? बाबूजी कहते हैं, यह काम तो उसी छोड़ूँगा जिस दिन प्राण शरीर को छोड़ देगा। बेचारे बराबर दौड़ते रहते क दिन भी आराम से बैठना नसीब नहीं होता। तार से बुलावे आते रहते फुरसत मिलती है, तो लिखते हैं। न जाने ऐसी क्या हवा बदल गई है कि नित्य न कहीं से उपद्रव की खबर आती रहती है। आजकल स्वास्थ्य भी बिगड़ है; पर आराम करने की तो उन्होंने कसम खा ली है। बूढ़े ख्वाजा महमूद से जाने किस बात पर अनबन हो गई है। आपके चले जाने के बाद कई महीने तक न मेल रहा; लेकिन अब फिर वही हाल है।

अहिल्या ने ये बातें महत्त्व की समझकर न कहीं; बल्कि इसलिए कि वह क्रधर का ध्यान अपनी तरफ से हटा देना चाहती थी। चक्रधर विरक्त होकर बोले—दोनों आदमी फिर धर्मान्धता के चक्कर में पड़ गए होंगे। जब तक हम सच्चे धर्म का अर्थ न समझेंगे, हमारी यही दशा रहेगी। मुश्किल यह है कि जिन महान् पुरुषों से अच्छी धर्मनिष्ठा की आशा की जाती है, वे अपने अशिक्षित भाइयों से भी बढ़कर उद्दंड हो जाते हैं। मैं तो नीति ही को धर्म समझता हूँ और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी है। अगर अंतर है तो बहुत थोड़ा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं। हमें कृष्ण, राम, ईसा मुहम्मद, बुद्ध, सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिए। ये मानव जाति के निर्माता हैं। जो इनमें से किसी का अनादर करता है या उनकी तुलना करने बैठता है, वह अपनी मूर्खता का परिचय देता है। बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू। देखना यह चाहिए कि वह कैसा आदमी है, न कि यह कि किस धर्म का आदमी है। संसार का भावी धर्म सत्य, न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा। हमें अगर संसार में जीवित रहना है, तो अपने हृदय में इन्हीं भावों का संचार करना पड़ेगा। मेरे घर का तो कोई समाचार न मिला होगा?

अहिल्या—मिला क्यों नहीं, बाबूजी हाल ही में काशी गये थे। जगदीशपुर के राजा साहब ने आपके पिताजी को 50 रु० मासिक बाँध दिया है, इससे अब उनको धन का कष्ट नहीं है। आपकी माताजी अलबत्ता रोया करती हैं! छोटी रानी साहब की आपके घरवालों पर विशेष कृपादृष्टि है।

चक्रधर ने विस्मित होकर पूछा—छोटी रानी कौन?

अहिल्या—रानी मनोरमा, जिनसे अभी थोड़े ही दिन हुए, राजा साहब का विवाह हुआ है।

चक्रधर—तो मनोरमा का विवाह राजा साहब से हो गया?

अहिल्या– यही तो बाबूजी कहते थे।

चक्रधर—तुम्हें खूब याद है, भूल तो नहीं रही हो?

अहिल्या—खूब याद है, इतनी जल्दी भूल जाऊँगी!

चक्रधर—यह तो बड़ी दिल्लगी हुई, मनोरमा का विवाह विशालसिंह के साथ! मुझे अब भी विश्वास नहीं आता। बाबूजी ने नाम बताने में गलती की होगी।

अहिल्या—बाबूजी को स्वयं आश्चर्य हो रहा था। काशी में भी लोगों को बड़ा आश्चर्य है। मनोरमा ने अपनी खुशी से विवाह किया है, कोई दबाव न था। मनोरमा किसी से दबनेवाली है ही नहीं। सुनती हूँ, राजा साहब बिलकुल उनकी मुट्ठी में हैं। जो कुछ वह करती हैं, वही होता है। राजा साहब तो काठ के पुतले बने हुए हैं। बाबूजी चन्दा माँगने गये थे, तो रानीजी ही ने पाँच हजार दिये। बहुत प्रसन्न मालूम होती थी।

सहसा लेडी ने कहा—वक्त पूरा हो गया। वार्डर, इन्हें अन्दर ले जाओ।

चक्रधर क्षण भर भी और न ठहरे। अहिल्या को तृष्णापूर्ण नेत्रों से देखते हुए चले गये। अहिल्या ने सजल नेत्रों से उन्हें प्रणाम किया और उनके जाते ही फूट-फूट कर रोने लगी।

22

फागुन का महीना आया, ढोल, मंजीरे की आवाजें कानों में आने लगीं। कहीं रामायण की मंडलियाँ बनीं, कहीं फाग और चौताल का बाजार गर्म हुआ। पेड़ों पर कोयल कूकी, घरों में महिलाएँ कूकने लगीं। सारा संसार मस्त है; कोई राग में, कोई साग में। मुंशी वज्रधर की संगीत सभा भी सजग हुई। यों तो कभी-कभी बारहों मास बैठक होती थी; पर फागुन आते ही बिना नागा मृदंग पर थाप पड़ने लगी। उदार आदमी थे, फिक्र को कभी पास न आने देते। इस विषय में वह बड़े-बड़े दार्शनिकों से भी दो कदम आगे बढ़े हुए थे। अपने शरीर को वह कभी कष्ट न देते थे। कवि के आदेशानुसार बिगड़ी को बिसार देते थे, हाँ, आगे की सुधि न लेते थे। लड़का जेल में है, घर में स्त्री रोते-रोते अधी हुई जाती है, सयानी लड़की घर में बैठी हुई है; लेकिन मुंशीजी को गम नहीं। पहले 25 रु० में गुजर करते थे, अब 75 रु० भी पूरे नहीं पड़ते। जिनसे मिलते हैं हँसकर, सबकी मदद करने को तैयार, मानो उनके मारे अब कोई प्राणी रोगी, दुखी, दरिद्र न रहने पाएगा; मानो वह ईश्वर के दरबार से लोगों के कष्ट दूर करने टीका लेकर आये हैं। वादे सबसे करते हैं, किसी ने झुककर सलाम किया और प्रसन्न हो गए। दोनों हाथों से वर-दान बाँटते फिरते हैं, चाहे पूरा एक भी न कर सकें। अपने मुहल्ले के कई बेफिक्रों

को, जिन्हें कोई टके को भी न पूछता था, रियासत में नौकर करा दिया—किसी को चौकीदार, किसी को मुहर्रिर, किसी को कारिन्दा। मगर नेकी करके दरिया में डालने की उनकी आदत नहीं। जिनसे मिलते हैं,अपना ही यश गाना शुरू करते हैं और उसमें मनमानी अतिशयोक्ति भी करते हैं। मशहूर हो गया है कि राजा और रानी दोनों उनकी मुट्ठी में हैं। सारा अख्तियार मदार इन्हीं के हाथ में है।

अब मुंशीजी के द्वार पर सायलों की भीड़ लगी रहती है, जैसे क्वार के महीने में वैद्यों के द्वार पर रोगियों की। मुंशीजी किसी को निराश नहीं करते, और न कुछ कर सकें, तो बातों से ही पेट भर देते हैं। वह लाख बुरे हों, फिर भी उनसे कहीं अच्छे हैं, जो पद पाकर अपने को भूल जाते हैं, जमीन पर पांव ही नहीं रखते। यों तो कामधेनु भी सबकी इच्छा पूरी नहीं कर सकती; पर मुंशीजी की शरण आकर दु:खी हृदय को शांति अवश्य मिलती है, उसे आशा की झलक दिखाई देने लगती है। मुंशीजी कुछ दिनों तक तहसीलदारी कर चुके हैं, अपनी धाक जमाना जानते हैं। जो काम पहुंच से बाहर होता है, उसके लिए भी 'हां-हां' कर देना, आंखें मारना, उड़नघाइयां बताना, इन चालों में वह सिद्ध हैं। स्वार्थ की दुनिया है, वकील, ठीकेदार, बनिये, महाजन, गरज हर तरह के आदमी उनसे कोई न कोई काम निकालने की आशा रखते हैं और किसी न किसी हीले से कुछ न कुछ दे ही मरते हैं।

मनोरमा का राजा साहब से विवाह होना था कि मुंशीजी का भाग्य सूर्य चमक उठा। एक ठीकेदार को रियासत के कई मकानों का ठीका दिलाकर अपना मकान पक्का करा लिया, बनिया बोरों अनाज मुफ्त में भेज देता, धोबी कपड़ों की धुलाई नहीं लेता। सारांश यह कि तहसीलदार साहब के 'पौ बारह' हैं। तहसीलदारी में जो मजे न उड़ाए थे, वह अब उड़ा रहे हैं।

रात के आठ बज गए थे। झिनकू अपने समाजियों के साथ आ बैठा। मुंशीजी मसनद पर बैठे पेचवान पी रहे थे। गाना होने लगा।

मुंशी—वाह झिनकू वाह! क्या कहना। अब तुम्हें एक दिन दरबार में ले चलूंगा।

झिनकू—जब मर जाऊंगा, तब ले जाइएगा क्या? सौ बार कह चुके भैया हमारी भी परवरिश कर दो; मगर अपनी तकदीर ही खोटी है तो तुम क्या करोगे। नहीं तो क्या गैर-गैर तो तुम्हारी बदौलत मूंछों पर ताव देते और मैं कोरा ही रह जाता। यों तुम्हारी दुआ से सांझ तक रोटियां तो मिल जाती हैं; लेकिन राज दरबार का सहारा हो जाय, तो जिन्दगी का कुछ मजा मिले।

मुंशी—क्या बताऊं जी बार-बार इरादा करता हूं लेकिन ज्यों ही वहां पहुंचा कभी राजा साहब और कभी रानी साहब कोई ऐसी बात छेड़ देते हैं कि मुझे कुछ कहने की याद ही नहीं रहती। मौका ही नहीं मिलता।

झिनकू—कहो, चाहे न कहो, मैं तो अब तुम्हारे दरवाजे से टलने का नहीं।

मुंशी—कहूँगा जी और बदकर। यह समझ लो कि तुम वहाँ हो गए। बस, मौका मिलने भर की देर है। रानी साहब इतना मानती हैं कि जिसे चाहूँ, निकलवा दूँ, जिसे चाहूँ रखवा दूँ। दीवान साहब भी अब दूर ही से सलाम करते हैं। फिर मुझे अपने काम से काम है, किसी की शिकायत क्यों करूँ? मेरे लिए कोई रोक-टोक नहीं है; मगर दीवान साहब बाप हैं तो क्या, बिना इत्तला कराए सामने नहीं जा सकते।

झिनकू—रानीजी का क्या पूछना, सचमुच रानी हैं। आज शहर भर में वाह-वाह हो रही है। बुढ़िया के राज में हकीम डाक्टर लूटते थे, अब गुनियों की कदर है।

मुंशी—पहुँचा नहीं कि सौ काम छोड़कर दौड़ी हुई आकर खड़ी हो जाती हैं। क्या है लालाजी, क्या है लालाजी? जब तक रहता हूँ, दिमाग चाट जाती है, दूसरों से बात नहीं करती। लल्लू को बहुत याद करती हैं। खोद-खोदकर उन्हीं की बातें पूछती हैं। सब्र करो, होली के दिन तुम्हारी नजर दिला दूँगा; मगर भाई इतना याद रखो कि वहाँ पक्का गाना गाया और निकाले गए। 'तूम तनाना' की धुन मत देना।

इतने में महादेव नाम का एक बजाज सामने आया और दूर ही से सलाम करके बोला—मुंशीजी, हुजूर के मिजाज अच्छे तो हैं?

मुंशीजी ने त्योरियाँ बदलकर कहा—हुजूर के मिजाज की फिक्र न करो, अपना मतलब कहो।

महादेव—हुजूर को सलाम करने आया था।

मुंशी—अच्छा, सलाम।

महादेव—आप हमसे कुछ नाराज मालूम होते हैं। हमसे तो कोई ऐसी बात...

मुंशी—बड़े आदमियों से मिलने आया करो, तो तमीज से बात किया करो। मैं तुम्हें 'सेठ जी' कहने के बदले 'अरे, आ बनिये' कहूँ, तो तुम्हें बुरा लगेगा या नहीं?

महादेव—हाँ, हुजूर इतनी खता तो हो गई, अब माफी दी जाय। नया माल आया है, हुक्म हो तो कुछ कपड़े भेजूँ।

मुंशी—फिर वही बनियेपन की बातें! कभी आज तक और भी आये थे पूछने कि कपड़े चाहिए हुजूर को? मैं वही हूँ या कोई और? अपना मतलब कहो साफ-साफ।

महादेव—हुजूर तो समझते ही हैं, मैं क्या कहूँ?

मुंशी—अच्छा, तो सुनो लालाजी, घूस नहीं लेता, रिश्वत नहीं लेता। जब तहसीलदारी के जमाने ही में न लिया, तो अब क्या लूँगा? लड़की की शादी होने वाली है, उसमें जितना कपड़ा लगेगा, वह तुम्हारे सिर। बोलो, मंजूर हो तो आज

ही नजर दिलवा दूं। साल भर में एक लाख का माल बेचोगे, जो बेचने का शऊर होगा। हां, बुढ़िया रानी का जमाना नहीं है कि एक के चार लो। बस, रुपये में एक आना बहुत है। इससे ज्यादा लिया और गर्दन नापी गई।

महादेव– हुजूर, खरचा छोड़कर दो पैसे रुपये ही दिला दें। आपके वसीले से जाकर भला ऐसा दगा करूं।

मुंशी—अच्छा, तो कल आना, और दो चार थान ऊंचे दामों के कपड़े भी लेते आना। याद रखना, विदेशी चीज न हो, नहीं तो फटकार पड़ेगी। सच्चा देशी माल हो। विदेशी चीजों के नाम से चिढ़ती हैं।

बजाज चला गया। मुंशीजी झिनकू से बोले—देखा, बात करने की तमीज नहीं और चले हैं सौदा बेचने।

झिनकू—भैया, भिड़ा देना बेचारे को। जो उसकी तकदीर में होगा, वह मिल ही जायगा। सेंतमेत में जस मिले, तो लेने में क्या हरज है?

मुंशी—अच्छा, जरा ठेका संभालो, कुछ भगवान् का भजन हो जाय। यह बनिया न जाने कहां से कूद पड़ा।

यह कहकर मुंशीजी ने मीरा का यह पद गाना शुरू किया—

राम की दिवानी, मेरा दरद न जाने कोइ।
घायल की गति घायल जाने, जो कोई घायल होइ;
शेषनाग पै सेज पिया की, केहि विधि मिलनो होइ।
राम की दिवानी······
दरद की मारी बन-बन डोलूं, बैद मिला नहि कोइ;
'मीरा' की प्रभु पीर मिटेगी, बैद संवलिया होइ।
राम की दिवानी······

झिनकू— वाह भैया, वाह! चोला मस्त कर दिया। तुम्हारा गला तो दिन-दिन निखरता जाता है।

मुंशी—गाना ऐसा होना चाहिए कि दिल पर असर पड़े। यह नहीं कि तुम तो 'तूम ताना' वैराग्य का तार बांध दो और सुननेवाले तुम्हारा मुंह ताकते रहें। जिस गाने से मन भक्ति, वैराग्य, प्रेम और आनन्द की तरंगें न उठें, वह गाना नहीं है।

झिनकू— अच्छा, अब की मैं भी कोई ऐसी ही चीज सुनाता हूं; मगर मजा जब है कि हारमोनियम तुम्हारे हाथ में हो।

मुंशीजी सितार, सारंगी, सरोद, इसराज सब कुछ बजा लेते थे, पर हारमोनियम पर तो कमाल ही करते थे। हारमोनियम में सितार की गतों को बजाना उन्हीं का काम था। बाजा लेकर बैठ गए और झिनकू ने मधुर स्वरों से यह असावरी गानी शुरू की—

बसी जिय में तिरछी मुसकान।
बस न परत घड़ि, पल, छिन, निसि दिन रहत उन्हीं का ध्यान;
भृकुटि धनु-सी देख सखी री, नयना बान समान।

झिनकू संगीत का आचार्य था, जाति का कथक, अच्छे-अच्छे उस्तादों की आँखें देखे हुए, आवाज इस बुढ़ापे में भी ऐसी रसीली कि दिल पर चोट करे इसपर उसका भाव बताना, जो कथकों की खास सिफ़त है, और भी गजब ढाता था; लेकिन मुंशी वज्रधर की अब राज-दरबार में रसाई हो गई थी, उन्हें अब झिनकू को शिक्षा देने का अधिकार हो गया था। हारमोनियम बजाते-बजाते नाक सिकोड़कर बोले—ऊँह, क्या बिगाड़ देते हो, बेताल हुए जाते हो। हाँ, अब ठीक है।

यह कहकर आपने झिनकू के साथ स्वर मिलाकर गाया—

बसी जिय में तिरछी मुसकान।
बस न परत घड़ि, पल, छिन, निसि दिन रहत उन्हीं का ध्यान;
भृकुटि धनु-सी देख सखी री, नयना बान समान।

इतने में एक युवक कोट-पतलून पहने, ऐनक लगाए, मूँछ मुड़ाए, बाल सँवारे आकर बैठ गया। मुंशीजी ने पूछा—तुम कौन हो भाई? मुझसे कुछ काम है?

युवक—मैंने सुना है कि जगदीशपुर में किसी एकाउंटेंट की जगह खाली है, आप सिफ़ारिश कर दें, तो शायद वह जगह मुझे मिल जाए। मैं भी कायस्थ हूँ, और बिरादरी के नाते आपके ऊपर मेरा बहुत बड़ा हक है। मेरे पिताजी कुछ दिनों आपकी मातहती में काम कर चुके हैं। आपको मुंशी सुखवासीलाल का नाम तो याद होगा।

मुंशी—तो आप बिरादरी और दोस्ती के नाते नौकरी चाहते हैं, अपनी लियाक़त के नाते नहीं! यह मेरे अख्तियार के बाहर है। मैं न दीवान हूँ, न मुहाफ़िज़, न मुंसरिम। उन लोगों के पास जाइए।

युवक—जनाब, आप सब कुछ हैं। मैं तो आपको अपना मुरब्बी समझता हूँ।

मुंशी—कहाँ तक पढ़ा है आपने?

युवक—पढ़ा तो बी० ए० तक है; पर पास न कर सका।

मुंशी—कोई हरज नहीं। आपको बाजार के सौदे पटाने का कुछ तजरबा है? अगर आपसे कहा जाय कि जाकर दस हजार की इमारती लकड़ी लाइए, तो आप किफ़ायत से लाएँगे?

युवक—जी, मैंने तो कभी लकड़ी खरीदी नहीं।

मुंशी—न सही, आप कुश्ती लड़ना जानते हैं? कुछ बिनवट-पटे के हाथ सीखे हैं? कौन जाने कभी आपको राजा साहब के साथ सफ़र करना पड़े और कोई ऐसा मौका आ जाय कि आपको उनकी रक्षा करनी पड़े!

युवक—कुश्ती लड़ना तो नहीं जानता, हाँ, फुटबाल, हॉकी वगैरह खूब खेल सकता हूँ।

मुंशी—कुछ गाना-बजाना जानते हो ? शायद राजा साहब को सफर में कुछ गाना सुनने का जी चाहे, तो उन्हें खुश कर सकोगे ?

युवक—जी नहीं, मैं मुसाहब नहीं होना चाहता, मैं तो एकाउंटैण्ट की जगह चाहता हूँ।

मुंशी—यह तो आप पहले ही कह चुके। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप हिसाब-किताब के सिवा और क्या कर सकते हैं ? आप तैरना जानते हैं ?

युवक—तैर सकता हूँ, पर बहुत कम।

मुंशी—आप रईसों के दिलबहलाव के लिए किस्से-कहानियाँ, चुटकुले लतीफे कह सकते हैं ?

युवक—(हँसकर) आप तो मेरे साथ मजाक कर रहे हैं।

मुंशी—जी नहीं मजाक नहीं कर रहा हूँ, आपकी लियाकत का इम्तहान ले रहा हूँ। तो आप सिर्फ हिसाब करना जानते हैं और शायद अँगरेजी बोल और लिख लेते होंगे। मैं ऐसे आदमी की सिफारिश नहीं करता। आपकी उम्र होगी कोई 24 साल की। इतने दिनों में आपने सिर्फ हिसाब लगाना सीखा। हमारे यहाँ तो कितने ही आदमी छः महीने में ऐसे अच्छे मुनीम हो गए हैं कि बड़ी-बड़ी दूकानें सँभाल सकते हैं। आपके लिए यहाँ जगह नहीं है।

युवक चला गया, तो झिनकू ने कहा—भैया, तुमने बेचारे को बहुत बनाया। मारे सरम के कट गया होगा। कुछ उसके साहबी ठाट की परवा न की।

मुंशी—उसका साहबी ठाट देखकर ही तो मेरे बदन में आग लग गई। आता तो आपको कुछ नहीं; पर ठाट ऐसा बनाया है, मानो खास विलायत से चले आ रहे हैं। मुझ पर बचा रोब जमाने चले थे। चार हरफ अँगरेजी पढ़ ली, तो समझ गए कि अब हम फाजिल हो गए। पूछो, जब आप बाजार से धेले का सौदा नहीं ला सकते, तो आप हिसाब-किताब क्या करेंगे।

यही बातें हो रही थीं कि रानी मनोरमा की मोटर आकर द्वार पर खड़ी हो गई। मुंशीजी नंगे सिर, नंगे पाँव दौड़े। जरा सी ठोकर खा जाते, तो फिर उठने का नाम न लेते।

मनोरमा ने हाथ उठाकर कहा—दौड़िए नहीं, दौड़िए नहीं, मैं आप ही के पास आयी हूँ; कहीं भागी नहीं जा रही हूँ। इस वक्त क्या हो रहा है ?

मुंशी—कुछ नहीं हुजूर, कुछ ईश्वर का भजन कर रहा हूँ।

मनोरमा—बहुत अच्छी बात है, ईश्वर को जरूर मिलाए रहिए, वक्त पर बहुत काम आते हैं; कम से कम दुख, दर्द में उनके नाम से कुछ सहारा तो हो ही जाता है मैं आपको इस वक्त एक बड़ी खुशखबरी सुनाने आयी हूँ। बाबूजी कल यहाँ आ जाएँगे।

मुंशी—क्या लल्लू ?

मनोरमा—जी हाँ, सरकार ने उनकी मीयाद घटा दी है।

इतना सुनना था कि मुंशीजी बेतहाशा दौड़े और घर में जाकर हाँफते हुए निर्मला से बोले—सुनती हो, लल्लू कल आएँगे। मनोरमा रानी दरवाजे पर खड़ी हैं।

यह कहकर उलटे पाँव फिर द्वार पर आ पहुँचे।

मनोरमा—अम्माँजी क्या कर रही हैं, उनसे मिलने चलूँ ?

निर्मला बैठी आटा गूँध रही थी। रसोई में केवल एक मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी, बाकी सारा घर अँधेरा पड़ा था। मुंशीजी सदा लुटाऊ थे, जो कुछ पाते थे, बाहर ही बाहर उड़ा देते थे। घर की दशा ज्यों-की त्यों थी। निर्मला को रोने-धोने से फ़ुर्सत ही न मिलती थी कि घर की कुछ फ़िक्र करती। अब मुंशीजी बड़े असमंजस में पड़े। अगर पहले से मालूम होता कि रानीजी का शुभागमन होगा, तो कुछ तैयारी कर रखते, कम-से-कम घर की सफ़ाई तो करवा देते, दो-चार लालटेनें माँग-जाँचकर जला रखते; पर अब क्या हो सकता था ?

मनोरमा ने उनके जवाब का इन्तज़ार न किया। तुरन्त मोटर से उतर पड़ी और दीवानख़ाने में आकर खड़ी हो गई। मुंशीजी बदहवास अन्दर गए और निर्मला से बोले—बाहर निकल आओ, हाथ-वाथ धो डालो। रानीजी आ रही हैं। यह दुर्दशा देखेंगी, तो क्या कहेंगी। तब तक आटा लेकर क्या बैठ गईं ! कोई काम वक्त से नहीं करती। बुढ़िया हो गई; मगर अभी तमीज़ न आई।

निर्मला चटपट बाहर निकली। मुंशीजी उसके हाथ धुलाने लगे। मंगला चारपाई बिछाने लगी। मनोरमा बरोठे में आकर रुक गई। इतना अँधेरा था कि वह आगे क़दम न रख सकी। मरदाने कमरे में एक दीवारगीर जल रही थी। झिनकू उतावली में उसे उतारने लगे, तो वह ज़मीन पर गिर पड़ी। वहाँ भी अँधेरा हो गया। मुंशीजी हाथ में कुप्पी लेकर द्वार की ओर चले, तो चारपाई की ठोकर लगी। कुप्पी हाथ से छूट पड़ी; आशा का दीपक भी बुझ गया। खड़े-खड़े तक़दीर को कोसने लगे—रोज़ लालटेन आती है और रोज़ तोड़कर फेंक दी जाती है। कुछ नहीं तो दस लालटेनें ला चुका हूँगा; पर एक का भी पता मालूम नहीं है। किसी कुली का घर है, उसके भाग्य की भाँति अँधेरा। 'राक्षस के घर ब्याही जोय, भून-भान कलेवा होय।' किसी चीज़ की हिफ़ाज़त करनी तो आती ही नहीं।

मुंशीजी तो अपनी मुसीबत का रोना रो रहे थे, झिनकू दौड़कर अपने घर से लालटेन लाया, और मनोरमा घर में दाखिल हुई। निर्मला आँखों में प्रेम की नदी भरे, सिर झुकाए खड़ी थी। जी चाहता था, इनके पैरों के नीचे आँखें बिछा दूँ। मेरे धन्य भाग।

एकाएक मनोरमा ने झुककर निर्मला के पैरों पर शीश . ; और

पुलकित कंठ से बोली—माताजी धन्य भाग कि आपके दर्शन हुए। जीवन सफल हो गया।

निर्मला सारा शिष्टाचार भूल गई, बस, खड़ी रोती रही। मनोरमा के शील और विनय ने शिष्टाचार को तृण की भांति मातृ-स्नेह की तरंग में बहा दिया.

इतने में मंगला आकर खड़ी हो गई। मनोरमा ने उसे गले से लगा लिया और स्नेह-कोमल स्वर में बोली—आज तुम्हें अपने साथ ले चलूंगी, दो-चार दिन तुम्हें मेरे साथ रहना पड़ेगा। हम दोनों साथ-साथ खेलेंगी। अकेले पड़े-पड़े मेरा जी घबराता है। तुमसे मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी।

निर्मला—मनोरमा, तुमने हमें धरती से उठाकर आकाश पर पहुँचा दिया। तुम्हारे शील स्वभाव का कहाँ तक बखान करूँ?

मनोरमा—माता के मुख से ये शब्द सुनकर मेरा हृदय गर्व से फूला नहीं समाता। मैं बचपन ही से मातृ-स्नेह से वंचित हो गई, पर आज मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि अपनी जननी के चरणों को स्पर्श कर रही हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए कि जब कभी जी घबराए, तो आकर आपके स्नेह-कोमल चरणों में आश्रय लिया करूँ। कल बाबूजी आ जाएँगे। अवकाश मिला तो मैं भी आऊँगी; पर मैं किसी कारण से न आ सकूं, तो आप कह दीजिएगा कि किसी बात की चिन्ता न करें, मेरे हृदय में उनके प्रति अब भी वही श्रद्धा और अनुराग है। ईश्वर ने चाहा तो मैं शीघ्र ही उनके लिए रियासत में कोई स्थान निकालूंगी। बड़ी दिल्लगी हुई। कई दिन हुए, लखनऊ के एक ताल्लुकेदार ने गवर्नर की दावत की थी। मैं भी राजा साहब के साथ दावत में गई थी। गवर्नर साहब शतरंज खेल रहे थे। मुझसे भी खेलने के लिए आग्रह किया। मुझे शतरंज खेलना तो आता नहीं, पर उनके आग्रह से बैठ गई। ऐसा संयोग हुआ कि मैंने ताबड़तोड़ उनको दो मातें दीं। तब आप झल्लाकर बोले—अबकी कुछ बाजी लगाकर खेलेंगे। क्या बदती हो? मैंने कहा—इसका निश्चय बाजी पूरी होने के बाद होगा। तीसरी बाजी शुरू हुई। अबकी वह खूब सँभलकर खेल रहे थे और मेरे कई मुहरे पीट लिए। मैंने समझा, अबकी मात हुई; लेकिन सहसा मुझे ऐसी चाल सूझ गई कि हाथ से जाती बाजी लौट पड़ी। मैं तो समझती हूँ, ईश्वर ने मेरी सहायता की। फिर तो उन्होंने लाख-लाख सिर पटका, उनके सारे मित्र जोर मारते रहे; पर मात न रोक सके। सारे मुहरे धरे ही रह गए। मैंने हँसकर कहा—बाजी मेरी हुई, अब जो कुछ मैं मांगूं, वह आपको देना पड़ेगा।

उन्हें क्या खबर थी कि मैं क्या मांगूंगी, हंसकर बोले—हाँ-हाँ, कब फिरता हूँ!

मैंने तीन वचन लेकर कहा—आप मेरे मास्टर साहब को बेकुसूर जेल में डाले हुए हैं, उन्हें छोड़ दीजिए।

यह सुनकर सभी सन्नाटे में आ गए, मगर कौल हार चुके थे और स्त्रियों के सामने ये सब जरा सज्जनता का स्वांग भरते हैं, मजबूर होकर गवर्नर साहब को वादा करना पड़ा; पर बार-बार पछताते थे और कहते थे, आपकी जिम्मेदारी पर छोड़ रहा हूँ। खैर, मुझे कल मालूम हुआ कि रिहाई का हुक्म हो गया है, और मुझे आशा है कि कल किसी वक्त वह यहाँ आ जाएँगे।

निर्मला—आपने बड़ी दया की, नहीं तो मैं रोते-रोते मर जाती।

मनोरमा—रोने की क्या बात थी? माताओं को चाहिए कि अपने पुत्रों को साहसी और वीर बनाएँ। एक तो यहाँ लोग यों ही डरपोक होते हैं, उस पर घरवालों का प्रेम उनकी रही-सही हिम्मत भी हर लेता है। सो क्यों बहिन, मेरे यहाँ चलती हो! मगर नहीं, कल तो बाबूजी आएँगे, मैं किसी दूसरे दिन तुम्हारे लिए सवारी भेजूँगी।

निर्मला—जब आपकी इच्छा होगी, तभी भेज दूँगी।

मनोरमा—तुम क्यों नहीं बोलतीं, बहिन? समझती होगी कि रानी है, बड़ी बुद्धिमान और तेजस्वी होगी। पहले रानी देवप्रिया को देखकर मैं भी यही सोचा करती थी; पर अब मालूम हुआ कि ऐश्वर्य से न बुद्धि बढ़ती है, न तेज। रानी और बाँदी में कोई अन्तर नहीं होता।

यह कहकर उसने मंगला के गले में बाँहें डाल दीं और प्रेम से सने हुए शब्दों में बोली—देख लेना, हम तुम कैसे मजे से गाती-बजाती हैं। बोलो, आओगी न?

मंगला ने माता की ओर देखा और मुस्कराकर बोली—जब आपकी इतनी कृपा है, तो क्यों न आऊँगी?

मनोरमा—कृपा और दया की बात करने के लिए मैं तुम्हें नहीं बुला रही हूँ। [illegible] सहेलियों की भाँति गाने-बजाने, हँसने-[illegible] से भरा हुआ है; पर एक भी [illegible]।

[illegible] का हार निकालकर मंगला के गले में डाल दिया और मुस्कराकर बोली—देखो अम्माँजी, यह हार इसे अच्छा लगता है न?

मुंशीजी बोले—ले, मंगला, तूने तो पहली ही मुलाकात में मोतियों का हार मार लिया, और लोग मुँह ही ताकते रह गए।

मनोरमा—माता-पिता लड़कियों को देते हैं, मुझे तो कुछ आपसे मिलना चाहिए। मंगला तो मेरी छोटी बहिन है। जी चाहता है, इसी वक्त लेती चलूँ। इसकी सूरत तो बाबूजी से बिलकुल मिलती है, मर्दों के कपड़े पहना दिए जाएँ, तो पहचानना मुश्किल हो जाए। चलो मंगला, कल तुम दोनों आ जाओगी।

निर्मला—कल ही भेजी जाएगी।

मनोरमा—मैं समझ गई। आप सोचती होंगी, ये कपड़े पहने क्या जाएगी।

तो क्या वहां किसी बेगाने घर जा रही है ? क्या वहां साड़ियां न मिलेंगी ?

उसने मंगला का हाथ पकड़ लिया और उसे लिए द्वार की ओर चली। मंगला हिचकिचा रही थी; पर कुछ कह न सकती थी।

जब मोटर चली गई, तो निर्मला ने कहा—साक्षात् देवी है।

मुंशी—लल्लू पर इतना प्रेम करती है कि वह चाहता, तो इससे विवाह कर लेता। धर्म ही खोना था, तो कुछ स्वार्थ से खोता। मीठा हो, तो जूठा भी अच्छा, नहीं तो कहां जाकर गिरा उस कंगली पर, जिसके मां-बाप का भी पता नहीं।

निर्मला—(व्यंग्य से) वाह-वाह ! क्या लाख रुपये की बात कही है। ऐसी बहू घर में आ जाए, लाला, तो एक दिन न चले। फूल सूंघने में ही अच्छा लगता है, खाने में नहीं ! गरीबों का निबाह गरीबों ही में होता है।

मुंशी – प्रेम बड़ों-बड़ों का सिर नीचा कर देता है।

निर्मला—न जी जलाओ। बे बात की बात करते हो। तुम्हारे लल्लू ऐसे ही तो बड़े खूबसूरत हैं। सिर में एक बाल न रहता। ऐसी औरतों को प्रसन्न रखने के लिए धन चाहिए। प्रभुता पर मरनेवाली औरत है।

दस बज रहे थे। मुंशीजी भोजन करने बैठे। मारे खुशी के फूले न समाते थे। लल्लू को रियासत में कोई अच्छी जगह मिल जाएगी, फिर पांचों अंगुली घी में हैं। अब मुसीबत के दिन गए। मारे खुशी के खाया भी नहीं गया। जल्दी से दो-४ कौर खाकर बाहर भागे और अपने इष्ट-मित्रों से चक्रधर के स्वागत के विषय में आधी रात तक बातें करते रहे। निश्चय किया गया कि प्रातःकाल शहर में नोटिस बांटी जाए और सेवा समिति के सेवक स्टेशन पर बैंड बजाते हुए उनका स्वागत करें।

लेकिन निर्मला उदास थी। मनोरमा से उसे न जाने क्यों एक प्रकार का भय हो रहा था।

23

राजा विशालसिंह की मनोवृत्तियां अब एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित हो गई थीं और वह लक्ष्य था—मनोरमा। वह उपासक थे, मनोरमा उपास्य थी; वह सैनिक थे, मनोरमा सेनापति थीं; वह गेंद थे, मनोरमा खिलाड़ी थी। मनोरमा का उनके मन पर, उनकी आत्मा पर सम्पूर्ण आधिपत्य था। वह अब मनोरमा ही की आंखों से देखते, मनोरमा ही के कानों से सुनते और मनोरमा ही के विचार से सोचते थे। उनका प्रेम सम्पूर्ण आत्मसमर्पण था। मनोरमा ही की इच्छा अब उनकी इच्छा है, मनोरमा ही के विचार अब उनके विचार हैं ! उनके राज्य विस्तार के मंसूबे गायब हो गए। धन से उनको कितना प्रेम था ! वह इतनी किफायत से राज्य का

प्रबन्ध करना चाहते थे कि थोडे दिनों मे रियासत के पास एक विराट कोष हो जाए। अब वह हौसला नही रहा। मनोरमा के हाथो जो खर्च होता है, वह श्रेय है। अनुराग चित्त की वृत्तियों की कितनी कायापलट कर सकता है।

अब तक राजा विशालसिंह का जिन स्त्रियो से साबिका पड़ा था, वे ईर्ष्या, द्वेष, माया-मोह और राग-रग मे लिप्त थी। मनोरमा उन सबो से भिन्न थी। उसमें सांसारिकता का लेश भी न था। न उसे वस्त्राभूषण से प्रेम, न किसी से ईर्ष्या या द्वेष। ऐसा प्रतीत होता था कि वह स्वर्गलोक की देवी है। परोपकार में उसका ऐसा सच्चा अनुराग था कि पग-पग पर राजा साहब को अपनी लघुता और क्षुद्रता का अनुभव होता था और उसपर उनकी श्रद्धा और भी दृढ होती जाती थी। रियासत के मामलों या निज के व्यवहारो मे जब वह कोई ऐसी बात कर बैठते, जिसमे स्वार्थ और अधिकार के दुरुपयोग या असज्जनता की गन्ध आती हो, तो उन्हे यह जानने मे देर न लगती थी कि मनोरमा की भृकुटी चढ़ी हुई है और उसने भोजन नही किया। फिर उन्हें उस बात के दुहराने का साहस न होता था। मनोरमा की निर्मल कीर्ति अज्ञात रूप से उन्हें परलोक की ओर खीचे लिये जाती [illegible] सजग हो [illegible] सा था कि [illegible] वह अगर उनके देखते हुए घर मे आग लगा देती, तो भी वह उसे निर्दोष ही समझते। उसमें भी उन्हें शुभ और कल्याण ही की सुवर्ण रेखा दिखाई देती। रियासत मे असामियों से कर के नाम पर न जाने कितनी बेगार ली जाती थी, वह सब रानी के हुक्म से बन्द कर दी गई और रियासत को लाखों रुपये की क्षति हुई; पर राजा साहब ने जरा हस्तक्षेप नही किया। पहले जिले के हुक्काम रियासत मे तशरीफ लाते, तो रियासत में खलबली मच जाती थी, कर्मचारी सारे काम छोड़कर हुक्काम को रसद पहुँचाने में मुस्तैद हो जाते थे। हाकिम की निगाह तिरछी देखकर राजा काँप जाते थे। पर अब किसी की चाहे वह सूबे का लाट ही क्यों हो, नियमों के विरुद्ध एक कदम रखने की भी हिम्मत न पड़ती थी। जितनी धाँधलियाँ राज्य-प्रथा के नाम पर सदैव से होती आती थी, वह एक-एक करके उठती जाती थीं; पर राजा साहब को कोई शंका न थी।

राजा साहब की चिर संचित पुत्र लालसा भी इस प्रेम तरंग मे मग्न हो गई। मनोरमा पर उन्होने अपनी यह महान् अभिलाषा भी अर्पित कर दी। मनोरमा को पाकर उन्हें किसी वस्तु की इच्छा ही न रही। उनके सामने और सभी चीजें तुच्छ हो गई। एक दिन, केवल एक दिन उन्होने मनोरमा से कहा था—मुझे अब केवल एक इच्छा और है। ईश्वर मुझे एक पुत्र प्रदान कर देता, तो मेरे सारे मनोरथ पूरे हो जाते। मनोरमा ने उस समय जिन कोमल शब्दों मे उन्हें सांत्वना दी थी, वे अब तक कानो में गूँज रहे थे—नाथ, मनुष्य का उद्धार पुत्र से

अपने कर्मों से होता है। यश और कीर्ति भी कर्मों ही से प्राप्त होती है। संतान वह सबसे कठिन परीक्षा है, जो ईश्वर ने मनुष्य को परखने के लिए गढ़ी है। बड़ी-बड़ी आत्माएँ जो और सभी परीक्षाओं में सफल हो जाती है, यहाँ ठोकर खाकर गिर पड़ती हैं। सुख के मार्ग में इससे बड़ी और कोई वाधा नहीं है। जब इच्छा दुःख का मूल है, तो सबसे बड़े दुःख का मूल क्यों न होगी ? ये वचन मनोरमा के मुख से निकलकर अमर हो गए थे।

सबसे विचित्र बात यह थी कि राजा साहब की विषय-वासना सम्पूर्णतः लोप हो गई थी। एकान्त में बैठे हुए वह मन में भाँति भाँति की मृदु कल्पनाएँ किया करते, लेकिन मनोरमा के सम्मुख आते ही उनपर श्रद्धा का अनुराग छा जाता, मानो किसी देव मन्दिर में आ गए हों। मनोरमा उनका सम्मान करती, उन्हें देखते ही खिल जाती, उनसे मीठी-मीठी बातें करती, उन्हें अपने हाथों से स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर खिलाती, उन्हें पंखा झलती। उनकी तृप्ति के लिए वह इतना ही काफी समझती थी। कविता में और सब रस थे, केवल श्रृंगार रस न था। वह बाँकी चितवन, जो मन को हर लेती है, वह हाव-भाव, जो चित्त को उद्दीप्त कर देता है, यहाँ कहाँ ? सागर के स्वच्छ निर्मल जल में तारे नाचते हैं, चाँद थिरकता है, लहरें गाती हैं। वहाँ देवता संध्योपासना करते हैं, देवियाँ स्नान करती हैं, पर कोई मैले कपड़े नहीं धोता। संगमरमर की जमीन पर थूकने की कुरुचि किसमें होगी ! आत्मा को स्वयं ऐसे घृणास्पद व्यवहार से संकोच होता है।

इसी भाँति छः महीने गुजर गए।

प्रभात का समय था। प्रकृति फागुन के शीतल, उल्लासमय समीर सागर में निमग्न हो रही थी। बाग में नव विकसित पुष्प, किरणों के सुनहरे हार पहने मुसकरा रहे थे। आम के सुगन्धित नव पल्लवों में कोयल अपनी मधुर तान अलाप रही थी। और मनोरमा आईने के सामने खड़ी अपनी केश राशि का जाल सजा रही थी। आज बहुत दिनों के बाद उसने अपने दिव्य, रत्नजटित आभूषण निकाले हैं, बहुत दिन के बाद अपने वस्त्रों में इत्र बसाए हैं ! आज उसका एक-एक अंग मनोल्लास से खिला हुआ है। आज चक्रधर जेल से छूटकर आएँगे और वह उनका स्वागत करने जा रही है।

यों बन-ठनकर मनोरमा ने बगलवाले कमरे का परदा उठाया और दबे पाँव अन्दर गयी। मंगला अभी तक पलंग पर पड़ी मीठी-मीठी नींद ले रही थी। उसके लम्बे-लम्बे केश तकिए पर बिखरे पड़े थे। दोनों सखियाँ आधी रात तक बातें करती रही थीं। जब मंगला ऊँघ-ऊँघकर गिरने लगी थी, तो मनोरमा उसे सुलाकर अपने कमरे में चली गयी थी। मंगला अभी तक पड़ी सो रही थी, मनो-रमा की पलक तक न झपकी, अपने कल्पना-कुंज में विचरते हुए रात काट दी। मंगला को इतनी देर तक सोते देखकर उसने आहिस्ता से पुकारा मंगला, कब तक सोएगी ? देख तो, कितना दिन चढ़ आया ? जब पुकारने से मंगला न जागी,

तो उसका कन्धा हिलाकर कहा—क्या दिन-भर सोती रहेगी ?

मंगला ने पड़े-पड़े कहा—सोने दो; अभी तो सोयी हूँ, फिर सिर पर सवार हो गई ?

मनोरमा—तो फिर मैं जाती हूँ, यह न कहना, मुझे क्यों नहीं जगाया !

मंगला—(आँखें खोलकर) अरे ! इतना दिन चढ़ आया ! मुझे पहले ही क्यों न जगा दिया ?

मनोरमा—जगा तो रही हूँ, जब तेरी नींद टूटे। स्टेशन चलेगी ?

मंगला—मैं स्टेशन कैसे जाऊँगी !

मनोरमा—जैसे मैं जाऊँगी, वैसे ही तू भी चलना। चल, कपड़े पहन ले !

मंगला—न भैया, मैं न जाऊँगी। लोग क्या कहेंगे ?

मनोरमा—मुझे जो कहेंगे, वही तुम्हें भी कहेंगे; मेरी खातिर से सुन लेना !

मंगला—आपकी बात और है, मेरी बात और। आपको कोई नहीं हँसता, मुझे सब हँसेंगे। मगर मैं डरती हूँ, कहीं तुम्हें नजर न लग जाय।

मनोरमा—चल-चल, उठ, बहुत बातें न बना। मैं तुम्हें खींचकर ले जाऊँगी, मोटर में परदा कर दूँगी; अब राजी हुई ?

मंगला—हाँ, यह तो अच्छा उपाय है, लेकिन मैं नहीं जाऊँगी। अम्माँजी सुनेंगी तो बहुत नाराज होंगी।

मनोरमा—और जो उन्हें भी ले चलूँ, तब तो तुम्हें कोई आपत्ति न होगी ?

मंगला—वह चलें तो मैं भी चलूँ; लेकिन नहीं, वह बड़ी बूढ़ी हैं, जहाँ चाहें वहाँ आ-जा सकती हैं। मैं तो लोगों को अपनी ओर घूरते देखकर कट ही जाऊँगी।

मनोरमा—अच्छा, पड़ी-पड़ी सो, मैं जाती हूँ। अभी बहुत सी तैयारियाँ करनी है।

मनोरमा अपने कमरे में आयी और मेज पर बैठकर बड़ी उतावली में कुछ लिखने लगी कि दीवान साहब के आने की इत्तला हुई और एक क्षण में आकर वह एक कुर्सी पर बैठ गए। मनोरमा ने पूछा—रियासत का बैण्ड तैयार है न ?

हरिसेवक—हाँ, उसे पहले ही हुक्म दिया जा चुका है।

मनोरमा—जुलूस का प्रबन्ध ठीक है न ? मैं डरती हूँ, कहीं भद्द न हो जाय।

हरिसेवक—प्रबन्ध तो मैंने सब कर दिया है; पर इस विषय में रियासत की ओर से जो उत्साह प्रकट हो रहा है, वह शायद इसके लिए हानिकर हो। रियासतों पर हुक्काम की कितनी कड़ी निगाह होती है, यह आपको खूब मालूम है। मैं पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कहता हूँ कि आपको इस मामले में खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिए।

मनोरमा—क्या आप समझते हैं कि मैं बिना-सोचे-विचारे ही कोई काम कर बैठती हूँ ? मैंने सोच लिया है; बाबू चक्रधर चोर नहीं, डाकू नहीं, खूनी नहीं,

वे आदमी हैं। उनका स्वागत करने के लिए हुक्काम हमसे बुरा मानते हैं, तो हमें इसकी कोई परवा नहीं। जाकर सम्पूर्ण दल को तैयार कीजिए।

परिसेवक—श्रीमान् राजा साहब की तो राय है कि शहरवालों को जुलूस निकालने दिया जाय, हमारे सम्मिलित होने की जरूरत नहीं।

मनोरमा ने रुष्ट होकर कहा—राजा साहब से मैंने पूछ लिया है। उनकी राय वही है, जो मेरी है। अगर सन्मार्ग पर चलने में रियासत जब्त भी हो जाय, तो भी मैं उस मार्ग से विचलित न हूँगी। आपको रियासत के विषय में इतना चिन्तित होने की क्या जरूरत ?

दीवान साहब ने सजल नेत्रों से मनोरमा को देखकर कहा—वेटी, तुम्हारे भले को कहता हूँ। तुम नहीं जानतीं, जमाना कितना नाजुक है।

मनोरमा उत्तेजित होकर बोली—पिताजी, इस सदुपदेश के लिए मैं आपकी बहुत अनुगृहीता हूँ; लेकिन मेरी आत्मा उसे ग्रहण नहीं करती। मैंने सर्प की भाँति धन राशि पर बैठकर उसकी रक्षा करने के लिए यह पद नहीं स्वीकार किया है, बल्कि अपनी आत्मोन्नति और दूसरों के उपकार के लिए ही। अगर रियासत इन दो में से एक काम भी न आये, तो उसका रहना ही व्यर्थ है। अभी सात बजे हैं। आठ बजते-बजते स्टेशन पहुँच जाना चाहिए। मैं ठीक वक्त पर पहुँच जाऊँगी। जाइए।

दीवान साहब के जाने के बाद मनोरमा फिर मेज पर बैठकर लिखने लगी। यह वह भाषण था, जो वह चक्रधर के स्वागत के अवसर पर देना चाहती थी। वह लिखने में इतनी तल्लीन हो गई थी कि उसे राजा साहब के आकर बैठ जाने की उस वक्त तक खबर न हुई, जब तक कि उन्हें उनके फेफड़ों ने खाँसने पर मजबूर न कर दिया। कुछ देर तक तो बेचारे खाँसी को दबाते रहे; लेकिन नैसर्गिक क्रियाओं को रोक कौन सकता है ? खांसी दबकर उत्तरोत्तर प्रचंड होती जाती थी, यहाँ तक कि अन्त में वह निकल ही पड़ी···कुछ छींक थी, कुछ खांसी और कुछ इन दोनों का सम्मिश्रण, मानो कोई बन्दर गुर्रा रहा हो। मनोरमा ने चौंकर आँखें उठाईं, तो देखा कि राजा साहब बैठे हुए उसकी ओर प्रेम-विह्वल नेत्रों से ताक रहे हैं। बोली—क्षमा कीजिएगा, मुझे आपकी आहट ही न मिली। क्या आप देर से बैठे हैं ?

राजा—नहीं तो अभी-अभी आया हूँ। तुम लिख रही थीं। मैंने छेड़ना उचित न समझा।

मनोरमा—आपकी खांसी बढ़ती ही जाती है, और आप इसकी कुछ दवा नहीं करते।

राजा—आप ही आप अच्छी हो जायगी। बाबू चक्रधर तो 10 बजे की डाक से आ रहे हैं न ? उनके स्वागत की तैयारियां पूरी हो गईं ?

मनोरमा—जी हां, बहुत कुछ पूरी हो गई हैं।

राजा—मैं चाहता हूँ, जुलूस इतनी धूमधाम से निकले कि कम से कम इस शहर के इतिहास में अमर हो जाय।

मनोरमा —यही तो मैं भी चाहती हूँ।

राजा—मैं सैनिकों के आगे फौजी वर्दी में रहना चाहता हूँ।

मनोरमा ने चिन्तित होकर कहा—आपका जाना उचित नहीं जान पड़ता। आप यहीं उनका स्वागत कीजिएगा। अपनी मर्यादा का निर्वाह तो करना ही पड़ेगा। सरकार यों भी हम लोगों पर सन्देह करती है, तब तो वह सत्तू बाँधकर हमारे पीछे पड़ जाएगी।

राजा - कोई चिन्ता नहीं। संसार में सभी प्राणी राजा ही तो नहीं है। शान्ति राज्य में नहीं; सन्तोष में है। मैं अवश्य चलूँगा, अगर रियासत ऐसे महात्माओं के दर्शन में बाधक होती है, तो उससे इस्तीफा दे देना ही अच्छा।

मनोरमा ने राजा की ओर बड़ी करुण दृष्टि से देखकर कहा—यह ठीक है; लेकिन जब मैं जा रही हूँ तो आपके जाने की जरूरत नहीं।

राजा—खैर न जाऊँगा; लेकिन यहाँ मैं अपनी जबान को न रोकूँगा। उनके गुजारे की भी तो कुछ फिक्र करनी होगी?

मनोरमा—मुझे भय है कि वह कुछ लेना स्वीकार न करेंगे। बड़े त्यागी पुरुष हैं।

राजा—यह तो मैं जानता हूँ। उनके त्याग का क्या कहना! चाहते तो अच्छी नौकरी करके आराम से रहते; पर दूसरों के उपकार के लिए प्राणों को हथेली पर लिये रहते हैं। उन्हें धन्य है! लेकिन उनका किसी तरह गुजर-बसर तो होना ही चाहिए। तुम्हें संकोच होता हो, तो मैं कह दूँ।

मनोरमा—नहीं, आप न कहिएगा, मैं ही कहूँगी। मान लें, तो है।

राजा—मेरी और उनकी तो बहुत पुरानी मुलाकात है। मैं तो उनकी समिति का मेम्बर था। अब फिर नाम लिखाऊँगा। कितने रुपये तुम्हारे विचार में काफी होंगे? रकम ऐसी होनी चाहिए, जिसमें उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए।

मनोरमा—मैं तो समझती हूँ, 50 रु० बहुत होंगे। उन्हें और जरूरत ही क्या है?

राजा—नहीं जी, उनके लिए एक दस रुपए काफी हैं। 50 रु० की थैली लेकर भला वह क्या करेंगे। तुम्हें कहते शर्म न आई? 50 रु० में आजकल रोटियां भी नहीं चल सकतीं, और बातों का तो जिक्र ही क्या। एक भले आदमी के निर्वाह के लिए इस जमाने में 500 रु० से कम नहीं खर्च होते।

मनोरमा—पाँच सौ! कभी न लेंगे। 50 ही ले लें, मैं इसी को समझती हूँ। पाँच सौ का तो नाम ही सुनकर वह भाग खड़े होंगे।

राजा—हमारा जो धर्म है, वह हम कर देंगे, लेने या न लेने का उनको अख्तियार है।

मनोरमा फिर लिखने लगी, और यह राजा साहब को वहाँ से चले जाने का संकेत था; पर राजा साहब ज्यों के त्यों बैठे रहे। उनकी दृष्टि मकरन्द के प्यासे भ्रमर की भाँति मनोरमा के मुख कमल का माधुर्य रसपान कर रही थी। उसकी बाँकी अदा आज उनकी आँखों में खुबी जाती थी। मनोरमा का शृङ्गार-रूप आज तक उन्होंने न देखा था। इस समय उनके हृदय में जो गुदगुदी हो रही थी, वह उन्हें कभी न हुई थी। दिल थाम-थामकर रह जाते थे। मन में बार-बार एक प्रश्न उठता था; पर जल में उछलनेवाली मछलियों की भाँति फिर मन में विलीन हो जाता था। प्रश्न था—इसका वास्तविक स्वरूप यह है या वह?

सहसा घड़ी में नौ बजे। मनोरमा कुर्सी से उठ खड़ी हुई। राजा साहब भी किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करनेवाले पथिक की भाँति उठे और धीरे-धीरे द्वार की ओर चले। मनोरमा ने करुण कोमल नेत्रों से देखकर कहा—अच्छी बात है, चलिए, लेकिन पिताजी के पास किसी अच्छे डॉक्टर को बिठाते जाइएगा, नहीं तो शायद उनके प्राण न बचें।

राजा—दीवान साहब रियासत के सच्चे शुभचिन्तक हैं।

24

रेलवे-स्टेशन पर कहीं तिल रखने की जगह न थी। अन्दर का चबूतरा और बाहर का सहन सब आदमियों से खचाखच भरे थे। चबूतरे पर विद्यालयों के छात्र थे, रंग-बिरंग की वर्दियाँ पहने हुए; और सेवा-समितियों के सेवक, रंग-बिरंग की झंडियाँ लिए हुए। मनोरमा नगर की कई महिलाओं के साथ अंचल में फूल भरे सेवकों के बीच में खड़ी थी। उसका एक-एक अंग आनन्द से पुलकित हो रहा था। बरामदे में राजा विशालसिंह, उनके मुख्य कर्मचारी और शहर के रईस और नेता जमा थे। मुंशी वज्रधर इधर-उधर पैंतरे बदलते और लोगों को सावधान रहने की ताकीद करते फिरते थे—कोई घबराहट की बात नहीं, कोई तमाशा नहीं, वह भी तुम्हारे ही जैसा दो हाथ और दो पैर का आदमी है। आएगा, तब देख लेना, धक्कमधक्का करने की जरूरत नहीं।

दीवान हरिसेवक सिंह सशंक नेत्रों से सरकारी सिपाहियों को देख रहे थे और बार-बार राजा साहब के कान में कुछ कह रहे थे; अनिष्ट भय से उनके प्राण सूखे हुए थे। स्टेशन के बाहर हाथी, घोड़े बग्घियाँ, मोटर पैर जमाए खड़ी थीं। जगदीशपुर का बैण्ड बड़े मनोहर स्वरों में विजय-गान कर रहा था। बार-बार सहस्रों कंठों से हर्षध्वनि निकलती थी, जिससे स्टेशन की दीवारें हिल जाती

थीं। थोड़ी देर के लिए लोग व्यक्तिगत चिन्ताओं और कठिनाइयों को भूलकर राष्ट्रीयता के नशे में झूम रहे थे।

ठीक दस बजे गाड़ी दूर से धुआँ उड़ाती हुई दिखाई दी। अब तक लोग अपनी जगह पर कायदे के साथ खड़े थे; लेकिन गाड़ी के आते ही सारी व्यवस्था हवा हो गई। पीछेवाले आगे आ पहुँचे, आगेवाले पीछे पड़ गए, झंडियाँ रक्षास्त्र का काम करने लगीं और फलों की टोकरियाँ ढालों का। मुंशी वज्रधर बहुत चीखे-चिल्लाए, लेकिन कौन सुनता है? हाँ, मनोरमा के सामने मैदान साफ था। दीवान साहब ने तुरन्त सैनिकों को उसके सामने से भीड़ हटाते रहने के लिए बुला लिया था। गाड़ी आकर रुकी और चक्रधर उतर पड़े। मनोरमा भी अनुराग से उन्मत्त होकर चली; लेकिन तीन-चार पग चली थी कि एक बात ध्यान में आई। ठिठक गई और एक स्त्री की आड़ से चक्रधर को देखा, एक रक्तहीन, मलिन-मुख, क्षीण-मूर्ति सिर झुकाए खड़ी थी, मानो जमीन पर पैर रखते डर रही है कि कहीं गिर न पड़े। मनोरमा का हृदय मसोस उठा, आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी, अंचल के फूल अंचल ही में रह गए। उधर चक्रधर पर फूलों की वर्षा हो रही थी, इधर मनोरमा की आँखों से मोतियों की।

सेवा-समिति का मंगल गान समाप्त हुआ, तो राजा साहब ने आगे बढ़कर नगर के नेताओं की ओर से उनका स्वागत किया। सब लोग उनसे गले मिले और जुलूस जाने लगा। मुंशी वज्रधर जुलूस के प्रबन्ध में इतने व्यस्त थे कि चक्रधर की उन्हें सुधि ही न थी। चक्रधर स्टेशन के बाहर आए और यह तैयारियाँ देखीं, तो बोले —आप लोग मेरा इतना सम्मान करके मुझे लज्जित कर रहे हैं। राष्ट्रीय सम्मान किसी महान् राष्ट्रीय उद्योग का पुरस्कार होना चाहिए। मैं इसके सर्वथा अयोग्य हूँ। मुझे सम्मानित करके आप लोग सम्मान का महत्व खो रहे हैं! मुझ जैसों के लिए इस धूम-धाम की जरूरत नहीं। मुझे तमाशा न बनाइए।

संयोग से मुंशीजी वहीं खड़े थे। ये बातें सुनी, तो बिगड़कर बोले —तमाशा नहीं बनना था, तो दूसरे के लिए प्राण देने को क्यों तैयार हुए थे। लोग दस-पाँच हजार खर्च करके जन्म-भर के लिए 'राय साहब' और 'खाँ बहादुर' हो जाते हैं। तुम दूसरों के लिए इतनी मुसीबतें झेलकर यह सम्मान पा रहे हो, तो इसमें झेंपने की क्या बात है, भला! देखता हूँ कि कोई एक छोटा-मोटा व्याख्यान दे देता है, तो पत्रों में देखता है कि मेरी तारीफ हो रही है या नहीं। अगर दुर्भाग्य से कहीं सम्पादक ने उसकी प्रशंसा न की, तो जामे से बाहर हो जाता है; और तुम दस-पाँच हाथी-घोड़े देखकर घबरा गए। आदमी की इज्जत अपने हाथ है। तुम्हीं अपनी इज्जत न करोगे, तो दूसरे क्यों करने लगे? आदमी कोई काम करता है, तो रुपये के लिए या नाम के लिए। अगर दो में से एक भी हाथ न आये, तो काम करना ही व्यर्थ है।

यह कहकर उन्होंने चक्रधर को छाती से लगा लिया। चक्रधर का रक्तहीन ख लज्जा से आरक्त हो गया। यह सोचकर शरमाए कि ये लोग अपने मन से ताजी का हँसी उड़ा रहे होंगे। और कुछ आपत्ति करने का साहस न हुआ। पके से राजा साहब की टुकड़ी पर आ बैठे। जुलूस चला। आगे-आगे पाँच हाथी ये, जिन पर नौबत बज रही थी। उनके पीछे कोतल घोड़ों की लम्बी कतार थी, जिन पर सवारों का दल था। बैंड के पीछे जगदीशपुर के सैनिक चार-चार की कतार में कदम मिलाए चल रहे थे। फिर क्रम से आर्य-महिला-मंडल, खिलाफत, सेवा-समिति और स्काउटों के दल थे। उनके पीछे चक्रधर की जोड़ी थी, जिसमें राजा साहब मनोरमा के साथ बैठे हुए थे। इसके बाद तरह-तरह की चौकियाँ थीं, उनके द्वारा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया गया था। फिर भाँति-भाँति की गायन मंडलियाँ थीं, जिनमें कोई ढोल-मँजीरे पर राजनैतिक गीत गाती थीं, कोई डंडे बजा-बजाकर राष्ट्रीय 'हर गंगा' सुना रही थीं, और दो-चार सज्जन 'चने जोर गरम और चूरन अमलवेत' की वाणियों का पाठ कर रहे थे। सबके पीछे बग्घियों, मोटरों और बसों की कतारें थीं, अन्त में जनता का समूह था।

जुलूस नदेसर, चेतगंज, दशाश्वमेध और चौक होता हुआ दोपहर होते-होते कबीर-चौरे पर पहुँचा। यहाँ मुंशीजी के मकान के सामने एक बहुत बड़ा शामियाना तना हुआ था। निश्चय हुआ था कि यहीं सभा हो और चक्रधर को अभिनन्दन-पत्र दिया जाय। मनोरमा स्वयं पत्र पढ़कर सुनानेवाली थी, लेकिन जब लोग आ-आकर पंडाल में बैठे और मनोरमा अभिनन्दन पढ़ने को खड़ी हुई, तो उसके मुँह से एक शब्द न निकला। आज एक सप्ताह से उसने जी तोड़कर स्वागत की तैयारियाँ की थीं, दिन को दिन और रात को रात न समझा था, रियासत के कर्मचारी दौड़ते-दौड़ते तंग आ गए थे। काशी जैसे उत्साहहीन नगर में ऐसे जुलूस का प्रबन्ध करना आसान काम न था। विशेष करके चौकियों और गायन मंडलियों की आयोजना करने में उसे बहुत कष्ट उठाने पड़े थे और कई मंडलियों को दूसरे शहरों से बुलाना पड़ा था। उसकी श्रमशीलता और उत्साह देख-देखकर लोगों को आश्चर्य होता था, लेकिन जब वह शुभ-अवसर आया कि वह अपनी दौड़-धूप का मनमाना पुरस्कार ले, तो उसकी वाणी धोखा दे गई। फिटन में वह चक्रधर के सम्मुख बैठी थी। राजा साहब चक्रधर से जेल के सम्बन्ध में बातें करते रहे, पर मनोरमा वहाँ चुप ही रही। चक्रधर ने उसकी आशा के प्रतिकूल उससे कुछ न पूछा। यह अगर उसका तिरस्कार नहीं तो क्या था? हाँ, यह मेरा तिरस्का है, वह समझते हैं, मैंने विलास के लिए विवाह किया है। इन्हें कैसे अपने मन क व्यथा समझाऊँ कि यह विवाह नहीं, प्रेम की बलि-वेदी है।

मनोरमा को असमंजस में देखकर राजा साहब ऊपर आ खड़े हुए और उ धीरे से कुर्सी पर बिठाकर बोले—सज्जनो, रानीजी के भाषण में आपको जो मिलता, वह मेरी बातों में कहाँ? कोयल के स्थान पर कौआ खड़ा हो गया

शहनाई की जगह नृसिंह ने ले ली है। आप लोगों को ज्ञात न होगा कि पूज्यवर बाबू चक्रधर रानी साहबा के गुरु रह चुके हैं, और वह उन्हें अब भी उसी भाव से देखती हैं। अपने गुरु का सम्मान करना शिष्य का धर्म है; किन्तु रानी साहबा का कोमल हृदय इस समय नाना प्रकार के आवेगों से इतना भरा हुआ है कि वाणी के लिए जगह ही नहीं रही। इसके लिए वह क्षम्य हैं। बाबू साहब ने जिस धैर्य और साहस से दीनों की रक्षा की, वह आप लोग जानते ही हैं। जेल में भी आपने निर्भीकता से अपने कर्तव्य का पालन किया। आपका मन दया और प्रेम का सागर है। जिस अवस्था में और युवक धन की उपासना करते हैं, आपने धर्म और जाति प्रेम की उपासना की है। मैं भी आपका पुराना भक्त हूँ।

एक सज्जन ने टोका—आप ही ने तो उन्हें सजा दिलायी थी?

राजा—हाँ, मैं इसे स्वीकार करता हूँ। राज्य के मद में कुछ दिनों के लिये मैं अपने को भूल गया था। कौन है, जो प्रभुता पाकर फूल न उठा हो? यह मानवीय स्वभाव है और आशा है, आप लोग मुझे क्षमा करेंगे।

राजा साहब बोल ही रहे थे कि मनोरमा पंडाल से निकल आयी और मोटर पर बैठकर राजभवन चली गयी। रास्ते-भर वह रोती रही। उसका मन चक्रधर से एकान्त में बातें करने के लिए विकल हो रहा था। वह उन्हें समझाना चाहती थी कि मैं तिरस्कार योग्य नहीं, दया के योग्य हूँ। तुम मुझे विलासिनी समझ रहे हो, यह तुम्हारा अन्याय है। और किस प्रकार मैं तुम्हारी सेवा करती? मुझमें बुद्धि बल न था, धन-बल न था, विद्या-बल न था, केवल रूप-बल था, और वह मैंने तुम्हें अर्पण कर दिया। फिर भी तुम मेरा तिरस्कार करते हो!

मनोरमा ने दिन तो किसी तरह काटा; पर शाम को अधीर हो गई। तुरन्त चक्रधर के मकान पर जा पहुँची। देखा, तो वह अकेले द्वार पर टहल रहे थे। शामियाना उखाड़ लिया गया था। कुर्सियाँ, मेजें, दरियाँ, गमले, सब वापस किए जा चुके थे। मिलनेवालों का ताँता टूट चुका था। मनोरमा को इस समय बड़ी लज्जा आई। न जाने वह अपने मन में क्या समझ रहे होंगे। अगर छिपकर लौटना सम्भव होता, तो वह अवश्य लौट पड़ती। मुझे अभी न आना चाहिए था। दो-चार दिन में मुलाकात हो ही जाती। नाहक इतनी जल्दी की; पर अब पछताने से क्या होता था? चक्रधर ने उसे देख लिया और समीप आकर प्रसन्न भाव से बोले—मैं तो स्वयं आपकी सेवा में आनेवाला था। आपने व्यर्थ कष्ट किया।

मनोरमा—मैंने सोचा, चलकर देख लूँ, यहाँ का सामान भेज दिया गया है या नहीं? आइए, सैर कर आएँ। अकेले जाने को जी नहीं चाहता। आप बहुत दुबले हो रहे हैं। कोई शिकायत तो नहीं है न?

चक्रधर—नहीं, मैं बिलकुल अच्छा हूँ, कोई शिकायत नहीं है। जेल में कोई कष्ट न था, बल्कि सच पूछिए तो मुझे वहाँ बहुत आराम था। मुझे अपनी [illegible] से इतना प्रेम हो गया था कि उसे छोड़ते हुए दुःख होता था। आपको तो

सी है ? उस वक्त तो आपकी तबीयत अच्छी न थी ।

मनोरमा—वह कोई वात न थी । यों ही जरा सिर में चक्कर आ गया था ।

यों वातें करते-करते दोनों छावनी की ओर जा पहुँचे । मैदान में हरी घास का फर्श बिछा हुआ था । वनारस के रँगीले आदमियों को यहाँ आने की कहाँ फुरसत ? उनके लिए तो दालमंडी की सैर ही काफी है । यहाँ विलकुल सन्नाटा छाया हुआ था । वहुत दूर पर कुछ लड़के गेंद खेल रहे थे । दोनों आदमी मोटर से उतर कर घास पर जा वैठे । एक क्षण तो दोनों चुप रहे । अन्त में चक्रधर वोले—आपको मेरी खातिर वड़े-वड़े कष्ट उठाने पड़े । यहां मालूम हुआ कि आप ही ने मेरी सजा पहले कम करवायी थी और आप ही ने अवकी मुझे जेल से निकलवाया । आपको कहाँ तक धन्यवाद दूँ ।

मनोरमा—आप मुझे 'आप' क्यों कह रहे हैं ? क्या अव मैं कुछ और हो गई हूँ ? मैं अव भी अपने को आपकी दासी समझती हूँ । मेरा जीवन आपके किसी काम आये, इससे वड़ी मेरे लिए सौभाग्य की और कोई वात नहीं । मुझसे उसी तरह वोलिए, जैसे तव वोलते थे । मैं आपके कष्टों को याद कर-करके वरावर रोया करती थी । सोचती थी, न जाने वह कौन-सा दिन होगा, जव आपके दर्शन पाऊँगी । अव आप फिर मुझे पढ़ाने आया कीजिए । राजा साहव भी अव आपसे पढ़ना चाहते हैं । वोलिए स्वीकार करते हैं ?

मनोरमा के इन सरल भावों ने चक्रधर की आँखें खोल दीं । उन्होंने उसे विलासिनी, मायाविनी, छलिनी समझ रखा था । अव ज्ञात हुआ कि यह वही सरल वालिका है, जो निस्संकोच भाव से उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया करती थी । चक्रधर स्वार्थान्ध न थे, विवेकशून्य भी न थे, कारावास में उन्होंने आत्म चिन्तन भी वहुत किया था । परोपकार के लिए वह अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकते थे; पर मन की लीला विचित्र है, वह विश्व-प्रेम से भरा होने पर भी अपने भाई की हत्या कर सकता है, नीति और धर्म के शिखर पर वैठकर भी कुटिल प्रेम में रत हो सकता है । कुवेर का धन रखने पर भी उसे प्रेम का गुप्त दान लेने में संकोच नहीं होता । मनोरमा के ये शब्द सुनकर चक्रधर का मन पुलकित हो उठा । लेकिन संयम वह मित्र है, जो जरा देर के लिए चाहे आँखों से ओझल हो जाय, पर धारा के साथ वह नहीं सकता । संयम अजेय है, अमर है । चक्रधर संभ गए, वोले—नहीं मनोरमा, अव मैं तुम्हें न पढ़ा सकूँगा । मुझे क्षमा करो । मु क्षमा करो । मुझे देहातों में वहुत घूमना है । महीनों शहर न आ सकूँगा ! तुम्ह पढ़ने में हरज होगा !

मनोरमा—यहाँ वैठे-वैठे अपने स्वयंसेवकों द्वारा क्या आप काम नहीं सकते ?

चक्रधर—नहीं, यह सम्भव नहीं है । हमारे नेताओं में यही वड़ा ऐब है वे स्वयं देहातों में न जाकर शहरों में जमे रहते हैं, जिससे देहातों की सच्ची

उन्हें नहीं मालूम होती, न उन्हें वह शक्ति ही हाथ आती है, न जनता पर उनका वह प्रभाव ही पड़ता है, जिसके बगैर राजनीतिक सफलता हो ही नहीं सकती। मैं उस गलती में न पड़ूँगा।

मनोरमा—आप बहाने बनाकर मुझे टालना चाहते हैं, नहीं तो मोटर पर तो आदमी रोजाना एक सौ मील आ-जा सकता है। कोई मुश्किल बात नहीं।

चक्रधर—उड़न खटोले पर बैठकर संगठन नहीं किया जा सकता। जरूरत है जनता में जागृति फैलाने की, उनमें उत्साह और आत्मबल का संचार करने की। चलती गाड़ी से यह उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता।

मनोरमा—अच्छा, तो मैं आपके साथ देहातों में घूमूँगी। इसमें तो आपको आपत्ति नहीं है?

चक्रधर—नहीं मनोरमा, तुम्हारा कोमल शरीर उन कठिनाइयों को न सह सकेगा। तुम्हारे हाथ में ईश्वर ने एक बड़ी रियासत की बागडोर दे दी है। तुम्हारे लिए इतना ही काफी है कि अपनी प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करो। यह छोटा काम नहीं है।

मनोरमा—मैं अकेली कुछ न कर सकूँगी। आपके इशारे पर सब कुछ कर सकती हूँ। आपसे अलग रहकर मेरे किए कुछ भी न होगा! कम-से-कम आप इतना तो कर ही सकते हैं कि अपने कामों में मुझसे धन की सहायता लेते रहें। ज्यादा तो नहीं, पाँच हजार रुपये प्रति मास आपको भेंट कर सकती हूँ, आप जैसे चाहें उसका उपयोग करें। मेरे सन्तोष के लिए इतना ही काफी है कि वे आपके हाथों खर्च हों। मैं कीर्ति की भूखी नहीं। केवल आपकी सेवा करना चाहती हूँ। इससे मुझे वंचित न कीजिए। आपमें न जाने वह कौन-सी शक्ति है, जिसने मुझे वशीभूत कर लिया है। मैं न कुछ सोच सकती हूँ, न समझ सकती हूँ, केवल आपकी अनुगामिनी बन सकती हूँ।

यह कहते-कहते मनोरमा की आँखें सजल हो गईं। उसने मुँह फेरकर आँसू पोंछ डाले और फिर बोली—आप मुझे दिल में जो चाहें, समझें; मैं इस समय आपसे सब कुछ कह दूँगी। मैं हृदय में आप ही की उपासना करती हूँ। मेरा मन क्या चाहता है, यह मैं स्वयं नहीं जानती; अगर कुछ-कुछ जानती भी हूँ, तो कह नहीं सकती। हाँ, इतना कह सकती हूँ कि जब मैंने देखा कि आप की परोपकार कामनाएँ धन के बिना निष्फल हुई जाती हैं जो कि आपके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, तो मैंने उसी बाधा को हटाने के लिए यह बेड़ी अपने पैरों में डाली। मैं जो कुछ कह रही हूँ, इसका एक-एक अक्षर सत्य है। मैं यह नहीं कहती कि मुझे धन से घृणा है। नहीं, दरिद्रता को संसार की विपत्तियों में सबसे दुःखदायी समझती हूँ। लेकिन मेरी सुख लालसा किसी भी भले घर में शान्त हो सकती थी। उसके लिए मुझे जगदीशपुर की रानी बनने की जरूरत न थी। मैंने केवल आपके

इच्छा के सामने सिर झुकाया है, और मेरे जीवन को सफल करना अब आपके हाथ है।

चक्रधर ये बातें सुनकर मर्माहत से हो गए। उफ्! यहाँ तक नौबत पहुँच गई! मैंने इसका सर्वनाश कर दिया। हा विधि! तेरी लीला कितनी विषम है! वह इसलिए उससे दूर भागे थे कि वह उसे अपने साथ दरिद्रता के काँटों में घसीटना न चाहते थे। उन्होंने समझा था, उनके हट जाने से मनोरमा उन्हें भूल जायगी और अपने इच्छानुकूल विवाह करके सुख से जीवन व्यतीत करेगी।

उन्हें क्या मालूम था कि उनके हट जाने का यह भीषण परिणाम होगा और वह राजा विशालसिंह के हाथों में जा पड़ेगी! उन्हें वह बात याद आयी, जो एक बार उन्होंने विनोद-भाव से कही थी—तुम रानी होकर मुझे भूल जाओगी। उसका जो उत्तर मनोरमा ने दिया था, उसे याद करके चक्रधर एक बार काँप उठे। उन शब्दों में इतना दृढ़ संकल्प था, इसकी वह उस समय कल्पना भी न कर सकते थे। चक्रधर मन में बहुत ही क्षुब्ध हुए। उनके हृदय में एक साथ ही करुणा, भक्ति, विस्मय और शोक के भाव उत्पन्न हो गए। प्रबल उत्कंठा हुई कि इसी क्षण इसके चरणों पर सिर रख दें और रोएँ। वह अपने को धिक्कारने लगे। मनोरमा को इस दशा में लाने का, उसके जीवन की अभिलाषाओं को नष्ट करने का भार उनके सिवा और किस पर था?

सहसा मनोरमा ने फिर कहा—आप मन में मेरा तिरस्कार तो नहीं कर रहे हैं?

चक्रधर लज्जित होकर बोले—नहीं मनोरमा, तुमने मेरे हित के लिए जो त्याग किया है, उसका दुनिया चाहे तिरस्कार करे, मेरी दृष्टि में तो वह आत्म-बलिदान से कम नहीं; लेकिन क्षमा करना, तुमने पात्र का विचार नहीं किया। तुमने कुत्ते के गले में मोतियों की माला डाल दी। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, अभी तुमने मेरा असली रूप नहीं देखा। देखकर शायद घृणा करने लगो! तुमने मेरा जीवन सफल करने के लिए अपने ऊपर जो अन्याय किया है, उसका अनुमान करके ही मेरा मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। इससे तो यह कहीं अच्छा था कि मेरा जीवन नष्ट हो जाता, मेरे सारे मंसूबे धूल में मिल जाते। मुझ जैसे क्षुद्र प्राणी के लिए तुम्हें अपने ऊपर यह अत्याचार न करना चाहिए था। अब तो मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे अपने व्रत पर दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करें। वह अवसर कभी न आए कि तुम्हें अपने इस असीम विश्वास और असाधारण त्याग पर पछताना पड़े। अगर वह अवसर आनेवाला हो, तो मैं वह दिन देखने के लिए जीवित न रहूँ। तुमसे भी मैं एक अनुरोध करने की क्षमा चाहता हूँ। तुमने अपनी इच्छा से त्याग का जीवन स्वीकार किया है। इस ऊँचे आदर्श का सदैव पालन करना। राजा साहब के प्रति एक पल के लिए भी तुम्हारे मन में अश्रद्धा का भाव न आने पाए। अगर ऐसा हुआ, तो तुम्हारा यह त्याग निष्फल हो जायगा।

मनोरमा कुछ देर तक मौन रहने के बाद बोली—बाबूजी, आपका हृदय बड़ा कठोर है।

चक्रधर ने विस्मित होकर मनोरमा की ओर देखा, मानो इसका आशय उनकी समझ में न आया हो।

मनोरमा बोली—मैंने इतना सब कुछ किया, फिर भी आपको मुझसे सहायता लेने में संकोच हो रहा है।

चक्रधर ने दृढ़ भाव से कहा—मनोरमा, मैं नहीं चाहता कि किसी को तुम्हारे विषय में कुछ आक्षेप करने का अवसर मिले।

मनोरमा फिर कुछ देर तक मौन रहकर बोली—आपको मेरे विवाह की खबर कहां मिली?

चक्रधर—जेल में अहिल्या ने कही।

मनोरमा—क्या जेल में आपकी भेंट अहिल्या से हुई थी?

चक्रधर—हां, एक बार वह आयी थी।

मनोरमा—यह खबर सुनकर आपके मन में क्या विचार आये थे? सच कहिएगा।

चक्रधर—मुझे तो आश्चर्य हुआ था।

मनोरमा—केवल आश्चर्य! सच कहिएगा।

चक्रधर ने लज्जित होकर कहा—नहीं मनोरमा, दुख भी हुआ और कुछ क्रोध भी।

मनोरमा का मुख विकसित हो उठा। ऐसा ज्ञात हुआ कि उसके पहलू से कोई कांटा निकल गया! एक ऐसी बात, जिसे जानने के लिए वह विकल हो रही थी, अनायास इस प्रश्न द्वारा चक्रधर के मुंह से निकल गई।

मनोरमा यहां से लौटी तो उसका चित्त प्रसन्न था। उसके कान में ये शब्द गूंज रहे थे—हां मनोरमा, दुख भी हुआ और कुछ क्रोध भी!

25

आगरे के हिन्दुओं और मुसलमानों में आये दिन जूतियां चलती रहती थीं। जरा-जरा सी बात पर दोनों दलों के सिरफिरे जमा हो जाते और दो-चार के अंग भंग हो जाते। कहीं बनिए ने डंडी मार दी और मुसलमानों ने उसकी दूकान पर धावा कर दिया, कहीं किसी जुलाहे ने किसी हिन्दू का घड़ा छू लिया और मुहल्ले में फौजदारी हो गई। एक मुहल्ले में मोहन ने रहीम का कनकौआ लूट लिया और इसी बात पर मुहल्ले भर के हिन्दुओं के घर लुट गए; दूसरे मुहल्ले में दो कुत्तों की लड़ाई पर सैकड़ों आदमी घायल हुए, क्योंकि एक सोहन का कुत्ता था,

दूसरा सईद का। निज के रगड़े-झगड़े साम्प्रदायिक संग्राम के क्षेत्र में खींच लाये जाते थे। दोनों ही दल मजहब के नशे में चूर थे। मुसलमानों ने बजाजे खोले, हिन्दू नैचे बांधने लगे। सुबह को ख्वाजा साहब हाकिम जिला को सलाम करने जाते, शाम को बाबू यशोदानन्दन। दोनों अपनी-अपनी राजभक्ति का राग अलापते। दोनों के देवताओं के भाग्य जागे, जहां कुत्ते निद्रोपासना किया करते, वहां पुजारीजी की भंग घुटने लगी। मस्जिदों के दिन फिरे, मुल्लाओं ने अबाबीलों को बेदखल कर दिया। जहां साँड़ जुगाली करता था, वहां पीर साहब की हँड़ियां चढ़ी। हिन्दुओं ने 'महावीर दल' बनाया, मुसलमानों ने 'अलीगोल' सजाया। ठाकुरद्वारे में ईश्वर कीर्तन की जगह नबियों की निन्दा होती थी, मस्जिदों में नमाज की जगह देवताओं की दुर्गति। ख्वाजा साहब ने फतवा दिया—जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाय, उसे एक हजार हजों का सवाब होगा। यशोदानन्दन ने काशी केपंडितों की व्यवस्था मंगवायी कि एक मुसलमान का वध एक लाख गोदानों से श्रेष्ठ है।

होली के दिन थे। गलियों में गुलाल के छींटे उड़ रहे थे। इतने जोश से कभी होली न मनाई गई थी। वे नई रोशनी के हिन्दू-भक्त, जो रंग को भूखा भेड़िया समझते थे या पागल गीदड़, आज जीते-जागते इंद्रधनुष बने हुए थे। संयोग से एक साहब मुर्गा हाथ में लटकाए कहीं से चले जा रहे थे। उनके कपड़े पर दो- छींटे पड़ गए। बस, गजब ही तो हो गया, आफत ही तो आ गई। सीधे जामे मसजिद पहुंचे और मीनार पर चढ़कर बांग दी—'ऐ उम्मते रसूल! आज एक काफिर के हाथों मेरा दीन का खून हुआ है। उसके छींटे मेरे कपड़ों पर पड़े हुए या तो काफिर से इस खून का बदला लो, या मैं मीनार से गिरकर नबी की खि मत में फरियाद सुनाने जाऊं। बोलो, क्या मंजूर है? शाम तक मुझे इसका जवा न मिला, तो तुम्हें मेरी लाश मसजिद के नीचे नजर आएगी।'

मुसलमानों ने यह ललकार सुनी और उनकी त्योरियां बदल गईं। दीन जोश सिर पर सवार हो गया। शाम होते-होते दस हजार आदमी सिरों से क लपेटे, तलवारें लिए, जामे मसजिद के सामने आकर दीन के खून का बदला लिए जमा हो गए।

सारे शहर में तहलका मच गया। हिन्दुओं के होश उड़ गए। होली का हिरन हो गया। पिचकारियां छोड़-छोड़ लोगों ने लाठियां संभालीं, लेकिन कोई जामे मसजिद न थी, न वह ललकार, न वह दीन का जोश। सबको अ अपनी पड़ी हुई थी।

बाबू यशोदानन्दन कभी इस अफसर के पास जाते, कभी उस अफस लखनऊ तार भेजे, दिल्ली तार भेजे, मुस्लिम नेताओं के नाम तार भेजे, कोई फल न निकला। इतने जल्द कोई इन्तजाम न हो सकता था। अगर समय हिन्दुओं को संगठित करने में लगाते तो शायद बराबर का जोड़ हो

लेकिन वह हुक्काम पर आशा लगाए बैठे रहे। अन्त में वह निराश होकर उठे, तो मुसलिम वीर धावा बोल चुके थे। वे 'अली! अली!' का शोर मचाते चले जाते थे कि बाबू साहब सामने नजर आ गए। फिर क्या था। सैकड़ों आदमी 'मारो!' कहते हुए लपके। बाबू साहब ने पिस्तौल निकाली और शत्रुओं के सामने खड़े हो गए। सवाल जवाब कौन करता? उन पर चारों तरफ से वार होने लगे।

पिस्तौल चलाने की नौबत भी न आई, यही सोचते खड़े रह गए कि समझाने से ये लोग शान्त हो जाएँ तो क्यों किसी की जान लूँ। अहिंसा के आदर्श ने हिंसा का हथियार हाथ में होने पर भी उनका दामन न छोड़ा।

यह आहुति पाकर अग्नि और भी भड़की। खून का का मजा पाकर लोगों का जोश दूना हो गया। अब फतह का दरवाजा खुला हुआ था। हिन्दू मुहल्लों के द्वार बन्द हो गए। बेचारे कोठरियों में बैठे जान की खैर मना रहे थे, देवताओं से विनती कर रहे थे कि यह संकट हरो। रास्ते में जो हिन्दू मिला, वह पिटा; घर लुटने लगे। 'हाय-हाय' का शोर मच गया। दीन के नाम पर ऐसे-ऐसे कर्म होने लगे, जिन पर पशुओं को भी लज्जा आती, पिशाचों के भी रोएँ खड़े हो जाते।

लेकिन बाबू यशोदानन्दन के मरने की खबर पाते ही सेवादल के युवकों का खून खौल उठा। आसन पर चोट पहुँचते ही अड़ियल टट्टू और गरियाल बैल भी सँभल जाते हैं। घोड़ा कनौतियाँ खड़ी करता है, बैल उठ बैठता है। यशोदानन्दन [illegible] तलवारें [illegible] बन्दूकें [illegible] मलमान [illegible] या। ये [illegible] थे और रोगियों की शुश्रूषा करते थे, इस समय निर्दयता के पुतले बने हुए थे। पाशविक वृत्तियों ने कोमल वृत्तियों का संहार कर दिया था। उन्हें न तो दीनों पर दया आती थी, न अनाथों पर। हँस-हँसकर भाले और छुरे चलाते थे, मानो लड़के गुड़ियाँ पीट रहे हों। उचित तो यह था कि दोनों दलों के योद्धा आमने-सामने खड़े हो जाते और खूब दिल के अरमान निकालते; लेकिन कायरों की वीरता और वीरों की वीरता में बड़ा अन्तर है।

सहसा खबर उड़ी कि यशोदानन्दन के घर में आग लगा दी गई है और दूसरे घरों में आग लगाई जा रही है। सेवादल वालों के कान खड़े हुए। यहाँ उनकी पैशाचिकता ने भी हार मान ली। तय हो गया कि अब या तो वे ही रहेंगे, या हमीं रहेंगे। दोनों अब इस शहर में नहीं रह सकते। अब निपट ही लेना चाहिए, जिसमें हमेशा के लिए बाधा दूर हो जाए। दो-ढाई हजार आदमियों का दल डबल मार्च करता हुआ उस स्थान को चला, जहाँ यह बड़वानल दहक रहा था। [illegible] राह पलों में कटी। रास्ते में सन्नाटा था। दूर ही से ज्वाला-शिखर [illegible]

बातें करते दिखाई दिया। चाल और भी तेज की और एक क्षण में लोग अग्नि-कुंड के सामने जा पहुँचे। देखा, तो वहाँ किसी मुसलमान का पता नहीं, आग लगी है; लेकिन बाहर की ओर। अन्दर जाकर देखा तो घर खाली पड़ा हुआ था। वागीश्वरी एक कोठरी में द्वार बन्द किए बैठी थी। इन्हें देखते देखते ही वह रोती हुई बाहर निकल आयी और बोली—हाय मेरी अहिल्या! अरे दौड़ो, उसे ढूंढ़ो, पापियों ने न जाने उसकी क्या दुर्गति की। हाय! मेरी बच्ची!

एक युवक ने पूछा—क्या अहिल्या को उठा ले गए?

वागीश्वर—हाँ भैया! उठा ले गए। मना कर रही थी कि एरी बाहर मत निकल; अगर मरेंगे तो साथ ही मरेंगे; लेकिन न मानी। ज्यों ही दुष्टों ने घर में कदम रखा, बाहर निकलकर उन्हें समझाने लगी। हाय! उसकी बातों को न भूलूंगी। आप तो गए ही थे, उसका भी सर्वनाश किया। नित्य समझाती रही; इन झगड़ों में न पड़ो! न मुसलमानों के लिए दुनिया में कोई दूसरा ठौर-ठिकाना है, न हिन्दुओं के लिए। दोनों इसी देश में रहेंगे और इसी देश में मरेंगे। फिर आपस में क्यों लड़े मरते हो, क्यों एक दूसरे को निगल जाने पर तुले हुए हो? न तुम्हारे निगले वे निगले जाएंगे, न उनके निगले तुम निगले जाओगे, मिल-जुलकर रहो, उन्हें बड़े होकर रहने दो, तुम छोटे ही होकर रहो, मगर मेरी कौन सुनता है। स्त्रियां तो पागल हो जाती हैं, यों ही भूंका करती हैं। मान गए होते, तो आज क्यों यह उपद्रव होता! आप जान से गए, बच्ची भी हर ली गई, और न जाने क्या होना है? जलने दो घर, घर लेकर क्या करना है, तुम जाकर मेरी बच्ची की तलाश करो। जाकर ख्वाजा महमूद से कहो, उसका पता लगाएं। हाय! एक दिन वह था कि दोनों आदमियों में दांत-काटी रोटी थी। ख्वाजा साहब उसके साथ प्रयाग गये थे और अहिल्या को उन्होंने पाया था। आज यह हाल है! कहना, तुम्हें लाज नहीं आती? जिस लड़की को बेटी बनाकर मेरी गोद में सौंपा था, जिसके विवाह में पांच हजार खर्च करने वाले थे, उसकी उन्हीं के पिछलगुओं के हाथों यह दुर्गति। हमसे अब उनकी क्या दुश्मनी! उनका दुश्मन तो परलोक सिधारा! हाय भगवान्! बहुत आदमी मत जाओ। चार आदमी काफी हैं। उनकी लाश भी ढूंढ़ो। कहीं आस-पास होगी। घर से निकलते ही तो दुष्टों से उनका सामना हो गया था।

वागीश्वरी तो यह विलाप कर रही थी, बाहर अग्नि को शान्त करने का यत्न किया जा रहा था, लेकिन पानी के छींटे उस पर तेल का काम करते थे। बारे फायर इंजिन समय पर आ पहुंचा और अग्नि का वेग कम हुआ। फिर भी लपटें किसी सांप की तरह जरा देर के लिए छिपकर फिर किसी दूसरी जगह जा पहुंचती थीं। सन्ध्या समय जाकर आग बुझी।

उधर लोग ख्वाजा साहब के पास पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि मुंशी यशोदानन्दन की लाश रखी हुई है और ख्वाजा साहब बैठे रो रहे हैं। इन लोगों को देखते

ही बोले—तुम समझते होगे, यह मेरा दुश्मन था। खुदा जानता है, मुझे अपना भाई और बेटा भी इससे ज्यादा अजीज नहीं। अगर मुझ पर किसी कातिल का हाथ उठता, तो यशोदा उस वार को अपनी गर्दन पर रोक लेता। शायद मैं भी उसे खतरे मे देखकर अपनी जान की परवा न करता। फिर भी हम दोनों की जिन्दगी के आखिरी साल मैदानबाजी में गुजरे और आज उसका यह अंजाम हुआ। खुदा गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की। अब भी मेरा यह ईमान है कि इत्तहाद ही से इस बदनसीब कौम की नजात होगी। यशोदा भी इत्तहाद का उतना ही हामी था, जितना मैं। शायद मुझसे भी ज्यादा, लेकिन खुदा जाने वह कौन-सी ताकत थी, जो हम दोनो को बरसरेजंग रखती थी। हम दोनो दिल से मेल करना चाहते थे, पर हमारी मर्जी के खिलाफ कोई दैवी ताकत हमको लड़ाती रहती थी। आज लोग नहीं जानते हो, मेरी इससे कितनी गहरी दोस्ती थी। दोनों एक ही मकतब मे पढ़े, एक ही स्कूल में तालीम पायी, एक ही मैदान में खेले। यह मेरे घर पर आता था, मेरी अम्मीजान इसको मुझसे ज्यादा चाहती थी, इसकी अम्मीजान मुझे इससे ज्यादा। उस जमाने की तसवीर आज आँखों के सामने फिर रही है। कौन जानता था, उस दोस्ती का यह अंजाम होगा। यह मेरा प्यारा यशोदा है, जिसकी गर्दन में बाहें डालकर मैं बागों की सैर किया करता था। हमारी सारी दुश्मनी पसे-पुश्त होती थी। रूबरू मारे शर्म के हमारी आँखें ही न उठती थीं। आह! काश, मालूम हो जाता कि किस बेरहम ने मुझ पर यह कातिल वार किया! खुदा जानता है, इन कमजोर हाथों से उसकी गर्दन मरोड़ देता।

एक युवक—हम लोग लाश को क्रिया-कर्म के लिए ले जाना चाहते हैं।

ख्वाजा—ले जाओ भई, ले जाओ, मैं भी साथ चलूंगा। मेरे कन्धा देने मे कोई हरज है! इतनी रियायत तो मेरे साथ करनी ही पड़ेगी। मैं पहले मरता तो यशोदा सिर पर खाक उड़ाता हुआ मेरी मजार तक जरूर जाता।

युवक—अहिल्या को भी लोग उठा ले गये। माता जी आपसे—

ख्वाजा—क्या, अहिल्या! मेरी अहिल्या को! कब?

युवक—आज ही! घर में आग लगाने से पहले।

ख्वाजा—कलामे मजीद की कसम, जब तक अहिल्या का पता न लगा लूंगा, मुझे दाना-पानी हराम है। तुम लोग लाश ले जाओ, मैं अभी आता हूँ। सारे शहर की खाक छान डालूंगा, एक-एक घर मे जाकर देखूंगा, अगर किसी बेदीन बदमाश ने मार नहीं डाला तो जरूर खोज निकालूंगा। हाय मेरी बच्ची! उसे मैंने मेले में पाया था! खड़ी रो रही थी! कैसी भोली-भोली प्यारी-प्यारी बच्ची थी! मैंने उसे छाती से लगा लिया था और लाकर भाभी की गोद में डाल दिया था। कितनी बातमीज, बाशऊर, हसीन लड़की थी। तुम लोग लाश को ले [illegible] शहर का चक्कर लगाता हुआ जमुना किनारे आऊँगा। भाभी से मे[illegible] अर्ज कर देना, मुझसे मलाल न रखें। यशोदा नहीं है लेकिन मह[illegible]

उसके दम में दम है, उन्हें कोई तकलीफ न होगी। कह देना, महमूद या तो अहिल्या को खोज निकालेगा, या मुंह में कालिख लगाकर डूब मरेगा।

यह कहकर ख्वाजा साहब उठ खड़े हुए, लकड़ी उठायी और बाहर निकल गये।

26

चक्रधर ने उस दिन लौटते ही पिता से आगरे जाने की अनुमति मांगी। मनोरमा ने उनके मर्मस्थल में जो आग लगा दी थी, वह आगरे ही में अहिल्या के सरल, स्निग्ध स्नेह की शीतल छाया में शान्त हो सकती थी। उन्हें अपने ऊपर विश्वास न था। वह जिन्दगी-भर मनोरमा को देखा करते और मन में कोई बात न आती; लेकिन मनोरमा ने पुरानी स्मृतियों को जगा कर उनके अन्तस्तल में तृष्णा, उत्सुकता और लालसा को जागृत कर दिया था। इसलिए अब वह मन को ऐसी दृढ़ रस्सी से बांधना चाहते थे कि वह हिल भी न सके। वह अहिल्या की शरण लेना चाहते थे।

मुंशीजी ने जरा त्योरी चढ़ाकर कहा—तुम्हारे सिर अब तक वह नशा सवार है? यों तुम्हारी इच्छा सैर करने की हो, तो रुपये-पैसे की कमी नहीं; लेकिन तुम्हें वादा करना पड़ेगा कि तुम मुंशी यशोदानन्दन से न मिलोगे।

चक्रधर—मैं उनसे मिलने ही तो जा रहा हूं।

वज्रधर—मैं कहे देता हूं, अगर तुमने वहां शादी की बातचीत की, तो बुरा होगा, तुम्हारे लिए भी और मेरे लिए भी।

चक्रधर और कुछ न बोल सके। आते ही आते माता-पिता को कैसे अप्रसन्न कर देते।

लेकिन जब होली के तीसरे दिन बाद उन्हें आगरे के उपद्रव, बाबू यशोदानन्दन की हत्या और अहिल्या के अपहरण का शोक समाचार मिला, तो उन्होंने व्यग्रता में आकर पिता को वह पत्र सुना दिया और बोले—मेरा वहां जाना बहुत जरूरी है।

वज्रधर ने निर्मला की ओर ताकते हुए कहा—क्या अभी जेल में से जी नहीं भरा, जो फिर चलने की तैयारी करने लगे। वहां गये और पकड़े गए, इतना समझ लो। वहां इस वक्त अनीति का राज्य है, अपराध कोई न देखेगा। हथकड़ी पड़ जायगी। और फिर जाकर करोगे ही क्या? जो कुछ होना था, हो चुका; अब जाना व्यर्थ है।

चक्रधर—कम से कम अहिल्या का पता तो लगाना ही होगा।

वज्रधर—यह भी व्यर्थ है। पहले तो उसका पता लगाना ही मुश्किल, लग भी गया तो तुम्हारा अब उससे क्या सम्बन्ध? जब वह मुसलमानो के रह चुकी, तो कौन हिन्दू उसे पूछेगा?

चक्रधर—इसीलिए तो मेरा जाना और भी जरूरी है।

निर्मला—लड़की को मर्यादा की कुछ लाज होगी, तो वह अब तक जीती न होगी, अगर जीती है तो समझ लो कि भ्रष्ट हो गई।

चक्रधर—अम्मा, कभी-कभी आप ऐसी बात कह देती हैं, जिस पर हँसी आ... है। प्राण भय से बड़े-बड़े शूरवीर भूमि पर मस्तक रगड़ते हैं, एक अबला क... हस्ती ही क्या? भ्रष्ट वह होती है, जो दुर्वासना से कोई कर्म करे। जो काम ह... प्राण भय से करें, वह हमें भ्रष्ट नही कर सकता।

वज्रधर – मैं तुम्हारा मतलब समझ रहा हूँ, लेकिन तुम चाहे उसे सती समझो, हम उसे भ्रष्ट ही समझेंगे। ऐसी बहू के लिए हमारे घर मे स्थान नही है।

चक्रधर ने निश्चयात्मक भाव से कहा—वह आपके घर में न आयेगी।

वज्रधर ने भी उतने ही निर्दय शब्द में उत्तर दिया—अगर तुम्हारा ख्याल हो कि पुत्रस्नेह के वश होकर मैं उसे अंगीकार कर लूंगा, तो तुम्हारी भूल है। अहिल्या मेरी कुलदेवी नही हो सकती, चाहे इसके लिए मुझे पुत्र-वियोग ही सहना पड़े। मैं भी जिद्दी हूँ।

चक्रधर पीछे घूमे ही थे कि निर्मला ने उनका हाथ पकड़ लिया और स्नेह-पूर्ण तिरस्कार करती हुई बोली—बच्चा, तुमसे ऐसी आशा न थी। अब भी हमारा कहना मानो, हमारे कुल के मुँह मे कालिख न लगाओ।

चक्रधर ने हाथ छुड़ाकर कहा—मैंने आपकी आज्ञा कभी भंग नही की; लेकिन इस विषय मे मजबूर हूँ।

वज्रधर ने क्लेप के भाव से कहा—साफ-साफ क्यो नही कह देते कि हम आप लोगों से अलग रहना चाहते हैं।

चक्रधर—अगर आप लोगो की यही इच्छा है तो मैं क्या कहूँ?

वज्रधर—यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है?

चक्रधर—जी हाँ, अन्तिम!

यह कहते हुए चक्रधर बाहर निकल आये और कुछ कपड़े साथ लेकर स्टेशन की ओर चल दिये।

थोड़ी देर के बाद निर्मला ने कहा—लल्लू किसी भ्रष्ट स्त्री को खुद ही न लाएगा। तुमने व्यर्थ उसे चिढ़ा दिया।

वज्रधर ने कठोर स्वर मे कहा—अहिल्या के भ्रष्ट होने में अभी कुछ कसर ?

निर्मला—यह तो मैं नही जानती; पर इतना जानती हूँ कि

अधर्म का शान है। वह कोई ऐसी बात न करेगा जिसमें निन्दा हो।

वज्रधर—तुम्हारी बात समझ रहा हूँ। बेटे का प्यार खींच रहा हो, तो जाकर ी के साथ रहो। मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता। मैं अकेले भी रह सकता हूँ।

निर्मला—तुम तो जैसे म्यान से तलवार निकाले बैठे हो। वह विमन होकर हीं चला गया तो?

वज्रधर—तो मेरा क्या बिगड़ेगा? मेरा लड़का मर जाए, तो भी गम न हो!

निर्मला—अच्छा, बस मुँह बन्द करो, बड़े धर्मात्मा बनकर आये हो। रिश्वतें ले-लेकर हड़पते हो, तो धर्म नहीं जाता; शराबें उड़ाते हो, तो मुँह में कालिख नहीं लगती; झूठ के पहाड़ खड़े करते हो तो पाप नहीं लगता। लड़का एक अनाथिनी की रक्षा करने जाता है, तो नाक कटती है। तुमने कौन-सा कुकर्म नहीं किया अब देवता बनने चले हो!

निर्मला के मुख से मुंशीजी ने ऐसे कठोर शब्द कभी न सुने थे। वह तो शील, स्नेह और पतिभक्ति की मूर्ति थी, आज कोप और तिरस्कार का रूप धारण किए हुए थी। उनकी शासक वृत्तियाँ उत्तेजित हो गईं। डाँटकर बोले—सुनो जी, मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ बातें तो नहीं सुनीं मैंने अपने अफसरों की, जो मेरे भाग्य के विधाता थे। तुम किस खेत की मूली हो! जबान तालू से खींच लूँगा, समझ गईं? समझती हो न कि बेटा जवान हुआ। अब इस बुड्ढे की क्यों परवा करने लगीं। तो जाकर उसी भ्रष्ट के साथ रहो। इस घर में तुम्हारी जरूरत नहीं।

यह कहकर मुंशीजी बाहर चले गये और सितार पर एक गत छेड़ दी।

चक्रधर आगरे पहुँचे तो सबेरा हो गया था। प्रभात के रक्तरंजित मर्मस्थल में सूर्य यों मुंह छिपाए बैठे थे, जैसे शोक-मंडित नेत्र में अश्रु-बिंदु। चक्रधर का हृदय भाँति-भाँति की दुर्भावनाओं से पीड़ित हो रहा था। एक क्षण तक वह खड़े सोचते रहे, कहाँ जाऊँ! बाबू यशोदानन्दन के घर जाना व्यर्थ था। अन्त को उन्होंने ख्वाजा महमूद के घर चलना निश्चय किया। ख्वाजा साहब पर अब भी उनकी असीम श्रद्धा थी। ताँगे पर बैठकर चले, तो शहर में सैनिक चक्कर लगाते दिखाई दिए। दूकानें सब बन्द थीं।

ख्वाजा साहब के द्वार पर पहुँचे, तो देखा कि हजारों आदमी एक लाश को घेरे खड़े हैं और उसे कब्रिस्तान ले चलने की तैयारियाँ हो रही हैं! चक्रधर तुर ताँगे से उतर पड़े और लाश के पास जाकर खड़े हो गए! कहीं ख्वाजा साहब नहीं कत्ल कर दिये गए। वह किसी से पूछने ही जाते थे कि सहसा ख्वाजा सा ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और आँखों में आँसू भरकर बोले—खूब अ बेटा, तुम्हें आँखें ढूँढ़ रही थीं। अभी-अभी तुम्हारा ही जिक्र था, खुदा तुम्ह उम्र दराज करे। मातम के बाद खुशी का दौर आएगा। जानते हो, यह कि लाश है? मेरी आँखों का नूर, मेरे दिल का सुरूर, मेरा लख्तेजिगर, इकलौता बेटा है, जिसपर जिन्दगी की सारी उम्मीदें कायम थी। अब तुम्हें उ

सूरत याद आ गई होगी। कितना खुशरू जवान था, कितना दिलेर! लेकिन खुदा जानता है, उसकी मौत पर मेरी आँखों से एक बूँद आँसू भी न निकला। तुम्हें हैरत हो रही होगी; मगर मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ। एक घंटा पहले तक मैं उस पर निसार होता था। अब उसके नाम से नफरत हो रही है। उसने वह फेल किया, जो इन्सानियत के दरजे से गिरा हुआ था। तुम्हें अहिल्या के बारे में तो खबर मिली होगी?

चक्रधर—जी हाँ, शायद बदमाश लोग पकड़ ले गए।

ख्वाजा—यह वही बदमाश है, जिसकी लाश तुम्हारे सामने पड़ी हुई है। वह इसी की हरकत थी। मैं तो सारे शहर में अहिल्या को तलाश करता फिरता था और वह मेरे ही घर में कैद थी। यह जालिम उस पर जब्र करना चाहता था। जरूर किसी ऊँचे खानदान की लड़की है। काश, इस मुल्क में ऐसी और लड़कियाँ होतीं! आज उसने मौका पाकर इसे जहन्नुम का रास्ता दिखा दिया—छुरी, सीने में भोंक दी। जालिम तड़प-तड़पकर मर गया। कम्बख्त जानता था कि अहिल्या मेरी लड़की है फिर भी अपनी हरकत से बाज न आया। ऐसे लड़के की मौत पर कौन बाप रोएगा? तुम बड़े खुशनसीब हो, जो ऐसी पारसा बीवी पाओगे।

चक्रधर—मुझे यह सुनकर बहुत अफसोस हुआ। मुझे आपके साथ कामिल हमदर्दी है, आपका सा इन्साफपरवर, हकपरस्त आदमी इस वक्त दुनिया में न होगा। अहिल्या अब कहाँ है?

ख्वाजा—इसी घर में। सुबह से कई बार कह चुका हूँ कि चल तुझे तेरे घर पहुँचा आऊँ। जाती ही नहीं। बस, बैठी रो रही है।

चक्रधर का हृदय भय से काँप उठा। अहिल्या पर अवश्य ही हत्या का अभियोग चलाया जायगा और न जाने क्या फैसला हो। चिन्तित स्वर से पूछा—अहिल्या पर तो अदालत में…

ख्वाजा—हरगिज नहीं। उसने हर एक लड़की के लिए नमूना पेश कर दिया। खुदा और रसूल दोनों उसे दुआ दे रहे हैं। फरिश्ते उसके कदमों का बोसा ले रहे हैं। उसने खून नहीं किया, कत्ल नहीं किया, अपनी असमत की हिफाजत की, जो उसका फर्ज था। यह खुदाई कहर था, जो छुरी बनकर इसके सीने में चुभा। मुझे जरा भी मलाल नहीं है। खुदा की मरजी में इन्सान को क्या दखल?

लाश उठायी गई। शोक समाज पीछे-पीछे चला। चक्रधर भी ख्वाजा साहब के साथ कब्रिस्तान तक गये। रास्ते में किसी ने बातचीत न की। जिस वक्त लाश कब्र में उतारी गई, ख्वाजा साहब रो पड़े। हाथों से मिट्टी दे रहे थे और आँखों से आँसू की बूँदें मरनेवाले की लाश पर गिर रही थीं। यह क्षमा के आँसू थे। पिता ने पुत्र को क्षमा कर दिया था। चक्रधर भी आँसुओं को न रोक सके। आह! इस देवता स्वरूप मनुष्य पर इतनी घोर विपत्ति!

दोपहर होते-होते लोग घर लौटे। ख्वाजा साहब जरा दम लेकर बोले—आओ बेटा, तुम्हें अहिल्या के पास ले चलूँ। उसे जरा तस्कीन दो। मैंने जिस दिन से उसे भाभी को सौंपा, यह अहद किया था कि इसकी शादी मैं करूँगा। मुझे मौका दो कि अपना अहद पूरा करूँ।

यह कहकर ख्वाजा साहब ने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया और अन्दर चले। चक्रधर का हृदय बाँसों उछल रहा था। अहिल्या के दर्शनों के लिए वह इतने उत्सुक कभी न थे। उन्हें ऐसा अनुमान हो रहा था कि अब उसके मुख पर माधुर्य की जगह तेजस्विता का आभास होगा, कोमल नेत्र कठोर हो गए होंगे, मगर जब उस पर निगाह पड़ी, तो देखा—वही सरल, मधुर छवि थी, वही करुण कोमल नेत्र, वही शीतल मधुर वाणी। वह एक खिड़की के सामने खड़ी बगीचे की ओर ताक रही थी। सहसा चक्रधर को देखकर वह चौंक पड़ी और घूंघट में मुँह छिपा लिया। फिर एक ही क्षण के बाद वह उनके पैरों को पकड़कर अश्रुधारा से धोने लगी। उन चरणों पर सिर रखे हुए स्वर्गीय सांत्वना, एक दैवी शक्ति, एक धैर्यमय तृप्ति का अनुभव हो रहा था।

चक्रधर ने कहा—अहिल्या, तुमने जिस वीरता से आत्मरक्षा की, उसके लिए तुम्हें बधाई देता हूँ। तुमने वीर क्षत्राणियों की कीर्ति को उज्ज्वल कर दिया। दुःख है, तो इतना ही कि ख्वाजा साहब का सर्वनाश हो गया।

अहिल्या ने उत्तर न दिया। चक्रधर के चरणों पर सिर झुकाए बैठी रही। चक्रधर फिर बोले—मुझे लज्जित न करो, अहिल्या! मुझे तुम्हारे चरणों पर सिर झुकाना चाहिए, तुम बिलकुल उलटी बात कर रही हो। कहाँ है वह छुरी, जरा उसके दर्शन तो कर लूँ।

अहिल्या ने उठकर काँपते हुए हाथों से फर्श का कोना उठाया और नीचे से छुरी निकालकर चक्रधर के सामने रख दी। उस पर रुधिर जमकर काला हो गया था।

चक्रधर ने पूछा—यह छुरी यहाँ कैसे मिल गई, अहिल्या? क्या साथ लेती आयी थीं?

अहिल्या ने सिर झुकाए हुए जवाब दिया—उसी की है।

चक्रधर—तुम्हें कैसे मिल गई?

अहिल्या ने सिर झुकाए ही जवाब दिया—यह न पूछिए। अबला के पास कौशल के सिवाय आत्मरक्षा का कौन साधन है?

चक्रधर—यही तो सुनना चाहता हूँ, अहिल्या!

अहिल्या ने सिर उठाकर चक्रधर की ओर मानपूर्ण नेत्रों से देखा और बोली—सुनकर क्या कीजिएगा?

चक्रधर—कुछ नहीं, यों ही पूछ रहा था।

अहिल्या—नहीं, आप यों ही नहीं पूछ रहे हैं, आपका इसमें कोई प्रयोजन

चक्रधर का दिल बैठ गया। अहिल्या की सरलता पर उन्हें दया आ गई। यह अपने को ऐसी अभागिनी और दीन समझ रही है कि इसे विश्वास ही नहीं आता, मैं इससे शुद्ध प्रेम कर रहा हूँ—तुम्हें क्या जान पड़ता है अहिल्या ?

अहिल्या—मैं जानती, तो आपसे क्यों पूछती ?

चक्रधर—अहिल्या, तुम इन बातों से मुझे धोखा नहीं दे सकतीं। चील को चाहे मांस की बोटी न दिखाई दे, चिउँटी को चाहे शक्कर की सुगन्ध न मिले; लेकिन रमणी का एक-एक रोयाँ पंचेन्द्रियों की भाँति प्रेम के रूप, रस, शब्द, स्पर्श का अनुभव किए बिना नहीं रहता। मैं एक गरीब आदमी हूँ। दया और धर्म और उद्धार के भावों का मुझमें लेश भी नहीं। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हें पाकर मेरा जीवन सफल हो जाएगा।

अहिल्या ने मुसकराकर कहा—तो आपके कथन के अनुसार मैं आपके हृदय का हाल जानती हूँ।

चक्रधर—अवश्य, उससे ज्यादा, जितना मैं स्वयं जानता हूँ।

अहिल्या—तो साफ कह दूँ ?

चक्रधर ने कातर भाव से कहा—कहो, सुनूं।

अहिल्या—तुम्हारे मन में प्रेम से अधिक दया का भाव है।

चक्रधर—अहिल्या, तुम मुझ पर अन्याय कर रही हो।

अहिल्या—जिस वस्तु को लेने की सामर्थ्य ही मुझमें नहीं है, उसपर हाथ न बढ़ाऊँगी। मेरे लिए वही बहुत है, जो आप दे रहे हैं। मैं इसे भी अपना धन्य भाग समझती हूँ।

चक्रधर—अगर यही प्रश्न मैं तुमसे करता, तो तुम क्या जवाब देतीं, अहिल्या ?

अहिल्या—तो साफ साफ कह देती कि मैं प्रेम से अधिक आपका आदर करती हूँ, आपमें श्रद्धा रखती हूँ।

चक्रधर का मुख मलिन हो गया। सारा प्रेमोत्साह, जो उनके हृदय में लहरें मार रहा था, एकाएक लुप्त हो गया। वन वृक्षों-सा लहलहाता हुआ हृदय मरुभूमि सा दिखाई दिया। निराश भाव से बोले—मैं तो और ही सोच रहा था, अहिल्या !

अहिल्या—तो आप भूल कर रहे थे। मैंने किसी पुस्तक में देखा था कि प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का शान्त, स्थिर, उद्गारहीन समावेश है। उसमें दया और क्षमा, श्रद्धा और वात्सल्य, सहानुभूति और सम्मान, अनुराग और विराग, अनुग्रह और उपकार सभी मिले होते हैं। सम्भव है, आज के दस वर्ष बाद मैं आपकी प्रेमपात्री बन जाऊँ; किन्तु इतनी जल्द सम्भव नहीं। इनमें से कोई एक भाव प्रेम को अंकुरित कर सकता है। उसका विकास अन्य भावों के मिलने ही से होता है। आपके हृदय में अभी केवल दया का भाव अंकुरित हुआ है, मेरे हृदय में सम्मान

और भक्ति का। हाँ सम्मान और भक्ति दया की अपेक्षा प्रेम से कहीं निकटतर हैं; बल्कि यों कहिए कि ये भाव सरस होकर प्रेम का बाल-रूप धारण कर लेते हैं।

अहिल्या के मुख से प्रेम की यह दार्शनिक व्याख्या सुनकर चक्रधर दंग हो गए। उन्होंने कभी यह अनुमान ही न किया था कि उसके विचार इतने उन्नत और उदार हैं। उन्हें यह सोचकर आनन्द हुआ कि इसके साथ जीवन कितना सुखमय हो जायगा; किन्तु अहिल्या का हाथ से आप ही आप छूट गया और उन्हें उसकी ओर ताकने का साहस न हुआ। इसके प्रेम का आदर्श कितना ऊँचा है! इसकी दृष्टि में यह व्यवहार वासनामय जान पड़ता होगा। इस विचार ने उनके प्रेमोद्‌गारों को शिथिल कर दिया। अवाक् से खड़े रह गए।

सहसा अहिल्या ने कहा मुझे भय है कि मुझे आश्रय देकर आप बदनाम हो जाएँगे। कदाचित् आपके माता-पिता तिरस्कार करें। मेरे लिए इससे बड़ी सौभाग्य की बात नहीं हो सकती कि आपकी दासी बनूँ, लेकिन आपके तिरस्कार और अपमान का ख्याल करके जी में यही आता है कि क्यों न इस जीवन का अन्त कर दूँ। केवल आपके दर्शनों की अभिलाषा ने मुझे अब तक जीवित रखा है। मैं आपको अपनी कालिमा से कलुषित करने के पहले मर जाना ही अच्छा समझती हूँ।

चक्रधर की आँखें करुणार्द्र हो गईं। बोले—अहिल्या ऐसी बातें न करो। अगर संसार में अब भी कोई ऐसा क्षुद्र प्राणी है, जो तुम्हारी उज्ज्वल कीर्ति के सामने सिर न झुकाए, तो वह स्वयं नीच है, वह मेरा अपमान नहीं कर सकता। अपनी आत्मा की अनुमति के सामने मैं माता-पिता के विरोध की परवा नहीं करता। तुम इन बातों को भूल जाओ। हम और तुम प्रेम का आनन्द भोग करते हुए संसार के सब कष्टों और संकटों का सामना कर सकते हैं। ऐसी कोई विपत्ति नहीं है, जिसे प्रेम न टाल सके। मैं तुमसे विनती करता हूँ, अहिल्या कि ये बातें फिर जबान पर न लाना।

अहिल्या ने अब की स्नेह-सजल नेत्रों से चक्रधर को देखा। शंका की वह दाह, जो उसके मर्मस्थल को जलाए डालती थी, इन शीतल आर्द्र शब्दों से शान्त हो गई। शंका की ज्वाला शान्त होते ही उसकी दाह-चंचल दृष्टि स्थिर हो गई और चक्रधर की सौम्य मूर्ति, प्रेम की आभा से प्रकाशमान, आँखों के सामने दिखाई दी। उसने अपना सिर उनके कन्धे पर रख दिया, उस आलिंगन में उसकी सारी दुर्भावनाएँ विलीन हो गईं, जैसे कोई आर्त्तध्वनि सरिता के शान्त, मन्द प्रवाह में विलीन हो जाती है।

संध्या समय अहिल्या वागीश्वरी के चरणों पर सिर झुकाए रो रही थी। चक्रधर खड़े, नेत्रों से उस घर को देख रहे थे, जिसकी आत्मा निकल गई थी। दीपक वही थे; पर उनका प्रकाश मन्द था। घर वही था; पर उसकी दीवारें

नीची मालूम होती थीं। वागीश्वरी वही थी; पर लुटी हुई, जैसे किसी ने प्राण हर लिये हों।

27

बाबू यशोदानन्दन का क्रिया-कर्म हो गया, पर धूम-धाम से नहीं। बाबू साहब ने मरते-मरते ताकीद कर दी थी कि मृतक संस्कारों में धन का अपव्यय न किया जाए। यदि कुछ धन जमा हो, तो वह हिन्दू सभा को दान दे दिया जाए। ऐसा ही किया गया।

इसके तीसरे ही दिन चक्रधर का अहिल्या से विवाह हो गया। चक्रधर तो अभी कुछ दिन और टालना चाहते थे; लेकिन वागीश्वरी ने बड़ा आग्रह किया। पति रक्षा से वंचित होकर वह पराई कन्या की रक्षा का भार लेते हुए डरती थी। इस उपद्रव ने उसे सशंक कर दिया था। विवाह में कुछ धूमधाम नहीं हुई। हाँ, शहर के कई रईसों ने कन्यादान में बड़ी-बड़ी रकमें दीं और सबसे बड़ी रकम ख्वाजा साहब की थी। अहिल्या के विवाह के लिए उन्होंने 5000 रु० अलग कर रखे थे। यह सब कन्यादान में दे दिये। कई संस्थाओं ने भी इस पुण्य कर्म में अपनी उदारता का परिचय दिया। वैमनस्य का भूत नेताओं का बलिदान पाकर शान्त हो गया।

जिस दिन चक्रधर अहिल्या को विदा कराके काशी चले, हजारों आदमी स्टेशन पर पहुँचाने आये। वागीश्वरी का रोते-रोते बुरा हाल था। जब अहिल्या आकर पालकी पर बैठी, तो वह दुखिया पछाड़ खाकर गिर पड़ी। संसार उसकी आँखों में सूना हो गया। पति-शोक में भी उसके जीवन का एक आधार रह गया था। अहिल्या के जाने से वह सर्वथा निराधार हो गई। जी में आता था, अहिल्या को पकड़ लूँ। उसे कोई क्यों लिए जाता है? उस पर किसका अधिकार है, वह जाती ही क्यों है? उसे मुझ पर जरा भी दया नहीं आती? क्या इतनी निष्ठुर हो गई है? यह इस शोक के आवेश में लपककर द्वार पर आई; पर पालकी का पता नहीं था। तब वह द्वार पर बैठ गई। ऐसा जान पड़ा, मानो चारों ओर शून्य, निस्तब्ध, अन्धकारमय श्मशान है। मानो कहीं कुछ रहा ही नहीं।

अहिल्या भी रो रही थी; लेकिन शोक से नहीं, वियोग में। वह घर छोड़ते हुए उसका हृदय फटा जाता था। प्राण देह से निकलकर घर से चिमट जाते और फिर छोड़ने का नाम न लेते थे। एक-एक वस्तु को देखकर मधुर स्मृतियों के समूह आँखों के सामने आ खड़े होते थे। वागीश्वरी की गर्दन में तो उसके करपाश इतने सुदृढ़ हो गए कि दूसरी स्त्रियों ने बड़ी मुश्किल से छुडाया, मानो जीव देह से चिमटा हो। मरणासन्न रोगी भी अपनी विलास की सामग्रियों को इतने तृषित,

इतने नैराश्यपूर्ण नेत्रों से न देखता होगा। घर से निकलकर उसकी वही दशा हो रही थी, जो किसी नवजात पक्षी की घोंसले से निकलकर होती है।

लेकिन चक्रधर के सामने एक दूसरी ही समस्या उपस्थित हो रही थी। वह घर तो जा रहे थे; पर उस घर के द्वार बन्द थे। उस द्वार में हृदय की गाँठ से भी सुदृढ़ ताले पड़े हुए थे, जिनके खुलने की तो क्या, टूटने की भी आशा न थी। नव-वधू को लिए हुए वर के हृदय में जो अभिलाषाएँ, जो मृदु-कल्पनाएँ प्रदीप्त होती हैं, उनका यहाँ नाम भी न था। उनकी जगह चिन्ताओं का अन्धकार छाया हुआ था। घर जाते थे, पर नहीं जानते थे कि कहाँ जा रहा हूँ। पिता का क्रोध, माता का तिरस्कार, सम्बन्धियों की अवहेलना, इन सभी शंकाओं से चित्त उद्विग्न हो रहा था। सबसे विकट समस्या यह थी कि गाड़ी से उतरकर जाऊँगा कहाँ। मित्रों की कमी न थी, लेकिन स्त्री को लिए हुए किसी मित्र के घर जाने के खयाल से ही लज्जा आती थी। अपनी तो चिन्ता न थी। वह इन सभी बाधाओं को सह सकते थे, लेकिन अहिल्या उनको कैसे सहन करेगी! उसका कोमल हृदय इन आघातों से टूट न जाएगा! उन्होंने सोचा—मैं घर जाऊँ ही क्यों? क्यों न प्रयाग ही उतर पड़ूँ और कोई मकान लेकर सबसे अलग रहूँ? कुछ दिनों के बाद यदि घरवालों का क्रोध शान्त हो गया, तो चला जाऊँगा, नहीं प्रयाग ही सही। बेचारी अहिल्या जिस वक्त गाड़ी से उतरेगी और मेरे साथ शहर की गलियों में मकान ढूँढती फिरेगी उस वक्त उसे कितना दु:ख होगा। इन चिन्ताओं से उनकी मुख मुद्रा इतनी मलिन हो गई कि अहिल्या ने उनसे कुछ कहने के लिए उनकी ओर देखा तो चौंक पड़ी। उसकी वियोग व्यथा अब शान्त हो गई थी और हृदय में उल्लास का प्रवाह होने लगा था; लेकिन पति की उदास मुद्रा को देखकर घबरा गई, बोली—आप इतने उदास क्यों हैं? क्या अभी से मेरी फिक्र सवार हो गई?

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—नहीं तो उदास क्यों होने लगा? यह उदास होने का समय है या आनन्द मनाने का?

अहिल्या—यह तो आप अपने मुख से पूछें, जो उदास हो रहा है।

चक्रधर ने हँसने की विफल चेष्टा करके कहा—यह तुम्हारा भ्रम है। मैं तो इतना खुश हूँ कि डरता हूँ, लोग मुझे ओछा न समझने लगें।

मगर चक्रधर जितना ही अपनी चिन्ता को छिपाने का प्रयत्न करते, उतना ही वह और भी प्रत्यक्ष होती जाती थी, जैसे दरिद्र अपनी साख बनाए रखने की चेष्टा में और भी दरिद्र हो जाता है।

अहिल्या ने गम्भीर भाव से कहा—तुम्हारी इच्छा है, न बताओ; लेकिन यही इसका आशय है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं।

यह कहते-कहते अहिल्या की आँखें सजल हो गईं। चक्रधर से अब जब्त न हो सका। उन्होंने संक्षेप में सारी बातें कह सुनाईं और अन्त में प्रयाग उतर जाने का प्रस्ताव किया।

अहिल्या ने गर्व से कहा—अपना घर रहते प्रयाग क्यों उतरें ? मैं घर चलूंगी। माता-पिता की अप्रसन्नता के भय से कोई अपना घर नहीं छोड़ देता। वे कितने ही नाराज हों, हैं तो हमारे माता-पिता ! हम लोगों ने कितना ही अनुचित किया हो, हैं तो उन्हीं के बालक। इस नाते को कौन तोड़ सकता है ? आप इन चिन्ताओं को दिल से निकाल डालिए।

चक्रधर—निकालना तो चाहता हूँ, पर नहीं निकलतीं। बाबूजी यों तो आदर्श पिता हैं; लेकिन उनके सामाजिक विचार इतने संकीर्ण हैं कि उनमें धर्म का स्थान भी नहीं। मुझे भय है कि वह मुझे घर में जाने ही न देंगे। इसमें हरज ही क्या है कि हम लोग प्रयाग उतर पड़ें और जब तक घर के लोग हमारा स्वागत करने को तैयार न हों, यहीं पड़े रहें।

अहिल्या—आपको कोई हरज न मालूम होता हो, मुझे तो माता-पिता से अलग स्वर्ग में रहना भी अच्छा न लगेगा। आखिर उनकी सेवा करने का और कौन अवसर मिलेगा ? वे कितना ही रूठें, हमारा यही धर्म है कि उनका दामन न छोड़ें। बचपन में अपने स्वार्थ के लिए तो हम कभी माता-पिता की अप्रसन्नता की परवाह नहीं करते; मचल-मचलकर उनकी गोद में बैठते हैं, मार खाते हैं, घुड़के जाते हैं, पर उनका गला नहीं छोड़ते; तो अब उनकी सेवा करने के समय उनकी अप्रसन्नता से मुंह फुला लेना हमें शोभा नहीं देता। आप उनको प्रसन्न करने का भार मुझ पर छोड़ दें, मुझे विश्वास है कि उन्हें मना लूंगी।

चक्रधर ने अहिल्या को गद्गद् नेत्रों से देखा और चुप हो रहे।

रात को दस बजते-बजते गाड़ी बनारस पहुँची। अहिल्या के आश्वासन देने पर भी चक्रधर बहुत चिन्तित हो रहे थे कि कैसे क्या होगा। कहीं पिताजी ने जाते ही जाते घुड़कियाँ देनी शुरू कीं और अहिल्या को घर में न जाने दिया, तो डूब मरने की बात होगी। लेकिन उन्हें कितना आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने मुंशीजी को दो आदमियों के साथ स्टेशन पर उनकी राह देखते हुए पाया। पिता के इस असीम, अपार, अलौकिक वात्सल्य ने उन्हें इतना पुलकित किया कि वह जाकर पिता के पैरों पर गिर पड़े। मुंशीजी ने दौड़कर छाती से लगा लिया और उनके श्रद्धाश्रुओं को रूमाल से पोंछते हुए स्नेह-कोमल शब्दों में बोले—कम से कम एक तार तो दे देते कि मैं किस गाड़ी से आ रहा हूँ। खत तक न लिखा। यहाँ बराबर दस दिन से दो बार स्टेशन पर दौड़ा आता हूँ और एक आदमी हरदम तुम्हारे इन्तजार में बिठाए रहता हूँ कि न जाने कब, किस गाड़ी से आ जाओ। कहाँ है बहू ? चलो, उतार लाएँ। बहू के साथ यहीं ठहरो। स्टेशन मास्टर से कहकर वेटिंग रूम खुलवाए देता हूँ। मैं दौड़कर जरा, बाजे-गाजे रोशनी-सवारी की फिक्र करूँ। बहू का स्वागत तो करना ही होगा। यहाँ लोग क्या जानेंगे कि बहू आई है। वहाँ की बात और थी, यहाँ की बात और है। भाईबन्दों के साथ रस्म-रिवाज मानना ही पड़ता है।

यह कहकर मुंशीजी चक्रधर के साथ अहिल्या की गाड़ी के द्वार पर खड़े हो गए। अहिल्या ने धीरे से उतरकर उनके चरणों पर सिर रख दिया। उनकी आँखों से श्रद्धा और आनन्द के आँसू बहने लगे। मुंशीजी ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और दोनों प्राणियों को वेटिंग रूम में बैठाकर बोले—किसी को अन्दर मत आने देना। मैंने साहब से कह दिया है। मैं कोई घण्टे भर में आऊँगा। तुमसे बड़ी भूल हुई कि मुझे एक तार न दे दिया। अब बेचारी यहाँ परदेशियों की तरह घण्टों बैठी रहेगी। तुम्हारा कोई काम लड़कपन से खाली ही नहीं होता। रानी कई बार आ चुकी हैं। आज चलते-चलते ताकीद कर गई थी कि बाबूजी आ जाएँ, तो मुझे खबर दीजिएगा। मैं स्टेशन पर उनका स्वागत करूँगी और बाबूजी को साथ लाऊँगी। सोचो, उन्हें कितनी तकलीफ होगी।

चक्रधर ने दबी जबान से कहा—उन्हें तो आप इस वक्त तकलीफ न दीजिए, और आपको भी धूमधाम करने के लिए तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं। सबेरे तो सबको मालूम हो ही जाएगा।

मुंशीजी ने लकड़ी सँभालते हुए कहा—सुनती हो बहू, इनकी बातें? सबेरे लोग जानकर क्या करेंगे? दुनिया क्या जानेगी कि बहू कब आई?

मुंशीजी चले गए, तो अहिल्या ने चक्रधर को आड़े हाथों लिया। ऐसे देवता-पुरुष के साथ तुम अकारण ही कितना अनर्थ कर रहे थे। मेरा तो जी चाहता था कि घण्टों उनके चरणों पर पड़ी हुई रोया करूँ।

चक्रधर लज्जित हो गए। इसका प्रतिवाद तो न किया; पर उनका मन कह रहा था कि इस वक्त दुनिया को दिखाने के लिए पिताजी कितना ही धूमधाम क्यों न कर लें, घर में कोई न कोई गुल खिलेगा जरूर। उन्हें यहाँ बैठते अनकुस मालूम होता था। सारी रात का बखेड़ा हो गया। शहर का चक्कर लगाना पड़ेगा, घर पहुँचकर न जाने कितनी रस्में अदा करनी पड़ेंगी, तब जा के कहीं गला छूटेगा। सबसे ज्यादा उलझन की बात यह थी कि कहीं मनोरमा भी राजसी ठाठ-बाट से न आ पहुँचे। इस शोरगुल से फायदा ही क्या?

मुंशीजी को गए अभी आधा घण्टा भी न हुआ था कि मनोरमा कमरे के द्वार पर आकर खड़ी दिखाई दी। चक्रधर सहसा चौंक पड़े और कुर्सी से उठकर खड़े हो गए। मनोरमा के सामने ताकने की उनकी हिम्मत न पड़ी, मानो कोई अपराध किया हो। मनोरमा ने उन्हें देखते ही कहा—बाबूजी, आप चुपके-चुपके बहू को उड़ा लाए और मुझे खबर तक न दी! मुंशीजी न कहते, तो मुझे मालूम ही न होता। आपने अपना घर बसाया, मेरे लिए भी कोई सौगात लाए?

चक्रधर ने मनोरमा की ओर लज्जित होकर देखा, तो उसका मुख उठा हुआ था। वह मुसकरा रही थी, पर आँखों में आँसू झलक रहे थे
विनय थी, कितना वैराग्य, कितनी तृष्णा, कितना तिरस्कार
जवाब देने को शब्द न मिले! मनोरमा ने सिर झुकाकर फिर

ही होगी, सौगात कौन लाता ? वहू से बातें करने में दूसरों की सुधि
वहिन, आप उतनी दूर क्यों खड़ी हैं। आइए, आइए, आपसे गले तो
आपसे तो मुझे कोई शिकायत नहीं।
कहकर वह अहिल्या के पास गयी और दोनों गले मिलीं। मनोरमा ने
एक जड़ाऊ कंगन निकालकर अहिल्या के हाथ में पहना दिया और छत
ताकने लगी, जैसे एकाएक कोई बात याद आ गई हो; सहसा उसकी
ईने पर जा पड़ी। अहिल्या का रूप चन्द्र अपनी संपूर्ण कलाओं के साथ
तिविम्बित हो रहा था। मनोरमा उसे देखकर अवाक् हो गई। मालूम हो
, किसी देवता का आशीर्वाद मूर्तिमान् होकर आकाश से उतर आया है।
सरल, शान्त, शीतल छवि के सामने उसका विशाल सौन्दर्य ऐसा मालूम
ा, मानो कुटी के सामने कोई भवन खड़ा हो। यह उन्नत भवन इस समय
ान्त-कुटी के सामने झुक गया। भवन सूना था, कुटी में एक आत्मा शयन
ही थी।

इतने में अहिल्या ने उसे कुर्सी पर विठा दिया और पान-इलायची देते हुए
ी —आपको मेरे कारण बड़ी तकलीफ हुई। यह आपके आराम करने का समय
। मैं जानती कि आप आएँगी, तो यहाँ किसी दूसरे वक्त···

चक्रधर मौका देखकर बाहर चले गए थे। उनके रहने से दोनों ही को संकोच
ता; बल्कि तीनों चुप रहते।

मनोरमा ने क्षुधित नेत्रों से अहिल्या को देखकर कहा—नहीं वहिन, मुझे जरा
ी तकलीफ नहीं हुई। मैं तो यों भी वारह-एक के पहले नहीं सोती। तुमसे मिलने
ी वहुत दिनों से इच्छा थी। मैंने अपने मन में तुम्हारी जो कल्पना की थी, तुम
ठीक वैसी ही निकलीं। तुम ऐसी न होतीं, तो वाबूजी तुम पर रीझते ही क्यों?
अहिल्या, तुम वड़ी भाग्यवान् हो! तुम्हारी जैसी भाग्यशाली स्त्रियाँ वहुत कम
होंगी। तुम्हारा पति मनुष्यों में रत्न है, सर्वथा निर्दोष एवम् सर्वथा निष्कलंक।

अहिल्या पति-प्रशंसा से गर्वोन्नित होकर वोली—आपके लिए कोई सौगात
तो नहीं लाये!

मनोरमा—मेरे लिए तुमसे वढ़कर और क्या सौगात लाते? मैं संसार में
अकेली थी, तुम्हें पाकर दुकेली हो जाऊंगी। मंगला से मैंने प्रेम नहीं वढ़ाया। कल
को वह पराए घर चली जाएगी। कौन उसके नाम पर वैठकर रोता! तुम कहीं
न जाओगी, तुम्हें सहेली वनाने में कोई खटका नहीं। आज से तुम मेरी हो।
ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि हम और तुम चिरकाल तक स्नेह के वन्धन में
वंधे रहें।

अहिल्या—मैं इसे अपना सौभाग्य समझूंगी। आपके शील स्वभाव की चर्चा
करते उनकी जवान नहीं थकती।

मनोरमा ने उत्सुक हो कर पूछा—सच! मेरी चर्चा कभी करते हैं?

अहिल्या—बराबर बात-बात पर आपका जिक्र करने लगते हैं। मैं नहीं जानती कि आपकी वह कौन सी आज्ञा है, जिसे वह टाल सकें।

इतने में बाजों की धोंधों-पोंपों सुनाई दी। मुंशीजी बारात जमाए चले आ रहे थे। सामान तो पहले से ही जमा कर रखे थे, जाकर ले आना था पोशाकें, बाजों की तीन-चार चौकियाँ, कई सवारी गाड़ियाँ, दो हाथी, दर्जनों घोड़े, एक सुन्दर सुखपाल, ये सब स्टेशन के सामने आ पहुँचे।

अहिल्या के हृदय में आनन्द की तरंगें उठ रही थीं। उसने जिन बातों की स्वप्न में भी आशा न की थी, वे सब पूरी हुई जाती थीं। कभी उसका स्वागत इस ठाठ से होगा, कभी एक बड़ी रानी उसकी सहेली बनेगी, कभी इसका इतना आदर सम्मान होगा, उसने कल्पना भी न की थी।

मनोरमा ने उसे धीरे-धीरे ले जाकर सुखपाल में बिठा दिया। बारात चली। चक्रधर एक सुरंग घोड़े पर सवार थे।

एक क्षण में सन्नाटा हो गया, लेकिन मनोरमा अभी तक अपनी मोटर के पास खड़ी थी, मानो रास्ता भूल गई हो।

28

ठाकुर गुरुसेवक सिंह जगदीशपुर के नाज़िम हो गए थे। इस इलाके का सारा प्रबन्ध उनके हाथ में था। तीनों पहली रानियाँ वहीं राजभवन में रहती थीं। उनकी देख-भाल करते रहना, उनके लिए जरूरी चीजों का प्रबन्ध करना भी नाज़िम का काम था या यह कहिए कि मुख्य काम यही था। नजामत तो केवल नाम का पद था। पहले यह पद न था। राजा साहब ने रानियों को आराम से रखने के लिए इस नए पद की सृष्टि की थी। ठाकुर साहब जगदीशपुर में राजा साहब के प्रतिनिधि स्वरूप थे।

तीनों रानियों में अब वैर विरोध कम होता था। अब हर एक को अख्तियार था, जितने नौकर चाहें रखें, जितना चाहें खर्च करें, जितने गहने चाहें बनवाएँ, जितने धर्मोत्सव चाहें मनाएँ, फिर कलह होता ही क्यों? यदि राजा साहब किसी एक नारी पर विशेष प्रेम रखते और अन्य रानियों की परवा न करते, तो ईर्ष्यावश लड़ाई होती; पर राजा साहब ने जगदीशपुर में आने की कसम-सी खा ली थी। फिर किस बात पर लड़ाई होती?

ठाकुर साहब ने दीवानखाने में अपना दफ्तर बना लिया। जरूरत होती, तुरन्त रनिवास में पहुँच जाते। रानियाँ उनसे परदा पर परदे की ओट से बातचीत कर लेती थीं। रानी वसुमती इसे अनावश्यक समझती थी। कहती—जब बातें ही कीं, तो परदा कैसा

गुड़ खाएँ गुल-गुले का परहेज। उन्हें अब संसार से विराग-सा हो गया था। सारा समय भगवत पूजन और भजन में काटती थीं। हाँ, आभूषणों से अभी उनका जी न भरा था। और अन्य स्त्रियों की भाँति वह गहने बनवाकर जमा न करती थीं, उनका नित्य व्यवहार करती थीं। रोहिणी को आभूषणों से घृणा हो गई थी, माँग-चोटी की भी परवा न करती! यहाँ तक कि उसने माँग में सिन्दूर डालना छोड़ दिया था। कहती, मुझमें और विधवा में क्या अन्तर है, बल्कि विधवा हमसे हजार दर्जे अच्छी; उसे एक यही रोना है कि पुरुष नहीं। जलन तो नहीं! यहाँ तो जिन्दगी रोने और कुढ़ने में ही कट रही है। मेरे लिए पति का होना, न होना दोनों बराबर है, सोहाग लेकर चाटूँ? रहीं रानी रामप्रिया, उनका विद्या व्यसन अब बहुत कुछ शिथिल हो गया था, गाने की धुन सवार थी, भाँति-भाँति के बाजे मँगाती रहती थीं। ठाकुर साहब को भी गाने का कुछ शौक था या अब हो गया हो। किसी न किसी तरह समय निकालकर जा बैठते और उठने का नाम न लेते। रात को अक्सर भोजन भी वहीं कर लिया करते। रामप्रिया उनके लिए स्वयं थाली परस लाती थी। ठाकुर साहब की जो इतनी खातिर होने लगी, तो मिजाज आसमान पर चढ़ गया। नए-नए स्वप्न देखने लगे। समझे, सौभाग्य-सूर्य उदय हो गया। नौकरों पर अब ज्यादा रोब जमाने लगे। सोकर देर में उठते और इलाके का दौरा भी बहुत कम करते। ऐसा जान पड़ता था, मानो इस इलाके के राजा वही हैं। दिनोंदिन यह विश्वास होता जाता था, कि रामप्रिया मेरे नयन-बाणों का शिकार हो गई है, उसके हृदय-पट पर मेरी तसवीर खिंच गई है। रोज कोई न कोई ऐसा प्रमाण मिल जाता था, जिससे यह भावना और भी दृढ़ हो जाती थी।

एक दिन आपने रामप्रिया की प्रेम-परीक्षा लेने की ठानी। कमरे में लिहाफ ओढ़ कर पड़ रहे। रामप्रिया ने किसी काम के लिए बुलाया तो कहला भेजा, मुझे रात से जोरों का बुखार है, मारे दर्द के सिर फटा पड़ता है। रामप्रिया यह सुनते ही दीवानखाने में आ पहुँची और उनके सिर पर हाथ रखकर देखा, माथा ठंडा था। नाड़ी भी ठीक चल रही थी। समझी, कुछ सिर भारी हो गया होगा, कुछ परवाह न की। हाँ, अन्दर जाकर कोई तेल सिर में लगाने को भिजवा दिया।

ठाकुर साहब को इस परीक्षा से सन्तोष न हुआ। उसे प्रेम है, यह तो सिद्ध था, नहीं तो वह देखने दौड़ी आती ही क्यों, लेकिन प्रेम कितना है, इसका कुछ अनुमान न हुआ। कहीं वह केवल शिष्टाचार के अन्तर्गत न हो। वह केवल शिष्टाचार कर रही हो, और मैं प्रेम के भ्रम में पड़ा रहूँ। रामप्रिया के अधरों पर, नेत्रों में, बातों में तो उन्हें प्रेम की झलक नजर आती थी, पर डरते थे कि मुझे भ्रम न हो। अबकी उन्होंने कड़ी परीक्षा लेने की ठानी। क्वार का महीना था। धूप तेज होती थी। मलेरिया फैला हुआ था। आप एक दिन दिन भर पैदल खेतों में रहे, कई बार तालाब का पानी भी पिया। ज्वर का पूरा सामान करके आप घर लौटे। नतीजा उनके इच्छानुकूल ही हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल उन्हें ज्वर

चढ़ आया और ऐसे जोर से आया कि दोपहर तक बक-झक करने लगे। मारे दर्द के सिर फटने लगा। सारी देह टूट रही और सिर में चक्कर आ रहा था। अब तो बेचारे को लेने के देने पड़े। प्रेम-परीक्षा में धैर्य परीक्षा होने लगी और इसमें वह कच्चे निकले। कभी रोते कि बाबूजी को बुला दो। कभी कहते, स्त्री को बुला दो। इतना चीखे-चिल्लाए कि नौकरों का नाकोंदम हो गया। रामप्रिया ने आकर देखा, तो होश उड़ गए। देह तवा हो रही और नाड़ी घोड़े की भाँति सरपट दौड़ रही थी। बेचारी घबरा उठी। तुरन्त डाक्टर को लाने के लिए आदमी को शहर दौड़ाया और ठाकुर साहब के सिरहाने बैठकर पंखा झलने लगी। द्वार पर चिक डाल दी और एक आदमी को द्वार पर बिठा दिया कि किसी अपरिचित मनुष्य को अन्दर न जाने दे। ठाकुर साहब को सुधि होती और रामप्रिया की विकलता देखते, तो फूले न समाते, पर वहाँ तो जान के लाले पड़े हुए थे।

एक सप्ताह तक गुरुसेवक का ज्वर न उतरा। डाक्टर रोज आते और देख-भाल कर चले जाते। कोई दवा देने की हिम्मत न पड़ती। रामप्रिया को सोना और खाना हराम हो गया। दिन के दिन और रात की रात रोगी के पास बैठी रहती। पानी पिलाना होता, तो खुद पिलाती; सिर में तेल डालना होता, तो खुद डालती, पथ्य देना होता, तो खुद बनाकर देती। किसी नौकर पर विश्वास न था।

अब लोगों को चिन्ता होने लगी। रोगी को यहाँ से उठाकर ले जाने में जोखिम था। सारा परिवार यहीं आ पहुँचा। हरिसेवक ने बेटे की सूरत देखी, तो रो पड़े। देह सूखकर काँटा हो गई थी। पहचानना कठिन था। राजा साहब भी दिन में दो बार मनोरमा के साथ रोगी को देखने आते; पर इस तरह भागते मानो किसी शत्रु के घर आये हों। रामप्रिया तो रोगी की सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती, उसे इसकी परवाह न थी कि कौन आता है और कौन जाता है; लेकिन रोहिणी को राजा साहब की निष्ठुरता असह्य मालूम होती थी। वह उन पर दिल का गुबार निकालने के लिए अवसर ढूँढती थी; पर राजा साहब भूलकर भी अन्दर न आते थे। आखिर एक दिन वह मनोरमा ही पर पिल पड़ी। बात कोई न थी। मनोरमा ने सरल भाव से कहा—यहाँ आप लोगों का जीवन बड़ी शान्ति से कटता होगा। शहर में तो रोज एक न एक झंझट सिर पर सवार रहता है। कभी इनकी दावत करो, कभी उनकी दावत में जाओ, आज क्लब में जलसा है, आज अमुक विद्वान् का व्याख्यान है। नाकों दम रहता है!

रोहिणी तो भरी बैठी ही थी। ऐंठकर बोली— हाँ बहिन, क्यों न हो! ऐसे प्राणी भी होते हैं, जिन्हें पड़ोसी के उपवास देखकर जलन होती है। तुम्हें पकवान बुरे मालूम होते हैं। हम अभागिनी के लिए सत्तू में भी बाधा! किसी को भोग, किसी को जोग, यह पुराना दस्तूर चला आ रहा है, तुम क्या करोगी?

मनोरमा ने फिर उसी सरल भाव से कहा—अगर तुम्हें वहाँ सत्त ही सूझ

मालूम होता है, तो चली क्यों नहीं आतीं? क्या तुम्हें किसी ने मना किया है? अकेले मेरा जी भी घबराया करता है। तुम रहोगी, तो मजे से दिन कट जाएगा।

रोहिणी नाक सिकोड़कर बोली—भला, मुझमें वह हावभाव कहाँ है कि इधर राजा साहब को मुट्ठी में किए रहूँ, उधर हाकिमों को मिलाए रहूँ। यह तो कुछ पढ़ी-लिखी शहरवालियों को ही आता है, हम गँवारिनें यह त्रियाचरित्र क्या जानें। यहाँ तो एक ही की होकर रहना जानती हैं।

मनोरमा खड़ी सन्न रह गई। ऐसा मालूम हुआ कि ज्वाला पैरों से उठी और सिर से निकल गई। ऐसी भीषण मर्मवेदना हुई, मानो किसी ने सहस्र शूलोंवाला भाला उसके कलेजे में चुभो दिया हो। संज्ञाशून्य-सी हो गई। आँखें खुली थीं, पर कुछ दिखाई न देता था; कानों में कोई आवाज न आती थी, इसका ज्ञान ही न रहा कि कहाँ आयी हूँ, क्या कर रही हूँ; रात है या दिन? वह दस-बारह मिनट तक इसी भाँति स्तम्भित खड़ी रही। राजा साहब मोटर के पास खड़े उसकी राह देख रहे थे। जब उसे देर हुई तो बुला भेजा। लौंडी ने आकर मनोरमा से संदेशा कहा; पर मनोरमा ने सुना ही नहीं। लौंडी ने एक मिनट के बाद फिर कहा, फिर भी मनोरमा ने कोई उत्तर न दिया। तब लौंडी चली गई। उसे तीसरी बार कुछ कहने का साहस न हुआ। राजा साहब ने दो मिनट और इन्तजार किया तब स्वयं अन्दर आये, तो देखा कि मनोरमा चुपचाप मूर्ति की भाँति खड़ी है। दूर ही से पुकारा—नोरा, क्या कर रही हो? चलो, देर हो रही है, सात बजे लेडी काक ने आने का वादा किया है, और छः यहीं बज गए। मनोरमा ने इसका भी कुछ जवाब न दिया। तब राजा साहब ने मनोरमा के पास आकर उसका हाथ पकड़ लिया और कुछ कहना चाहते थे कि उसका चेहरा देखकर चौंक पड़े। वह सर्प-दंशित मनुष्य की भाँति निर्निमेष नेत्रों से दीवार की ओर टकटकी लगाए ताक रही थी, मानो आँखों की राह प्राण निकल रहे हों।

राजा साहब ने घबराकर पूछा—नोरा, कैसी तबीयत है?

अब मनोरमा को होश आया। उसने राजा साहब के कन्धे पर सिर रख दिया और इस तरह फूट-फूटकर रोने लगी, मानो पानी का बाँध टूट गया हो यह पहला अवसर था कि राजा साहब ने मनोरमा को रोते देखा। व्यग्र होक बोले—क्या बात है मनोरमा, किसी ने कुछ कहा है? इस घर में किसकी ऐस मजाल है कि तुम्हारी ओर टेढ़ी निगाह से भी देख सके? उसका खून पी जाऊँ बताओ, किसने क्या कहा है? तुमने कुछ कहा है, रोहिणी? साफ-साफ बर दो?

रोहिणी पहले तो मनोरमा की दशा देखकर सहम उठी थी; पर राजा साह के खून पी जाने की धमकी ने उत्तेजित कर दिया। जी में तो आया, कह दें, ह मैंने ही कहा है, और जो बात यथार्थ थी, वह कही है, जो कुछ करना हो, कर लं खून पी के यों न खड़े रहोगे। लेकिन राजा साहब का विकराल रौद्र रूप देखक

बोली—उन्हीं से क्यों नहीं पूछते ? मेरी बात का विश्वास हो क्या ?

राजा—नहीं, मैं तुमसे पूछता हूँ !

रोहिणी—उनसे पूछते क्या डर लगता है ?

मनोरमा ने सिसकते हुए कहा—अब मैं यहीं रहूँगी; आप जाइए। मेरी चीजें यहीं भिजवा दीजिएगा।

राजा साहब ने अधीर होकर पूछा—आखिर बात क्या है, कुछ मालूम भी तो हो ?

मनोरमा—बात कुछ नहीं है। मैं अब यहीं रहूँगी। आप जाएँ।

राजा—मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता; अकेले मैं एक दिन भी जिन्दा नहीं रह सकता।

मनोरमा—मैंने तो निश्चय कर लिया है कि इस घर से बाहर न जाऊँगी।

राजा साहब समझ गए कि रोहिणी ने अवश्य कोई व्यंग्य शर चलाया है। उसकी ओर लाल आँखें करके बोले—तुम्हारे कारण यहाँ से जान लेकर भागा, फिर भी तुम पीछे पड़ी हुई हो ? वहाँ भी चाग्य नहीं रहने देती। मेरी खुशी है, जिससे जी चाहता है, बोलता हूँ; जिससे जी नहीं चाहता, नहीं बोलता। तुम्हें इसकी जलन क्यों होती है ?

रोहिणी—जलन होगी मेरी बला को। तुम यहाँ ही थे, तो कौन-सी फूलों की सेज पर सुला दिया था ? यहाँ तो 'जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेश'। भाग्य में रोना बदा था, रोती हूँ।

राजा—अभी तो नहीं रोयी; मगर शौक है तो रोओगी।

रोहिणी—जो इस भरोसे भी न रहिएगा। यहाँ ऐसी रोनेवाली नहीं हूँ कि सेंत-मेत आँखें फोड़ूँ। पहले दूसरे को रुलाकर तब रोऊँगी।

राजा साहब ने दाँत पीसकर कहा—शर्म और हया छू नहीं गई। कुंजड़िनों को भी मात कर दिया।

रोहिणी—शर्म और हयावाली तो एक वह हैं, जिन्हें छाती से लगाए खड़े हो, हम गँवारिनें भला शर्म और हया क्या जानें ?

राजा साहब ने जमीन पर पैर पटककर कहा—उसकी चर्चा न करो। इतना बतलाए देता हूँ, तुम एक लाख जन्म लो, तब भी उसको नहीं पा सकती। भूलकर भी उसकी चर्चा मत करो।

रोहिणी—तुम तो ऐसी डाँट बता रहे हो, मानो मैं कोई लौंडी हूँ। क्यों न उसकी चर्चा करूँ ? वह सीता और सावित्री होगी, तो तुम्हारे लिए होगी, यहाँ क्यों परदा डालने लगी ? जो बात देखूँगी सुनूँगी, वह कहूँगी भी, किसी को अच्छा लगे या बुरा।

राजा—अच्छा ! तुम अपने को रानी समझे बैठी हो। रानी बन्, जिन गुणों की जरूरत है, वे तुम्हें छू भी नहीं गए। तुम विलासिनि

ब्याही गई थीं और अब भी वही हो।

रोहिणी—यहाँ रानी बनने की साध ही नहीं। मैं तो ऐसी रानियों का मुँह देखना भी पाप समझती हूँ, जो दूसरों से हाथ मिलाती और आँखें मटकाती फिरें।

राजा साहब का क्रोध बढ़ता जाता था; पर मनोरमा के सामने वह अपना पैशाचिक रूप दिखाते हुए शर्माते थे। पर कोई लगती बात कहना चाहते थे, जो रोहिणी की जबान बन्द कर दे, वह अवाक् रह जाए। मनोरमा को कटु वचन सुनाने के दंडस्वरूप रोहिणी को कितनी ही कड़ी बात क्यों न कही जाए, वह क्षम्य थी। बोले—तुम्हें तो जहर खाकर मर जाना चाहिए। कम-से-कम तुम्हारी ये जली-कटी बातें तो न सुनने में आएँगी।

रोहिणी ने आग्नेय नेत्रों से राजा साहब की ओर देखा, मानो वह उसकी ज्वाला से उन्हें भस्म कर देगी, मानो उसके शरों से उन्हें वेध डालेगी, और लपककर पानदान को ठुकराती, लोटे का पानी गिराती, वहाँ से चली गयी।

मनोरमा ने सहृदय भाव से कहा—आप व्यर्थ ही इनके मुँह लगे। मैं आपके साथ न जाऊँगी।

राजा—नोरा, कभी-कभी मुझे तुम्हारे ऊपर भी क्रोध आता है। भला, इन गँवारिनों के साथ रहने में क्या आनन्द आएगा? यह सब मिलकर तुम्हारा जीना दूभर कर देंगी।

राजा साहब बहुत देर तक समझाया किए, पर मनोरमा ने एक न मानी। रोहिणी की बातें अभी तक उसके हृदय के एक-एक परमाणु में व्याप्त थीं। उसे शंका हुई कि ये भाव केवल रोहिणी के नहीं हैं, यहाँ सभी लोगों के मन में यही भाव होंगे। रोहिणी केवल उन भावों को प्रकट कर देने की अपराधिनी है। इस संदेह और लांछन का निवारण यहाँ सबके सम्मुख रहने से ही हो सकता था और यही उसके संकल्प का कारण था। अन्त में राजा साहब ने हताश होकर कहा—तो फिर मैं भी काशी छोड़ देता हूँ। तुम जानती हो कि मुझसे अकेले वहाँ एक दिन भी न रहा जायगा।

मनोरमा ने निश्चयात्मक भाव से कहा—जैसी आपकी इच्छा।

एकाएक मुंशी वज्रधर लाठी टेकते आते दिखाई दिये। चेहरा उतरा हुआ था, पाजामे का इजारबन्द नीचे लटकता हुआ। आँगन में खड़े होकर बोले—रानीजी, आप कहाँ हैं? जरा कृपा करके आइएगा, या हुक्म हो, तो मैं ही आऊँ?

राजा साहब ने कुछ चिढ़कर कहा—क्या है, यहीं चले आइए। आपको इस वक्त आने की क्या जरूरत थी? सब लोग यहीं चले आये, कोई वहाँ भी तो चाहिए।

मुंशीजी कमरे में आकर बड़े दीन भाव से बोले—क्या करूँ, हुजूर, घर तबाह हुआ जा रहा है। हुजूर से न रोऊँ, तो किससे रोऊँ! घर तबाह हुआ जाता है।

लल्लू न जाने क्या करने पर तुला है।

मनोरमा ने सशंक होकर पूछा—क्या बात है, मुंशीजी ? अभी तो आज बाबूजी यहाँ मेरे पास आये थे, कोई नई बात नहीं कही।

मुंशी—वह अपनी बात किसी से कहता है कि आपसे कहेगा ? मुझसे भी कभी कुछ नहीं कहा; लेकिन आज प्रयाग जाने को तैयार हुआ है। बहू को भी साथ लिए जाता है। कहता है, अब यहाँ न रहूँगा।

मनोरमा—आपने पूछा नहीं कि क्यों जा रहे हो ? जरूर उन्हें किसी से रंज पहुँचा होगा, नहीं तो वह बहू को लेकर न जाते। बहू ने तो कहीं उनके कान नहीं भर दिए ?

मुंशी—नहीं हुजूर, वह तो साक्षात् लक्ष्मी है। मैंने तो अपनी जिन्दगी भर में ऐसी औरत देखी ही नहीं। एक महीना से ज्यादा हो गया; पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि अपनी सास की देह दबाए बगैर सोयी हो। सबसे पहले उठती है, और सबके पीछे सोती है। उसको तो मैं कुछ कह नहीं सकता। यह सब लल्लू की शरारत है। जो उसके मन में आता है, वही करता है। मुझे तो कुछ समझता ही नहीं। आगरे में जाकर शादी की। कितना समझाया, पर न माना। मैंने दरगुजर किया। बहू को धूमधाम से घर लाया। सोचा, जब लड़के से इसका संबंध हो गया, तो अब बिगड़ने और रूठने से नहीं टूट सकता। लड़की का दिल क्यों दुखाऊँ ? लल्लू का मुँह फिर भी सीधा नहीं होता। अब न जाने मुझसे क्या करवाना चाहता है।

मनोरमा—जरूर कोई बात होगी। घर में किसी ने ताना तो नहीं मारा ?

मुंशी—इल्म की कसम खाकर कहता हूँ, हुजूर, जो किसी ने चूँ तक की हो। ताना उसे दिया जाता है, जो टर्राए। वह तो सेवा और शील की देवी है; उसे कौन ताना दे सकता है ? हाँ, इतना जरूर है कि हम दोनों आदमी उसका छुआ नहीं खाते।

मनोरमा ने सिर हिलाकर कहा—अच्छा, यह बात है ! भला, बाबूजी यह कब बर्दाश्त करने लगे। मैं अहिल्या की जगह होती, तो उस घर में एक क्षण भी न रहती। वह न जाने कैसे इतने दिन रह गई।

मुंशी—उससे तो कभी इस बात की चर्चा तक नहीं की हुजूर। (आप बार-बार मना करती हैं कि मुझे हुजूर न कहा करो; पर जबान से निकल ही आता है।) इसीलिए तो मैंने उनके आते ही एक महराजिन रख ली, जिसमें खाने-पीने का सवाल ही न पैदा हो। संयोग की बात है. महराजिन ने बहू से तरकारी बघारने के लिए घी माँगा। बहू घी लिए हुए चौके में चली गयी। चौका छून हो गया। लल्लू ने तो खाना खाया और सबके लिए बाजार से पूरियाँ आयीं। बहू तभी से पड़ रही है और लल्लू घर छोड़कर उसे लिये चला जा रहा।

मनोरमा ने विरक्त भाव से कहा—तो मैं क्या कर स

—आप सब कुछ कर सकती हैं। आप जो कर सकती हैं, वह दूसरा
कता। आप जरा चलकर समझा दें। मुझपर इतनी दया करें। सना-
न बातों को मानते आये हैं, वे सब छोड़ी नहीं जातीं।
रमा—तो न छोड़िए, आपको कोई मजबूर नहीं करता। आपको अपना
ा है और होना भी चाहिए। उन्हें भी अपना सम्मान प्यारा है और होना
हिए। मैं जैसे आपको बहू के हाथ का भोजन ग्रहण करने को मजबूर नहीं
कती, उसी भाँति उन्हें भी यह अपमान सहने के लिए नहीं दबा सकती।
ानें और वह जानें, मुझे बीच में न डालिए।

मुंशी—हुजूर, इतना निराश न करें। यदि बच्चा चले गये, तो हम दोनों
तो रोते-रोते मर जाएँगे।

मनोरमा—तो इसकी क्या चिन्ता? एक दिन तो सभी को मरना है, यहाँ
र कौन है? इतने दिन तो जी लिये; दो-चार साल और जिए तो क्या?

मुंशी—रानीजी, आप जले पर नमक छिड़क रही हैं। इतना तो नहीं होता
क चलकर समझा दें, ऊपर से और ताने देती हैं। बहू का आदर करने में कोई
ात उठा नहीं रखते, एक उसका छुआ न खाया, तो इसमें रूठने की क्या बात है?
हम कितनी ही बातों से दब गए, तो क्या उन्हें एक बात में भी नहीं दबना चाहिए?

मनोरमा—तो जाकर दबाइए न, मेरे पास क्यों दौड़े आये हैं। मेरी राय
अगर पूछते हैं, तो जाकर चुपके से बहू के हाथ से खाना पकवाकर खाइए। दिल से
यह भाव बिल्कुल निकाल डालिए कि वह नीची है और आप ऊँचे हैं। इस भाव
का लेश भी दिल में न रहने दीजिए। जब वह आपकी बहू हो गई, तो बहू ही
समझिए। अगर यह छुआछूत का बखेड़ा करना था, तो बहू को लाना ही न
चाहिए था। आपकी बहू रूप-रंग में व शील-गुण में किसी से कम नहीं। मैं तो
कहती हूँ कि आपकी बिरादरी भर में ऐसी एक भी स्त्री न होगी। अपने भाग्य
को सराहिए कि ऐसी बहू पायी। अगर खान-पान का ढोंग करना है तो जाकर
कीजिए। मैं इस विषय में बाबूजी से कुछ नहीं कह सकती। कुछ कहना ही नहीं
चाहती। वह वही कर रहे हैं, जो इस दशा में उन्हें करना चाहिए।

मुंशीजी बड़ी आशा बाँधकर यहाँ दौड़े आये थे। यह फैसला सुना तो कमर
टूट-सी गई। फर्श पर बैठ गए और अनाथ भाव से माथे पर हाथ रख कर सोचने
लगे, अब क्या करूँ? राजा साहब अभी तक इन दोनों आदमियों की बातें सुन
रहे थे। अब उन्हें अपनी विपत्ति कथा कहने का अवसर मिला। बोले—आपकी
बात तो तय हो गई। अब जरा मेरी सुनिए। मैं तो गुरुसेवक के पास बैठा हुआ
था, यहाँ नोरा और रोहिणी में किसी बात पर झड़प हो गई। रोहिणी का स्वभाव
तो आप जानते ही हैं। क्रोध उसकी नाक पर रहता है। न जाने इन्हें क्या कह
कि अब यह कह रही हैं कि मैं काशी जाऊँगी ही नहीं। कितना समझा रहा हूँ प
मानती ही नहीं।

मुंशीजी ने मनोरमा की ओर देखकर कहा—इन्हें भी तो लल्लू ने शिक्षा दी है। न वह किसी की मानता है, न यह किसी की मानती है।

मनोरमा ने मुसकराकर कहा—आपको एक देवी के अपमान करने का दण्ड मिल रहा है।

राजा साहब ने कहा—और मुझे?

मनोरमा ने मुँह फेरकर कहा—आपको बहुत से विवाह करने का।

मनोरमा यह कहती हुई वहाँ से चली गयी। उसे अभी अपने लिए कोई स्थान ठीक करना था, शहर से अपनी आवश्यक वस्तुएँ मँगवानी थीं। राजा साहब मुंशीजी को लिए हुए बाहर आये और सामने वाले बाग में बेंच पर जा बैठे। मुंशीजी घर जाना चाहते थे, जी घबरा रहा था; पर राजा साहब से आज्ञा माँगते हुए डरते थे। राजा साहब बहुत ही चिंतित दिखलाई देते थे। कुछ देर तक तो वह सिर झुकाए बैठे रहे, तब गम्भीर भाव से बोले—मुंशीजी, आपने नोरा की बातें सुनी? कितनी मीठी चुटकियाँ लेती है। सचमुच बहुत से विवाह करना अपनी जान आफत में डालना है। मैंने समझा था, अब दिन आनन्द से कटेंगे और इन चुड़ैलों से पिंड छूट जायगा; पर नोरा ने मुझे फिर उसी विपत्ति में डाल दिया। यहाँ रहकर मैं बहुत दिन जी नहीं सकता। रोहिणी मुझे जीता न छोड़ेगी। आज उसने जिस दृष्टि से मेरी ओर देखा, वह साफ कहे देती थी कि वह ईर्ष्या के आवेश में जो कुछ न कर बैठे, वह थोड़ा है। उसकी आँखों से ज्वाला सी निकल रही थी। शायद उसका बस होता, तो मुझे खा जाती। कोई ऐसी तरकीब नहीं सूझती, जिससे नोरा का विचार पलट सकूँ।

मुंशी—हुजूर, वह खुद यहाँ बहुत दिनों तक न रहेंगी। आप देख लीजिएगा। उनका जी यहाँ से बहुत जल्दी ऊब जायगा।

राजा—ईश्वर करे, आपकी बात सच निकले। आपको देर हो रही हो, तो जाइए। मेरी डाक यहाँ से बराबर भेजते रहिएगा, मैं शायद वहाँ रोज न आ सकूँगा। यहाँ तो अब नए सिरे से सारा प्रबंध करना है।

आधी रात से ज्यादा बीत चुकी थी, पर मनोरमा की आँखों में नींद न आयी थी। उस विशाल भवन में, जहाँ सुख और विलास की सामग्रियाँ भरी हुई थीं, उसे अपना जीवन शून्य जान पड़ता था। एक निर्जन, निर्मल वन में वह अकेली खड़ी थी। एक दीपक सामने बहुत दूर पर अवश्य जल रहा था; पर वह जितना ही चलती थी, उतना ही वह दीपक भी उससे दूर होता जाता था। उसने मुंशीजी के सामने तो चक्रधर को समझाने से इनकार कर दिया था, पर अब ज्यों-ज्यों [illegible] बीतती थी, उनसे मिलने के लिए तथा उन्हें रोकने के लिए उसका मन [illegible] रहा था। उसने सोचा—क्या अहिल्या के साथ विवाह होने से वह [illegible] जाएँगे? क्या मेरा उनपर कोई अधिकार नहीं? वह जाएँगे [illegible] हाथ पकड़ लूँगी। [illegible]। अगर अपने घर में नहीं [illegible]

आजकल मनोरमा दिन में एक बार उनके घर जरूर आ जाती। अगर खुद न आ सकती थी, तो उन्हीं को बुला भेजती। उसके सम्मुख आकर चक्रधर को अपना संयम, विचार और मानसिक स्थिति ये सब बालू की मेंड़ की भाँति पैर पड़ते ही खिसकते मालूम होते। सौन्दर्य से कहीं अधिक उसका आत्मसमर्पण घातक था। उन्हें प्राण लेकर भाग जाने ही में कुशल दिखाई देती थी। गाड़ी सात बजे छूटती थी। वह अपना बिस्तर और पुस्तकें बाहर निकाल रहे थे। भीतर अहिल्या अपनी सास और ननद के गले मिलकर रो रही थी, कि इतने में मनोरमा की मोटर आयी हुई दिखाई दी। चक्रधर मारे शर्म के गड़ गए। उन्हें मालूम हुआ था कि पिता जी ने मनोरमा को मेरे जाने की खबर दे दी है, और वह जरूर आएगी; पर वह उसके आने के पहले ही रवाना हो जाना चाहते थे। उन्हें भय था कि उसके आग्रह को न टाल सकूँगा, पर छोड़ने का कोई कारण न बता सकूँगा और विवश होकर मुझे फिर यहीं रहना पड़ेगा। मनोरमा को देखकर वह सहम उठे; पर मन में निश्चय कर लिया कि इस समय निष्ठुरता का स्वाँग भरूँगा, चाहे वह अप्रसन्न ही क्यों न हो जाए।

मनोरमा ने मोटर से उतरते हुए कहा—बाबूजी, अभी जरा ठहर जाइए। यह उतावली क्यों? आप ऐसे भागे जा रहे हैं, मानो घर में रूठे जाते हों। बात क्या है, कुछ मालूम भी तो हो?

चक्रधर ने पुस्तकों का गट्ठर सँभालते हुए कहा—बात, कुछ नहीं है। भला कोई बात होती तो आपसे कहता न। यों ही जरा इलाहाबाद रहने का विचार है। जन्म भर पिता की कमाई खाना तो उचित नहीं।

मनोरमा—तो प्रयाग में कोई अच्छी नौकरी मिल गई है?

चक्रधर—नहीं, अभी मिली तो नहीं है; पर तलाश कर लूँगा।

मनोरमा—आप ज्यादा से ज्यादा कितने की नौकरी पाने आशा रखते हैं?

चक्रधर को मालूम हुआ कि मुझसे बहाना न करते बना। इस काम में बहुत सावधानी रखने की जरूरत है। बोले—नौकरी ही का खयाल नहीं है, और भी बहुत से कारण हैं। गाड़ी सात ही बजे जाती है और मैंने वहाँ मित्रों को सूचना दे दी है, नहीं तो मैं आपसे सारी रामकथा सुनाता।

मनोरमा—आप इस गाड़ी से नहीं जा सकते। जब तक मुझे मालूम न हो जाएगा कि आप किस कारण से और वहाँ क्या करने के इरादे से जाते हैं, मैं आपको न जाने दूँगी।

चक्रधर—मैं दस-पाँच दिन में एक दिन के लिए आकर सब कुछ बता दूँगा, पर इस वक्त गाड़ी छूट जाएगी। मेरे मित्र स्टेशन पर मुझे लेने आएँगे, उन्हें कितना कष्ट होगा।

मनोरमा—मैंने कह दिया, आप इस गाड़ी से नहीं जा सकते।

चक्रधर—आपको सारी स्थिति मालूम होती, तो आप

चेष्टा न करतीं। आदमी विवश होकर ही अपना घर छोड़ता है। मेरे लिए अब यहां रहना असम्भव हो गया है।

मनोरमा—तो क्या यहाँ कोई दूसरा मकान नहीं मिल सकता ?

चक्रधर—मगर एक ही जगह अलग घर में रहना कितना भद्दा मालूम होता है। लोग यही समझेंगे कि बाप-बेटे या सास-बहू में नहीं बनती।

मनोरमा—आप तो दूसरों के कहने की बहुत परवा न करते थे।

चक्रधर—केवल सिद्धान्त के विषय में। माता-पिता से अलग रहना तो मेरा सिद्धांत नहीं।

मनोरमा—तो क्या अकारण घर से भाग जाना आपका सिद्धांत है ? सुनिए, मुझे आपके घर की दशा थोड़ी बहुत मालूम है। ये लोग अपने संस्कारों से मजबूर हैं। न तो आप ही उन्हें दबाना पसन्द करेंगे। क्यों न अहिल्या को कुछ दिनों के लिए मेरे साथ रहने देते ? मैंने जगदीशपुर ही में रहने का निश्चय किया है। आप वहां रह सकते हैं। मेरी बहुत दिनों से इच्छा है कि कुछ दिन आप मेरे मेहमान हों। वह भी तो आप ही का घर है। मैं अपना सौभाग्य समझूंगी। मैंने आपसे कभी कुछ नहीं मांगा। आज मेरी इतनी बात मान लीजिए। वह कोई आदमी आता है। मैं जरा घर में जाती हूँ। यह बिस्तर वगैरह खोलकर रख दीजिए। यह सब सामान देखकर मेरा हृदय जाने कैसा हुआ जाता है।

चक्रधर—नहीं मनोरमा, मुझे जाने दो।

मनोरमा—आप न मानेंगे ?

चक्रधर—यह बात न मानूंगा।

मनोरमा—मुझे रोते देखकर भी नहीं ?

मनोरमा की आंखों से आंसू गिरने लगे। चक्रधर की आँखें भी डबडबा गईं। बोले—मनोरमा, मुझे जाने दो। मैं वादा करता हूँ कि जल्द लौट आऊंगा।

मनोरमा—अच्छी बात है, जाइए; लेकिन एक बात आपको माननी पड़ेगी। मेरी यह भेंट स्वीकार कीजिए।

यह कहकर उसने अपना हैंडबेग चक्रधर की तरफ बढ़ाया।

चक्रधर ने पूछा—इसमें क्या है ?

मनोरमा—कुछ भी हो।

चक्रधर—अगर न लूं तो ?

मनोरमा—तो मैं अपने हाथों से आपका बोरिया-बंधना उठाकर घर में रख आऊंगी।

चक्रधर—आपको इतना कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं इसे लिये लेता हूँ शायद वहां भी मुझे कोई काम करने की जरूरत न पड़ेगी। इस बैग का वजन ही बतला रहा है।

मनोरमा घर में गयी, तो निर्मला बोली—माना कि नहीं, बेटी ?

मनोरमा—नहीं मानते। मनाकर हार गई।

मुंशी—आपके कहने से न माना, तो फिर किसके कहने से मानेगा !

तांगा आ गया। चक्रधर और अहिल्या उस पर जा बैठे, तो मनोरमा भी अपनी मोटर पर बैठकर चली गयी। घर के बाकी तीनों प्राणी द्वार पर खड़े रह गए।

29

सार्वजनिक काम करने के लिए कहीं भी क्षेत्र की कमी नहीं, केवल मन में निःस्वार्थ सेवा का भाव होना चाहिए। चक्रधर प्रयाग में अभी अच्छी तरह जमने भी न पाए थे कि चारों ओर से उनके लिए खींचतान होने लगी। थोड़े ही दिन में वह नेताओं की श्रेणी में आ गए। उनमें देश का अनुराग था, काम करने का उत्साह था और संगठन करने की योग्यता थी। सारे शहर में एक भी ऐसा प्राणी न था, जो उनकी भाँति निःस्पृह हो। और लोग अपना फालतू समय ही सेवा कार्य के लिए दे सकते थे, द्रव्योपार्जन उनका मुख्य उद्देश्य था। चक्रधर के लिए इस काम के सिवा और कोई फिक्र न थी। यह कोई न पूछता कि आपको कोई तकलीफ तो नहीं है ? काम लेनेवाले बहुतेरे थे। सवारी करनेवाले सब थे, पर घास-चारा देनेवाला कोई भी न था। उन्होंने शहर के निकास पर एक छोटा सा मकान किराए पर लिया था और बड़ी किफायत से गुजर करते थे। आगरे में उन्हें जितने रुपये मिले थे, वे मुंशी वज्रधर की भेंट कर दिए थे। वहाँ रुपये का नित्य अभाव रहता था। कम मिलने पर कम तंगी रहती थी, क्योंकि जरूरतें घटा ली जाती थीं। अधिक मिलने पर तंगी भी अधिक हो जाती थी। क्योंकि जरूरतें बढ़ा ली जाती थीं।

चक्रधर को अब ज्ञात होने लगा था कि गृहस्थी में पड़कर कुछ न कुछ स्थायी आमदनी होनी ही चाहिए। अपने लिए उन्हें कोई चिन्ता न थी, लेकिन अहिल्या को वह दरिद्रता की परीक्षा में डालना न चाहते थे। वह अब बहुधा चिन्तित दिखाई देती, यों वह कभी शिकायत न करती थी; पर यह देखना कठिन न था कि वह अपनी दशा में संतुष्ट नहीं है। वह गहने-कपड़े की भूखी न थी, सैर-तमाशे का उसे चस्का नहीं था; पर खाने-पीने की तकलीफ उससे न सही जाती थी ! वह सब कुछ सह सकती थी। उसकी सहन शक्ति का वारपार न था। चक्रधर को इस दशा में देखकर उसे दुःख होता था। जब और लोग पहले अपने घर में चिराग जलाकर मसजिद में जलाते हैं, तो वही क्यों अपने घर अंधेरा [illegible] मस्जिद में चिराग जलाने जाएँगे ? औरों को अगर मोटर फिटन [illegible] पैरगाड़ी भी न हो ? दूसरों को पक्की हवेलियाँ चाहिए, तो [illegible]

मकान भी न हो ? दूसरे जायदाद पैदा करते हैं, तो क्या यहाँ भोजन भी न हो ? आखिर प्राण देकर तो सेवा नहीं की जाती। अगर इस उत्सर्ग के बदले चक्रधर को यश का बड़ा भाग मिलता, तो शायद अहिल्या को सन्तोष हो जाता, आँसू पुँछ जाते, लेकिन जब वह औरों को बिना कष्ट उठाए चक्रधर के बराबर या उनसे अधिक यश पाते देखती थी, तो उसे धैर्य न रहता था। जब खाली ढोल पीटकर भी, अपना घर भरकर भी यश कमाया जा सकता है, तो इस त्याग और विरागकी जरूरत ही क्या ? जनता धनियों का जितना मान-सम्मान करती है, उतना सेवकों का नहीं। सेवा-भाव के साथ धन भी आवश्यक है। दरिद्र सेवक, चाहे वह कितने ही सच्चे भाव से क्यों न काम करे, चाहे वह जनता के लिए प्राण ही क्यों न दे दे, उतना यश नहीं पा सकता, जितना एक धनी आदमी अल्प-सेवा करके पा जाता है। अहिल्या को चक्रधर का आत्म-दमन इसीलिए बुरा लगता था और वह मुँह से कुछ न कहकर भी दुखी रहती थी। सेवा स्वयं अपना बदला है, यह आदर्श उसकी समझ में न आता था।

अगर चक्रधर को अपना ही खर्च सँभालना होता, तो शायद उन्हें बहुत कष्ट न होता, क्योंकि उनके लेख बहुत अच्छे होते थे और दो-तीन समाचार-पत्रों में लिखकर वह अपनी जरूरत-भर को पैदा कर लेते थे। पर मुंशी वज्रधर के तकाजों के मारे उनकी नाक में दम था। मनोरमा जगदीशपुर जाकर संसार से विरक्त-सी हो गई थी। न कहीं आती, न कहीं जाती और न रियासत के किसी मामले में बोलती। धन से उसे घृणा ही हो गई थी। सब कुछ छोड़कर वह अपनी कुटी में जा बैठी थी, मानो कोई संन्यासिनी हो, इसलिए अब मुंशीजी को केवल वेतन मिलता था और उसमें उनका गुजर न होता था। चक्रधर को बार-बार तंग करते, और उन्हें विवश होकर पिता की सहायता करनी पड़ती।

अगहन का महीना था। खासी सरदी पड़ रही थी, मगर अभी तक चक्रधर जाड़े के कपड़े न बनवा पाए थे। अहिल्या के पास तो पुराने कपड़े थे, पर चक्रधर के पुराने कपड़े मुंशीजी के मारे बचने ही न पाते। या तो खुद पहन डालते, या किसी को दे देते। वह इसी फिक्र में थे कि कहीं से रुपये आ जायँ, तो एक कम्बल ले लूँ। आज बड़े इन्तजार के बाद लखनऊ से एक मासिक पत्र के कार्यालय से पच्चीस रुपए का मनीआर्डर आया था और वह अहिल्या के पास बैठे हुए कपड़ों का प्रोग्राम बना रहे थे।

अहिल्या ने कहा—मुझे अभी कपड़ों की जरूरत नहीं है। तुम अपने लिए एक अच्छा सा कम्बल कोई पन्द्रह रुपए में ले लो। बाकी रुपयों में अपने लिए ऊनी कुरता और जूता ले लो। जूता बिलकुल फट गया है।

चक्रधर—पन्द्रह रुपए का कम्बल क्या होगा ? मेरे लायक तीन-चार रुपए में अच्छा कम्बल मिल जाएगा। बाकी रुपयों से तुम्हारे लिए एक अलवान ला देता हूँ। सवेरे उठकर तुम्हें कामकाज करना पड़ता है, कहीं सरदी खा जाओ, तो

मुश्किल पड़े। ऊनी कुरते की जरूरत नहीं। हाँ, तुम एक सलूका बनवा लो। मैं तगड़ा आदमी हूँ ठंड सह सकता हूँ।

अहिल्या— खूब तगड़े हो, क्या कहना है! जरा आइने में जाकर सूरत तो देखो। जब से यहाँ आये हो, आधी देह भी नहीं रही। मैं जानती कि यहाँ आकर तुम्हारी यह दशा हो जाएगी, तो कभी घर से कदम न निकालती। मुझसे लोग छून माना करते, क्या परवा थी? तुम तो आराम से रहते थे, अलवान-सलवान न लूँगी, तुम आज एक कम्बल लाओ; नहीं तो मैं सच कहती हूँ, यदि बहुत दिक करोगे तो मैं आगरे चली जाऊँगी।

चक्रधर— तुम्हारी यही जिद तो मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं कई साल से [illegible] दुबला हूँ तो क्या, गरमी- [illegible] बताओ मेरे सिर में एक [illegible] तुम अभी ले लो, अब की रुपये आएँगे, तो मैं भी बनवा लूँगा।

इतने में डाकिये ने पुकारा। चक्रधर ने जाकर खत ले लिया और उसे पढ़ते हुए अन्दर आये। अहिल्या ने पूछा—लालाजी का खत है? लोग अच्छी तरह हैं न?

चक्रधर—मेरे आते ही न जाने उन लोगों पर क्या साढ़ेसाती सवार हो गई है कि जब देखो, एक न एक विपत्ति सवार ही रहती है। अभी मंगला बीमार थी। अब अम्माँ बीमार हैं। बाबूजी को खाँसी आ रही है। रानी साहब के यहाँ से अब वजीफा नहीं मिलता है। लिखा है कि इस वक्त 50 रु० अवश्य भेजो।

अहिल्या—क्या अम्माँजी बहुत बीमार हैं?

चक्रधर— हाँ, लिखा तो है।

अहिल्या—तो जाकर देख ही क्यों न आओ?

चक्रधर—तुम्हें अकेली छोड़कर?

अहिल्या—डर क्या है?

चक्रधर—चलो। रात को कोई आकर लूट ले, तो चिल्ला भी न सको। कितनी बार सोचा कि चलकर अम्माँ को देख आऊँ, पर कभी इतने रुपये ही नहीं मिलते। अब बताओ इन्हें रुपये कहाँ से भेजूँ?

अहिल्या—तुम्हीं सोचो, जो बैरागी बनकर बैठे हो। तुम्हें बैरागी बनाना था, तो नाहक गृहस्थी के जंजाल में फँसे। मुझसे विवाह करके तुम सचमुच बला में फँस गए। मैं न होती, तो क्यों तुम यहाँ आते और क्यों यह दशा होती? सबसे अच्छा है, तुम मुझे अम्माँ के पास पहुँचा दो। अब वह बेचारी अकेली रो-रोकर दिन काट रही होगी। जाने से निहाल हो जाएँगी!

चक्रधर—हम और तुम दोनों क्यों न चले चलें?

अहिल्या—जी नहीं, दया कीजिए। आप वहाँ भी मेरे प्राण खाएँगे और

चारी अम्मांजी को रुलाएँगे ! मैं झूठों भी लिख दूँ कि अम्मां जी, मैं तकलीफ हूँ, तो तुरन्त किसी को भेज कर मुझे बुला लें।

चक्रधर—मुझे वाबूजी पर बड़ा क्रोध आता है। व्यर्थ मुझे तंग करते हैं। म्मां की वीमारी तो वहाना है, सरासर वहाना।

अहिल्या—यह वहाना हो या सच हो, ये पचीसों रुपये भेज दो। बाकी के नए लिख दो, कोई फिक्र करके जल्दी ही भेज दूंगा। तुम्हारी तकदीर में इस ाल जड़ावल नहीं लिखा है।

चक्रधर—लिखे देता हूँ, मैं खुद तंग हूँ, आपके पास कहाँ से भेजूं ?

अहिल्या—ए हटो भी, इतने रुपयों के लिए मुंह चुराते हो। भला, वह अपने दल में क्या कहेंगे ! ये रुपये चुपके से भेज दो।

चक्रधर कुछ देर तक तो मौन धारण किए बैठे रहे, मानो किसी गहरी चिन्ता हों। एक क्षण के वाद वोले—किसी से कर्ज लेना पड़ेगा, और क्या।

अहिल्या—नहीं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, कर्ज मत लेना। इससे तो इनकार र देना ही अच्छा है।

चक्रधर—किसी ऐसे महाजन से लूंगा, जो तकादे न करेगा। अदा करना बलकुल मेरी इच्छा पर होगा।

अहिल्या—ऐसा कौन महाजन है, भई ? यहीं रहता है ? कोई दोस्त होगा ? ोस्त से तो कर्ज लेना ही न चाहिए। इससे तो महाजन कहीं अच्छा। कौन है, रा उसका नाम तो सुनूं ?

चक्रधर—अजी, एक पुराना दोस्त है, जिसने मुझसे कह रखा है कि तुम्हें व रुपये की कोई ऐसी जरूरत आ पड़े, जो टाले न टल सके, तो तुम हमसे मांग लेया करना, फिर जब चाहे दे देना।

अहिल्या—कौन है, वताओ, तुम्हें मेरी कसम।

चक्रधर—तुमने कसम रखा दी यह वड़ी मुश्किल आ पड़ी। वह मित्र रानी मनोरमा हैं। उन्होंने मुझे घर से चलते-समय एक मोटा-सा वैग दिया था। मैंने उस वक्त तो खोला नहीं; गाड़ी में वैठकर खोला, तो उसमें पाँच हजार रुपयों के नोट निकले। सब रुपये ज्यों के त्यों रखे हुए हैं।

अहिल्या—और तो कभी नहीं निकाला ?

चक्रधर—कभी नहीं यह पहला मौका है।

अहिल्या—तो भूलकर भी न निकालना।

चक्रधर—लालाजी जिंदा न छोड़ेंगे, समझ लो।

अहिल्या—साफ कह दो, मैं खाली हाथ हूँ, बस। रानी जी की अमानत किसी मौके से लौटानी होगी। अमीरों का एहसास कभी न लेना चाहिए, कभी-कभी उसके बदले में अपनी आत्मा तक वेचनी पड़ती है। रानीजी तो हमें बिल्कुल भूल ही गईं। एक खत न लिखा।

चक्रधर—आजकल उनको अपने घर के झगड़ों ही से फुरसत न मिलती होगी। राजा साहब से विवाह करके अपना जीवन ही नष्ट कर दिया।

अहिल्या—हृदय बड़ा उदार है।

चक्रधर – उदार ! यह क्यों नहीं कहती कि अगर उनकी मदद न हो, तो प्रान्त की कितनी ही सेवा संस्थाओं का अन्त हो जाए। प्रान्त में यदि ऐसे लगभग दस प्राणी हो जाएँ, तो बड़ा काम हो जाए।

अहिल्या—ये रुपये लालाजी के पास भेज दो, तब तक और सरदी का मजा उठा लो।

अहिल्या उस दिन बड़ी रात तक चिन्ता में पड़ी रही कि जड़ावल का क्या प्रबंध हो। चक्रधर ने सेवा कार्य का इतना भारी बोझ अपने सिर ले लिया था कि उनसे अधिक धन कमाने की आशा न की जा सकती थी। बड़ी मुश्किल से रात को थोड़ा-सा समय निकाल कर बेचारे कुछ लिख-पढ़ लेते थे। धन की उन्हें चेष्टा ही न थी। इसे वह केवल जीवन का उपाय समझते थे। अधिक धन कमाने के लिए उन्हें मजबूर करना उन पर अत्याचार करना था। उसने सोचना शुरू किया, मैं कुछ काम कर सकती हूँ या नहीं। सिलाई और बेल-बूटे-कसीदे का काम वह खूब कर सकती थी; पर चक्रधर को यह कब मंजूर हो सकता था कि वह पैसे के लिए यह काम करे ? एक दिन उसने एक मासिक पत्रिका में अपनी एक सहेली का लेख देखा। दोनों आगरे में साथ-साथ पढ़ती थीं। अहिल्या हमेशा उससे अच्छा नम्बर पाती थी। यह लेख पढ़ते ही अहिल्या की वही दशा हुई, जो किसी मसोल घोड़े को चाबुक पड़ने पर होती है। वह कलम लेकर बैठ गई और उसी विषय की आलोचना करने लगी, जिस पर उसकी सहेली का लेख था। वह इतनी तेजी से लिख रही थी, मानो भागते हुए विचारों को समेट रही हो। शब्द और वाक्य आप ही आप निकलते चले आते थे। घंटे भर में उसने चार-पाँच पृष्ठ लिख डाले। जब उसने उसे दुहराया, तो उसे ऐसा जान पड़ा कि मेरा लेख सहेली के लेख से अच्छा है। फिर भी उसे सम्पादक के पास भेजते हुए उसका जी डरता था कि कहीं अस्वीकृत न हो जाए। उसने दोनों लेखों को दो-तीन बार मिलाया और अंत को तीसरे दिन भेज ही दिया। तीसरे दिन जवाब आया। लेख स्वीकृत हो गया था, फिर भेजने की प्रार्थना की थी और शीघ्र ही पुरस्कार भेजने का वादा था। तीसरे दिन डाकिये ने एक रजिस्ट्री चिट्ठी लाकर दी। अहिल्या ने खोला तो 100 रु० का नोट था। अहिल्या फूली न समायी। उसे इस बात का संतोषमय गर्व हुआ कि गृहस्थी में मैं भी मदद कर सकती हूँ। उसी दिन उसने एक दूसरा लेख लिखना शुरू किया; पर अबकी जरा देर लगी। तीसरे [illegible] गया।

पूस का महीना लग गया। था जोरों की सरदी पड़ने लगी। ऐसा मालूम होता था कि पानी काट खाएगा; पर अभी तक

लिख सकते थे। विचार भी बहुत गम्भीर और गहरे थे। अगर अहिल्या ने खुद न कहा होता तो वह लेखों पर उसका नाम देखकर भी यही समझते कि इस नाम की कोई दूसरी महिला होगी। उन्हें कभी खयाल ही न हो सकता था कि अहिल्या इतनी विचारशील है; मगर यह जानकर भी वह खुश नहीं हुए। उनके अहंकार को धक्का-सा लगा। उनके मन में गृहस्वामी होने का जो गर्व अलक्षित रूप से बैठा हुआ था, वह चूर-चूर हो गया। वह अज्ञात भाव से बुद्धि में, विद्या में एवं व्यावहारिक ज्ञान में अपने को अहिल्या से ऊँचा समझते थे। रुपये कमाना उनका काम था। यह अधिकार उनके हाथ से छिन गया। विमन होकर बोले—तुम्हारे लेख बहुत अच्छे हैं, और पहली ही कोशिश में तुम्हें पुरस्कार भी मिल गया, यह और खुशी की बात है; लेकिन मुझे तो कम्बल की जरूरत न थी। कम से कम मैं इतना कीमती कम्बल न चाहता था; इसे तुम्हीं ओढ़ो। आखिर तुम्हारे पास तो वही एक पुरानी चादर है। मैं अपने लिए दूसरा कम्बल ले लूँगा।

अहिल्या समझ गई कि यह बात इन्हें बुरी लगी। बोली—मैंने पुरस्कार के इरादे से तो लेख न लिखे थे। अपनी एक सहेली का लेख पढ़कर मुझे भी दो-चार बातें सूझ गईं। लिख डाली। अगर तुम्हारी इच्छा नहीं, तो अब न लिखूँगी।

चक्रधर—नहीं, नहीं; मैं तुम्हें लिखने को मना नहीं करता। तुम शौक से लिखो; मगर मेरे लिए तुम्हें यह कष्ट उठाने की जरूरत नहीं। मुझे ऐश करना होता, तो सेवा क्षेत्र में आता ही क्यों? मैं सब सोच-समझकर इधर आया हूँ; मगर अब देख रहा हूँ कि 'माया और राम' दोनों साथ नहीं मिलते। मुझे राम को त्याग कर माया की उपासना करनी पड़ेगी।

अहिल्या ने कातर भाव से कहा—मैंने तो तुमसे किसी बात की शिकायत नहीं की। अगर तुम जो हो, वह न होकर धनी होते, तो शायद मैं अब तक क्वाँरी ही रहती। धन की मुझे लालसा न तब थी, न अब है। तुम जैसा रत्न पाकर अगर मैं धन के लिए रोऊँ, तो मुझसे बढ़कर अभागिनी कोई संसार में न होगी। तुम्हारी तपस्या में योग देना मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ। मैंने केवल यह सोचा कि जब मैंने मेहनत की है तो उसकी मजूरी ले लेने में क्या हरज है। यह कम्बल तो कोई शाल नहीं है, जिसे ओढ़ने से संकोच हो। मेरे लिए चादर काफी है। तुम्हें जब रुपये मिलें तो मेरे लिए लिहाफ बनवा देना।

कम्बल रात भर ज्यों का त्यों तह किया हुआ पड़ा रहा। सरदी के मारे चक्रधर को नींद न आती थी; पर कम्बल को छुआ तक नहीं। उसका एक-एक रोयाँ सर्प की भाँति काटने दौड़ता था। एक बार उन्होंने अहिल्या की ओर देखा। वह हाथ-पाँव सिकोड़े, चादर सिर से ओढ़े एक गठरी की तरह पड़ी हुई थी; पर उन्होंने उसे भी वह कम्बल न ओढ़ाया। उनका स्नेह-करुण हृदय रो पड़ा। ऐसा मालूम होता था, मानो कोई फूल तुषार से मुरझा गया हो। उनकी अंतरात्मा सहस्रों जिह्वाओं से उनका तिरस्कार करने लगी। समस्त संसार उन्हें धिक्कारता

हुआ जान पड़ा—तेरी लोक सेवा केवल भ्रम है, कोरा प्रमाद है। जब तू उस रमणी की रक्षा नहीं कर सकता, जो तुझ पर अपने प्राण तक अर्पण कर सकती है, तो तू जनता का उपकार क्या करेगा ? त्याग और भोग में दिशाओं का अंतर है। चक्रधर उन्मत्तों की भाँति चारों ओर देखने लगे कि कोई ऐसी चीज मिले जो इसे ओढ़ा सकूँ, लेकिन पुरानी धोतियों के सिवा उन्हें और कोई चीज न नजर आयी। उन्हें इस समय भीषण मर्म-वेदना हो रही थी। अपना व्रत और संयम, अपना समस्त जीवन शुष्क और निरर्थक जान पड़ता था। जिस दरिद्रता का उन्होंने सदैव आह्वान किया था, वह इस समय भयंकर शाप की भाँति उन्हें भय-भीत कर रही थी। जिस रमणी-रत्न की ज्योति से रनिवास में उजाला हो जाता था, उसको मेरे हाथों यह यन्त्रणा मिल रही है। सहसा अहिल्या ने आँखें खोल दीं और बोली—तुम खड़े क्या कर रहे हो ? मैं अभी स्वप्न देख रही थी कि कोई पिशाच मुझे नदी के शीतल जल में डुबाए देता है। अभी तक छाती धड़क रही है।

चक्रधर ने ग्लानित होकर कहा—वह पिशाच मैं ही हूँ, अहिल्या ! मेरे ही हाथों तुम्हें यह कष्ट मिल रहा है।

अहिल्या ने पति का हाथ पकड़कर चारपाई पर सुला दिया और वही कम्बल ओढ़ाकर बोली—तुम मेरे देवता हो, जिसने मुझे मुझधार से निकाला है। पिशाच मेरा मन है, जो मुझे डुबाने की चेष्टा कर रहा है।

इतने में पड़ोस के एक मुर्गे ने बाँग दी। अहिल्या ने किवाड़ खोलकर देखा, तो प्रभात-कुसुम खिल रहा था। चक्रधर को आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी रात कैसे कट गई।

आज वह नाश्ता करते ही कहीं बाहर न गए; बल्कि अपने कमरे में जाकर कुछ लिखते-पढ़ते रहे। शाम को उन्हें कुमार-सभा में एक वक्तृता देनी थी। विषय था 'समाज सेवा'। इस विषय को छोड़कर वह पूरे घंटे भर तक ब्रह्मचर्य की महिमा गाते रहे। सात बजते-बजते वह फिर लौट आये और दस बजे तक लिखते रहे। आज से यही उनका नियम हो गया। नौकरी तो वह कर न सकते थे। चित्त को इससे घृणा होती थी; लेकिन अधिकांश समय पुस्तकें और लेख लिखने में बिताते। उनकी विद्या और बुद्धि अब सेवा के अधीन नहीं, स्वार्थ के अधीन हो गई। भाव के साथ उनके जीवन-सिद्धान्त भी बदल गए। बुद्धि का उद्देश्य केवल तत्त्व-निरूपण और विद्या-प्रसार न रहा, वह धनोपार्जन का मंत्र बन गया। उस मकान में अब उन्हें कष्ट होने लगा। दूसरा मकान लिया, जिसमें बिजली के पंखे और रोशनी थी। इन नए साधनों से उन्हें लिखने-पढ़ने में और भी आसानी हो गई। बरसात में मच्छरों के मारे कोई मानसिक काम न कर सकते थे। गरमी में तो नन्हें से आँगन में बैठना भी मुश्किल था, काम करने का जिक्र ही क्या ? अब वह खुली हुई छत पर बिजली के सामने शाम ही से बैठकर काम करने लगते थे। अहिल्या खुद तो कुछ न लिखती; पर चक्रधर की सहायता करती रहती थी।

लेखों को साफ करना, अन्य पुस्तकों और पत्रों से अवतरणों की नकल करना उसका काम था। पहले ऊसर की खेती करते थे, जहाँ न धन था, न कीर्ति। अब धन भी मिलता था और कीर्ति भी। पत्रों के सम्पादक उनसे आग्रह करके लेख लिखवाते थे। लोग इन लेखों को बड़े चाव से पढ़ते थे। भाषा भी अलकृत होती थी, भाव भी सुन्दर, विषय भी उपयुक्त! दर्शन से उन्हें विशेष रुचि थी। उनके लेख भी अधिकांश दार्शनिक होते थे।

पर चक्रधर को अब अपने कृत्यों पर गर्व न था। उन्हें काफी धन मिलता था। योरप और अमेरिका के पत्रों में भी उनके लेख छपते थे। समाज में उनका आदर भी कम न था; पर सेवा-कार्य में जो संतोष और शान्ति मिलती थी, वह अब मयस्सर न थी। अपने दीन, दुखी एवं पीड़ित बन्धुओं की सेवा करने में जो गौरव-युक्त आनन्द मिलता था, वह सभ्य समाज की दावतों में न प्राप्त होता था। मगर अहिल्या सुखी थी। वह अब सरल बालिका नहीं, गौरवशील युवती थी—गृह-प्रबन्ध में कुशल, पति-सेवा में प्रवीण, उदार, दयालु और नीति-चतुर। मजाल न थी कि नौकर उसकी आँख बचाकर एक पैसा भी खा जाए। उसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी होती जाती थीं। ईश्वर ने उसे एक सुन्दर बालक भी दे दिया। रही-सही कसर भी पूरी हो गई।

इस प्रकार पाँच साल गुजर गए।

एक दिन काशी से राजा विशालसिंह का तार आया। लिखा था—'मनोरमा बहुत बीमार है। तुरन्त आइए। बचने की कम आशा है।' चक्रधर के हाथ से कागज छूट कर गिर पड़ा। अहिल्या सँभाल न लेती, तो शायद वह खुद भी गिर पड़ते। ऐसा मालूम हुआ, मानो मस्तक पर किसी ने लाठी मार दी हो। आँखों के सामने तितलियाँ-सी उड़ने लगीं। एक क्षण के बाद सँभलकर बोले—मेरे कपड़े बकस में रख दो, मैं इसी गाड़ी से जाऊँगा।

अहिल्या—यह हो क्या गया है? अभी तो लालाजी ने लिखा था कि वहाँ सब कुशल है।

चक्रधर—क्या कहा जाए? कुछ नहीं, यह सब गृहकलह का फल है। मनोरमा ने राजा साहब से विवाह करके बड़ी भूल की। सौतों ने तानों से छेद-छेदकर उसकी जान ले ली। राजा साहब उस पर जान देते थे। यही सारे उपद्रव की जड़ है। अहिल्या वह स्त्री नहीं, देवी है।

अहिल्या—हम लोगों के यहाँ चले आने से शायद नाराज हो गईं। इतने दिनों में केवल मुन्नू के जन्मोत्सव पर एक पत्र लिखा था।

चक्रधर—हाँ, उनकी यही इच्छा थी कि हम सब उनके साथ रहें।

अहिल्या—कहो तो मैं भी चलूँ? देखने को जी चाहता है। उनका शील और स्नेह कभी न भूलेगा।

चक्रधर—योगेन्द्र बाबू को साथ लेते चलें। इनसे अच्छा तो यहाँ

डॉक्टर नहीं।

अहिल्या—अच्छा तो होगा। डॉक्टर साहब से तुम्हारी दोस्ती है, खूब दिल लगा कर दवा करेंगे।

चक्रधर—मगर तुम मेरे साथ लौट न सकोगी, यह समझ लो। मनोरमा तुम्हें इतनी जल्द न आने देगी।

अहिल्या—वह अच्छी तो हो जाएं। लौटने की बात पीछे देखी जाएगी। तो तुम जाकर डॉक्टर साहब को तैयार करो। मैं यहाँ सब सामान तैयार कर रही हूँ।

दस बजते-बजते ये लोग यहाँ से डाक पर चले। अहिल्या खिड़की से पावस का मनोहर दृश्य देखती थी, चक्रधर व्यग्र हो होकर घड़ी देखते थे कि पहुँचने में कितनी देर है और मुन्नू खिड़की से बाहर कूद पड़ने के लिए जोर लगा रहा था।

30

चक्रधर जगदीशपुर पहुँचे, तो रात के आठ बज गए थे। राजभवन के द्वार पर हजारों आदमियों की भीड़ थी। अन्न-दान दिया जा रहा था और कँगले एक पर एक टूटे पड़ते थे। सिपाही धक्के पर धक्के देते थे, पर कँगलों का रेला कम न होता था। शायद वे समझते थे कि कहीं हमारी बारी आने से पहले ही सारा अन्न समाप्त न हो जाए, अन्न कम हो जाने पर थोड़ा-थोड़ा देकर ही न टरका दें। मुंशी वज्रधर बार-बार चिल्ला रहे थे—क्यों एक दूसरे पर गिरे पड़ते हो? सबको मिलेगा, कोई खाली न जाएगा, सैकड़ों बोरे भरे हुए हैं। लेकिन उनके आश्वासन का कोई असर न दिखाई देता था। छोटी-सी बस्ती में इतने आदमी भी मुश्किल से होंगे! इतने कंगाल न जाने कहाँ से फट पड़े थे।

सहसा मोटर की आवाज सुनकर सामने देखा, तो भीड़ को हटाकर दौड़े और चक्रधर को गले लगा लिया। पिता पुत्र दोनों रो रहे थे, पिता में पुत्र-स्नेह था, पुत्र में पितृ-भक्ति थी; किसी के दिल में जरा भी मैल न था, फिर भी वे आज पाँच साल के बाद मिल रहे हैं। कितना घोर अनर्थ है।

अहिल्या पति के पीछे खड़ी थी। मुन्नू उसकी गोद में बैठा बड़े कुतूहल से दोनों आदमियों का रोना देख रहा था। उसने समझा, इन दोनों में मार-पीट हुई है, शायद दोनों ने एक दूसरे का गला पकड़ कर दबाया है, तभी तो यों रो रहे हैं। बाबूजी का गला दुख रहा होगा। यह सोचकर उसने भी रोना शुरू किया। मुंशीजी उसे रोते देखकर प्रेम से बढ़े कि उसको गोद में लेकर प्यार करूँ, तो बालक ने मुँह फेर लिया। जिसने अभी-अभी बाबूजी को मारकर रुलाया है, वह क्या मुझे न मारेगा? कैसा विकराल रूप है? अवश्य मारेगा।

अभी दोनों आदमियों में कोई बात न होने पाई थी कि राजा साहब दौड़ते हुए भीतर से आते दिखाई दिए। सूरत से नैराश्य और चिन्ता झलक रही थी।

शरीर भी दुर्बल था। आते ही आते उन्होंने चक्रधर को गले लगाकर पूछा—मेरा तार कब मिल गया था?

चक्रधर—कोई आठ बजे मिला होगा। पढ़ते ही मेरे होश उड़ गए। रानीजी की क्या हालत है?

राजा—वह तो अपनी आँखों देखोगे, मैं क्या कहूँ। अब भगवान् ही का भरोसा है। अहा! यह शंखधर महाशय हैं।

यह कहकर उन्होंने बालक को गोद में ले लिया और स्नेहपूर्ण नेत्रों से देखकर बोले—मेरी सुखदा बिलकुल ऐसी ही थी। ऐसा जान पड़ता है, यह उसका छोटा भाई है। उसकी सूरत अभी तक मेरी आँखों में है। मुख से बिलकुल ऐसी ही थी।

अंदर जाकर चक्रधर ने मनोरमा को देखा। वह मोटे गद्दों में ऐसी समा गई कि मालूम होता था कि पलंग खाली है, केवल चादर पड़ी है। चक्रधर की आहट पाकर उसने मुँह चादर से बाहर निकाला। दीपक के क्षीण प्रकाश में किसी दुर्बल की आह असहाय नेत्रों से आकाश की ओर ताक रही थी।

राजा साहब ने आहिस्ता से कहा—नोरा, तुम्हारे बाबूजी आ गए!

मनोरमा ने तकिए का सहारा लेकर कहा—मेरे धन्य भाग! आइए बाबूजी, आपके दर्शन भी हो गए। तार न जाता, तो आप क्यों आते?

चक्रधर—मुझे तो बिलकुल खबर ही न थी। तार पहुँचने पर हाल मालूम हुआ।

मनोरमा—खैर, आपने बड़ी कृपा की। मुझे तो आपके आने की आशा ही न थी।

राजा—बार-बार कहती थी कि वह न आएँगे, उन्हें इतनी फुरसत कहाँ; पर मेरा मन कहता था, आप यह समाचार पाकर रुक ही नहीं सकते। शहर के सब चिकित्सकों को दिखा चुका। किसी से कुछ न हो सका। अब तो ईश्वर ही का भरोसा है।

चक्रधर—मैं भी एक डाक्टर को साथ लाया हूँ। बहुत ही होशियार आदमी है।

मनोरमा—(बालक को देखकर) अच्छा! अहिल्या देवी भी आयी हैं? जरा यहाँ तो लाना, अहिल्या! इसे छाती से लगा लूँ।

राजा—इसकी सूरत सुखदा से बहुत मिलती है, नोरा! बिलकुल उसका छोटा भाई मालूम होता!

'सुखदा' का नाम सुनकर अहिल्या पहले भी चौंकी थी। अब की वही शब्द सुन कर फिर चौंकी! बाल-स्मृति किसी भूले हुए स्वप्न की भाँति चेतना क्षेत्र में आ गई। उसने घूँघट की आड़ से राजा साहब की ओर देखा। उसे अपनी स्मृति पर ऐसा ही आकार लिखा हुआ मालूम पड़ा।

बालक को स्पर्श करते ही मनोरमा के जर्जर शरीर में ।

मानो किसी ने बुझते हुए दीपक की बत्ती उकसा दी हो ! बालक को छाती से लगाए हुए उसे अपूर्व आनन्द मिल रहा था, मानो बरसों के तृषित कंठ को शीतल जल मिल गया हो, और उसकी प्यास न बुझती हो। वह बालक को लिये हुए बैठी और बोली—अहिल्या, मैं अब यह लाल तुम्हें न दूंगी। यह मेरा है। तुमने इतने दिनों तक मेरी सुधि न ली, यह उसी की सजा है।

राजा साहब ने मनोरमा को सँभालकर कहा—लेट जाओ। लेट जाओ। देह में हवा लग रही है। क्या करती हो ?

किन्तु मनोरमा बालक को लिये हुए कमरे के बाहर निकल गई। राजा साहब भी उसके पीछे-पीछे दौड़े कि कहीं वह गिर न पड़े। कमरे में केवल चक्रधर और अहिल्या रह गए। अहिल्या धीरे से बोली—मुझे अब याद आ रहा है कि मेरा भी नाम सुखदा था। जब मैं बहुत छोटी थी, तो मुझे लोग सुखदा कहते थे।

चक्रधर ने बेपरवाही से कहा—हाँ, यह कोई नया नाम नहीं।

अहिल्या—मेरे बाबूजी की सूरत राजा साहब से बहुत मिलती है।

चक्रधर ने उसी लापरवाही से कहा—हाँ, बहुत से आदमियों की सूरत मिलती है।

अहिल्या—नहीं, बिलकुल ऐसे ही थे।

चक्रधर—हो सकता है। बीस वर्ष की सूरत अच्छी तरह ध्यान में भी तो नहीं रहती।

अहिल्या—जरा तुम राजा साहब से पूछो तो कि आपकी सुखदा कब खोयी थी ?

चक्रधर ने झुंझलाकर कहा—चुपचाप बैठो, तुम इतनी भाग्यवान् नहीं हो। राजा साहब की सुखदा कहीं खोयी नहीं, मर गई होगी।

राजा साहब इसी वक्त बालक को गोद में लिये मनोरमा के साथ कमरे में आये। चक्रधर के अंतिम शब्द उनके कान में पड़ गए। बोले—नहीं बाबूजी, मेरी सुखदा मरी नहीं, त्रिवेणी के मेले में खो गई थी। आज बीस साल हुए, जब मैं पत्नी के साथ त्रिवेणी स्नान करने प्रयाग गया था, वहीं सुखदा खो गई थी। उसकी उम्र कोई चार साल की रही होगी। बहुत ढूंढ़ा, पर कुछ पता न चला। उसकी माता उसके वियोग में स्वर्ग सिधारी। मैं भी बरसों तक पागल बना रहा। अन्त में सब्र करके बैठ रहा।

अहिल्या ने सामने आकर निस्संकोच भाव से कहा—मैं भी तो त्रिवेणी के स्नान में खो गई थी। आगरा की सेवा समितिवालों ने मुझे कहीं रोते पाया, और मुझे आगरे ले गये। बाबू यशोदानन्दन ने मेरा पालन-पोषण किया।

राजा—तुम्हारी क्या उम्र होगी बेटी ?

अहिल्या—चौबीसवाँ लगा है।

राजा—तुम्हें अपने घर की कुछ याद है ? तुम्हारे द्वार पर किस चीज का पेड़ था ?

अहिल्या—शायद बरगद का पेड़ था। मुझे याद आता है कि मैं उसके गोदे चुनकर खाया करती थी।

राजा—अच्छा, तुम्हारी माता कैसी थी ? कुछ याद आता है ?

अहिल्या—हाँ, याद क्यों नहीं आता ! उनका साँवला रंग था, दुबली-पतली, लेकिन बहुत लम्बी थी। दिन भर पान खाती रहती थी।

राजा—घर में कौन-कौन लोग थे ?

अहिल्या—मेरी एक बुढ़िया दादी थी, जो मुझे गोद में लेकर कहानी सुनाया करती थी। एक बूढ़ा नौकर था, जिसके कंधे पर रोज सवार हुआ करती थी। द्वार पर एक बड़ा सा घोड़ा बँधा रहता था। मेरे द्वार पर एक कुआँ था और पिछवाड़े एक बुढ़िया चमारिन का मकान था।

राजा ने सजल नेत्र होकर कहा—बस बस, बेटी, आ तुझे छाती से लगा लूँ। तू ही मेरी सुखदा है। मैं बालक को देखते ही ताड़ गया था। मेरी सुखदा मिल गई ! मेरी सुखदा मिल गई।

चक्रधर—अभी शोर न कीजिए। सम्भव है आपको भ्रम हो रहा हो।

राजा—जरा भी नहीं, जौ भर नहीं; मेरी सुखदा यही है। इसने जितनी बातें बतायीं, सभी ठीक हैं। मुझे लेश मात्र भी संदेह नहीं। आह ! आज तेरी माता होती तो उसे कितना आनन्द होता ! क्या लीला है भगवान् की ! मेरी सुखदा घर बैठी मेरी गोद में आ गई। जरा सी गयी थी, बड़ी सी आयी। अरे ! मेरा शोक-सन्ताप हरने को एक नन्हा मुन्ना बालक भी लायी। आओ, भैया चक्रधर, तुम्हें छाती से लगा लूँ। अब तक तुम मेरे मित्र थे, अब मेरे पुत्र हो। याद है, मैंने तुम्हें जेल भिजवाया था ? नोरा, ईश्वर की लीला देखी ? सुखदा घर में थी, और मैं उसके नाम को रो बैठा था। अब मेरी अभिलाषा पूरी हो गई। जिस बात की आशा तक मिट गई थी, वह आज पूरी हो गई।

चक्रधर विमन भाव से खड़े थे, मनोरमा अंगों फूली न समाती थी। अहिल्या अभी तक खड़ी रो रही थी। सहसा रोहिणी कमरे के द्वार से जाती हुई दिखाई दी। राजा साहब उसे देखते ही बाहर निकल आये और बोले—कहाँ जाती हो, रोहिणी ? मेरी सुखदा मिल गई। आओ, देखो, यह उसका लड़का है।

रोहिणी वहीं ठिठक गई और सन्देहात्मक भाव से बोली - क्या स्वर्ग से लौट आयी है, क्या ?

राजा—नहीं नहीं, आगरे में थी। देखो, यह उसका लड़का है। मेरी सूरत इसमें कितनी मिलती है ! आओ, सुखदा को देखो। मेरी सुखदा खड़ी है।

रोहिणी ने वहीं खड़े-खड़े उत्तर दिया—यह आपकी सुखदा नहीं, रानी मनोरमा की माया मूर्ति है, जिसके हाथों में आप कठपुतली को ... रहे हैं।

राजा ने विस्मित होकर कहा—क्या यह मेरी सुखदा नहीं है ? कैसी बात कहती हो ? मैंने खूब परीक्षा करके देख लिया है।

रोहिणी—ऐसे मदारी के खेल बहुत देख चुकी हूँ। मदारी भी आपको ऐसी बातें बता देता है, जो आपको आश्चर्य में डाल देती है। यह सब माया लीला है।

राजा—क्यों व्यर्थ किसी पर आक्षेप करती हो, रोहिणी ? मनोरमा को भी तो वे बातें नहीं मालूम हैं, जो सुखदा ने मुझसे बता दीं। भला, किसी गैर की लड़की को मनोरमा क्यों मेरी लड़की बनाएगी ? इसमें उसका क्या स्वार्थ हो सकता है।

रोहिणी—यह हमारी जड़ खोदना चाहती है। क्या आप इतना भी नहीं समझते ? चक्रधर को राजा बनाकर वह आपको कोने में बैठा देगी। यही बालक, जो आपकी गोद में है, एक दिन आपका शत्रु होगा। यह सब सधी हुई बातें हैं। जिसे आप मिट्टी की गऊ समझते हैं, वह आप जैसों को बाजार में बेच सकती है। किसकी बुद्धि इतनी ऊँची उड़ेगी !

राजा ने व्यग्र होकर कहा—अच्छा, अब चुप रहो, रोहिणी ; मुझे मालूम हो गया कि तुम्हारे हृदय में मेरे अमंगल के सिवा और किसी भाव के लिए स्थान नहीं है ; आज न जाने किसके पुण्य-प्रताप से ईश्वर ने मुझे यह शुभ दिन दिखाया है, और तुम मुँह से ऐसे कुवचन निकाल रही हो, ईश्वर ने मुझे वह सब कुछ दे दिया, जिसकी मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। यह बाल-रत्न मेरी गोद में खेलेगा, इसकी किसे आशा थी ; और ऐसे शुभ अवसर पर तुम यह विष उगल रही हो। मनोरमा के पैर की धूल की बराबरी भी तुम नहीं कर सकतीं। जाओ, मुझे तुम्हारा मुख देखते हुए रोमांच होता है। तुम स्त्री के रूप में पिशाचिनी हो।

यह कहते हुए राजा साहब उसी आवेश में दीवानखाने में जा पहुँचे। द्वार पर अभी तक कंगालों की भीड़ लगी हुई थी। दो-चार अमले अभी तक बैठे दफ्तर में काम कर रहे थे। राजा साहब ने बालक को कन्धे पर बिठाकर उच्च स्वर से कहा—मित्रो ; यह देखो; ईश्वर की असीम कृपा से मेरा नवासा घर बैठे मेरे पास आ गया। तुम लोग जानते हो कि बीस साल हुए, मेरी पुत्री सुखदा त्रिवेणी के स्नान में खो गई थी ? वही सुखदा आज मुझे मिल गई है और यह बालक उसी का पुत्र है। आज से तुम लोग इसे अपना युवराज समझो। मेरे बाद यही मेरी रियासत का स्वामी होगा। गारद से कह दो, अपने युवराज को सलामी दे, नौबतखाने में कह दो, नौबत बजे। आज के सातवें दिन राजकुमार का अभिषेक होगा। अभी से उसकी तैयारी शुरू करो।

यह हुक्म देकर राजा साहब बालक को गोद में लिये ठाकुरद्वारे में जा पहुँचे। वहाँ इस समय ठाकुरजी के भोग की तैयारियाँ हो रही थीं। साधु-सन्तों की मंडली जमा थी। एक पंडित कोई कथा कह रहे थे, लेकिन श्रोताओं के कान उसी घंटी की ओर लगे थे, जो ठाकुरजी की पूजा की सूचना देगी और जिसके बाद तर माल के

दर्शन होंगे। सहसा राजा साहब ने आकर ठाकुरजी के सामने बालक को बैठा दिया और खुद साष्टांग दंडवत करने लगे। इतनी श्रद्धा से उन्होंने अपने जीवन में कभी ईश्वर की प्रार्थना न की थी। आज उन्हें ईश्वर से साक्षात्कार हुआ। उस अनुराग में उन्हें समस्त संसार आनन्द से नाचता हुआ मालूम हुआ। ठाकुरजी स्वयं अपने सिंहासन से उतरकर बालक को गोद में लिये हुए हैं। आज उनकी चिरसंचित कामना पूरी हुई और इस तरह पूरी हुई, जिसकी उन्हें कभी आशा भी न थी। यह ईश्वर की दया नहीं तो और क्या है।

पुत्र रत्न के सामने संसार की सम्पदा क्या चीज है? अगर पुत्र रत्न न हो, तो संसार की सम्पदा का मूल्य ही क्या है, जीवन की सार्थकता ही क्या है, कर्म का उद्देश्य ही क्या है? अपने लिए कौन दुनिया में मनसूबे बाँधता है? अपना जीवन तो मनसूबों में ही व्यतीत हो जाता है, यहाँ तक कि जब मनसूबे पूरे होने के दिन आते हैं, तो हमारी संसार यात्रा समाप्त हो चुकी होती है। पुत्र ही आकांक्षाओं का स्रोत, चिन्ताओं का आगार, प्रेम का बन्धन और जीवन का सर्वस्व है। वही पुत्र आज विशालसिंह को मिल गया था। उसे देख-देखकर उनकी आँखें आनन्द से उमड़ आती थीं, हृदय पुलकित हो रहा था। इधर अबोध बालक को छाती से लगाकर उन्हें अपना बल शतगुण होता हुआ ज्ञात होता था। अब उनके लिए संसार ही स्वर्ग था।

पुजारी ने कहा—भगवान् राजकुँवर को चिरंजीवी करें!

राजा ने अपनी हीरे की अँगूठी उसे दे दी। एक बाबाजी को इसी आशीर्वाद के लिए सौ बीघे जमीन मिल गई।

ठाकुरद्वारे से जब वह घर आये, तो देखा कि मनोरमा आसन पर बैठे भोजन कर रहे हैं, और मनोरमा सामने खड़ी खाना परस रही है। उसके मुख-मंडल पर हार्दिक उल्लास की कांति झलक रही थी। कोई यह अनुमान ही न कर सकता था कि यह वही मनोरमा है; जो अभी दस मिनट पहले मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई थी।

31

यौवन काल जीवन का स्वर्ग है। बाल्य काल में यदि हम कल्पनाओं के राग गाते हैं, तो यौवन काल में हम उन्हीं कल्पनाओं का प्रत्यक्ष स्वरूप देखते हैं, और वृद्धावस्था में उसी स्वरूप का स्वप्न। कल्पना पंगु होती है, स्वप्न मिथ्या, जीवन का सार केवल प्रत्यक्ष में है। हमारी दैहिक और मानसिक शक्ति का विकास यौवन है। यदि समस्त संसार की सम्पदा एक ओर रख दी जाए, और यौवन दूसरी ओर, तो ऐसा कौन प्राणी है, जो उस विपुल धनराशि की ओर उठाकर भी

। वास्तव में यौवन ही जीवन का स्वर्ग है, और रानी देवप्रिया की सी सौभाग्य-
और कौन होगी, जिसके लिए यौवन के द्वार फिर से खुल गए थे ?

संध्या का समय था। देवप्रिया एक पर्वत की गुफा में एक शिला पर अचेत
ी हुई थी। महेन्द्र उसके मुख की ओर आशापूर्ण नेत्रों से देख रहे थे। उनका
ीर बहुत दुर्बल हो गया है, मुख पीला पड़ गया है और आँखें भीतर घुस गई हैं,
से कोई यक्ष्मा का रोगी हो। यहाँ तक कि उन्हें साँस लेने में भी कष्ट होता है।
ीवन का कोई चिह्न है, तो उनके नेत्रों में आशा की झलक है। आज उनकी
पस्या का अंतिम दिन है, आज देवप्रिया का पुनर्जन्म होगा, सूखा हुआ वृक्ष नव
ल्लवों से लहराएगा, आज फिर उसके यौवन सरोवर में लहरें उठेंगी ! आकाश
में कुसुम खिलेंगे। वह बार-बार उसके चेतनाशून्य हृदय पर हाथ रखकर देखते हैं
कि रक्त का संचार होने में कितनी देर है, और जीवन का कोई लक्षण न देखकर
व्यग्र हो उठते हैं। इन्हें भय हो रहा है, मेरी तपस्या निष्फल तो न हो जायगी।

एकाएक महेन्द्र चौंककर उठ खड़े हुए। आत्मोल्लास से मुख चमक उठा।
देवप्रिया की हृत्तन्त्रियों में जीवन के कोमल संगीत का कम्पन हो रहा था। जैसा
वीणा के अस्फुट स्वरों में शनैः शनैः गान का स्वरूप प्रस्फुटित होता है, जैसे मेघ
मंडल से शनैः शनैः इन्दु की उज्ज्वल छवि प्रकट होती हुई दिखाई देती है, उसी
भाँति देवप्रिया के श्रीहीन, संज्ञाहीन, प्राणहीन मुखमंडल पर जीवन का स्वरूप
अंकित होने लगा। एक क्षण में उसके नीले अधरों पर लालिमा छा गई, आँखें
खुल गईं, मुख पर जीवन श्री का विकास हो गया। उसने एक अँगड़ाई ली और
विस्मित नेत्रों से इधर-उधर देखकर शिला-शैया से उठ बैठी ! कौन कह सकता
था कि वह महानिद्रा की गोद से निकलकर आयी है ? उसका मुखचन्द्र अपनी
सोलहों कलाओं से आलोकित हो रहा था। वह वही देवप्रिया थी, जो आशा और
भय से काँपता हुआ हृदय लिए आज से चालीस वर्ष पहले पतिगृह में आयी थी।
वही यौवन का माधुर्य था, वही नेत्रों को मुग्ध करने वाली छवि थी, वही सुधामय
मुस्कान, वही सुकोमल गात ! उसे अपने पोर-पोर में नए जीवन का अनुभव हो
रहा था; लेकिन कायाकल्प हो जाने पर भी उसे अपने पूर्व जीवन की सारी बातें
याद थीं। वैधव्य काल की विलासिता भीषण रूप धारण करके उसके सामने खड़ी
थी। एक क्षण तक लज्जा और ग्लानि के कारण वह कुछ बोल न सकी। अपने
पति की इस प्रेममय तपस्या के सामने उसका विलासमय जीवन कितना घृणित,
कितना लज्जास्पद था !

महेन्द्र ने मुसकराकर कहा—प्रिये, आज मेरा जीवन सफल हो गया। अभी
एक क्षण पहले तुम्हारी दशा देखकर मैं अपने दुस्साहस पर पछता रहा था।

देवप्रिया ने महेन्द्र को प्रेममुग्ध नेत्रों से देखकर कहा—प्राणनाथ, तुमने
मेरे साथ जो उपकार किया है, उसका धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द ही
नहीं हैं।

देवप्रिया की प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी के चरणों पर सिर रख दूं और कहूँ कि तुमने मेरा उद्धार कर दिया; मुझे वह अलभ्य वस्तु प्रदान कर दी, जो आज तक किसी ने न पायी थी, जो सर्वदा से मानव कल्पना का स्वर्ण स्वप्न रही है; पर संकोच ने जबान बन्द कर दी।

महेन्द्र—सच कहना, तुम्हें विश्वास था कि मैं तुम्हारा कायाकल्प कर सकूंगा?

देवप्रिया—प्रियतम, यह तुम क्यों पूछते हो? मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास न होता, तो आती ही क्यों?

देवप्रिया को अपनी मुख छवि देखने की बड़ी तीव्र इच्छा हो रही थी। एक शीशे के टुकड़े के लिए इस समय वह क्या कुछ न दे डालती?

सहसा महेन्द्र फिर बोले—तुम्हें मालूम है, इस क्रिया में कितने लगे?

देवप्रिया—मैं क्या जानूं कि कितने दिन लगे?

महेन्द्र—पूरे तीन साल।

देवप्रिया—तीन साल! तीन साल से तुम मेरे लिए यह तपस्या कर रहे हो?

महेन्द्र—तीन क्या, अगर तीस साल भी यह तपस्या करनी पड़ती, तो भी मैं न घबराता।

देवप्रिया ने सकुचाते हुए पूछा—ऐसा तो न होगा कि कुछ ही दिनों में यह 'चार दिन की चटक चांदनी फिर अँधेरा पाख' हो जाए?

महेन्द्र—नहीं प्रिये, इसकी कोई शंका नहीं।

देवप्रिया—और हम इस वक्त हैं कहां?

महेन्द्र—एक पर्वत की गुफा में। मैंने अपने राज्याधिकार मंत्री को सौंप दिए और तुम्हें लेकर यहां चला आया। राज्य की चिन्ताओं में पड़कर मैं यह सिद्धि कभी न प्राप्त कर सकता था। तुम्हारे लिए मैं ऐसे-ऐसे कई राज्य त्याग सकता था।

देवप्रिया को अब ऐसी वस्तु मिल गई थी, जिसके सामने राज्य वैभव की कोई हस्ती न थी। वन्य जीवन की कल्पना उसे अत्यन्त सुखद जान पड़ी। प्रेम का आनन्द भोगने के लिए, स्वामी के प्रति अपनी भक्ति दिखाने के लिए यहां जितने मौके थे, उतने राजभवन में कहां मिल सकते थे? उसे विलास की लेश मात्र भी आकांक्षा न थी, वह पतिप्रेम का आनंद उठाना चाहती थी। प्रसन्न होकर बोली—यह तो मेरे मन की बात हुई।

महेन्द्र ने चकित होकर पूछा—मुझे खुश करने के लिए यह बात कह रही हो या दिल से? मुझे तो इस विषय में बड़ी शंका थी।

देवप्रिया—नहीं प्राणनाथ, दिल से कह रही हूं। मेरे [illegible] जहां तुम हो, वहीं सब कुछ है।

महेन्द्र ने मुसकराकर कहा—अभी तुमने इस जीवन के कष्टों का विचार नहीं किया। ज्येष्ठ वैशाख की लू और लपट, शीतकाल की हड्डियों में चुभनेवाली हवा और वर्षा की मूसलाधार वृष्टि की कल्पना तुमने नहीं की। मुझे भय है, शायद तुम्हारा कोमल शरीर उन कष्टों को न सह सकेगा।

देवप्रिया ने निश्शंक भाव से कहा—तुम्हारे साथ मैं सब कुछ आनन्द से सह सकती हूँ।

उसी वक्त देवप्रिया ने गुफा से बाहर निकलकर देखा, तो चारों ओर अंधकार छाया हुआ था; लेकिन एक ही क्षण में उसे वहाँ की सब चीजें दिखाई देने लगीं। अंधकार छाया हुआ था; पर उसकी आँखें उसमें प्रवेश कर गई थीं। सामने ऊँची पहाड़ियों की श्रेणियाँ अप्सराओं के विशाल भवनों की सी मालूम होती थीं। दाहिनी ओर वृक्षों के समूह साधुओं की कुटियों के समान दीख पड़ते थे और बायीं ओर एक रत्नजटित नदी किसी चंचल पनिहारिन की भाँति मीठे राग गाती, इठलाती चली जाती थी। फिर उसे गुफा से नीचे उतरने का मार्ग साफ-साफ दिखाई देने लगा। अंधकार वही था; पर उसमें कितना प्रकाश आ गया था!

उसी क्षण देवप्रिया के मन में एक विचित्र शंका उत्पन्न हुई—मेरा यह निकृष्ट जीवन कहीं फिर तो सर्वनाश न कर देगा?

32

राजा विशालसिंह ने इधर कई साल से राजकाज छोड़ सा रखा था! मुंशी वज्रधर और दीवान साहब की चढ़ बनी थी। गुरुसेवकसिंह भी अपने रागरंग में मस्त थे। सेवा और प्रेम का आवरण उतारकर अब वह पक्के विलायती हो गए थे। प्रजा के सुख दुःख की चिन्ता अगर किसी को थी, तो वह मनोरमा थी। राजा साहब के सत्य और न्याय का उत्साह ठंडा पड़ गया। मनोरमा को पाकर उन्हें किसी चीज की सुधि न थी। उन्हें एक क्षण के लिए भी मनोरमा से अलग होना असह्य था। जैसे कोई दरिद्र प्राणी कहीं से विपुल धन पा जाए और रात-दिन उसी चिन्ता में पड़ा रहे, वह दशा राजा साहब की थी। मनोरमा उनका जीवन धन थी। उनकी दृष्टि में मनोरमा फूल की पंखड़ी से भी कोमल थी, उसे कुछ हो ना जाए, यही भय उन्हें बना रहता था। अन्य रानियों की अब वह खुशामद करते रहते थे, जिसमें वे मनोरमा को कुछ कह न बैठें। मनोरमा को बात कितनी लगती है, इसका अनुभव उन्हें हो चुका था। रोहिणी के एक व्यंग्य ने उसे काशी छोड़कर इस गाँव में ला बिठाया था। वैसा दूसरा व्यंग्य उसके प्राण ले सकता था। इसलिए रानियों को खुश रखना चाहते थे, विशेषकर रोहिणी

को, हालाँकि वह मनोरमा को जलाने का कोई अवसर हाथ से न जाने देती थी।

लेकिन इस बालक ने आकर राजा साहब के जीवन में एक नवीन उत्साह का संचार कर दिया। अब तक उनके जीवन का कोई लक्ष्य न था। मन में प्रश्न होता था, किसके लिए करूँ? कौन रोनेवाला बैठा हुआ है? प्रतिमा ही न थी, तो मन्दिर की रचना कैसे होती? अब वह प्रतिमा आ गई थी, जीवन का लक्ष्य मिल गया था। वह राज-काज से क्यों विरत रहते? मुंशीजी अब तक तो दीवान साहब से मिलकर अपना स्वार्थ साधते रहते थे, पर अब वह कब किसी को गिनने लगे थे। ऐसा मालूम होता था कि अब वही राजा हैं। दीवान साहब अगर मनोरमा के पिता थे, तो मुंशीजी राजकुमार के दादा थे। फिर दोनों में कौन दबता? कर्मचारियों पर कभी ऐसी फटकारें न पड़ी थीं। मुंशीजी को देखते ही बेचारे थर-थर काँपने लगते थे। भाग्य किसी का चमके, तो ऐसे चमके! कहाँ पेंशन के पचीस रुपयों पर गुजर-बसर होती थी, कहाँ अब रियासत के मालिक थे। राजा साहब भी उनका अदब करते थे। अगर कोई अमला उनके हुक्म की तामील करने में देर करता, जामे से बाहर हो जाते। बात पीछे करते, निकालने की धमकी पहले देते— यहाँ तुम्हारे हथकंडे एक न चलेंगे, याद रखना। जो तुम आज कह रहे हो, वह सब किए बैठा हूँ। एक-एक को निगल जाऊँगा। अब वह मुंशीजी नहीं हैं, जिनकी बात इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा दिया करते थे। अब मुंशीजी रियासत के मालिक हैं।

इसमें भला किसको आपत्ति करने का साहस हो सकता था? हाँ, सुननेवालों को ये बातें जरूर बुरी मालूम होती थीं। चक्रधर के कानों में कभी ये बातें पड़ जातीं, तो वह जमीन में गड़-से जाते थे। मारे लज्जा के उनकी गर्दन झुक जाती थी। वह आजकल मुंशीजी से बहुत कम बोलते थे। अपने घर भी केवल एक बार गये थे। वहाँ माता की बातें सुनकर उनका फिर जाने की इच्छा न होती थी। मित्रों से मिलना-जुलना उन्होंने बहुत कम कर दिया था, हालाँकि अब उनकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। वास्तव में यहाँ का जीवन उनके लिए असह्य हो गया था। वह फिर अपनी शान्ति-कुटीर को लौट जाना चाहते थे। यहाँ आये दिन कोई-न-कोई बात हो ही जाती थी, जो दिन-भर उनके चित्त को व्यग्र रखने को काफी होती थी। कहीं कर्मचारियों में जूती-पैजार होती थी, कहीं गरीब असामियों पर डाँट-फटकार, कहीं रनिवास में रगड़-झगड़ होती थी, तो कहीं इलाके में दंगा-फिसाद। उन्हें स्वयं कभी-कभी कर्मचारियों की तम्बीह करनी पड़ती, कई बार उन्हें विवश होकर नौकरों को मारना भी पड़ा था। सबसे कठिन समस्या यही थी कि यहाँ उनके पुराने सिद्धान्त भंग होते चले जाते थे। वह बहुत चेष्टा करते थे कि मुँह से अशिष्ट शब्द न निकले, पर प्रायः नित्य ही ऐसे अवसर आ पड़ते कि उन्हें विवश होकर दंडनीति का आश्रय लेना ही पड़ता था।

लेकिन अहिल्या इस जीवन का चरम सुख भोग कर रही थी। बहुत दिनों तक दुःख झेलने के बाद उसे यह सुख मिला था और वह उनमें मग्न थी। अपने पुराने दिन उसे बहुत जल्द भूल गए थे और उनकी याद दिलाने में उसे दुःख होता था। उसका रहन-सहन बिलकुल बदल गया था। वह अच्छी-खासी अमीरजादी बन गई थी। सारे दिन आमोद-प्रमोद के सिवा उसे दूसरा काम न था। पति के दिल पर क्या गुजर रही है, यह सोचने का कष्ट क्यों उठाती? जब वह खुश थी, तब उसके स्वामी भी अवश्य खुश होंगे। राज्य पाकर कौन रोता है? उसकी मुख छवि अब पूर्ण चन्द्र की भाँति तेजोमय हो गई थी। उसकी सरलता, वह नम्रता, वह कर्मशीलता गायब हो गई थी। चतुर गृहिणी अब एक सगर्वा, यौवन वाली कामिनी थी जिसकी आँखों से मद छलका पड़ता था। चक्रधर ने जब उसे पहली बार देखा था, तब वह एक मुर्झाती हुई कली थी और मनोरमा एक खिला हुआ प्रभात की स्वर्णमयी किरणों से विहसित फूल। अब मनोरमा अहिल्या हो गई थी और अहिल्या मनोरमा। अहिल्या पहर दिन चढ़े अँगड़ाइयाँ लेती हुई शयनागार से निकलती। मनोरमा पहर रात ही से घर या राज्य का कोई न कोई काम करने लगतीं। शंखधर अब मनोरमा ही के पास रहता था, वही उसका लालन-पालन करती थी। अहिल्या केवल कभी-कभी उसे गोद में लेकर प्यार कर लेती, मानो किसी दूसरे का बालक हो। बालक भी अब उसकी गोद में आते हुए कता। मनोरमा ही अब उसकी माता थी। मनोरमा की जान अब उसमें थी और उसकी मनोरमा में। कभी-कभी एकांत में मनोरमा बालक को गोद में लिये घंटों मुँह छिपाकर रोती। उसके अन्तस्तल में अहर्निश एक शूल-सा होता रहता था, हृदय में नित्य एक अग्निशिखा प्रज्वलित रहती थी और जब किसी कारण से वेदना और जलन बढ़ जाती, तो उसके मुख से एक आह और आँखों से आँसू की चार बूँदें निकल पड़ती थीं। बालक भी उसे देखकर रोने लगता। तब मनोरमा आँसुओं को पी जाती और हँसने की चेष्टा करके बालक को छाती से लगा लेती। उसकी तेजस्विता गहन चिंता और गम्भीर विचार में रूपांतरित हो गई थी। वह अहिल्या से दबती थी। पर अहिल्या उससे खिंची-सी रहती। कदाचित् वह मनोरमा के अधिकारों को छीनना चाहती थी, उसके प्रबन्ध में दोष निकालती रहती। पर रानी मनोरमा अपने अधिकारों से जी जान से चिमटी हुई थी, उनका अल्पांश भी न त्यागना चाहती थी, बल्कि दिनों दिन उन्हें बढ़ाती जाती थी। यही उसके जीवन का आधार था।

अब चक्रधर अहिल्या से अपने मन की बातें कभी न कहते थे। यह संपदा उनका सर्वनाश किए डालती थी। क्या अहिल्या यह सुख विलास छोड़कर मेरे साथ चलने पर राजी होगी? उन्हें शंका होती थी कि कहीं वह इस प्रस्ताव को हँसी में न उड़ा दे, या मुझे रुकने के लिए मजबूर न करे। अगर वह दृढ़ भाव से एक बार कह देगी कि तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते, तो वह कैसे जाएँगे?

उन्हें इसका क्या अधिकार है कि उसे अपने साथ विपत्ति झेलने के लिए कहें ? उन्होंने कहा, और वह अगर धर्मसंकट में पड़कर उनके साथ चलने पर तैयार भी हो गई, तो मनोरमा शंखधर को कब छोड़ेगी ? क्या शंखधर को छोड़कर अहिल्या उनके साथ जाएगी ? जाकर प्रसन्न रहेगी ? अगर बालक को मनोरमा ने दे भी दिया तो क्या वह इस वियोग की वेदना सह सकेगी ? इसी प्रकार के कितने ही प्रश्न चक्रधर के मन में उठते रहते थे और वह किसी भाँति अपने कर्तव्य का निश्चय न कर सकते थे, केवल एक बात निश्चित थी—वह इन बन्धनों में पड़कर अपना जीवन नष्ट न करना चाहते थे, सम्पत्ति पर अपने सिद्धान्तों को भेंट न कर सकते थे।

एक दिन चक्रधर बैठे कुछ पढ़ रहे थे कि मुंशीजी ने आकर कहा—बेटा, जरा एक बार रियासत का दौरा क्यों नहीं कर आते ? आखिर दिन भर पड़े ही रहते हो ? मेरी समझ में नहीं आता, तुम किस रंग के आदमी हो। बेचारे राजा साहब अकेले कहाँ देखेंगे और क्या-क्या देखेंगे ? रहा मैं, सो किसी मसरफ का नहीं। मुझसे किसी दावत या बारात या मजलिस का प्रबन्ध करने के सिवा और क्या हो सकता है ? गाँव-गाँव दौड़ना अब मुझसे नहीं हो सकता। अब तो ईश्वर की दया से रियासत अपनी है। तुम्हीं इतनी लापरवाही करोगे, तो कैसे काम चलेगा ? हाथी, घोड़े, मोटरें सब कुछ मौजूद हैं। कभी-कभी इधर-उधर चक्कर लगा आया करो। इसी तरह धाक बैठेगी, घर में बैठे-बैठे तुम्हें कौन जानता है ?

चक्रधर ने उदासीन भाव से कहा—मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मैं तो यहाँ से जाने को तैयार बैठा हुआ हूँ।

मुंशीजी चक्रधर का मुँह ताकने लगे। बात इतनी अभूत-पूर्व थी कि उनकी समझ ही में न आयी। पूछा—क्यों अब भी वही सनक सवार है ?

चक्रधर—आप उसे सनक—पागलपन—जो चाहें समझें; पर मुझे तो उसमें जितना आनन्द आता है, उतना इस हरबोंग में नहीं आता। आपको तो मेरी यही सलाह है, आराम से घर बैठकर भगवान् का भजन कीजिए। मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, आपकी मदद करता रहूँगा।

मुंशी—बेटा, मुझे मालूम होता है तुम अपने होश में नहीं हो। बिस्वे-बिस्वे के लिए तो खून की नदियाँ बह जाती हैं और तुम इतनी बड़ी रियासत पाकर ऐसी बातें करते हो ! तुम्हें क्या हो गया है ? बेटा, इन बातों में कुछ नहीं रखा है। अब तुम समझदार हुए, इन पुरानी बातों को दिल से निकाल डालो। भगवान् ने तुम्हारे ऊपर कृपादृष्टि फेरी है। उसको धन्यवाद दो और राज्य का इंतजाम अपने हाथ में लो। तुम्हें करना ही क्या है, करनेवाले तो कर्मचारी हैं। बस, जरा डाँट-फटकार करते रहो; नहीं तो कर्मचारी लोग शेर हो जाएँगे, तो फिर काबू में न आएँगे।

चक्रधर को अब मालूम हुआ कि मैं शान्त बैठने भी न पाऊँगा। आज लाला-

हकर वह घर में जाने लगा।
र को ऐसा क्रोध आया कि उसका हाथ पकड़कर घसीट लूं और ठोकर
ले चलूं; मगर उन्होंने जब्त करके कहा—मैं सीधे से कहता हूं, तो तुम
धाइयाँ बताते हो। अभी कोई चपरासी आकर दो घुड़कियाँ जमा देता,
गाँव भेड़ की भाँति उसके पीछे चला जाता।
सान वहीं खड़ा हो गया और बोला—सिपाही क्यों घुड़कियाँ जमाएगा,
र हैं? हमारी खुशी, नहीं जाते। आपको जो करना हो, कर लीजिएगा।
क्रधर से जब्त न हो सका। छड़ी हाथ में थी ही, वह बाज की तरह किसान
पड़े और एक धक्का देकर कहा—चलता है या जमाऊं दो-चार हाथ? तुम
के आदमी बात से क्यों मानने लगे!
चक्रधर कसरती आदमी थे। किसान धक्का खाकर गिर पड़ा। यों वह भी
रा आदमी था। उलझ पड़ता, तो चक्रधर आसानी से उसे न गिरा सकते; पर
रोब में आ गया। सोचा, कोई हाकिम हैं, नहीं तो उसकी हिम्मत न पड़ती कि
उठाए। संभलकर उठने लगा। चक्रधर ने समझा, शायद यह उठकर मुझ
वार करेगा। लपककर फिर एक धक्का दिया। सहसा सामने वाले घर में से
आदमी लालटेन लिए बाहर निकल आया और चक्रधर को देखकर बोला—
रे भगतजी, तुमने यह भेष कब से धारण किया? मुझे पहचानते हो? हम भी
म्हारे साथ जेहल में थे।
चक्रधर उसे तुरंत पहचान गए। यह उनका जेल का साथी धन्नासिंह था।
क्रधर का सारा क्रोध हवा हो गया। लजाते हुए बोले—क्या तुम्हारा घर इसी
गाँव में है, धन्ना?
धन्नासिंह—हां साहब, यह आदमी, जिसे आप ठोकरें मार रहे हैं, मेरा सग
भाई है। खा रहा था। खाना छोड़कर जब तक उठूं, तब तक तो तुम गरमा हो
गए। तुम्हारा मिजाज इतना कड़ा कब से हो गया? जेहल में तो तुम दया और
धरम के देवता बने हुए थे। क्या दिखावा ही दिखावा था? निकला तो कुछ और
ही सोचकर, मगर तुम अपने पुराने साथी निकले। कहां तो दारोगा को बचाने के
लिए अपनी छाती पर संगीन रोक ली थी, कहाँ आज जरा सी बात पर इतने तेज
पड़ गए।
चक्रधर पर घड़ों पानी पड़ गया। मुंह से बात न निकली। वह अपनी सफाई
में एक शब्द भी न बोल सके। उनके जीवन की सारी कमाई, जो उन्होंने न जाने
कौन कौन से कष्ट सहकर बटोरी थी, यहाँ लुट गई। उनके मन की सारी सद्-
वृत्तियाँ आहत होकर तड़पने लगीं। एक ओर उनकी न्याय बुद्धि मंदित होकर
किसी अनाथ बालक की भाँति दामन से मुंह छिपाए रो रही थी, दूसरी ओर लज्जा
किसी पिशाचिनी की भाँति उन पर आग्नेय बाणों का प्रहार कर रही थी।
धन्नासिंह ने अपने भाई का हाथ पकड़कर बैठाना चाहा, तो वह जोर से

'हाय ! हाय !' करके चिल्ला उठा। दूसरी ओर गिरते समय उसका दाहिना हाथ उखड़ गया था। धन्नासिंह ने समझा, उसका हाथ टूट गया है। चक्रधर के प्रति उसकी रही सही भक्ति भी गायब हो गई। उनकी ओर आरक्त नेत्रों से देखकर बोला—सरकार आपने तो इसका हाथ ही तोड़ दिया। (ओंठ चबाकर) क्या कहूँ, अपने द्वार पर आए हो और कुछ पुरानी बातों का खयाल है, नहीं तो इस समय क्रोध तो ऐसा आ रहा है कि इसी तरह तुम्हारे हाथ भी तोड़ दूँ। यह तुम इतने कैसे बदल गए ! अगर आँखों से न देखता होता, तो मुझे कभी विश्वास न आता। जरूर तुम्हें कोई ओहदा या जायदाद मिल गई, मगर यह न समझो कि हम अनाथ हैं। अभी जाकर महाराज के द्वार पर फरियाद करूँ, तो तुम खड़े-खड़े बँध जाओ ! बाबू चक्रधरसिंह का नाम तो तुमने सुना ही होगा ? अब किसी सरकारी आदमी की मजाल नहीं कि बेगार ले सके, तुम बेचारे किस गिनती में हो ? ओहदा पाकर अपने दिन न भूल जाना चाहिए। तुम्हें मैंने अपना गुरु और देवता समझा था। तुम्हारे ही उपदेश से मेरी पुरानी आदतें छूट गईं। गाँजा और चरस तभी से छोड़ दिया, जुए के नगीच नहीं जाता। जिस लाठी से सैकड़ों सिर फोड़ डाले होंगे, अब वह टूटी हुई पड़ी है। मुझे तो तुमने यह उपदेश दिया और आप लगे गरीबों को कुचलने। मन्नासिंह ने इतना ही न कहा था कि रात को यहीं ठहर जाओ, सवेरे हम चलकर तुम्हारी मोटर पहुँचा देंगे। इसमें क्या बुराई थी ? अगर मैं उसकी जगह होता, तो कह देता कि तुम्हारा गुलाम नहीं हूँ, जसे चाहो अपनी मोटर ले जाओ, मुझे मतलब नहीं। मगर उसने तो तुम्हारे साथ भलमनसी की और तुम उसे मारने लगे। अब बताओ, इसके हाथ की क्या दवा की जाए ? सच है, पद पाकर सबको मद हो जाता है।

चक्रधर ने ग्लानि वेदना से व्यथित स्वर में कहा—धन्नासिंह, मैं बहुत लज्जित हूँ, मुझे क्षमा करो। जो दंड चाहो दो; सिर झुकाए हुए हूँ, जरा भी सिर न हटाऊँगा, एक शब्द भी मुँह से न निकालूँगा।

यह कहते-कहते उनका गला फँस गया। धन्नासिंह भी गद्गद हो गया। बोला —अरे भगतजी, ऐसी बातें न कहो। तुम मेरे गुरु हो, तुम्हें मैं अपना देवता समझता हूँ। क्रोध में आदमी के मुँह से दो-चार कड़ी बातें निकल ही जाती हैं, उनका खयाल न करो। भैया, भाई का नाता बड़ा गहरा होता है। भाई चाहे अपना शत्रु हो; लेकिन कौन आदमी है, जो भाई को मार खाते देखकर क्रोध को रोक सके ? मुझे अपना वैसा ही दास समझो, जैसे जेहल में समझते थे। तुम्हारी मोटर कहाँ है ? चलो, मैं उसे उठाए देता हूँ; या हुक्म हो तो गाड़ी जोत लूँ ?

चक्रधर ने रोककर कहा—जब तक इसका हाथ अच्छा न हो जाएगा, मैं कहीं न जाऊँगा, धन्नासिंह ! हाँ, कोई आदमी ऐसा मिले, जो जा सके, तो उसे मेरी एक चिट्ठी दे दो।

धन्नासिंह—जगदीशपुर में तुम्हारा कौन है, भैया ? क्या रियासत में नौकर हो गए हो ?

चक्रधर—नौकर नहीं हूँ, मैं मुंशी वज्रधर का लड़का हूँ।

धन्नासिंह ने विस्मित होकर कहा—सरकार ही बाबू चक्रधरसिंह हैं। धन्य भाग थे कि सरकार के आज दर्शन हुए।

यह कहते हुए वह दौड़कर घर में गया और एक चारपाई लाकर द्वार पर डाल दी। फिर लपककर गाँव में खबर दे आया। एक क्षण में गाँव से सब आदमी आकर चक्रधर को नजरें देने लगे। चारों ओर हलचल-सी मच गई। सब-के-सब उनके यश गाने लगे। जब से सरकार आए हैं, हमारे दिन फिर गए हैं, आपका शील स्वभाव जैसा सुनते थे, वैसा ही पाया। आप साक्षात् भगवान् हैं।

धन्नासिंह ने कहा—मैंने तो पहचाना ही नहीं। क्रोध में न जाने क्या-क्या बक गया।

दूसरा ठाकुर बोला—सरकार अपने को खोल देते, तो हम मोटर को कंधों पर लादकर ले चलते। हुजूर के लिए जान हाजिर है। मन्नासिंह ! मरद आदमी, हाथ झटक कर उठ खड़े हो, तुम्हारे तो भाग्य खुल गए।

मन्नासिंह ने कराहकर मुस्कराते हुए कहा—सरकार देखने में तो दुबले-पतले हैं; पर आपके हाथ-पाँव लोहे के हैं। मैंने सरकार से भिड़ना चाहा; पर आपने एक ही अड़ंगे में मुझे दे पटका।

धन्नासिंह—अरे पागल, भाग्यवानों के हाथ-पाँव में ताकत नहीं होती, अकबाल में ताकत होती है। उससे देवता तक काँपते हैं।

चक्रधर को इन ठकुरसुहाती बातों में जरा भी आनन्द न आता था। उन्हें उन पर दया आ रही थी। वह प्राणी, जिसे उन्होंने अपने कोप का लक्ष्य बनाया था, उनके शौर्य और शक्ति की प्रशंसा कर रहा था। अपमान को निगल जाना चरित्र-पतन की अंतिम सीमा है और यही खुशामद सुनकर हम लट्टू हो जाते हैं। जिस वस्तु से घृणा होनी चाहिए, उस पर हम फूले नहीं समाते। चक्रधर को अब आश्चर्य हो रहा था कि मुझे इतना क्रोध आया कैसे ? साल भर पहले कदाचित् वह मन्नासिंह के पास आकर सहायता के लिए मिन्नत-समाजत करते; अगर रात भर रहना भी पड़ता, तो रह जाते; इसमें उनको हानि ही क्या थी। शायद उन्हें देहातियों के साथ एक रात काटने का अवसर पाकर खुशी होती। आज उन्हें अनुभव हुआ कि रियासत की बू कितनी गुप्त और अलक्षित रूप से उनमें समाती जाती है। कितने गुप्त और अलक्षित रूप से उनकी मनुष्यता, चरित्र और सिद्धान्त का ह्रास हो रहा है।

सहसा सड़क की ओर प्रकाश दिखाई दिया। जरा देर में दो मोटरें सड़क पर धीरे-धीरे जाती हुई दिखाई दीं, जैसे किसी को खोज रही हों। एकाएक दोनों उसी स्थान पर पहुँचकर रुक गईं, जहाँ चक्रधर की मोटर टूटी पड़ी थी। फिर कई

आदमी मोटर से उतरते दिखाई दिए। चक्रधर समझ गए कि मेरी तलाश हो रही है। तुरन्त उठ खड़े हुए। उनके साथ गाँव के लोग भी चले। समीप आकर देखा, तो सड़क की तरफ से लोग इसी गाँव की तरफ चले आ रहे थे। उनके पास बिजली की बत्तियाँ थीं। समीप आने पर मालूम हुआ कि रानी मनोरमा पाँच सशस्त्र सिपाहियों के साथ चली आ रही हैं। चक्रधर उसे देखते ही लपककर आगे बढ़ गए। रानी उन्हें देखते ही ठिठक गई और घबराई हुई आवाज में बोली—बाबूजी, आपको चोट तो नहीं आई? मोटर टूटी देखी, तो जैसे मेरे प्राण ही सन्न हो गए। अब मैं आपको अकेले कभी न घूमने दिया करूँगी।

सर मढ़ी ? जिस यौवन को पाकर उसने एक दिन अपने को संसार में सबसे समझा था, उसी यौवन से अब उसका जी जलता था। वह रूपविहीन होकर मी के चरणों में आश्रय पा सकती, तो इस अनुपम सौंदर्य को बासी हार की ति उतारकर फेंक देती; पर कौन इसका विश्वास दिलाएगा ?

एक दिन देवप्रिया ने महेन्द्र से कहा—तुमने मेरी काया तो बदल दी; पर रा मन क्यों न बदल दिया ?

महेन्द्र ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया—जब तक पूर्व संस्कारों का प्रायश्चित न हो जाए, मन की भावनाएँ नहीं बदल सकतीं।

इन शब्दों का आशय जो कुछ हो; पर देवप्रिया ने यह समझा कि यह मुझसे केवल मेरे पूर्व संस्कारों के कारण घृणा करते हैं। उसका पीड़ित हृदय इस अन्याय से विकल हो उठा। आह ! यह इतने कठोर हैं ! इनमें क्षमा का नाम तक नहीं; तो क्या इन्होंने मुझे उन संस्कारों का दंड देने के लिए मेरा कायाकल्प किया ? प्रलोभनों में घिरी हुई अबला के प्रति इन्हें जरा भी सहानुभूति नहीं ! वह वाक्य शर के समान उसके हृदय में चुभने लगा। पति में वह श्रद्धा न रही। जीवन से विरक्त हो गई। पतिप्रेम का सुख भोगने के लिए ही उसने अपना राज-त्याग किया था; पूर्व संस्कारों का दंड भोगने के लिए नहीं। उसने समझा था, स्वामी मुझ पर दया करके मेरा उद्धार करने ले जा रहे हैं। उनके हाथों यह दंड सहना उसे स्वीकार न था। अपने पूर्व जीवन पर लज्जा थी, पश्चात्ताप था, पर पति के मुख से यह व्यंग्य न सुनना चाहती थी। वह संसार की सारी विपत्ति सह सकती थी, केवल पतिप्रेम से वंचित रहना उसे असह्य था। उसने सोचना शुरू किया, क्यों न चली जाऊँ ? पति से दूर हटकर कदाचित् वह शान्त रह सकती थी। दुखती हुई आँखों की अपेक्षा फूटी आँखें ही अच्छी; पर इस वियोग की कल्पना ही से उसका मन भयभीत हो जाता था।

आखिर उसने यहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया। रात का समय था। महेन्द्र गुफा के बाहर एक शिला पर पड़े हुए थे। देवप्रिया आकर बोली—आप सो रहे हैं क्या ?

महेन्द्र उठकर बैठ गए और बोले—नहीं, सो नहीं रहा हूँ, मैं एक ऐसे यं[illegible] की कल्पना कर रहा हूँ, जिससे मनुष्य अपनी इंद्रियों का दमन कर सके। संय[illegible] साधन और विराग पर मुझे अब विश्वास नहीं रहा।

देवप्रिया—ईश्वर आपकी कल्पना सफल करें। मैं आपसे यह कहने आ[illegible] कि जब आप मुझे त्याज्य समझते हैं, तो क्यों हर्षपुर या कहीं और नहीं [illegible] देते ?

महेन्द्र ने पीड़ित होकर कहा—मैं तुम्हें त्याज्य नहीं समझ रहा हूँ। [illegible] तुम मेरी चिरसंगिनी हो और सदा रहोगी। अनन्त में दस-बीस या सौ-पचीस[illegible] का वियोग 'नहीं' के बराबर है। तुम अपने को उतना नहीं जानतीं, जित[illegible]

जानता हूँ। मेरी दृष्टि में तुम पवित्र, निर्दोष और धवल के समान उज्ज्वल हो। इस विश्व-प्रेम के साम्राज्य में त्याज्य कोई वस्तु नहीं है, न कि तुम, जिसने मेरे जीवन को सार्थक बनाया है। मैं तुम्हारी प्रेम-शक्ति का विलास मात्र हूँ।

देवप्रिया ये प्रेम से भरे हुए शब्द सुनकर गद्गद हो गई। उसका सारा संताप, सारा क्रोध, सारी वेदना इस भाँति शान्त हो गई, जैसे पानी पड़ते ही धूल बैठ जाती है। वह उसी शिला पर बैठ गई और महेन्द्र के गले में बाहें डालकर बोली —फिर आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? मुझसे क्यों भागे-भागे फिरते हैं? मुझे इतने दिन यहाँ रहते हो गए, आपने कभी मेरी ओर प्रेम की दृष्टि से देखा भी नहीं। आप जानते हैं, पति-प्रेम नारी जीवन का आधार है। इससे वंचित होकर अबला निराधार हो जाती है।

महेन्द्र ने करुण स्वर से कहा—प्रिये, बहुत अच्छा होता यदि तुम मुझसे यह प्रश्न न करतीं। मैं जो कुछ कहूँगा, उससे तुम्हारा चित्त और भी दुखी होगा। मेरे अंदर की आग बाहर नहीं निकलती, इससे यह न समझो कि उसमें ज्वाला नहीं है। आह! उस अनन्त प्रेम की स्मृतियाँ अभी हरी हैं, जिनका आनन्द उठाने का सौभाग्य बहुत थोड़े ही दिनों के लिए प्राप्त हुआ था। उसी सुख की लालसा मुझे तुम्हारे द्वार का भिक्षुक बनाकर ले गई थी। उसी लालसा ने मुझसे ऐसी कठिन तपस्याएँ कराईं, जहाँ प्रतिक्षण प्राणों का भय था। क्या जानता था कि कौशलमय विधि मेरी साधनाओं का उपहास कर रहा है। जिस वक्त मैं तुम्हारी ओर लालसापूर्ण नेत्रों से ताकता हूँ, तो मेरी आँखें जलने लगती हैं, जब तुम्हें प्रातःकाल अंचल में फूल भरे उषा की भाँति स्वर्ण छटा की वर्षा करते आते देखता हूँ, तो मेरे मन में अनुराग का जो भीषण विप्लव होने लगता है, उसकी तुम कभी कल्पना भी नहीं कर सकतीं; लेकिन तुम्हारे समीप जाते ही मेरे समस्त शरीर में ऐसी जलन होने लगती है, मानो अग्निकुंड में घुसा जा रहा हूँ। तुम्हें याद है, एक दिन मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया था। मुझे ऐसा जान पड़ा कि जलते तवे पर हाथ पड़ गया। इसका क्या कारण है? विधि क्यों हमारे प्रेम मिलन में बाधक हो रहा है, यह मैं नहीं जानता; पर ऐसा अनुमान करता हूँ कि यह मेरी लालसा का दंड है।

नारी-बुद्धि तीक्ष्ण होती है। महेन्द्र की समझ में जो बात न आई थी, वह देवप्रिया समझ गई। उस दिन से वह तपस्विनी बन गई। पति के साए से भी भागती। अगर वह उसके कमरे में आ जाते, तो उनकी ओर आँखें उठाकर भी न देखती; पर वह इस दशा में प्रसन्न थी। रमणी का हृदय सेवा के सूक्ष्म परमाणुओं से बना होता है। उसका प्रेम भी सेवा है, उसका अधिकार भी सेवा है, यहाँ तक कि उसका क्रोध भी सेवा है। विडम्बना तो यह थी कि यहाँ सेवा क्षेत्र में भी वह स्वाधीन न थी। उसके लिए सेवा की सीमा वहीं तक थी,

आरम्भ होता है। उसकी सेवा में पत्नी भाव का अल्पांश भी न

चेष्टा वह करती रहती थी। अगर विधि को उसके सौभाग्य से आपत्ति है; अगर वह इस अपराध के लिए उसके पति को दंड देना चाहता है, तो देवप्रिया यह साक्षी देने को तैयार थी कि उसने पति प्रेम का उतना ही आनंद उठाया है, जितना एक विधवा भी उठा सकती है।

एक दिन महेन्द्र ने आकर कहा—प्रिये, चलो; आज तुम्हें आकाश की सैर करा लाऊं। मेरा हवाई जहाज तैयार हो गया है।

महेन्द्र ने सात वर्ष के अनवरत परिश्रम से यह वायुयान बनाया था। इसमें विशेषता यह थी कि तूफान और मेह में भी स्थिर रूप से चला जाता था, मानो नैसर्गिक शक्तियों पर विजय का डंका बजा रहा हो। उसमें जरा भी शोर न होता था। गति घंटे में एक हजार मील की थी। इस पर बैठकर वह पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देख सकते थे, दूर से दूर देशों के विद्वानों के भाषण और गानेवालों के गीत सुन सकते थे, उस पर बैठते ही मानसिक शक्तियाँ दिव्य और नेत्रों की ज्योति सहस्र गुणी हो जाती थी। यह एक अद्‌भुत यंत्र था। महेन्द्र ने अब तक कभी देवप्रिया से उस पर बैठने का अनुरोध न किया था। उनके मुंह से उसके गुण सुनकर उसका जी तो चाहता था कि उसमें एक बार बैठूं, इसकी बड़ी तीव्र उत्कंठा होती थी; पर वह संवरण कर जाती थी। आज यह प्रस्ताव करने पर भी उसने अपनी उत्सुकता को दबाते हुए कहा—आप जाइए, आकाश की सैर कीजिए, मैं अपनी कुटिया में ही मगन हूं।

महेन्द्र—मानव बुद्धि ने अब तक जितने आविष्कार किए हैं, उनका पूर्ण विकास देख लोगी।

देवप्रिया—आप जाइए, मैं नहीं जाती।

महेन्द्र—मैं तो आज तुम्हें जबरदस्ती ले चलूंगा।

यह कहकर उन्होंने देवप्रिया का हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींचा। देवप्रिया का चित्त डांवाडोल हो गया। जैसे नटखट बालक के बुलाने पर कुत्ता डरता डरता जाता है कि मालूम नहीं, भोजन मिलेगा या डंडे, उसी भांति देवप्रिया भी महेन्द्र के साथ चली गई।

गुफा के बाहर स्वर्ण की वर्षा हो रही थी। आकाश, पर्वत और उन पर विहार करनेवाले पक्षी और पशु सोने में रंगे थे। विश्व स्वर्णमय हो रहा था। शांति का साम्राज्य छाया हुआ था। पृथ्वी विश्राम करने जा रही थी।

यान एक पल में दोनों आरोहियों को लेकर अनंत आकाश में विचरने लगा। वह सीधा चंद्रमा की ओर चला जाता था, ऊपर-ऊपर और भी ऊपर, यहां तक कि चंद्रमा का दिव्य प्रकाश देखकर देवप्रिया भयभीत हो गई।

सहसा देवप्रिया संगीत की मधुर ध्वनि सुनकर चौंक पड़ी और बोली—यहां कौन गा रहा है ?

महेन्द्र मुसकराकर कहा—हमारे स्वामीजी ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं। मैं

अभी उनसे बातें करता हूँ। सुनो—स्वामीजी, क्या हो रहा है?

'बच्चा, भगवान की स्तुति कर रहा हूँ। अच्छा, तुम्हारे साथ तो देवप्रियाजी भी हैं। उन्हें जापानी सिनेमा की सैर नहीं कराई?'

सहसा देवप्रिया को एक जापानी नौका डूबती हुई दिखाई दी। एक क्षण में एक जापानी युवक कगार पर से समुद्र में कूद पड़ा और लहरों को चीरता हुआ नौका की ओर चला।

देवप्रिया ने काँपते हुए कहा—कहीं यह बेचारा भी न डूब जाए!

महेन्द्र ने कहा—यह किसी प्रेम-कथा का अन्तिम दृश्य है।

यान और भी ऊपर उड़ता चला जाता था, पृथ्वी पर से जो तारे टिमटिमाते हुए ही नजर आते थे, अब चंद्रमा की भाँति ज्योतिर्मय हो गए थे और चंद्रमा अपने आकार से दस गुना बड़ा दिखाई देता था। विश्व पर अखंड शांति छाई हुई थी। केवल देवप्रिया का हृदय धड़क रहा था। वह किसी अज्ञात शंका से विकल हो रही थी। जापानी सिनेमा का अन्तिम दृश्य उसकी आँखों में नाच रहा था।

तब महेन्द्र ने वीणा उठा ली और देवप्रिया से बोले—प्रिये, तुम्हारा मधुर गान सुने बहुत दिन बीत गए। याद है, तुमने पहले जो गीत गाया था, वही गीत आज फिर गाओ। देखो, तारागण तान लगाए बैठे हैं।

देवप्रिया स्वामी की बात न टाल सकी। उसे ऐसा भासित हुआ कि वह स्वामी का अन्तिम आदेश है, मैं इन कानों से स्वामी की बातें फिर न सुनूँगी। उसने काँपते हुए हाथों में वीणा ले ली और काँपते हुए स्वरों में गाने लगी—

'पिया मिलन है कठिन बावरी!'

प्रेम, करुणा और नैराश्य में डूबी हुई यह ध्वनि सुनते ही महेन्द्र की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। आह! वियोग-व्यथा से पीड़ित यह हृदय स्वर उनके अंतस्तल पर शर जैसी चोटें करने लगा। बार-बार हृदय थामकर रह जाते थे। सहसा उनका मन एक अत्यंत प्रबल आवेग से आंदोलित हो उठा। लालसा विह्वल मन ने कहा—यह संयम कब तक? इस जीवन का भरोसा ही क्या? जाने कब इसका अन्त हो जाए और ये चिरसंचित अभिलाषाएँ भी धूल में मिल जाएँ। अब जो होना है, सो हो!

अनंत शांति का साम्राज्य था, यान प्रतिक्षण और ऊपर चढ़ता जाता था। महेन्द्र ने देवप्रिया का कोमल हाथ पकड़कर कहा—प्रिये, अनन्त वियोग से तो अनन्त विश्राम ही अच्छा!

वीणा देवप्रिया के हाथ से छूटकर गिर पड़ी। उसने देखा, महेन्द्र के काम-प्रदीप्त अधर उसके मुख के पास आ गए हैं और उनके दोनों हाथ उससे आलिंगित होने के लिए खुले हुए हैं। देवप्रिया एक क्षण, केवल एक क्षण के लिए सब कुछ भूल गई। उसके दोनों हाथ महेन्द्र के गले में जा पड़े।

एकाएक धमाके की आवाज हुई। देवप्रिया चौंक पड़ी। उसे मालू

चेष्टा वह करती रहती थी। अगर विधि को उसके सौभाग्य से आपत्ति है; अगर वह इस अपराध के लिए उसके पति को दंड देना चाहता है, तो देवप्रिया यह साक्षी देने को तैयार थी कि उसने पति प्रेम का उतना ही आनंद उठाया है, जितना एक विधवा भी उठा सकती है।

एक दिन महेन्द्र ने आकर कहा—प्रिये, चलो; आज तुम्हें आकाश की सैर करा लाऊँ। मेरा हवाई जहाज तैयार हो गया है।

महेन्द्र ने सात वर्ष के अनवरत परिश्रम से यह वायुयान बनाया था। इसमें विशेषता यह थी कि तूफान और मेह में भी स्थिर रूप से चला जाता था, मानो नैसर्गिक शक्तियों पर विजय का डंका बजा रहा हो। उसमें जरा भी शोर न होता था। गति घंटे में एक हजार मील की थी। इस पर बैठकर वह पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देख सकते थे, दूर से दूर देशों के विद्वानों के भाषण और गानेवालों के गीत सुन सकते थे, उस पर बैठते ही मानसिक शक्तियाँ दिव्य और नेत्रों की ज्योति सहस्र गुणी हो जाती थी। यह एक अद्भुत यंत्र था। महेन्द्र ने अब तक कभी देवप्रिया से उस पर बैठने का अनुरोध न किया था। उनके मुँह से उसके गुण सुनकर उसका जी तो चाहता था कि उसमें एक बार बैठूं, इसकी बड़ी तीव्र उत्कंठा होती थी; पर वह संवरण कर जाती थी। आज यह प्रस्ताव करने पर भी उसने अपनी उत्सुकता को दबाते हुए कहा—आप जाइए, आकाश की सैर कीजिए, मैं अपनी कुटिया में ही मगन हूँ।

महेन्द्र—मानव बुद्धि ने अब तक जितने आविष्कार किए हैं, उनका पूर्ण विकास देख लोगी।

देवप्रिया—आप जाइए, मैं नहीं जाती।

महेन्द्र—मैं तो आज तुम्हें जबरदस्ती ले चलूंगा।

यह कहकर उन्होंने देवप्रिया का हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींचा। देवप्रिया का चित्त डांवाडोल हो गया। जैसे नटखट बालक के बुलाने पर कुत्ता डरता डरता जाता है कि मालूम नहीं, भोजन मिलेगा या डंडे, उसी भांति देवप्रिया भी महेन्द्र के साथ चली गई।

गुफा के बाहर स्वर्ण की वर्षा हो रही थी। आकाश, पर्वत और उन पर विहार करनेवाले पक्षी और पशु सोने में रँगे थे। विश्व स्वर्णमय हो रहा था। शांति का साम्राज्य छाया हुआ था। पृथ्वी विश्राम करने जा रही थी।

यान एक पल में दोनों आरोहियों को लेकर अनंत आकाश में विचरने लगा। वह सीधा चंद्रमा की ओर चला जाता था, ऊपर-ऊपर और भी ऊपर, यहाँ तक कि चंद्रमा का दिव्य प्रकाश देखकर देवप्रिया भयभीत हो गई।

सहसा देवप्रिया संगीत की मधुर ध्वनि सुनकर चौंक पड़ी और बोली—यहाँ कौन गा रहा है?

महेन्द्र मुसकराकर कहा—हमारे स्वामीजी ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं। मैं

अभी उनसे बातें करता हूँ। सुनो—स्वामीजी, क्या हो रहा है?

'बच्चा, भगवान की स्तुति कर रहा हूँ। अच्छा, तुम्हारे साथ तो देवप्रिया भी है। उन्हें जापानी सिनेमा की सैर नहीं कराई?'

सहसा देवप्रिया को एक जापानी नौका डूबती हुई दिखाई दी। एक क्षण एक जापानी युवक कगार पर से समुद्र में कूद पड़ा और लहरों को चीरता हुआ नौका की ओर चला।

देवप्रिया ने कांपते हुए कहा—कहीं यह बेचारा भी न डूब जाए!

महेन्द्र ने कहा—यह किसी प्रेम-कथा का अन्तिम दृश्य है।

यान और भी ऊपर उड़ता चला जाता था, पृथ्वी पर से जो तारे टिमटिमाते हुए ही नजर आते थे, अब चंद्रमा की भांति ज्योतिर्मय हो गए थे और चंद्रमा अपने आकार से दस गुना बड़ा दिखाई देता था। विश्व पर अखंड शांति छाई हुई थी। केवल देवप्रिया का हृदय धड़क रहा था। वह किसी अज्ञात शंका से विकल हो रही थी। जापानी सिनेमा का अन्तिम दृश्य उसकी आंखों में नाच रहा था।

तब महेन्द्र ने वीणा उठा ली और देवप्रिया से बोले—प्रिये, तुम्हारा मधुर गान सुने बहुत दिन बीत गए। याद है, तुमने पहले जो गीत गाया था, वही गीत आज फिर गाओ। देखो, तारागण तान लगाए बैठे हैं।

देवप्रिया स्वामी की बात न टाल सकी। उसे ऐसा भासित हुआ कि यह स्वामी का अन्तिम आदेश है, मैं इन कानों से स्वामी की बातें फिर न सुनूंगी। उसने कांपते हुए हाथों में वीणा ले ली और कांपते हुए स्वरों में गाने लगी—

'पिया मिलन है कठिन बावरी!'

प्रेम, करुणा और नैराश्य में डूबी हुई यह ध्वनि सुनते ही महेन्द्र की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। आह! वियोग-व्यथा से पीड़ित यह हृदय स्वर उनके अंतस्तल पर शर जैसी चोटें करने लगा। बार-बार हृदय थामकर रह जाते थे। सहसा उनका मन एक अत्यंत प्रबल आवेग से आंदोलित हो उठा। लालसा विह्वल मन ने कहा—यह संयम कब तक? इस जीवन का भरोसा ही क्या? जाने कब इसका अंत हो जाए और ये चिरसंचित अभिलाषाएं भी धूल में मिल जाएं। जो होना है, सो हो!

अनंत शांति का साम्राज्य था, यान प्रतिक्षण और ऊपर चढ़ता जाता था। महेन्द्र ने देवप्रिया का कोमल हाथ पकड़कर कहा—प्रिये, अनन्त वियोग से तो अनन्त विश्राम ही अच्छा!

वीणा देवप्रिया के हाथ से छूटकर गिर पड़ी। उसने देखा, महेन्द्र के काम-प्रदीप्त अधर उसके मुख के पास आ गए हैं और उनके दोनों हाथ उससे आलिंगित होने के लिए खुले हुए हैं। देवप्रिया एक क्षण, केवल एक क्षण के लिए सब कुछ भूल गई। उसके दोनों हाथ महेन्द्र के गले में जा पड़े।

एकाएक धमाके की आवाज हुई। देवप्रिया चौंक पड़ी।

यान बड़े वेग से नीचे जा रहा है। उसने अपने को महेन्द्र के कर-पाश से मुक्त कर लिया और घबराकर बोली—प्राणनाथ, यान नीचे चला जा रहा है।

महेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया।

देवप्रिया ने फिर कहा—ईश्वर के लिए इसे रोकिए। देखिए, कितने वेग से नीचे गिर रहा है।

महेन्द्र ने व्यथित कंठ से कहा—प्रिये ! अब इसे मैं नहीं रोक सकता। मेरे पैर कांप रहे हैं, मालूम होता है, जीवन का अंत हो रहा है। आह! आह ! प्रिये! मैं गिर रहा हूं।

देवप्रिया उन्हें सँभालने चली थी कि महेन्द्र गिर पड़े। उनके मुंह से केवल ये शब्द निकले—डरो मत, यान भूमि से टक्कर न खाएगा, तुम हर्षपुर जाकर राज्याधिकार अपने हाथ में लेना। मैं फिर आऊँगा, हम और तुम फिर मिलेंगे, अवश्य मिलेंगे, अतृप्त तृष्णा फिर मुझे तुम्हारे पास लाएगी, विधि का निर्दय हाथ भी उसमें बाधक नहीं हो सकता। इस प्रेम की स्मृति देवलोक में भी मुझे विकल करती रहेगी। आह ! इस अनन्त विश्राम की अपेक्षा अनन्त वियोग कितना सुखकर था !

देवप्रिया खड़ी रो रही थी और यान वेग से नीचे उतरता जाता था !

शंखधर अपना खोया हुआ घोड़ा ढूँढ रहा था—खोना—अम नईं•••

अहिल्या—देखो, मैं तुम्हारी अम्मा हूँ ना ?

शंखधर—तुम अम्मा नईं। अम्मा लानी है।

अहिल्या—क्या मैं रानी नहीं हूँ ?

शंखधर ने उसे कुतूहल से देखकर कहा—तुम लानी नईं। अम्मा लानी है।

अहिल्या ने चाहा कि बालक को पकड़ ले; पर वह 'तुम लानी नईं, तुम लानी नईं !' कहता हुआ कमरे से निकल गया। बात कुछ न थी; लेकिन अहिल्या ने कुछ और ही आशय समझा। यह भी उसकी समझ में मनोरमा की कूटनीति थी। वह उससे राज-माता का अधिकार भी छीनना चाहती है। वह बालक को पकड़ लाने के लिए उठी ही थी कि चक्रधर ने कमरे में कदम रखा। उन्हें देखते ही अहिल्या ठिठक गई और त्योरियाँ चढ़ाकर बोली—अब तो रात भर आपके दर्शन ही नहीं होते।

चक्रधर—कुछ तुम्हें खबर भी है। आध घण्टे तक जगाता रहा, जब तुम न जागीं, तो चला गया। यहाँ आकर तुम सोने में कुशल हो गईं !

अहिल्या—बातें बनाते हो। तुम रात को यहाँ थे ही नहीं। 12 बजे तक जागती रही। मालूम होता है, तुम्हें भी मेरे खर्राटे की सूझने लगी। अब मुझे यह एक और चिन्ता हुई।

चक्रधर—अब तक जितनी चिन्ताएँ हैं, उनमें तो तुम्हारी नींद का यह हाल है, यह चिन्ता और हुई, तो शायद तुम्हारी कभी आँख ही न खुले।

अहिल्या—क्या मैं सचमुच बहुत सोती हूँ ?

चक्रधर—अच्छा, अभी तुम्हें इसमें संदेह भी है ! घड़ी देखो ! आठ बज गए हैं। तुम पाँच बजे उठकर घर का धंधा करने लगती थीं।

अहिल्या—तब की बातें जाने दो। अब इतने सबेरे उठने की जरूरत क्या है ?

चक्रधर—तो क्या तुम उम्र-भर यहाँ मेहमानी खाओगी ?

अहिल्या ने विस्मित होकर कहा—इसका क्या मतलब ?

चक्रधर—इसका मतलब यही है कि हमें यहाँ आए हुए बहुत दिन गुजर गए। अब अपने घर चलना चाहिए।

अहिल्या—अपना घर कहाँ है ?

चक्रधर—अपना घर वहीं है, जहाँ अपने हाथों की कमाई है।

अहिल्या ने एक मिनट सोचकर कहा—लल्लू कहाँ रहेगा ?

चक्रधर—लल्लू को यहीं छोड़ सकती हो। वह रानी मनोरमा से खूब हिल गया है। तुम्हारी तो शायद उसे याद भी न आए।

अहिल्या—अच्छा, तो अब समझ में आया। इसीलिए रानीजी उससे प्रेम करती हैं। यह बात तुमने स्वयं सोची है, या रानीजी ने कुछ कहा है ?

चक्रधर—क्षमा, वह क्या कहेंगी ? मैं खुद यहाँ रहना नहीं चाहता।

याँ बहुत खा चुका। खाने में तो वह बहुत मीठी मालूम होती है; पर उनसे ट हो जाती है। औरों को हजम होती होंगी; पर मुझे तो नहीं पचतीं, यद तुम्हें भी नहीं पचतीं। इतने ही दिनों में हम दोनों कुछ के कुछ हो गए। छ दिन और रहा, तो कम-से-कम मैं तो कहीं का न रहूँगा। कल मैंने एक किसान को मारते-मारते अधमुआ कर दिया। उसका कसूर केवल यह था मेरे साथ आने पर राजी न होता था।

अहिल्या— यह कोई बात नहीं। गँवारों के उजड्डपन पर कभी-कभी क्रोध जाता है। मैं ही यहाँ दिन भर लौंड़ियों पर झल्लाती रहती हूँ; मगर मुझे भी यह खयाल ही नहीं आया कि घर छोड़कर भाग जाऊँ।

चक्रधर—तुम्हारा घर है, तुम रह सकती हो; लेकिन मैंने तो जाने का चय कर लिया है।

अहिल्या ने अभिमान से सिर उठाकर कहा—तुम न रहोगे, तो मुझे यहाँ कर क्या लेना है। मेरे राज-पाट तो तुम हो; जब तुम्हीं न रहोगे, तो अकेली -पड़ी मैं क्या करूँगी? जब चाहे, चलो! हाँ, पिताजी से पूछ तो। उनसे ना पूछे तो जाना उचित नहीं; मगर एक बात अवश्य कहूँगी। हम लोगों के ते ही यहाँ का सारा कारोबार चौपट हो जाएगा। रानी मनोरमा का हाल देख रहे हो। रुपये को ठीकरा समझती हैं। दादाजी उनसे कुछ कह नहीं सकते। ड़े दिनों में रियासत जेरबार हो जाएगी और एक दिन बेचारे लल्लू को ये सब पापड़ बेलने पड़ेंगे।

अहिल्या के मनोभाव इन शब्दों से साफ टपकते थे। कुछ पूछने की जरूरत न थी। चक्रधर समझ गए कि अगर मैं आग्रह करूँ, तो यह मेरे साथ जाने पर राजी हो जाएगी। जब ऐश्वर्य और पति-प्रेम, दो में से एक को लेने और दूसरे को त्याग करने की समस्या पड़ जाएगी, तो अहिल्या किस ओर झुकेगी, इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं था; लेकिन वह उसे इस कठोर धर्म-संकट में डालना उचित न समझते थे। आग्रह से विवश होकर वह उनके साथ चली गई तो क्या? जब उसे कोई कष्ट होगा, मन ही मन झुँझलाएगी और बात-बात पर कुढ़ेगी, तब लल्लू को यहाँ छोड़ना ही पड़ेगा। मनोरमा उसे एक क्षण भी नहीं छोड़ सकती। राजा साहब तो शायद उसके वियोग में प्राण ही त्याग दें। पुत्र को छोड़कर अहिल्या कभी जाने पर तैयार न होगी और गयी भी, तो बहुत जल्द लौट आएगी।

चक्रधर बड़ी देर तक इन्हीं विचारों में मग्न बैठे रहे। अहिल्या पति के साथ जाने पर सहमत तो हो गई थी; पर दिल में डर रही थी कि कहीं सचमुच न जाना पड़े। वह राजा साहब को पहले ही सचेत कर देना चाहती थी, जिसमें वह चक्रधर की नीति और धर्म की बातों में न आ जाएँ। उसे इसका पूरा विश्वास था कि चक्रधर राजा साहब से बिना पूछे कदापि न जाएँगे! वह क्या जानती थी कि जिन बातों से उसके दिल पर जरा भी असर नहीं होता, वही बातें चक्रधर के

दिल पर तीर की भाँति लगती हैं। चक्रधर ने अकेले, बिना किसी से कुछ कहे-सुने चले जाने का संकल्प किया। इसके सिवा उन्हें गला छुड़ाने का कोई उपाय ही न सूझता था।

इस वक्त वह उस मनहूस घड़ी को कोस रहे थे, जब मनोरमा की बीमारी की खबर पाकर अहिल्या के साथ वह यहाँ आये थे। वह अहिल्या को यहाँ लाये ही क्यों थे? अहिल्या ने आने के लिए आग्रह न किया था। उन्होंने खुद गलती की थी। उसी का यह भीषण परिणाम था कि आज उनको अपनी स्त्री और पुत्र दोनों से हाथ धोना पड़ता था। उन्होंने लाठी के सहारे से दीपक का काम लिया था; लेकिन हा दुर्भाग्य! आज वह लाठी भी उनके हाथ से छीनी जाती थी। पत्नी और पुत्र के वियोग की कल्पना ही से उनका जी घबराने लगा। कोई समय था, जब दाम्पत्य जीवन से उन्हें उलझन होती थी। मृदुल हास्य और तोतले शब्दों का आनन्द उठाने के बाद अब एकान्तवास असह्य प्रतीत होता था। कदाचित् अकेले घर में वह कदम ही न रख सकेंगे, कदाचित् वह उस निर्जन वन को देखकर रो पड़ेंगे!

मनोरमा इस वक्त शंखधर को लिए हुए बगीचे की ओर जाती हुई इधर से निकली। चक्रधर को देखकर वह एक क्षण के लिए ठिठक गई। शायद वह देखना चाहती थी कि अहिल्या है या नहीं। अहिल्या होती, तो वह यहाँ दम भर भी न ठहरती, अपनी राह चली जाती। अहिल्या को न पाकर वह कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई और बोली—बाबूजी, रात को सोए नहीं क्या? आँखें चढ़ी हुई हैं!

चक्रधर—नींद ही नहीं आयी। इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि रहूँ या जाऊँ? अन्त में यही निश्चय किया कि यहाँ और रहना अपना जीवन नष्ट करना है।

मनोरमा—क्यों लल्लू! यह कौन है?

शंखधर ने शरमाते हुए कहा—बाबूजी।

मनोरमा—इनके साथ जाएगा?

बालक ने आँचल से मुँह छिपाकर कहा—लानी अम्माँ छाय?

चक्रधर हँसकर बोले—मतलब की बात समझता है। रानी अम्माँ को छोड़कर किसी के साथ न जाएगा।

शंखधर ने अपनी बात का अनुमोदन किया—अम्माँ लानी।

चक्रधर—अभी तो चिमटे हो—बैठे बिठाए मुफ्त का राज्य पा गए। घाटे में तो हमीं रहे कि अपनी सारी पूँजी खो बैठे।

मनोरमा ने कहा—कब तक लौटिएगा?

चक्रधर—कह नहीं सकता; लेकिन बहुत जल्द लौटने का विचार नहीं है। इस प्रलोभन से बचने के लिए मुझे बहुत दूर जाना पड़ेगा।

रानी ने मुसकराकर कहा—मुझे भी लेते चलिए।

यह कहते-कहते रानी की आँखें सजल हो गईं।

चक्रधर ने गम्भीर भाव से कहा—यह तो होना ही नहीं था, मनोरमा रानी। जब तुम बालिका थीं, तब भी मेरे लिए देवी की प्रतिमा थीं, और अब भी देवी की प्रतिमा हो।

मनोरमा—बातें न बनाओ, बाबूजी! तुम मुझे हमेशा धोखा देते आये हो और अब भी वही नीति निभा रहे हो! सच कहती हूँ, मुझे भी लेते चलिए। अच्छा, मैं राजा साहब को राजी कर लूँ, तब तो आपको कोई आपत्ति न होगी?

चक्रधर—मनोरमा, दिल्लगी कर रही हो, या दिल से कहती हो।

मनोरमा—दिल से कहती हूँ, दिल्लगी नहीं।

चक्रधर—मैं आपको अपने साथ न ले जाऊँगा।

मनोरमा—क्यों?

चक्रधर—बहुत सी बातों का अर्थ बिना कहे ही स्पष्ट होता है।

मनोरमा—तो आपने मुझे अब भी नहीं समझा। मुझे भी बहुत दिनों से कुछ सेवा करने की इच्छा है। मैं भोग-विलास करने के लिए यहाँ नहीं आयी थी। ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ, मैं कभी भोग-विलास में लिप्त न हुई थी। धन से मुझे प्रेम है, लेकिन केवल इसलिए कि उससे मैं कुछ सेवा कर सकती, और सेवा करने वालों की कुछ मदद कर सकती हूँ। सच कहा है, पुरुष कितना ही विद्वान् और अनुभवी हो, पर स्त्री को समझने में असमर्थ ही रहता है। खैर, न ले जाइए। अहिल्या देवी ने तप किया है।

चक्रधर—वह तो साथ जाने को कहती है।

मनोरमा—कौन! अहिल्या! वह आपके साथ नहीं जा सकती, और आप ले भी गये, तो आज के तीसरे दिन यहाँ पहुँचाना पड़ेगा। मैं वही हूँ जो तब थी, किन्तु वह अपने दिन भूल गईं।

यह कहते हुए मनोरमा ने बालक को गोद में उठा लिया और मंद गति से बगीचे की ओर चली गयी। चक्रधर खड़े सोच रहे थे, क्या वास्तव में मैंने इसे नहीं समझा? अवश्य ही मेरा इसे विलासिनी समझना भ्रम है। हम क्यों ऐसा समझते हैं कि स्त्रियों का जन्म केवल भोग-विलास के लिए ही होता है? क्या उनका हृदय ऊँचे और पवित्र भावों से शून्य होता है? हमने उन्हें कामिनी, रमणी, सुन्दरी आदि विलास-सूचक नाम दे देकर वास्तव में उन्हें वीरता, त्याग और उत्सर्ग से शून्य कर दिया है। अगर सभी पुरुष वासनाप्रिय नहीं होते, तो सभी स्त्रियाँ क्यों वासनाप्रिय होने लगीं! अगर मनोरमा जो कुछ कहती है, वह सत्य है, तो मैंने उसे हकीकत में नहीं समझा! हा मंदबुद्धि!

सहसा चक्रधर को एक बात याद आ गई। तुरन्त मनोरमा के पास जाकर बोले—मैं आपसे एक विनय करने आया हूँ! धन्नासिंह के साथ मैंने जो अत्याचार किया है, उसका कुछ प्रायश्चित करना आवश्यक है।

मनोरमा ने मुस्कराकर कहा—बहुत देर में इसकी सुधि आयी! मैंने उसकी

कुल जोत मुआफी कर दी है।

चक्रधर ने चकित होकर कहा—आप सचमुच देवी हैं। तो मैं जाकर उन सबों को इसकी इत्तला दे दूँ ?

मनोरमा—आपका जाना आपकी शान के खिलाफ है। इस जरा सी बात की सूचना देने के लिए भला, आप क्या जाइएगा ? तो आपने कब जाने का विचार किया है ?

चक्रधर—आज ही रात को।

मनोरमा ने मुसकराते हुए कहा—हाँ, उस वक्त अहिल्या देवी सोती भी होंगी।

एक क्षण के बाद फिर बोली—मैं अहिल्या होती, तो सब कुछ छोड़कर आपके साथ चलती।

यह कहते-कहते मनोरमा ने लज्जा से सिर झुका लिया। जो बात वह ध्यान में भी न लाना चाहती थी, वह उसके मुँह से निकल गई। उसने उसी वक्त शंखधर को उठा लिया और बाग के दूसरी तरफ चली गयी, मानो उनसे पीछा छुड़ाना चाहती है, या शायद डरती है कि कहीं मेरे मुँह से कोई और असंगत बात न निकल जाए।

चक्रधर कुछ देर तक वहीं खड़े रहे, फिर बाहर चले गये। किसी काम में जी न लगा। सोचने लगे, जरा बाहर चलकर अम्माँजी से मिलता आऊँ; मगर डरे कि कहीं अम्माँ शिकायतों का दफ्तर न खोल दें। निर्मला एक बार यहाँ आयी थी; मगर एक ही सप्ताह में ऊबकर चली गई थी। अहिल्या की रुखाई से उसका दिल खट्टा हो गया था। जो अहिल्या शील और विनय की पुतली थी, वह यहाँ सीधे मुँह बात भी न करती थी।

ज्यों-ज्यों संध्या निकट आती थी, उनका जी उचाट होता जाता था। पहले कहीं बाहर जाने में जो उत्साह होता था, उसका अब नाम भी न था। जानते थे कि छलके हुए दूध पर आँसू बहाना व्यर्थ है; किन्तु इस वक्त बार-बार स्वर्गवासी मुंशी यशोदानंदन पर क्रोध आ रहा था। अगर उन्होंने मेरे गले में फंदा न डाला होता, तो आज मुझे क्यों यह विपत्ति झेलनी पड़ती ? मैं तो राजा की लड़की से विवाह न करना चाहता था। मुझे तो धनी कुल की कन्या से भी डर लगता था। विधाता को मेरे ही साथ यह लीला करनी थी !

संध्या समय वह राजा साहब से पूछने गये। राजा साहब ने आँखों में आँसू भरकर कहा—बाबूजी, आप धुन के पक्के आदमी हैं, मेरी बात आप क्यों मानने लगे; मगर मैं इतना कहता हूँ कि अहिल्या रो-रोकर प्राण दे देगी और आपको बहुत जल्द लौटकर आना पड़ेगा। अगर आप उसे ले गये, तो शंखधर भी जाएगा और मेरी सोने की लंका धूल में मिल जाएगी। आखिर आपको यहाँ क्या कष्ट है ?

चक्रधर को बराबर एक ही बात का दुहराना बुरा मालूम होता था। कुछ झुँझलाकर बोले—इसी से तो मैं जाना चाहता हूँ कि यहाँ कोई कष्ट नहीं है। विलास में पड़कर अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहता।

राजा—और इस राज्य को कौन सँभालेगा ?

चक्रधर—राज्य सँभालना मेरे जीवन का आदर्श नहीं है। फिर आप तो हैं ही।

राजा—तुम समझते हो, मैं बहुत दिन जीऊँगा ? सुखी आदमी बहुत दिन नहीं जीता, बेटा ! यह सब मेरे मरने के सामान हैं। मैं मिथ्या नहीं कहता। मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि मेरे दिन निकट आ गये हैं। शंखधर मेरा शत्रु बनकर आया है। यह लो, वह तलवार लिये दौड़ा भी आ रहा है। क्यों शंखधर, तलवार क्यों लाये हो ?

शंखधर—तुमको मालेंगे।

राजा—क्यों भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

शंखधर—अम्माँ लानी लोती हैं, तुमने उनको क्यों माला है ?

राजा—लो साहब, यह नया अपराध मेरे सिर पर मढ़ा जा रहा है। चलो, जरा देखूँ तो तुम्हारी लानी अम्माँ को किसने मारा है। क्या सचमुच रोती हैं ?

शंखधर—बली देल से लोती हैं।

राजा साहब तो तुरंत अंदर चले गये। मनोरमा के रोने की खबर सुनकर वह व्याकुल हो उठे। अंदर जाकर देखा, तो मनोरमा सचमुच रो रही थी। कमल पुष्प में ओस की बूँदें झलक रही थीं। राजा साहब ने आतुर होकर पूछा—क्या बात है, नोरा ? कैसा जी है ?

मनोरमा ने आँसू पोंछते हुए कहा—अच्छी तो हूँ !

राजा—तो आँखें क्यों लाल हैं ?

मनोरमा—आँखें तो लाल नहीं हैं। (जरा रुककर) अहिल्या देवी बाबूजी के साथ जा रही हैं। लल्लू को भी ले जाएँगी।

राजा—यह तुमसे किसने कहा ?

मनोरमा—अहिल्या देवी ने।

राजा—अहिल्या नहीं जा सकती।

मनोरमा—आप बाबूजी को क्यों नहीं समझाते ?

राजा—वह मेरे समझाने से न मानेंगे। किसी के समझाने से न मानेंगे।

मनोरमा—तो फिर ?

राजा—तो उन्हें जाने दो। वह बहुत दिन बाहर नहीं रहेंगे। उन्हें थोड़े ही दिनों में लौटकर आना पड़ेगा।

मनोरमा की आँखों से अश्रुवर्षा होने लगी। उसने अवरुद्ध कंठ से कहा—वह अब यहाँ न आएँगे। आप उन्हें नहीं जानते ?

राजा—मेरा मन कहता है, वह थोड़े ही दिनों में आएँगे। शंखधर उन्हें खींच लावेगा। अभी माया ने उन पर केवल एक अस्त्र चलाया है।

चक्रधर ने सोचा, इस तरह तो शायद मैं यहाँ से मरकर भी छुट्टी न पाऊँ। इनसे पूछूँ, उनसे पूछूँ। मुझे किसी से पूछने की जरूरत ही क्या है। जब अकेले ही जाना है, तो क्यों यह सब झंझट करूँ? अपने कमरे में जाकर दो-चार कपड़े और किताबें समेटकर रख दीं। कुल इतना ही सामान था, जिसे एक आदमी आसानी से हाथ में लटकाए लिये जा सकता था। उन्होंने रात को चुपके से बकुचा उठाकर चले जाने का निश्चय किया।

आज उन्हें भोजन से जरा भी रुचि न हुई। वह अहिल्या से भी न मिलना चाहते थे। उसे सम्पत्ति प्यारी है, तो सम्पत्ति लेकर रहे। मेरे साथ वह क्यों जाने लगी? मेरा मन रखने को मीठी-मीठी बातें करती है। जी में मनाती होगी, किसी तरह यहाँ से टल जाएँ। अगर मुझे पहले मालूम होता कि वह इतनी विलास-लोलुप है, तो उससे कोसों दूर रहता। लेकिन फिर दिल को समझाया, मेरा अहिल्या से रूठना अन्याय है। वह अगर अपने पुत्र को छोड़कर नहीं जाना चाहती, तो कोई अनुचित बात नहीं करती! ऐसे क्षुद्र विचार मेरे मन में क्यों आ रहे हैं? मैं यदि अपना कर्त्तव्य पालन करने जा रहा हूँ, तो किसी पर एहसान नहीं कर रहा हूँ।

यात्रा की तैयारी करके और अपने मन को अच्छी तरह समझाकर चक्रधर ने संदेह को दूर करने के लिए अपने शयनागार में विश्राम किया। अहिल्या ने कहा—दादाजी तो राजी न हुए।

चक्रधर—न जाऊँगा, और क्या। उनको नाराज भी तो नहीं करना चाहता।

अहिल्या प्रसन्न होकर बोली—यही उचित भी है। सोचो, उन्हें कितना बड़ा दुःख होगा। मैंने तुम्हारे साथ जाने का निश्चय कर लिया था। शंखधर को भी अपने साथ ले ही जाती। फिर बेचारे किसका मुँह देखकर रहते?

चक्रधर ने इसका कुछ जवाब न दिया। वह चुप साध गए। नींद का बहाना करने लगे। वह चाहते थे कि यह सो जाए, तो मैं चुपके से अपना बकुचा उठाऊँ और रम्चा हो जाऊँ; मगर निद्रा-विलासिनी अहिल्या की आँखों से आज नीद कोसों दूर थी। वह कोई न कोई प्रसंग छेड़कर बातें करती जाती थी। यहाँ तक कि जब आधी रात से अधिक बीत गई, तो चक्रधर ने कहा—भाई, अब मुझे सोने दो; आज तुम्हारी नींद कहाँ भाग गई?

उन्होंने चादर ओढ़ ली और मुँह फेर लिया गरमी के दिन थे। कमरे में पंखा चल रहा था। फिर भी गरमी मालूम होती थी। रोज किवाड़ खुले रहते थे। जब अहिल्या को विश्वास हो गया कि चक्रधर सो गए, तो उसने दरवाजे अंदर से बंद कर दिये और बिजली की बत्ती ठंडी करके सोयी। आज वह न जाने क्यों इतनी सावधान हो गई थी। पगली! जानेवालों को किसने रोका है?

रात भीग ही चुकी थी। अहिल्या को नींद आते देर न लगी। चक्रधर का
कातर हृदय अहिल्या के यों सावधान होने पर एक बार विचलित हो उठा।
अपने आंसुओं के वेग को न रोक सके। यह सोचकर उनका कलेजा फटा
ता था कि जब प्रातः काल वह मुझे न पाएगी, तो इसकी क्या दशा होगी।
घर कुछ दिनों से अहिल्या को विनाम प्रमोद में मग्न देखकर चक्रधर समझने
गे थे कि इसका प्रेम अब शिथिल हो गया है। यहाँ तक कि वह शंखधर को भी गोद
में उठाकर प्यार न करती थी; पर आज उसकी व्यग्रता देखकर उनका भ्रम
जाता रहा, उन्हें ज्ञात हुआ कि इसका विलासी हृदय अब भी प्रेम में रत है! जब
कोई वस्तु हमारे हाथ से जाने लगती है, तभी उसके प्रति हमारे सच्चे मनोभाव
प्रकट होते हैं। निःशंक दशा में सबसे प्यारी वस्तुओं की भी हमें सुध नहीं रहती,
हम उनकी ओर से उदासीन से रहते हैं।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। सारा राजभवन शांति में विलीन हो
रहा था। चक्रधर ने उठकर द्वारों को टटोलना शुरू किया; पर ऐसा दिशा-भ्रम
हो गया था कि कभी सपाट दीवार हाथ में आती, कभी कोई खिड़की. कभी कोई
मेज। याद करने की चेष्टा करते थे कि मैं किस तरफ मुँह करके सोया था। द्वार
ठीक चारपाई के सामने था; पर बुद्धि कुछ काम न देती थी। उन्होंने एक क्षण
शांत ! ,स होकर विचार किया; पर द्वार का ज्ञान फिर भी न हुआ। यहाँ तक
कि अपनी चारपाई भी न मिलती थी। आखिर उन्होंने दीवारों को टटोल-टटोल-
कर बिजली का बटन खोज निकाला और बत्ती जला दी। देखा, अहिल्या सुख-
निद्रा में मग्न है! क्या छवि थी, मानो उज्ज्वल पुष्प राशि पर कमल दल बिखरे
पड़े हों, मानो हृदय में प्रेम स्मृति विश्राम कर रही हो।

चक्रधर के मन में एक बार यह आवेश उठा कि अहिल्या को जगा दें और
उसे गले लगाकर कहे—प्रिये! मुझे प्रसन्न मन से विदा करो, मैं बहुत जल्द-
जल्द आया करूंगा। इस तरह चोरों की भाँति जाते हुए उन्हें असीम मर्मवेदना
हो रही थी; किन्तु जिस भाँति किसी बड़े आदमी को फिसलकर गिरते देख, हम
अपनी हँसी के वेग को रोकते हैं, उसी भाँति उन्होंने मन की इस दुर्बलता को दब
दिया और आहिस्ता से किवाड़ खोला। मगर प्रकृति को गुप्त व्यापार से कुछ बै
है। किवाड़ को उन्होंने कुछ रिश्वत तो दी नहीं थी, जो वह अपनी जबान ब
करता! खुला, पर प्रतिरोध की एक दबी हुई ध्वनि के साथ। अहिल्या सोयी थी
पर उसे खटका लगा हुआ था। यह आहट पाते ही उसकी संचित निद्रा टूट गई
वह चौंककर उठ बैठी और चक्रधर को पास की चारपाई पर न पाकर घबर
हुई कमरे के बाहर निकल आयी। देखा तो चक्रधर दबे पाँव उस जीने पर
रहे थे, जो रानी मनोरमा के शयनागार को जाता था।

उसने घबरायी हुई आवाज में पुकारा—कहाँ भागे जाते हो?

चक्रधर कमरे से निकले, तो उनके मन में बलवती इच्छा हुई कि शंखध

देखते चलें, इस इच्छा को वह संवरण न कर सके। वह तेजस्वी बालक उनका रास्ता रोककर खड़ा हो गया हो। वह ऊपर कमरे में रानी मनो पास सोया हुआ था। इसीलिए चक्रधर ऊपर जा रहे थे कि आँख भरके दे यह बात उनके ध्यान में न आयी कि रानी को इस वक्त कैसे जगाऊँगा। वह बरामदे ही में खड़े खिड़की से उसे देखना चाहते हो। इच्छा वेगवती ह विचार-शून्य हो जाती है। सहसा अहिल्या की आवाज सुनकर वह स्तम्भित ह गए। ऊपर न जाकर नीचे उतर आये और अत्यन्त सरल भाव से बोले— तुम्हारी भी नींद खुल गई?

अहिल्या—मैं सोयी कब थी! मैं जानती थी कि तुम आज जाओगे। तुम्हा चेहरा कहे देता था तुमने आज मुझे छलने का इरादा कर लिया है; मगर मैं क देती हूँ कि मैं तुम्हारा साथ न छोड़ूँगी। अपने शंखधर को भी साथ ले चलूँगी मुझे राज्य की परवा नहीं है। राज्य रहे या जाए। तुम मुझे छोड़कर नहीं ज सकते। तुम इतने निर्दयी हो, यह मुझे न मालूम था। तुम तो छल करना न जानते थे। यह विद्या कब सीख ली? बोलो, मुझे छोड़कर जाते हुए जरा भी दया नही आती?

चक्रधर ने लज्जित होकर कहा—तुम्हें मेरे साथ बहुत कष्ट होगा, अहिल्या! मुझे प्रसन्न चित्त जाने दो। ईश्वर ने चाहा तो जल्द ही लौटूँगा।

अहिल्या—क्यों प्राणेश, मैंने तुम्हारे साथ कौन से कष्ट नहीं झेले, और वह ऐसा कौन सा कष्ट है, जो मैं झेल नहीं चुकी हूँ? अनाथिनी क्या पान-फूल से पूजी जाती है? मैं अनाथिनी थी, तुमने मेरा उद्धार किया। क्या वह बात भूल जाऊँगी? मैं विलास की चेरी नहीं हूँ। हाँ, यह सोचती थी कि ईश्वर ने जो सुख अनायास दिया है, उसे क्यों न भोगूँ? लेकिन नारी के लिए पुरुष सेवा से बढ़कर और कोई शृंगार, कोई विलास, कोई भोग नहीं है।

चक्रधर—और शंखधर?

अहिल्या—उसे भी ले चलूँगी।

चक्रधर—रानीजी उसे जाने देंगी? जानती हो, राजा साहब का क्या हाल होगा?

अहिल्या—यह सब तो तुम भी जानते हो। मुझ पर क्यों भार रखते हो?

चक्रधर—सारांश यह कि तुम मुझे न जाने दोगी!

अहिल्या—हाँ, मुझे छोड़कर तो तुम नहीं जा सकते, और न मैं ही लल्लू को छोड़ सकती हूँ। किसी को दुःख हो, तो हुआ करे।

इन बातों की कुछ भनक मनोरमा के कानों में भी पड़ी। वह भी अभी तक न सोयी थी। उसने दरबान से ताकीद कर दी थी कि रात को चक्रधर बाहर जाने लगें, तो मुझे इत्तला देना। वह अपने मन की दो-चार बात चक्रधर से कहना चाहती थी। यह बोलचाल सुनकर नीचे उतर आयी। अहिल्या के अंतिम शब्द

उसके कानों में पड़ गए। उसने देखा कि चक्रधर बड़े हतबुद्धि से खड़े हैं, अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर सकते, कुछ जवाब भी नहीं दे सकते। उसे भय हुआ कि इस दुविधा में पड़कर कहीं वह अपने कर्त्तव्य मार्ग से हट न जाएँ, मेरा चित्त दुखी न हो जाए, इस भय से वह विरक्त होकर कहीं बैठ न रहे। वह चक्रधर को आत्मोत्सर्ग की मूर्ति समझती थी। उसे निश्चय था कि चक्रधर इस राज्य को तृण बराबर भी परवा नहीं करते, उन्हें तो सेवा की धुन लगी हुई है, यहाँ रहकर अपने ऊपर बड़ा जब्र कर रहे हैं। वह यह भी जानती थी कि चक्रधर किसी तरह रुकनेवाले नहीं; अब यह दशा उनके लिए असह्य हो गई है। तो क्या वह शंखधर के मोह में पड़कर उनकी स्वतन्त्रता में बाधक होगी? अपनी पुत्रतृष्णा को तृप्त करने के लिए उनके पैर की बेड़ी बनेगी? नहीं, वह इतनी स्वार्थिनी नहीं है। जिस बालक से उसे नाम का नाता होने पर इतना प्रेम है, उसे वह कितना चाहते होंगे, इसका वह भली भाँति अनुमान कर सकती थी। वह शंखधर के लिए रोएगी, तड़पेगी, लेकिन अपने पास रखकर चक्रधर को पुत्र-वियोग का दुःख न देगी। वह उनके दीपक से अपना घर न उजाला करेगी। यही उसने स्थिर किया। राजा साहब का क्या हाल होगा, इसकी उसे याद ही न रही। आकर बोली—बाबूजी, आप मेरा खयाल न कीजिए, शंखधर को ले जाइए। आखिर आपका दिल वहाँ कैसे लगेगा? मुझे कौन, जैसे पहले रहती थी, वैसे ही फिर रहने लगूँगी। हाँ, इतनी दया कीजिएगा कि कभी-कभी उसे लाकर मुझे दिखा दिया कीजिएगा, मगर अभी तो दो-चार दिन रहिएगा! बेटियाँ क्या यों रातों-रात विदा हुआ करती हैं? दो-चार दिन तो तो शंखधर को प्यार कर लेने दीजिए।

यह कहते-कहते मनोरमा की आँखें डबडबा आईं। चक्रधर ने गद्गद कंठ से कहा—वह भला आपको छोड़, मेरे साथ क्यों जाने लगा? आपके बगैर तो वह एक दिन भी न रहेगा।

मनोरमा—यह मैं कैसे कहूँ? माता-पिता बालक के साथ जितना प्रेम कर सकते हैं, उतना दूसरा कौन कर सकता है?

अहिल्या यह वाक्य सुनकर तिलमिला उठी। पति को रोकने का उसके पास यही एक बहाना था। वह न यहाँ से जाना चाहती थी, न पति को जाने देना चाहती थी। शंखधर की आड़ में वह अपने मनोभाव को छिपाए हुए थी। उसे विश्वास था कि रानी शंखधर को कभी न ज़ाने देंगी और न चक्रधर उनसे इस विषय में कुछ कह सकेंगे, पर जब रानी ने यह शस्त्र उसके हाथ से छीन लिया, तो उसे शंका हुई कि इसमें जरूर कोई न कोई रहस्य है, उसने तीव्र स्वर से कहा—तो क्या वह सब दिखावे ही का प्रेम था? आप तो कहती थीं, यह मेरा प्राण है, यह मेरा जीवन आधार है, क्या वह सब केवल बातें थी? क्या हमारी आँखों में धूल डालने के लिए ही सारा स्वांग रचा था? आप हम लोगों को दूध की मक्खी की

भाँति निकाल कर अखंड राज्य करना चाहती है ? यह न होगा। दादाजी को आप कोई दूसरा मंत्र न पढ़ा सकेंगी। मेरे पुत्र का अहित आप न कर सकेंगी। मैं अब यहाँ से टलनेवाली नहीं। यह समझ लीजिएगा। अगर आपने समझ रखा हो कि इन सबों को भगाकर अपने भाई-भतीजे को यहाँ ला बिठाऊँगी, तो उस धोखे में न रहिएगा।

यह कहते-कहते अहिल्या उसी क्रोध से भरी हुई राजा साहब के शयनगृह की ओर चली। मनोरमा स्तम्भित सी खड़ी रह गई। उसकी आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे।

चक्रधर मनोरमा को क्या मुँह दिखाते ? अहिल्या के इन वज्र कठोर शब्दों ने मनोरमा को इतनी पीड़ा नहीं पहुँचायी थी, जितनी उनको। मनोरमा दो-एक बार और भी ऐसी ही बातें अहिल्या के मुख से सुन चुकी थी और उसके स्वभाव से परिचित हो गई थी। चक्रधर को ऐसी बातें सुनने का यह पहला अवसर था। वही अहिल्या, जिसे वह नम्रता, मधुरता, शालीनता की देवी समझते थे, आज पिशाचिनी के रूप में उन्हें दिखाई दी। मारे ग्लानि के उनकी ऐसी इच्छा हुई कि धरती फट जाए और मैं समा जाऊँ, फिर न इसका मुँह देखूँ, न अपना मुँह दिखाऊँ। जिस रमणी के उपकारों से उनका एक-एक रोयाँ आभारी था, उसके साथ यह व्यवहार ! उसके उपकारों का यह उपहार ? यह तो नीचता की चरम सीमा है ? उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मेरे मुँह में कालिख लगी हुई है। वह मनोरमा की ओर ताक भी न सके। उनके मन में विराग की एक तरंग-सी उठी। मन ने कहा — यही तुम्हारी भोग लिप्सा का दंड है; तुम इसी के भूखे थे। जिस दिन तुम्हें मालूम हुआ कि अहिल्या राजा की पुत्री है, क्यों न उस दिन यहाँ से मुँह में कालिख लगाकर चले गये ? इस विचार से क्यों अपनी आत्मा को धोखा देते रहे कि जब मैं जाने लगूँगा, अहिल्या अवश्य साथ चलेगी ? तुम समझते थे कि स्त्री की दृष्टि में पति-प्रेम ही संसार की सबसे अमूल्य वस्तु है ? यह तुम्हारी भूल थी। आज उसी स्त्री ने पति-प्रेम को कितनी निर्दयता से ठुकरा दिया; तुम्हारे हवाई किलों को विध्वंस कर दिया और तुम्हें कहीं का न रखा।

मनोरमा अभी सिर झुकाए खड़ी ही थी कि चक्रधर चुपके से बाहर के कमरे में आये, अपना हैण्डबैग उठाया और बाहर निकले। दरबान ने पूछा—सरकार इस वक्त कहाँ जा रहे हैं ?

चक्रधर ने मुसकराकर कहा—जरा मैदान की हवा खाना चाहता हूँ। भीतर बड़ी गरमी है, नींद नहीं आती।

दरबान—मैं भी सरकार के साथ चलूँ ?

चक्रधर—नहीं, कोई जरूरत नहीं।

बाहर आकर चक्रधर ने राजभवन की ओर देखा। आ
दरीचों से बिजली का दिव्य प्रकाश दिखाई दे रहा था।

सहस्र नेत्रों वाले पिशाच की भाँति जान पड़ा, जिसने उनका सर्वनाश कर दिया था। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि वह मेरी ओर देखकर हँस रहा है और कह रहा है, तुम क्या समझते हो कि तुम्हारे चले जाने से यहाँ किसी को दु:ख होगा ? इसकी चिन्ता न करो। यहाँ यही बहार रहेगी, यों ही चैन की वंशी बजेगी। तुम्हारे लिए कोई दो बूंद आँसू भी न बहाएगा। जो लोग मेरे आश्रय में आते हैं, उनका मैं कायाकल्प कर देता हूँ, उनकी आत्मा को महानिद्रा की गोद में सुला देता हूँ।

अभी चक्रधर सोच ही रहे थे कि किधर जाऊँ, सहसा उन्हें राजद्वार से दो-तीन आदमी लालटेन लिये निकलते दिखाई दिये। समीप आने पर मालूम हुआ कि मनोरमा है। वह सिपाहियों के साथ लपकी हुई सड़क की ओर चली आ रही थी। चक्रधर समझ गए, यह मुझे ढूंढ़ रही है। उनके जी में एक बार प्रबल इच्छा हुई कि उसके चरणों पर गिर कर कहें—देवी, मैं तुम्हारी कृपाओं के योग्य नहीं हूँ। मैं नीच, पामर, अभागा हूँ। मुझे जाने दो, मेरे हाथों तुम्हें सदा कष्ट मिलता है और मिलेगा।

मनोरमा अपने आदमियों से कह रही थी—अभी कहीं दूर न गये होंगे। तुम लोग पूर्व की ओर जाओ, मैं एक आदमी के साथ इधर जाती हूँ। बस, इतना ही कहना कि रानी जी ने कहा है, जहाँ चाहे जाएँ; पर मुझसे मिलकर जाएँ।

राज भवन के सामने एक मनोहर उद्यान था। चक्रधर एक वृक्ष की आड़ में छिप गए। मनोरमा सामने से निकल गयी। चक्रधर का कलेजा धड़क रहा था कि कहीं पकड़ न लिया जाऊँ। दोनों तरफ के रास्ते बन्द थे। बारे उन्हें ज्यादा देर तक न रहना पड़ा। मनोरमा कुछ दूर जाकर लौट आयी। उसने निश्चय किया कि इधर-उधर खोजना व्यर्थ है। रेलवे स्टेशन पर जाकर रोकना चाहिए। स्टेशन के सिवा और कहाँ जा सकते हैं ? चक्रधर की जान में जान आयी, ज्यों ही रानी इधर आयीं, वह कुंज से निकलकर कदम बढ़ाते हुए आगे चले। वह दिन निकलने के पहले इतनी दूर निकल जाना चाहते थे कि फिर उन्हें कोई पा न सके। दिन निकलने में अब बहुत देर भी न थी। तारों की ज्योति मंद पड़ चली—चक्रधर ने और तेजी से कदम बढ़ाया।

सहसा उन्हें सड़क के किनारे एक कुएँ के पास कई आदमी बैठे दिखाई दिये। उनके बीच में एक लाश रखी हुई थी। कई आदमी लकड़ी के कुंदे लिए पीछे आ रहे थे। चक्रधर पूछना चाहते थे—कौन मर गया है। ? धन्नासिंह की आवाज पहचान कर सड़क ही पर ठिठक गए। इसने पहचान लिया तो मुश्किल पड़ेगी।

धन्नासिंह कह रहा था—कजा आ गई, तो कोई क्या कर सकता है। बाबूजी के हाथ में कोई डंडा भी तो न था। दो-चार घूंसे मारे होंगे और क्या ? मगर उस दिन से फिर बेचारा उठा नहीं।

दूसरे आदमी ने कहा— ठाँव-कुठाँव की बात है। एक घूंसा पीठ पर मारो, तो कुछ न होगा; केवल 'धम' की आवाज होगी। लेकिन वही घूंसा पसली में या

नाभि के पास पड़ जाए, तो गोली का काम कर सकता है। ठाँव-कुठाँव की बात है। मन्ना को कुठाँव चोट लग गई।

मन्नासिंह—बाबूजी सुनेंगे, तो उन्हें बहुत रंज होगा। उस दिन नजाने उनके सिर कैसे क्रोध का भूत सवार हो गया था। बड़े दयावान हैं; किसी को कड़ी निगाह से देखते तक नहीं। जेहल में हम लोग उन्हें भगतजी कहा करते थे। सुनेंगे तो बहुत पछताएँगे।

एक बूढ़ा आदमी बोला—भैया जेहल की बात दूसरी थी। तब दयावान रहे होंगे। तब राजा ठाकुर तो नहीं थे। राज पाकर दयावान रहें, तो जानो।

मन्नासिंह—दादा, वह राज पाकर फूल उठनेवाले आदमी नहीं हैं। तुमने देखा, यहाँ से जाते ही माफी दिला दी।

बूढ़ा—अरे पागल, जान का बदला कहीं माफी से चुकता है? जान का बदला जान है, मन्ना की अभागिनी विधवा माफी लेकर चाटेगी, उसके अनाथ बालक माफी की गोद में खेलेंगे या माफी को दादा कहेंगे? तुम बाबूजी को दयावान कहते हो। मैं उन्हें सौ हत्यारों का एक हत्यारा कहता हूँ। राजा हैं, इससे बचे जाते हैं; दूसरा होता, तो फाँसी पर लटकाया जाता। मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ; लेकिन उनपर इतना क्रोध आ रहा है कि मिल जाएँ, तो खून चूस लूँ।

चक्रधर को ऐसा मालूम हुआ कि मन्नासिंह की लाश कफन में लिपटी हुई उन्हें निगलने के लिए दौड़ी चली आती है। चारों ओर से दानवों की विकराल ध्वनि सुनाई देती थी—यह हत्यारा है! सौ हत्यारों का एक हत्यारा है! समस्त आकाश मंडल में देह के एक-एक अणु से, यही शब्द गूँज रहे थे—यह हत्यारा है! सौ हत्यारों का हत्यारा है।

चक्रधर वहाँ एक क्षण भी और खड़े न रह सके। उन आदमियों के सामने जाने की हिम्मत न पड़ी। मन्नासिंह की लाश सामने हड्डी की एक गदा लिये उनका रास्ता रोके खड़ी थी। नहीं, वह उनका पीछा करती थी। वह ज्यों-ज्यों पीछे खिसकते थे, लाश आगे बढ़ती थी। चक्रधर ने मन को शान्त करके विचार का आह्वान किया, जिसे मन की दुर्बलता ने एक क्षण के लिए शिथिल कर दिया था। 'आह! यह मेरी क्या दशा है? मृत-देह भी कहीं चल सकती है? यह मेरी भय-विकृत कल्पना का दोष है। मेरे सामने कुछ नहीं है, अब तक तो मैं डर ही गया होता। मन को यों दृढ़ करते ही उन्हें फिर कुछ न दिखाई दिया। वह आगे बढ़े लेकिन उनका मार्ग अब अनिश्चित न था, उनके रास्ते में अब अन्धकार न था, वह किसी लक्ष्यहीन पथिक की भाँति इधर उधर भटकते न थे। उन्हें अपने कर्तव्य का मार्ग साफ नजर आने लगा।

सहसा उन्होंने देखा कि पूर्व दिशा प्रकाश से आच्छन्न होती चली जाती है।

35

पांच साल गुजर गए; पर चक्रधर का कुछ पता नहीं। फिर वही गरमी के दिन हैं, दिन को लू चलती हैं रात को अंगारे बरसते हैं मगर अहिल्या को न अब पंखे की जरूरत है, न खस की टट्टियों की। उस वियोगिनी को अब रोने के सिवा दूसरा काम नहीं। विलास की किसी बात से अब उसे प्रेम नहीं है जिन वस्तुओं के प्रेम में फँसकर उसने अपने प्रियतम से हाथ धोया, वे सभी उसकी आँखों में काँटे की भाँति खटकती और हृदय में शूल की भाँति चुभती हैं। मनोरमा से अब उसका वह बर्ताव नहीं रहा। मनोरमा ही क्यों, लौंडियों तक से वह नम्रता के साथ बोलती और शंखधर के बिना तो अब वह एक क्षण नहीं रह सकती। पति को खोकर उसने अपने को पा लिया है। अगर वह विलासिता में पड़कर अपने को भूल न गई होती, तो पति को खोती ही क्यों? वह अपने को बारम्बार धिक्कारती है कि चक्रधर के साथ क्यों न चली गयी।

शंखधर उससे पूछता रहता है—अम्माँ, बाबूजी कब आएँगे? वह क्यों चले गये अम्माँजी? आते क्यों नहीं? तुमने उनको क्यों जाने दिया, अम्माँजी? तुमने हमको उनके साथ क्यों नहीं जाने दिया? तुम उनके साथ क्यों नहीं गयीं अम्माँ? बताओ, बेचारे अकेले न जाने पड़े होंगे। मैं भी उनके साथ जंगलों में घूमता? क्यों अम्माँ, उन्होंने बहुत विद्या पढ़ी है? रानी अम्माँ कहती हैं, वह आदमी नहीं, देवता हैं। क्यों अम्माँ जी, क्या वह देवता हैं? फिर तो लोग उनकी पूजा करते होंगे। अहिल्या के पास इन प्रश्नों का उत्तर रोने के सिवा और कुछ नहीं है। शंखधर कभी-कभी अकेले बैठकर रोता है! कभी-कभी अकेले बैठा सोच करता है कि पिताजी कैसे आएँगे।

शंखधर का जी अपने पिता की कीर्ति सुनने से कभी नहीं भरता, वह रोज अपनी दादी के पास जाता है और वहाँ उनकी गोद में बैठा हुआ घंटों उनकी बातें सुना करता है। चक्रधर की पुस्तकों को वह उलट-पलटकर देखता है और चाहता है कि मैं भी जल्दी से बड़ा हो जाऊँ और ये किताबें पढ़ने लगूं। निर्मला दिन भर उसकी राह देखा करती है। उसे देखते ही निहाल हो जाती है। शंखधर ही अब उसके जीवन का आधार है। अहिल्या का मुँह भी वह नहीं देखना चाहती। कहती है, उसी ने मेरी लाला को घर से विरक्त कर दिया। बेचारा न जाने कहाँ मारा-मारा फिरता होगा। भोला-भाला गरीब लड़का इस विलासिनी के पंजे में फँसकर कहीं का न रहा। अब भले रोती है। मुंशी वज्रधर उससे बार-बार अनुरोध करते हैं कि चलकर जगदीशपुर में रहो; पर वह यहाँ से जाने पर राजी नहीं होती। उससे अपना वह छोटा-सा घर नहीं छोड़ा जाता।

मुंशीजी को अब रियासत से एक हजार रुपये महीना वसीका मिलता है। राजा साहब ने उन्हें रियासत के कामों से मुक्त कर दिया है, इसलिए मुंशीजी अब अधिकांश घर ही पर रहते हैं। शराब की मात्रा तो धन के साथ नहीं बढ़ी, बल्कि और घट गई है; लेकिन संगीत प्रेम बहुत बढ़ गया है। सारे दिन उनके विशाल कमरे में गायनाचार्यों की बैठक रहती है। मुहल्ले में अब कोई गरीब नहीं रहा। मुंशीजी ने सबको कुछ न कुछ महीना बाँध दिया है उनके हाथ में पैसा नहीं टिका। अब तो और भी नहीं टिकता। उनकी मनोवृत्ति भक्ति की ओर नहीं है, दान को दान समझकर वह नहीं देते, न इसलिए कि उस जन्म में इसका कुछ फल मिलेगा। वह इसलिए देते हैं कि उनकी यह आदत है। यह भी उनका राग है, इसमें उन्हें आनन्द मिलता है। वह अपनी कीर्ति भी नहीं सुनना चाहते; इसलिए जो कुछ देते हैं, गुप्त रूप से देते हैं। अब भी प्रायः खाली रहते हैं और रुपयों के लिए मनोरमा की जान खाते रहते हैं; बिगड़-बिगड़कर पत्र पर पत्र लिखते हैं, जाकर खोटी-खरी सुना आते हैं और कुछ न कुछ ले ही आते हैं। मनोरमा को भी शायद उनकी कड़वी बातें मीठी लगती हैं। वह उनकी इच्छा तो पूरी करती है; पर चार बातें सुनकर। इतने पर भी उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। उनके लिए सबसे आनन्द का समय वह होता है, जब वह शंखधर को गोद लिए मुहल्ले भर के बालकों को मिठाइयाँ और पैसे बाँटने लगते हैं। इससे बड़ी खुशी की वह कल्पना ही नहीं कर सकते।

एक दिन शंखधर नौ बजे ही आ पहुँचा। गुरुसेवकसिंह उनके साथ थे। यह महाशय रियासत जगदीशपुर के तमगे थे। जिस अवसर पर जो काम जरूरी समझा जाता था, वही उनसे लिया जाता था। निर्मला उस समय स्नान करके तुलसी को जल चढ़ा रही थी। जब वह जल चढ़ाकर आयी, तो शंखधर ने पूछा —दादीजी, तुम पूजा क्यों करती हो?

निर्मला ने शंखधर को गोद में लेकर कहा—बेटा, भगवान् से माँगती हूँ कि मेरी मनोकामना पूर्ण करें।

शंखधर—भगवान् सबके मन की बात जानते हैं?

निर्मला—हाँ बेटा, भगवान् सब कुछ जानते हैं।

शंखधर—दादीजी, तुम्हारी क्या मनोकामना है?

निर्मला—यही बेटा, कि तुम्हारे बाबूजी आ जाएँ और तुम जल्दी से बड़े हो जाओ।

शंखधर बाहर मुंशीजी के पास चला गया और उनके पास बैठकर सितार की गतें सुनता रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल शंखधर ने स्नान किया; लेकिन स्नान करके वह जल-पान करने न आया। गुरुसेवकसिंह के पास पढ़ने भी न गया। न जाने कहाँ चला गया। अहिल्या इधर-उधर देखने लगी, कहाँ चला गया। मनोरमा के पास आकर

देखा, वहाँ भी न था। अपने कमरे में भी न था। छत पर भी नहीं। दोनों रमणियाँ घबराईं कि स्नान करके कहाँ चला गया। लौंड़ियों से पूछा तो उन सबों ने भी कहा, हमने तो उन्हें नहाकर आते देखा। फिर कहाँ चले गए, यह हमें नहीं मालूम। चारों ओर तलाश होने लगी। दोनों बगीचे की ओर दौड़ी गईं। वहाँ वह न दिखाई दिया। सहसा बगीचे के पल्ले सिरे पर, जहाँ दिन को भी सन्नाटा रहता था, उसकी झलक दिखाई दी। दोनों चुपके-चुपके वहाँ गईं और एक पेड़ की आड़ में खड़ी होकर देखने लगीं। शंखधर तुलसी के चबूतरे के सामने आसन मारे, आँख बन्द किए ध्यान-सा लगाए बैठा था। उसके सामने कुछ फूल पड़े हुए थे। एक क्षण के बाद उसने आँखें खोलीं, कई बार चबूतरे की परिक्रमा और तुलसी की वन्दना करके धीरे से उठा। दोनों महिलाएँ आड़ से निकल कर उसके सामने खड़ी हो गईं। शंखधर उन्हें देखकर कुछ लज्जित हो गया और बिना कुछ बोले आगे बढ़ा।

मनोरमा—वहाँ क्या करते थे बेटा ?

शंखधर—कुछ तो नहीं। ऐसे ही घूमता था।

मनोरमा—नहीं, कुछ तो कर रहे थे।

शंखधर—जाइए, आपसे क्या मतलब ?

अहिल्या—तुम्हें न बताएँगे। मैं इसकी अम्माँ हूँ, मुझे बता देगा। मेरा लाल मेरी कोई बात नहीं टालता। हाँ बेटे, बता क्या कर रहे थे ? मेरे कान में कह दो। मैं किसी से न कहूँगी।

शंखधर ने आँखों में आँसू भरकर कहा—कुछ नहीं, मैं बाबूजी के जल्दी से लौट आने की प्रार्थना कर रहा था। भगवान् पूजा करने से सबकी मनोकामना पूरी करते हैं।

सरल बालक की यह पितृभक्ति और श्रद्धा देखकर दोनों महिलाएँ रोने लगीं। इस बेचारे को कितना दुख है। शंखधर ने फिर पूछा—क्यों अम्माँ, तुम बाबूजी के पास कोई चिट्ठी क्यों नहीं लिखतीं ?

अहिल्या ने कहा—कहाँ लिखूँ बेटा, उनका पता भी तो नहीं जानती !

36

इधर कुछ दिनों से लौंगी तीर्थ करने चली गई थी। गुरुसेवकसिंह ही के कारण उसके मन में यह धर्मोत्साह हुआ था। इस यात्रा के शुभ फल में उनको भी हिस्सा मिलेगा, यह तो नहीं कहा जा सकता; पर उनके पिता को अवश्य मिलने की सम्भावना थी। जब से वह गई थी, दीवान साहब दीवाने हो गए थे। यहाँ तक कि गुरुसेवक को भी कभी-कभी यह मानना पड़ता था कि लौंगी का घर में

होना पिताजी की रक्षा के लिए जरूरी है। घर में अब कोई नौकर एक सप्ताह से ज्यादा न टिकता था, कितने ही पहली ही फटकार में छोड़कर भागते थे। रियासत से पकड़कर भेजे जाते थे, तब कहीं जाकर काम चलता था। गुरुसेवक के सद्व्यवहार और मिष्ट भाषण का कोई असर न होता था। शराब की मात्रा भी दिनोंदिन बढ़ती जाती थी, जिससे भय होता था कि कोई भयंकर रोग न खड़ा हो जाए। भोजन वह अब बहुत थोड़ा करते थे। लौंगी दिन भर में दो ढाई सेर दूध उनके पेट में भर दिया करती थी, आध पाव के लगभग घी भी किसी न किसी तरह पहुँचा ही देती थी। इस कला में वह निपुण थी। पतिसेवा का वह अमर सिद्धांत, जो चालीस साल की अवस्था के बाद भोजन की योजना ही पर विशेष आग्रह करता है, सदैव उसकी आँखों के सामने रहता था। वह कहा करती थी, घोड़े और मर्द कभी बूढ़े नहीं होते, केवल उन्हें रातिब मिलना चाहिए।

ठाकुर साहब लौंगी की अब सूरत भी नहीं देखना चाहते थे, इसी आशय के पत्र उसको लिखा करते हैं। लिखते हैं, तुमने मेरी जिन्दगी चौपट कर दी। मेरा लोक और परलोक दोनों बिगाड़ दिया। शायद लौंगी को जलाने ही के लिए ठाकुर साहब सभी काम उसकी इच्छा के विरुद्ध करते थे—खाना कम, शराब अधिक, नौकरों पर क्रोध, नौ बजे दिन तक सोना। सारांश यह कि जिन बातों को वह रोकती थी, वही आजकल की दिनचर्या बनी हुई थी। दीवान साहब इसकी सूचना भी दे देते, और पत्र के अन्त में यह भी लिख देते थे—अब तुम्हारे यहाँ आने की बिलकुल जरूरत नहीं। मेरी बहू तुमसे कहीं अच्छी तरह मेरी सेवा कर रही है। उसने मासिक खर्च में कोई दो सौ रुपये की बचत निकाल दी है। तुम्हारे लिए यही आमदनी पूरी न पड़ती थी। हर एक पत्र में वह अपने स्वास्थ्य का विवरण अवश्य करते थे। उनकी पाचन शक्ति अब बहुत अच्छी हो गई थी, रुधिर के बढ़ जाने से जितने रोग उत्पन्न होते हैं, उनकी अब कोई सम्भावना न थी।

दीवान साहब की पाचन-शक्ति अच्छी हो गई हो, पर विचार शक्ति तो जरूर क्षीण हो गई थी। निश्चय करने की अब उनमें सामर्थ्य ही न थी। ऐसी-ऐसी गलतियाँ करते थे कि राजा साहब को उनका बहुत लिहाज करने पर भी बार-बार एतराज करना पड़ता था। वह कार्यदक्षता, वह तत्परता, वह विचार-शीलता, जिसने उन्हें चपरासी से दीवान बनाया था, अब उनका साथ छोड़ गई थी। वह बुद्धि भला जगदीशपुर का शासन भार क्या सँभालती? लोगों को आश्चर्य होता था कि इन्हें क्या हो गया है। गुरुसेवक को भी शायद मालूम होने लगा कि पिताजी की आड़ में कोई दूसरी ही शक्ति रियासत का संचालन करती थी।

एक दिन उन्होंने पिता से कहा—लौंगी कब तक आएगी?

दीवान साहब ने उदासीनता से कहा—उसका दिल जाने? यहाँ आने की तो कोई खास जरूरत नहीं मालूम होती। अच्छा है, अपने कर्मों का प्रायश्चित

ही कर ले। यहाँ आकर क्या करेगी ?

उसी दिन भाई-बहिन में भी इसी विषय पर बातें हुईं। मनोरमा ने कहा—भैया, क्या तुमने लौंगी अम्मा को भुला ही दिया ? दादाजी की दशा देख रहे हो कि नहीं ? सूखकर काँटा हो गए हैं।

गुरुसेवक—भोजन तो करते ही नहीं। कोई क्या करे ? बस, जब देखो, शराब-शराब।

मनोरमा—उन्हें लौंगी अम्माँ ही कुछ ठीक रख सकती हैं। उन्हीं को किसी तरह बुलाओ और बहुत जल्द ! दादाजी की दशा देखकर मुझे तो भय हो रहा है। राजा साहब तो कहते हैं, तुम्हारे पिताजी सठिया गए हैं।

गुरुसेवक—तो मैं क्या करूँ ? बार-बार कहता हूँ कि बुला लीजिए; पर वह सुनते ही नहीं। उलटे उसे चिढ़ाने को और लिख देते हैं कि यहाँ तुम्हारे आने की जरूरत नहीं ! वह एक हठिन है। भला, इस तरह क्यों आने लगी ?

मनोरमा—नहीं भैया, वह लाख हठिन हो; पर दादाजी पर जान देती है। वह केवल तुम्हारे भय से नहीं आ रही है। तीर्थयात्रा में उसकी श्रद्धा कभी न थी। वहाँ रो-रोकर उसके दिन कट रहे होंगे। पिताजी जितना ही उसे आने के लिए रोकते हैं, उतना ही उसे आने की इच्छा होती है; पर तुमसे डरती है।

गुरुसेवक—नोरा, मैं सच कहता हूँ, मैं दिल से चाहता हूँ कि वह आ जाए; पर सोचता हूँ कि जब पिताजी मना करते हैं, तो मेरे बुलाने से क्यों आने लगी। रुपये-पैसे की कोई तकलीफ है ही नहीं।

मनोरमा—तुम समझते हो, दादाजी उसे मना करते हैं ? उनकी दशा देखकर भी ऐसा कहते हो ! जब से अम्माँ का स्वर्गवास हुआ, दादाजी ने अपने को उसके हाथों बेच दिया। लौंगी ने न सँभाला होता, तो अम्माँजी के शोक में दादाजी प्राण दे देते। मैंने किसी विवाहित स्त्री में इतनी पति-भक्ति नहीं देखी। अगर दादाजी को बचाना चाहते हो, तो जाकर लौंगी अम्माँ को अपने साथ लाओ !

गुरुसेवक—मेरा जाना तो बहुत मुश्किल है, नोरा !

मनोरमा—क्यों ? क्या इसमें आपका अपमान होगा ?

गुरुसेवक—क्यों ? वह समझेगी, आखिर इन्हीं की गरज पड़ी। आकर और भी सिर चढ़ जाएगी। उसका मिजाज भी आसमान पर जा पहुँचेगा।

मनोरमा—भैया, ऐसी बातें मुंह से न निकालो। लौंगी देवी है, उसने तुम्हारा और मेरा पालन किया है। उस पर तुम्हारा यह भाव देखकर मुझे दुःख होता है।

गुरुसेवक—मैं अब उससे कभी न बोलूंगा, उसकी किसी बात में भूलकर भी दखल न दूंगा, लेकिन उसे बुलाने न जाऊंगा।

मनोरमा—अच्छी बात है, तुम न जाओ; लेकिन मेरे जाने में तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है ?

गुरुसेवक—तुम जाओगी ?

मनोरमा—क्यों, मैं क्या हूँ ! क्या मैं भूल गई हूँ कि लौंगी अम्मा ही ने मुझे गोद में लेकर पाला है ? अगर वह इस घर में आकर रहती, मैं अपने हाथों से उसके पैर धोती और चरणामृत आँखों से लगाती। अब मैं बीमार पड़ी थी; तो वह रात की रात मेरे सिरहाने बैठी रहती थी। क्या मैं इन बातों को कभी भूल सकती हूँ ? माता के ऋण से उऋण होना चाहे सम्भव हो, उसके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती, चाहे ऐसे-ऐसे दस जन्म लूँ। आजकल वह कहाँ है ?

गुरुसेवक लज्जित हुए। घर आकर उन्होंने देखा कि दीवान साहब लिहाफ ओढ़े पड़े हुए हैं। पूछा—आपका जी कैसा है ?

दीवान साहब की लाल आँखें चढ़ी हुई थीं। बोले—कुछ नहीं जी, जरा सरदी लग रही थी।

गुरुसेवक—आपकी इच्छा हो, तो मैं जाकर लौंगी को बुला लाऊँ ?

हरिसेवक—तुम ! नहीं; तुम उसे बुलाने क्या जाओगे। कोई जरूरत नहीं। उसका जो चाहे, आए या न आए। हुँह ! उसे बुलाने जाओगे ! ऐसी कहाँ की अमीरजादी है ?

गुरुसेवक—यह आप कहें। हम तो उसकी गोद में खेले हुए हैं, हम ऐसा कैसे कह सकते हैं। मोरा आज मुझ पर बहुत बिगड़ रही थी। वह खुद उसे बुलाने जा रही है। उसकी जिद तो आप जानते ही हैं। जब धुन सवार हो जाती है, तो उसे कुछ नहीं सूझता।

हरिसेवक सजल नेत्र होकर बोलीमोरा जाने को कहती है ? मोरा जाएगी ? नहीं, मैं उसे न जाने दूँगा। लौंगी को बुलाने मोरा नहीं जा सकती। मैं उसे समझा दूँगा।

गुरुसेवक क्या जानते थे, इन शब्दों में कोई गूढ़ आशय भरा हुआ है। यहाँ से चले गए।

दूसरे दिन दीवान साहब को ज्वर हो आया। गुरुसेवक ने थर्मामीटर लगाकर देखा, तो ज्वर एक सौ चार डिग्री का था। घबराकर डाक्टर को बुलाया। मनोरमा यह खबर पाते ही दौड़ी हुई आई। उसने आते ही आते गुरुसेवक से कहा—मैंने आपसे कल ही कहा था, जाकर लौंगी अम्माँ को बुला लाइए; लेकिन आप न गए। अब तक तो आप हरिद्वार से लौटते होते।

गुरुसेवक—मैं तो जाने को तैयार था, लेकिन जब कोई जाने भी दे। दादाजी से पूछा, तो वह मुझको बेवकूफ बनाने लगे। मैं कैसे चला जाता ?

मनोरमा—तुम्हें उनसे पूछने की क्या जरूरत थी ? इनकी दशा देख नहीं रहे हो। अब भी मौका है। मैं इनकी देखभाल करती रहूँगी। तुम इसी गाड़ी से चले जाओ और उसे साथ लाओ। वह इनकी बीमारी की खबर सुनकर [illegible] भी न रुकेगी। वह केवल तुम्हारे भय से नहीं आ रही है।

दीवान साहब मनोरमा को देखकर बोले—आओ नोरा, मुझे तो आज ज्वर आ गया। गुरुसेवक कह रहा था कि तुम लौंगी को बुलाने जा रही हो। बेटी, इसमें तुम्हारा अपमान है। उसकी हजार दफा गरज हो आए, या न आए। भला, तुम उसे बुलाने जाओगी, तो दुनिया क्या कहेगी? सोचो, कितनी बदनामी की बात है!

मनोरमा—दुनिया जो चाहे कहे, मैंने भैयाजी को भेज दिया है। वह तो स्टेशन पहुंच गए होंगे। शायद गाड़ी पर सवार हो गए हों।

हरिसेवक—सच! यह तुमने क्या किया? लौंगी कभी न आएगी।

मनोरमा—आएगी क्यों नहीं। न आएगी, तो मैं जाऊंगी और उसे मना लाऊंगी।

हरिसेवक—तुम उसे मनाने जाओगी? रानी मनोरमा लौंगी कहारिन को मनाने जाएँगी?

मनोरमा—मनोरमा लौंगी कहारिन का दूध पीकर बड़ी न होती, तो आज रानी मनोरमा कैसे होती?

हरिसेवक का मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा, बुझी हुई आँखें जगमगा उठीं, प्रसन्नमुख होकर बोले—नोरा, तुम सचमुच दया की देवी हो। देखो, अगर लौंगी आए और मैं न रहूं, तो उसकी खबर लेती रहना। उसने मेरी बड़ी सेवा की है। मैं कभी उसके एहसानों का बदला नहीं चुका सकता। गुरुसेवक उसे सताएगा, उसे घर से निकालेगा; लेकिन तुम उस दुखिया की रक्षा करना। मैं चाहूं, तो अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम लिख सकता हूं। यह सब जायदाद मेरी पैदा की हुई है। मैं अपना सब कुछ लौंगी को दे सकता हूं, लेकिन लौंगी कुछ न लेगी। वह दुष्टा मेरी जायदाद का एक पैसा भी न छुएगी। वह अपने गहने-पाते भी काम पड़ने पर इस घर में लगा देगी। बस, वह सम्मान चाहती है। कोई उससे आदर के साथ बोले और उसे लूट ले। वह घर की स्वामिनी बनकर भूखों मर जाएगी; लेकिन दासी बनकर सोने का कौर भी न खाएगी। यह उसका स्वभाव है। गुरुसेवक ने आज तक उसका स्वभाव न जाना। नोरा, जिस दिन से वह गई है, मैं कुछ और ही हो गया हूं। जान पड़ता है, मेरी आत्मा कहीं चली गई है। मुझे अपने ऊपर जरा भी भरोसा नहीं रहा। मुझमें निश्चय करने की शक्ति ही नहीं रही। अपने कर्त्तव्य का ज्ञान ही नहीं रहा। तुम्हें अपने बचपन की याद आती है, नोरा?

मनोरमा—बहुत पहले की बातें तो नहीं याद हैं, लेकिन लौंगी अम्मा का मुझे गोद में खिलाना खूब याद है। अपनी बीमारी भी याद आती है, जब लौंगी अम्माँ मुझे पंखा-झला करती थीं।

हरिसेवक ने अवरुद्ध कंठ से कहा—उससे पहले की बात है नोरा, जब गुरुसेवक तीन वर्ष का था और तुम्हारी माता तुम्हें साल भर का छोड़कर चल बसी थी। मैं पागल हो गया था। यही जी में आता था कि आत्महत्या कर लूं।

नोरा, जैसी तुम हो, वैसी ही तुम्हारी माता भी थी। उसका स्वभाव भी तुम्हारे जैसा था। मैं बिलकुल पागल हो गया था। उस दशा में इसी लौंगी ने मेरी रक्षा की। उसकी सेवा ने मुझे मुग्ध कर दिया। उसे तुम लोगों पर प्राण देते देखकर उस पर मेरा प्रेम हो गया। मैं उसके स्वरूप और यौवन पर न रीझा! तुम्हारी माता के बाद किसका स्वरूप और यौवन मुझे मोहित कर सकता था! मैं लौंगी के हृदय पर मुग्ध हो गया। तुम्हारी माता भी तुम लोगों का लालन-पालन इतना तन्मय होकर न कर सकती थी। गुरुसेवक की बीमारी की याद तुम्हें क्या आएगी? न जाने इसे कौन सा रोग हो गया था। खून के दस्त आते थे और तिल तिल पर। छः महीने तक उसकी दशा यही रही। जितनी दवा-दारू उस समय कर सकता था, वह सब करके हार गया। झाड़-फूंक, दुआ तावीज सब कुछ कर चुका। इसके बचने की कोई आशा न थी। गलकर काँटा हो गया। रोता तो इस तरह, मानो कराह रहा है। यह लौंगी ही थी, जिसने उसे मौत के मुँह से निकाल लिया। कोई माता अपने बालक की इतनी सेवा नहीं कर सकती। जो उसके त्यागमय स्नेह को देखता, दाँतों तले उँगली दबाता था। क्या वह लोभ के वश अपने को मिटाए देती थी? लोभ में भी कहीं त्याग होता है? और आज गुरुसेवक उसे घर से निकाल रहा है, समझता है कि लौंगी मेरे धन के लोभ से मुझे घेरे हुए है। मूर्ख यह नहीं सोचता जिस समय लौंगी उसका पंजर गोद में लेकर रोया करती थी, उस समय धन कहाँ था? सच पूछो, तो यहाँ लक्ष्मी लौंगी के संग ही आयी, बल्कि लक्ष्मी ही लौंगी के रूप में आयी। लौंगी ही ने मेरे भाग्य को रचा। जो कुछ किया, उसी ने किया, मैं तो निमित्त मात्र था। क्यों नोरा, सिरहाने कौन खड़ा है? कोई बाहरी आदमी है? कह दो, यहाँ से जाए।

मनोरमा—यहाँ तो मेरे सिवा कोई नहीं है। आपको कोई कष्ट हो रहा है? फिर डाक्टर को बुलाऊँ?

हरिसेवक—मेरा जी घबरा रहा है, रह-रहकर डूबा जाता है। कष्ट कोई नहीं, कोई पीड़ा नहीं। बस, ऐसा मालूम होता है कि दीपक में तेल नहीं रहा। गुरुसेवक शाम तक पहुँच जाएगा?

मनोरमा—हाँ, कुछ रात जाते-जाते पहुँच जाएँगे।

हरिसेवक—कोई तेज मोटर हो, तो मैं शाम तक पहुँच जाऊँ।

मनोरमा—इस दशा में इतना लम्बा सफर आप कैसे कर सकते हैं?

हरिसेवक—हाँ, यह ठीक कहती हो, बेटी! मगर मेरी दवा लौंगी के पास है। उस रानी का कैसा प्रताप था! जब तक वह रही, मेरे सिर में कभी दर्द भी न हुआ। मेरी मूर्खता देखो कि जब उसने तीर्थयात्रा की बात कही, तो मेरे मुँह से एक बार भी न निकला—तुम मुझे किस पर छोड़कर जाती हो? ... र मैं यह
कह सकता, तो वह कभी न जाती। एक बार भी नहीं रोक ...
का दंड देना चाहता था। मुझे उस वक्त यह न सूझ पड़ा कि ...

यह कहते-कहते दीवान साहब फिर चौंक पड़े और द्वार की ओर आशंकित नेत्रों से देखकर बोले—यह कौन अन्दर आया, नोरा ? ये लोग क्यों मुझे घेरे हुए हैं ?

मनोरमा ने घबराते हुए हृदय से उमड़नेवाले आँसुओं को दबाकर पूछा—क्या आपका जी फिर घबरा रहा है ?

हरिसेवक—वह कुछ नहीं था, नोरा ! मैंने अपने जीवन में अच्छे काम कम किए, बुरे काम बहुत किए। अच्छे काम जितने किए वे लौंगी ने लिए। बुरे काम जितने किए, वे मेरे हैं। उनके दंड का भागी मैं हूँ। लौंगी के कहने पर चलता, तो आज मेरी आत्मा शान्त होती। एक बात तुमसे पूछूं, नोरा, बताओगी ?

मनोरमा—खुशी से पूछिए।

हरिसेवक—तुम अपने भाग्य से सन्तुष्ट हो ?

मनोरमा—यह आप क्यों पूछते हैं ? क्या मैंने आपसे कभी कोई शिकायत की है ?

हरिसेवक—नहीं नोरा, तुमने कभी शिकायत नहीं की और न करोगी; लेकिन मैंने तुम्हारे साथ जो घोर अत्याचार किया है, उसकी व्यथा से आज मेरा अन्तःकरण पीड़ित हो रहा है। मैंने तुम्हें अपनी तृष्णा की भेंट चढ़ा दिया, तुम्हारे जीवन का सर्वनाश कर दिया। ईश्वर ! तुम मुझे इसका कठिन से कठिन दंड देना ! लौंगी ने कितना विरोध किया; लेकिन मैंने एक न सुनी। तुम निर्धन होकर सुखी रहतीं। मुझे तृष्णा ने अन्धा बना दिया था। फिर जी डूबा जाता है! शायद उस देवी के दर्शन न होंगे। तुम उससे कह देना नोरा, कि यह स्वार्थी, नीच, पापी जीव अन्त समय तक उसकी याद में तड़पता रहा...

मनोरमा ने रोकर कहा—दादाजी, आप ऐसी बातें क्यों करते हैं ? लौंगी अम्मां कल शाम तक आ जाएँगी।

हरिसेवक हँसे, वह विलक्षण हँसी, जिसमें समस्त जीवन की आशाओं और अभिलाषाओं का प्रतिवाद होता है। फिर सन्दिग्ध भाव से बोले—कल शाम तक ? हां, शायद।

मनोरमा आँसुओं के वेग को रोके हुए थी। उसे उस चिर परिचित स्थान में आज एक विचित्र शंका का आभास हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि सूर्य-प्रकाश कुछ क्षीण हो गया है, मानो संध्या हो गई है। दीवान साहब के मुख की ओर ताकने की हिम्मत न पड़ती थी।

दीवान साहब छत की ओर टकटकी लगाए हुए थे, मानो उसकी दृष्टि अनंत के उस पार पहुँच जाना चाहती हो। सहसा उन्होंने क्षीण स्वर से पुकारा—नोरा !

मनोरमा ने उनकी ओर करुण नेत्रों से देखकर कहा—खड़ी हूँ, दादाजी !

दीवान—जरा कलम दावात लेकर मेरे समीप आ जाओ। कोई और तो यहाँ

नहीं है ? मेरा दानपत्र लिख लो। गुरुसेवक की लौंगी से न पटेगी। मेरे पीछे उसे बहुत कष्ट होगा। मैं अपनी सब जायदाद लौंगी को देता हूँ। जायदाद के लोभ से गुरुसेवक उससे दबेगा। तुम यह लिख लो और तुम्हीं इसकी साक्षी देना। जरा बहू को बुला लो, मैं उसे भी समझा दूँ। यह वसीयत तुम अपने ही पास रखना। जरूरत पड़ने पर इससे काम लेना।

मनोरमा अन्दर जाकर रोने लगी। आँसुओं का वेग उसके रोके न रुका ! उसकी भाभी ने पूछा—क्या है दीदी, दादाजी का जी कैसा है ?

यह कहते हुए वह घबरायी हुई दीवान साहब के सामने आकर खड़ी हो गई। उसकी आँखों में आँसू भर आये। कमरे में वह निस्तब्धता छायी हुई थी, जिसका आशय सहज ही समझ में आ जाता है। उसने दीवान साहब के पैरों पर सिर रख दिया और रोने लगी।

दीवान साहब ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—बेटी ? यह मेरा अन्तिम समय है। यात्रा के सामान कर रहा हूँ ! गुरुसेवक के आने तक क्या होगा, नहीं जानता। मेरे पीछे लौंगी बहुत दिन तक न रहेगी। उसका दिल न दुखाना। मेरी तुमसे यही याचना है। तुम बड़े घर की बेटी हो। जो कुछ करना, उसकी सलाह से करना। इसी में वह प्रसन्न रहेगी। ईश्वर तुम्हारा सौभाग्य अमर करें !

यह कहते-कहते दीवान साहब की आँखें बन्द हो गईं। कोई आध घण्टे के बाद उन्होंने आँखें खोलीं और उत्सुक नेत्रों से इधर-उधर देखकर बोले—अभी नहीं आयी ? अब भेंट न होगी।

मनोरमा ने रोते हुए कहा—दादाजी, मुझे भी कुछ कहते जाइए। मैं क्या करूँ ?

दीवान साहब ने आँखें बन्द किए हुए कहा—लौंगी को देखो !

थोड़ी देर में राजा साहब आ पहुँचे। अहिल्या भी उनके साथ थी। मुंशी वज्रधर को भी उड़ती हुई खबर मिली। दौड़े आए। रियासत के सैकड़ों कर्मचारी जमा हो गए। डाक्टर भी आ पहुँचा। किन्तु दीवान साहब ने आँखें न खोलीं।

सन्ध्या हो गई थी कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग सिर झुकाए बैठे थे, मानो श्मशान में भूतगण बैठे हों। सबको आश्चर्य हो रहा था कि इतनी जल्द यह क्या हो गया। अभी कल शाम तक तो मजे में रियासत का काम करते रहे। दीवान साहब अचेत पड़े हुए थे; किन्तु आँखों से आँसू की धारें बह-बहकर गालों पर आ रही थीं। उस वेदना का कौन अनुमान कर सकता है !

एकाएक द्वार पर एक बग्घी आकर रुकी और उसमें से एक स्त्री उतरकर घर में दाखिल हुई। शोर मच गया—आ गई, आ गई। यह लौंगी थी।

लौंगी आज ही हरिद्वार से चली थी। गुरुसेवक से उसको भेंट इतने आदमियों को जमा देखकर उसका हृदय दहल उठा। उसके

ही और लोग हट गए। केवल मनोरमा, उसकी भाभी और अहिल्या रह गईं।

लौंगी ने दीवान साहब के सिर पर हाथ रखकर भर्रायी हुई आवाज में कहा—प्राणनाथ! क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे?

दीवान साहब की आँखें खुल गईं। उन आँखों में कितनी अपार वेदना थी, किन्तु कितना अपार प्रेम!

उन्होंने दोनों हाथ फैलाकर कहा—लौंगी, और पहले क्यों न आयी?

लौंगी ने दोनों फैले हुए हाथों के बीच अपना सिर दिया और उस अंतिम प्रेमालिंगन के आनन्द में विह्वल हो गई। इस निर्जीव, मरणोन्मुख प्राणी के आलिंगन में उसने उस आत्मबल, विश्वास और तृप्ति का अनुभव किया, जो उसके लिए अभूतपूर्व था। इस आनन्द में वह शोक भूल गई। पचीस वर्ष के दाम्पत्य जीवन में उसने कभी इतना आनन्द न पाया था। निर्दय अविश्वास रह-रहकर उसे तड़पाता रहता था। उसे सदैव यह शंका बनी रहती थी यह डोंगी पार लगती है या मँझधार ही में डूब जाती है। वायु का हलका-सा वेग, लहरों का हलका-सा आंदोलन, नौका का हलका-सा कम्पन उसे भयभीत कर देता था। आज उन सारी शंकाओं और वेदनाओं का अंत हो गया। आज उसे मालूम हुआ कि जिसके चरणों पर मैंने अपने को समर्पित किया था, वह अंत तक मेरा रहा। यह शोकमय कल्पना भी कितनी मधुर और शांतिदायिनी थी।

वह इसी विस्मृति की दशा में थी कि मनोरमा का रोना सुनकर चौंक पड़ी और दीवान साहब के मुख की ओर देखा। तब उसने स्वामी के चरणों पर सिर रख दिया और फूट-फूटकर रोने लगी। एक क्षण में सारे घर में कुहराम मच गया। नौकर चाकर सभी रोने लगे। जिन नौकरों को दीवान साहब के मुख से नित्य घुड़कियाँ मिलती थीं, वह भी रो रहे थे। मृत्यु में मानसिक प्रवृत्तियों को शान्त करने की विलक्षण शक्ति होती है। ऐसे विरले ही प्राणी संसार में होंगे, जिनके अन्त.करण मृत्यु के प्रकाश से अलोकित न हो जाएँ। अगर कोई ऐसा मनुष्य है, तो उसे पशु समझो। हरिसेवक की कृपणता, कठोरता, संकीर्णता, धूर्तता एवं सारे दुर्गुण, जिनके कारण वह अपने जीवन में बदनाम रहे, इस विशाल प्रेम के प्रवाह में बह गए।

आधी रात बीत चुकी थी। लाश अभी तक गुरुसेवक के इंतजार में पड़ी हुई थी। रोनेवाले रो-धोकर चुप हो गए थे। लौंगी शोकगृह से निकलकर छत पर गयी और सड़क की ओर देखने लगी। सैर करनेवालों की सैर तो खत्म हो चुकी थी; मगर मुसाफिरों की सवारियाँ कभी-कभी बँगले के सामने से निकल जाती थीं। लौंगी सोच रही थी, गुरुसेवक अब तक लौटे क्यों नहीं? गाड़ी तो यहाँ दो बजे आ जाती है। क्या अभी दो नहीं बजे? आते ही होंगे। स्टेशन की ओर से आनेवाली हर सवारीगाड़ी को वह उस वक्त तक ध्यान से देखती थी, जब तक

वह बँगले के सामने से न निकल जाती। तब वह अधीर होकर कहती—अब भी नहीं आए!

और मनोरमा बैठी दीवान साहब के अन्तिम उपदेश का आशय समझने की चेष्टा कर रही थी। उसके कानों में ये शब्द गूँज रहे थे—'लौंगी को देखो!'

37

जगदीशपुर के ठाकुरद्वारे में नित्य साधु-महात्मा आते रहते थे। शंखधर उनके पास जा बैठता और उनकी बातें बड़े ध्यान से सुनता। उसके पास चक्रधर की जो तसवीर थी, उससे मन-ही-मन साधुओं की सूरत का मिलान करता; पर उस सूरत का साधु उसे न दिखाई देता था। किसी की भी बातचीत से चक्रधर की टोह न मिलती थी।

एक दिन मनोरमा के साथ शंखधर भी लौंगी के पास गया। लौंगी बड़ी देर तक अपनी तीर्थयात्रा की चर्चा करती रही। शंखधर उसकी बातें गौर से सुनने के बाद बोला—क्यों दाई, तुम्हें तो साधु-सन्यासी बहुत मिले होंगे?

लौंगी ने कहा—हाँ बेटा, मिले क्यों नहीं। एक संन्यासी तो ऐसा मिला था कि हूबहू तुम्हारे बाबूजी से सूरत मिलती थी। बदले हुए भेस में ठीक तो न पहचान सकी; लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता था कि वही हैं।

शंखधर ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—जटा बड़ी-बड़ी थीं?

लौंगी—नहीं, जटा-सटा तो नहीं थी, न वस्त्र ही गेरुआ रंग के थे। हाँ, कमंडल अवश्य लिये हुए थे। जितने दिन मैं जगन्नाथपुरी में रही, वह एक बार रोज मेरे पास आकर पूछ जाते—क्यों माताजी, आपको किसी बात का कष्ट तो नहीं है? और यात्रियों से भी वह यही बात पूछते थे। जिस धर्मशाला में मैं टिकी थी, उसी में एक दिन एक यात्री को हैजा हो गया। सन्यासीजी उसे उठवाकर अस्पताल ले गये और दवा करायी। तीसरे दिन मैंने उस यात्री को फिर देखा। वह घर लौटता था। मालूम होता था, सन्यासीजी अमीर हैं। दरिद्र यात्रियों को भोजन करा देते और जिनके पास किराए के रुपये न होते; उन्हें रुपये भी देते थे। वहाँ तो लोग कहते थे कि यह कोई बड़े राजा संन्यासी हो गए हैं! नोरा, तुमसे क्या कहूँ, सूरत बिलकुल बाबूजी से मिलती थी। मैंने नाम पूछा, तो सेवानन्द बताया। घर पूछा, तो मुसकराकर बोले—सेवानगर। एक दिन मैं तो मरते-मरते बची। सेवानन्द न पहुँच जाते, तो मर ही गई थी। एक दिन मैंने उनको नेवता दिया। जब वह खाने बैठे तो मैंने यहाँ का जिक्र छेड़ दिया। मैं देखना चाहती थी कि इन बातों से उनके दिल पर क्या असर होता है; मगर उन्होंने कुछ भी न पूछा। मालूम होता था, मेरी बातें उन्हें अच्छी नहीं लग रही थीं। आखि

रही। उस दिन से वह फिर न दिखाई दिए। जब लोगों से पूछा, तो मालूम हुआ कि रामेश्वर चले गये। एक जगह जमकर नहीं रहते, इधर-उधर विचरते ही रहते हैं। क्यों नोरा, बाबूजी होते तो जगदीशपुर का नाम सुनकर कुछ तो कहते ?

मनोरमा ने तो कुछ उत्तर न दिया, न जाने क्या सोचने लगी थी; पर शंखधर बोला—दाई, तुमने यहाँ तार क्यों न दे दिया ? हम लोग फौरन पहुँच जाते।

लौंगी—अरे, तो कोई बात भी तो हो बेटा, न जाने कौन था, कौन नहीं था। बिना जाने-बूझे क्यों तार देती ?

मनोरमा ने गम्भीर भाव से कहा—मान लो वही होते, तो क्या तुम समझते हो कि वह हमारे साथ आते। कभी नहीं। आना होता, तो जाते ही क्यों ?

शंखधर—किस बात पर नाराज होकर चले गये थे, अम्माँ ? कोई न कोई बात जरूर हुई होगी ? अम्माँजी से पूछता हूँ, तो रोने लगती हैं; तुमसे पूछता हूँ, तो तुम बताती ही नहीं।

मनोरमा—मैं किसी के मन की बात क्या जानूँ ? किसी से कुछ कहा-सुना थोड़े ही।

शंखधर—मैं यदि उन्हें एक बार देख पाऊँ, तो फिर कभी साथ ही न छोड़ूँ। क्यों दाई, आजकल वह संन्यासीजी कहाँ होंगे ?

मनोरमा—अब दाई यह क्या जाने ? संन्यासी कहीं एक जगह रहते हैं, जो वह बता दे।

शंखधर—अच्छा दाई, तुम्हारे ख्याल में संन्यासीजी की उम्र क्या रही होगी ?

लौंगी—मैं समझती हूँ, उनकी उम्र कोई 40 वर्ष की होगी।

शंखधर ने कुछ हिसाब करके कहा—रानी अम्माँ, यही तो बाबूजी की भी उम्र होगी।

मनोरमा ने बनावटी क्रोध से कहा—हाँ, हाँ वही संन्यासी तुम्हारे बाबूजी हैं। बस, अब माना। अभी उम्र 40 वर्ष की कैसे हो जाएगी ?

शंखधर समझ गया कि मनोरमा को यह जिक्र बुरा लगता है। इस विषय में फिर से मुँह से एक शब्द न निकाला; लेकिन वहाँ रहना अब उसके लिए असम्भव था। रामेश्वर का हाल तो उसने भूगोल में पढ़ा था; लेकिन अब उस अल्पज्ञान से उसे संतोष न हो सकता था। वह जानना चाहता था कि रामेश्वर को कौन रेल जाती है, वहाँ लोग जाकर ठहरते कहाँ हैं ? घर के पुस्तकालय में शायद कोई ऐसा ग्रंथ मिल जाए, यह सोचकर वह बाहर आया और शोफर से बोला—मुझे घर पहुँचा दो।

शोफर—महारानीजी न चलेंगी ?

शंखधर—मुझे जरूरी काम है, तुम पहुँचाकर लौट आना। रानी अम्माँ से कह देना, वह चले गये।

वह घर आकर पुस्तकालय में जा रहा था कि गुरुसेवक सिंह मिल गए। आज कल यह महाशय दीवानी के पद के लिए जोर लगा रहे थे, हर एक काम बड़ी मुस्तैदी से करते; पर मालूम नहीं, राजा साहब क्यों इन्हें स्वीकार न करते थे। मनोरमा कह चुकी थी, अहिल्या ने भी सिफारिश की पर राजा साहब अभी तक टालते जाते थे। शंखधर उन्हें देखते ही बोला—गुरुजी, जरा कृपा करके मुझे पुस्तकालय से कोई ऐसी पुस्तक निकाल दीजिए, जिसमें तीर्थस्थानों का पूरा-पूरा हाल लिखा हो।

गुरुसेवक ने कहा—ऐसी तो कोई किताब पुस्तकालय में नहीं है।

शंखधर—अच्छा, तो मेरे लिए कोई ऐसी किताब मँगवा दीजिए।

यह कहकर वह लौटा ही था कि कुछ सोचकर बाहर चला गया और एक मोटर को तैयार कराके शहर चला। अभी उसका तेरहवाँ ही साल था; लेकिन चरित्र में इतनी दृढ़ता थी कि जो बात मन में ठान लेता, उसे पूरा ही करके छोड़ता। शहर जाकर उसने अँगरेजी पुस्तकों की कई दूकानों से तीर्थयात्रा सम्बन्धी पुस्तकें देखीं और किताबों का एक बंडल लेकर घर आया।

राजा साहब भोजन करने बैठे, शंखधर वहाँ न था। अहिल्या ने जाकर देखा, तो वह अपने कमरे में बैठा कोई किताब देख रहा था।

अहिल्या ने कहा—चलकर खाना खा लो, दादाजी बुला रहे हैं।

शंखधर—अम्मीजी, आज मुझे बिलकुल भूख नहीं है।

अहिल्या—कोई नई किताब लाये हो क्या? अभी भूख क्यों नहीं है? कौन सी किताब है?

शंखधर—नहीं अम्मीजी, मुझे भूख नहीं लगी।

अहिल्या ने उसके सामने से खुली हुई किताब उठा ली और दो-चार पंक्तियाँ पढ़ कर बोली—इसमें तो तीर्थों का हाल लिखा हुआ है—जगन्नाथ, बदरीनाथ काशी और रामेश्वर। यह किताब कहाँ से लाये?

शंखधर—आज ही तो बाजार से लाया हूँ। दाई कहती थी। कि बाबूजी की सूरत का एक संन्यासी उन्हें जगन्नाथ में मिला था, और वह वहाँ से रामेश्वर चला गया।

अहिल्या ने शंखधर को दया-सजल नेत्रों से देखा; पर उसके मुख से कोई बात न निकली। आह! मेरे लाल! तुझमें इतनी पितृभक्ति क्यों है? तू पिता के वियोग में क्यों इतना पागल हो गया है? तुझे तो पिता की सूरत भी याद नहीं। तुझे तो इतना भी याद नहीं कि कब पिता की गोद में बैठा था, कब उनकी प्यार की बातें सुनी थीं। फिर भी तुझे उन पर इतना प्रेम है? और वह इतने दि… न जाने कहाँ बैठे हुए हैं, सुधि नहीं लेते। वह मुझसे अप्रसन्न हैं, सो…

अपराध किया है ? तुमसे क्यों रुष्ट हैं ? नाथ ! तुमने मेरे कारण अपने आँखों के तारे पुत्र को क्यों त्याग दिया ? तुम्हें क्या मालूम कि जिस पुत्र की ओर से तुमने अपना हृदय पत्थर कर लिया है, वह तुम्हारे नाम की उपासना करता है, तुम्हारी मूर्ति की पूजा करता है। आह ! यह वियोगाग्नि उसके कोमल हृदय को क्या जला न डालेगी ? क्या इस राज्य को पाने का यह दंड है ? इस अभागे राज्य ने हम दोनों को अनाथ कर दिया।

अहिल्या का मातृहृदय करुणा से पुलकित हो उठा। उसने शंखधर को छाती से लगा लिया और आँसुओं के वेग को दबाती हुई बोली—बेटा, तुम्हारा उठने को जी न चाहता हो, तो यहीं लाऊँ ? बैठे-बैठे कुछ थोड़ा खा लो।

शंखधर—अच्छा, खा लूंगा अम्माँ, किसी से खाना भेजवा दो, तुम क्यों लाओगी।

अहिल्या एक क्षण में छोटी-सी थाली में भोजन लेकर आयी और शंखधर के सामने रखकर बैठ गई।

शंखधर को इस समय खाने की रुचि न थी, यह बात नहीं थी। अब तक उसे निश्चित रूप से अपने पिता के विषय में कुछ न मालूम था। वह जानता था कि वह किसी दूसरी जगह आराम से होंगे। आज उसे यह यह मालूम हुआ था कि कि संन्यासी हो गए हैं, अब वह राजसी भोजन कैसे करता ? इसीलिए उसने अहिल्या से कहा था कि भोजन किसी के हाथ भेज देना, तुम न आना। अब यह थाल देखकर वह बड़े धर्म संकट में पड़ा। अगर नहीं खाता, तो अहिल्या दुखी होती है और खाता है, तो कौर मुँह में नहीं जाता। उसे खयाल आया, मैं यहाँ चांदी के थाल में मोहनभोग उड़ाने बैठा हूँ और बाबूजी पर इस समय न जाने क्या गुजर रही होगी। बेचारे किसी पेड़ के नीचे पड़े होंगे, न जाने आज खाया भी है या नहीं। वह थाली पर बैठा; लेकिन कौर उठाते ही फूट-फूटकर रोने लगा। अहिल्या उसके मन का भाव ताड़ गई और स्वयं रोने लगी। कौन किसे समझाता ?

आज से अहिल्या को हरदम यही संशय रहने लगा कि शंखधर पिता की खोज में कहीं भाग न जाए। वह उसे अकेले कहीं खेलने तक न जाने देती, उसका बाजार भी आना-जाना बन्द हो गया। उसने सबको मना कर दिया कि शंखधर के सामने उसके पिता की चर्चा न करें। यह भय किसी भयंकर जन्तु की भाँति उसे नित्य घूरा करता था कि कहीं शंखधर अपने पिता के गृहत्याग का कारण न जान ले, कहीं वह यह न जान जाए कि बाबूजी को राजपाट से घृणा है; नहीं तो फिर इसे कौन रोकेगा ?

उसे अब हरदम यही पछतावा होता रहता कि मैं शंखधर को लेकर स्वामी के साथ क्यों न चली गयी ? राज्य के लोभ में वह पति को पहले ही खो बैठी, कहीं पुत्र को भी तो न खो बैठेगी ? सुख और विलास की वस्तुओं से शंखधर की दिन-

दिन बढ़नेवाली उदासीनता देख-देखकर वह चिन्ता के मारे और भी घुली जाती थी।

38

ठाकुर हरिसेवकसिंह का क्रिया-कर्म हो जाने के बाद एक दिन लौंगी ने अपना कपड़ा-लत्ता बाँधना शुरू किया। उसके पास रुपये-पैसे जो कुछ थे, सब गुरुसेवक को सौंपकर बोली—भैया अब किसी गाँव में जाकर रहूँगी, यहाँ मुझसे नहीं रहा जाता।

वास्तव में लौंगी से अब इस घर में न रहा जाता था। घर की एक-एक चीज उसे काटने दौड़ती थी। 25 वर्ष तक इस घर की स्वामिनी बनी रहने के बाद अब वह किसी की आश्रिता न बन सकती थी। सब कुछ उसी के हाथों का किया हुआ था; पर अब उसका न था। यह घर उसी ने बनवाया था। उसने घर बनवाने पर जोर न दिया होता, तो ठाकुर साहब अभी तक किसी किराए के घर में पड़े होते। घर का सारा सामान उसी का खरीदा हुआ था; पर अब उसका कुछ न था। सब कुछ स्वामी के साथ चला गया। वैधव्य के शोक के साथ यह भाव कि मैं किसी दूसरे की रोटियों पर पड़ी हूँ, उसके लिए असह्य था। हालाँकि गुरुसेवक पहले से अब कहीं ज्यादा उसका लिहाज करते थे और कोई ऐसी बात न होने देते थे, जिससे उसे रंज हो। फिर भी कभी-कभी ऐसी बातें हो ही जाती थीं, जो उसकी पराधीनता की याद दिला देती थीं। कोई नौकर अब उससे अपनी तलब माँगने न आता था; रियासत के कर्मचारी अब उसकी खुशामद करने न आते थे। गुरुसेवक और उसकी स्त्री के व्यवहार में तो किसी तरह की त्रुटि न थी।

लौंगी को उन लोगों से जैसी आशा थी, उससे कहीं अच्छा बर्ताव उनके साथ किया जाता था; लेकिन महरियाँ अब लड़ी जिसका मुँह जोहती हैं, वह कोई और ही है; नौकर जिसका हुक्म सुनते दौड़कर आते हैं, वह भी और ही कोई है। देहात के असामी नजराने या लगान के रुपये अब उसके हाथ में नहीं देते, शहर की दूकानों के किरायेदार भी अब उसे किराया देने नहीं आते। गुरुसेवक ने अपने मुँह से किसी से कुछ नहीं कहा है। प्रथा और रुचि ने आप ही आप सारी व्यवस्था उलट-पलट कर दी है। पर ये ही वे बातें हैं, जिनसे उसके आहत हृदय को ठेस लगती है और उसकी मधुर स्मृतियों में एक क्षण के लिए ग्लानि की छाया आ पड़ती है। इसीलिए अब वह यहाँ से जाकर किसी देहात में रह[illegible]ती है। आखिर जब ठाकुर साहब ने उसके नाम कुछ नहीं लिखा, [illegible] की भाँति निकालकर फेंक दिया, तो वह यहाँ क्यों पड़ी दूसरों

अब एक टूटे-फूटे झोंपड़े और एक टुकड़े रोटी के सिवा और कुछ नहीं चाहिए। इसके लिए वह अपने हाथों से मेहनत कर सकती है। जहां रहेगी, वहीं अपने गुजर भर को कमा लेगी। उसने जो कुछ किया, यह उसी का तो फल है। वह अपनी झोंपड़ी में पड़ी रहती, तो आज क्यों यह अनादर और अपमान होता? झोंपड़ी छोड़कर महल के सुख भोगने का यही दंड है।

गुरुसेवक ने कहा—आखिर सुनें तो, कहां जाने का विचार कर रही हो?

लौंगी—जहां भगवान् ले जाएंगे, वहां चली जाऊंगी; कोई नैहर या दूसरी ससुराल है, जिसका नाम बता दूं?

गुरुसेवक—सोचती हो, तुम चली जाओगी, तो मेरी कितनी बदनामी होगी? दुनिया यही कहेगी कि इनसे एक बेवा का पालन न हो सका। उसे घर से निकाल दिया। मेरे लिए कहीं मुंह दिखाने की भी जगह न रहेगी। तुम्हें इस घर में जो शिकायत हो, वह मुझसे कहो; जिस बात की जरूरत हो, मुझसे बतला दो। अगर मेरी तरफ से उसमें जरा भी कोर-कसर देखो, तो फिर तुम्हें अख्तियार है, जो चाहे करना। यों मैं कभी न जाने दूंगा।

लौंगी—क्या बांधकर रखोगे?

गुरुसेवक—हां, बांधकर रखेंगे।

अगर उम्र भर में लौंगी को गुरुसेवक की कोई बात पसंद आयी तो उनका यही दुराग्रहपूर्ण वाक्य था। लौंगी का हृदय पुलकित हो गया। इस वाक्य में उसे आत्मीयता भरी हुई जान पड़ी। उसने जरा तेज होकर कहा—बांधकर क्यों रखोगे? क्या तुम्हारी बेसाही हूं।

गुरुसेवक—हां बेसाही हो! मैंने नहीं बेसाहा, मेरे बाप ने तो बेसाहा है। बेसाही न होतीं, तो तुम तीस साल यहां रहतीं कैसे? कोई और आकर क्यों न रह गई? दादाजी चाहते, तो एक दर्जन ब्याह कर सकते थे, कौड़ियों रखेलियां रह सकते थे। यह सब उन्होंने क्यों नहीं किया? जिस वक्त मेरी माता का स्वर्ग-वास हुआ, उस वक्त उनकी जवानी की उम्र थी; मगर उनका कट्टर शत्रु भी आज यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि उनके आचरण खराब थे। यह तुम्हारी ही सेवा की जंजीर थी, जिसने उन्हें बांध रखा, नहीं तो आज हम लोगों का कहीं पता न होता। मैं सत्य कहता हूं, अगर तुमने घर के बाहर कदम निकाला तो चाहे दुनिया मुझे बदनाम ही करे, मैं तुम्हारे पैर तोड़कर रख दूंगा। क्या तुम अपने मन की हो कि जो चाहोगी, करोगी और जहां चाहोगी, जाओगी और कोई न बोलेगा? तुम्हारे नाम के साथ मेरी और मेरे पूज्य बाप की इज्जत बंधी हुई है।

लौंगी के जी में आया कि गुरुसेवक के चरणों पर सिर रखकर रोऊं और छाती से लगाकर कहूं—बेटा, मैंने तो तुझे गोद में खिलाया है, तुझे छोड़कर भला मैं कहां जा सकती हूं! लेकिन उसने क्रुद्ध भाव से कहा—यह तो अच्छी दिल्लगी

हुई। यह मुझे बाँधकर रखेंगे !

गुरुसेवक तो झल्लाए हुए बाहर चले गये और लौंगी अपने कमरे में जाकर खूब रोयी। गुरुसेवक क्या किसी महरी से कह सकते थे—हम तुम्हें बाँधकर रखेंगे ? कभी नहीं; लेकिन अपनी स्त्री से वह यह बात कह सकते हैं; क्योंकि उसके साथ उनकी इज्जत बँधी हुई है। थोड़ी देर के बाद वह एक महरी से बोली—सुनती है रे, मेरे सिर में दर्द हो रहा है। जरा आकर दबा दे।

आज कई महीने के बाद लौंगी ने सिर दबाने का हुक्म दिया था। इधर उसे किसी से कुछ कहते हुए संकोच होता था कि कहीं यह टाल न जाए। नौकरों के दिल में उसके प्रति वही श्रद्धा थी, जो पहले थी। लौंगी ने स्वयं उनसे कुछ काम लेना छोड़ दिया था। इन झगड़ों की भनक भी नौकरों के कानों में पड़ गई थी। उन्होंने अनुमान किया था कि गुरुसेवक ने लौंगी को किसी बात पर डाँटा है, इसलिए स्वभावतः उनकी सहानुभूति लौंगी के साथ हो गई थी। वे आपस में इस विषय पर मनमानी टिप्पणियाँ कर रहे थे। महरी उसका हुक्म सुनते ही तेल लाकर उसका सिर दबाने लगी। उसे मनोभावों को प्रकट करने के लिए यह अवसर बहुत ही उपयुक्त जान पड़ा। बोली—आज छोटे बाबू किस बात पर बिगड़ रहे थे मालकिन ? कमरे के बाहर सुनाई दे रहा था। तुम यहाँ से चली गयीं मालकिन, तो एक नौकर भी न रहेगा। सबों ने सोच लिया है कि जिस दिन मालकिन यहाँ से चली जाएँगी, हम सब भी भाग खड़े होंगे। अन्याय हम लोगों से नहीं देखा जाता।

लौंगी ने दीन भाव से कहा—नसीब ही खोटा है, नहीं तो क्यों किसी की झिड़कियाँ सुननी पड़तीं ?

महरी—नहीं मालकिन, नसीबों को न खोटा कहो। नसीब तो जैसा तुम्हारा है, वैसा किसी का क्या होगा ? ठाकुर साहब मरते दम तक तुम्हारा नाम रटा किए। तुम क्यों जाती हो, किसी की मजाल क्या है कि तुमसे कुछ कह सके ? यह सारी मरजादा तो तुम्हारी जोड़ी हुई है। इसे कौन ले सकता है ? ठाकुर साहब को जो तुमसे सुख मिला, वह क्या किसी ब्याहता से मिल सकता था ?

सहसा मनोरमा ने कमरे में प्रवेश किया और लौंगी को सिर में तेल डलवाते देखकर बोली—कैसा जी है अम्माँ ! सिर दर्द है क्या ?

लौंगी—नहीं बेटा, जी तो अच्छा है। आओ बैठो।

मनोरमा ने महरी से कहा—तुम जाओ, मैं दबाए देती हूँ। दरवाजे पर खड़ी होकर कुछ सुनना नहीं, दूर चली जाना।

महरी इस समय यहाँ की बातें सुनने के लिए अपना सर्वस्व दे सकती थी, यह हुक्म सुनकर मन में मनोरमा को कोसती हुई चली गयी। मनोरमा सिर दबाने बैठी, तो लौंगी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—नहीं बेटा, तुम रहने दो। दर्द नहीं था, यों ही बुला लिया था। नहीं, मैं न दबवाऊँगी। यह उचित नहीं है।

कोई देखे तो कहे कि बुढ़िया पगला गई है, रानी से सिर दबवाती है।

मनोरमा ने सिर दबाते हुए कहा—रानी जहाँ हूँ, यहाँ तो तुम्हारी गोद की खिलायी नोरा हूँ। आज तो भैयाजी यहाँ से जाकर तुम्हारे ऊपर बहुत बिगड़ते रहे। मैं उसकी टाँग तोड़ दूँगा, गर्दन काट लूँगा। कितना पूछा, कुछ बताओ तो, बात क्या है? पर गुस्से में कुछ सुनें ही न। भाई हैं तो क्या; पर उनका अन्याय मुझसे भी नहीं देखा जाता। वह समझते होंगे कि इस घर का मालिक हूँ, दादाजी मेरे नाम सब छोड़ गए हैं। मैं जिसे चाहूँ, रखूँ; जिसे चाहूँ निकालूँ। मगर दादा-जी उनकी नीयत को पहले ताड़ गए थे। मैंने अब तक तुमसे नहीं कहा अम्माँजी। कुछ तो मौका न मिला और कुछ भैया का लिहाज था; पर आज उनकी बातें सुनकर कहती हूँ कि पिताजी ने अपनी सारी जायदाद तुम्हारे नाम लिख दी है।

लौंगी पर इस सूचना का जरा भी असर नहीं हुआ। किसी प्रकार का ल्लास, उत्सुकता या गर्व उसके चेहरे पर न दिखाई दिया। वह उदासीन भाव से रपाई पर पड़ी रही।

मनोरमा ने फिर कहा—मेरे पास उनकी लिखायी हुई वसीयत रखी हुई है ीर मुझी को उन्होंने उसका साक्षी बनाया है। जब ये महाशय वसीयत देखेंगे, तो आँखें खुलेंगी।

लौंगी ने गम्भीर स्वर में कहा—नोरा, यह वसीयतनामा ले जाकर उन्हीं को दे दो। तुम्हारे दादाजी ने व्यर्थ ही वसीयत लिखायी। मैं उनकी जायदाद की भूखी न थी। उनके प्रेम की भूखी थी। और ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ बेटी, कि इस विषय में मेरा जैसा भाग्य बहुत कम स्त्रियों का होगा। मैं उनका प्रेम ध पाकर ही सन्तुष्ट हूँ। इसके सिवा अब मुझे और किसी धन की इच्छा नहीं है अगर मैं अपने सत पर हूँ, तो मुझे रोटी-कपड़े का कष्ट कभी न होगा। गुरुसेव को मैंने गोद में खिलाया है, उसे पाला-पोसा है। वह मेरे स्वामी का बेटा उसका हक मैं किस तरह छीन सकती हूँ? उसके सामने की थाली कैसे ख सकती हूँ? वह कागज फाड़कर फेंक दो। यह कागज लिखकर उन्होंने अपने और गुरुसेवक के साथ अन्याय किया है। गुरुसेवक अपने बाप का बेटा है, तो उसी आदर से रखेगा। वह मुझे माने या न माने, मैं उसे अपना ही समझती तुम सिरहाने बैठी मेरा सिर दबा रही हो, क्या धन में इतना सुख कभी सकता है। गुरुसेवक के मुँह से 'अम्माँ' सुनकर मुझे वह खुशी होगी, जो संस रानी बनकर भी नहीं हो सकती, तुम उनसे इतना ही कह देना।

यह कहते-कहते लौंगी की आँखें सजल हो गईं। मनोरमा उसकी ओ श्रद्धा, गर्व और आश्चर्य से ताक रही थी, मानों वह कोई देवी हो।

रानी वसुमती बहुत दिनों से स्नान, व्रत, ध्यान तथा कीर्तन में मग्न रहती थीं, रियासत से उन्हें कोई सरोकार ही न था। भक्ति ने उनकी वासनाओं को शान्त कर दिया था। बहुत सूक्ष्म आहार करती और वह भी केवल एक बार। वस्त्राभूषण से भी उन्हें विशेष रुचि न थी। देखने से मालूम होता था कि कोई तपस्विनी हैं। रानी रामप्रिया उसी एक रंग पर चली जाती थी। इधर उन्हें संगीत से विशेष अनुराग हो गया था, सबसे अलग अपनी कविता कुटीर में बैठा संगीत का अभ्यास करती रहती थीं। पुराने सिक्के, देश-देशान्तरों के टिकट और इसी तरह की अनोखी चीजों का संग्रह करने की उन्हें धुन थी। उनका कमरा एक छोटा-मोटा अजायबखाना था। उन्होंने शुरू ही से अपने को दुनिया के झमेलों से अलग रखा था। इधर कुछ दिनों से रानी रोहिणी का चित्त भी भक्ति की ओर झुका हुआ नजर आता था। वही, जो पहले ईर्ष्या की अग्नि में जला करती थी, अब वह साक्षात् क्षमा और दया की देवी बन गई थी। अहिल्या से उसे बहुत प्रेम था, कभी-कभी आकर घण्टों बैठी रहती। शंखधर भी उससे बहुत हिल गया था। राजा साहब तो उसी के दास थे, जो शंखधर को प्यार करे। रोहिणी ने शंखधर को गोद में खिला-खिलाकर उसका मनोमालिन्य मिटा दिया। एक दिन रोहिणी ने शंखधर को एक सोने की घड़ी इनाम दी। शंखधर को पहली बार इनाम का मजा मिला, फूला न समाया; लेकिन मनोरमा अभी तक रोहिणी से चौंकती रहती थी। वह कुछ साफ-साफ तो न कह सकती थी; पर शंखधर का रोहिणी के पास आना-जाना उसे अच्छा न लगता था।

जिस दिन मनोरमा अपने पिता की वसीयत लेकर लौंगी के पास गयी थी, उसी दिन की बात है—सन्ध्या का समय था। राजा साहब पाईंबाग में हौज के किनारे बैठे मछलियों को आटे की गोलियाँ खिला रहे थे। एकाएक पाँव की आहट पाकर सिर उठाया तो देखा, रोहिणी आकर खड़ी हो गई है। आज रोहिणी को देखकर राजा साहब को बड़ी करुणा आयी! वह नैराश्य और वेदना की सजीव मूर्ति सी दिखाई देती थी, मानो कह रही थी—तुमने मुझे क्यों यह दंड दे रखा है? मेरा क्या अपराध है? क्या ईश्वर ने मुझे सन्तान न दी, तो इसमें मेरा कोई दोष था? तुम अपने भाग्य का बदला मुझसे लेना चाहते हो? अगर मेरे बच्चे बचपन ही मर गये थे, तो क्या उसका यह दंड था?

राजा साहब ने कातर स्वर से पूछा—कैसे रही बेटी।

रोहिणी—आपको यहाँ बैठे देखा, चली आयी। मेरा आना बुरा लगा हो, तो चली जाऊँ?

राजा साहब ने व्यथित कंठ से कहा—रोहिणी, क्यों लज्जित करती हो? मैं तो स्वयं लज्जित हूँ। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है और नहीं जानता, मुझे उसका क्या प्रायश्चित करना पड़ेगा।

रोहिणी ने सूखी हँसी हँसकर कहा—आपने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया। आपने वही किया, जो सभी पुरुष करते हैं। और लोग छिपे-छिपे करते हैं; राजा लोग वही काम खुले-खुले करते हैं स्त्री कभी पुरुषों का खिलौना है, कभी उनके पाँव की जूती। इन्हीं दो अस्थाओं में उसकी उम्र बीत जाती है। यह आपका दोष नहीं; हम स्त्रियों को ईश्वर ने इसीलिए बनाया ही है। हमें यह सब चुपचाप सहना चाहिए। गिला या मान करने का दंड बहुत कठोर होता है, और विरोध करना तो जीवन का सर्वनाश करना है।

यह व्यंग्य न था, बल्कि रोहिणी की दशा की सच्ची व निष्पक्ष आलोचना थी। राजा साहब सिर झुकाए सुनते रहे। उनके मुँह से कोई जवाब न निकला। उनकी दशा उस शराबी की सी थी, जिसने नशे में तो हत्या कर डाली हो; किन्तु अब होश में आने पर लाश को देखकर पश्चात्ताप और वेदना से उसका हृदय फटा जाता हो।

रोहिणी फिर बोली—आज सोलह वर्ष हुए, जब मैं रूठकर घर से बाहर निकल भागी थी। बाबू चक्रधर के आग्रह से लौट आयी। वह दिन है और आज का दिन है, कभी आपने भूलकर भी पूछा कि तू मरती है या जीती? इससे तो यह कहीं अच्छा होता कि आपने मुझे चले जाने दिया होता। क्या आप समझते हैं कि मैं कुमार्ग की ओर जाती? यह कुलटाओं का काम है। मैं गंगा की गोद के सिवा और कहीं न जाती। एक युग तक घोर मानसिक पीड़ा सहने से तो एक क्षण का कष्ट कहीं अच्छा होता; लेकिन आशा! हाय आशा! इसका बुरा हो। यही मुझे लौटा लायी। चक्रधर का तो केवल बहाना था। यही अभागिन आशा मुझे लौटा लायी और इसी ने मुझे फुसला-फुसलाकर एक युग कटवा दिया; लेकिन आपको कभी मुझ पर दया न आयी। आपको कुछ खबर है, यह सोलह वर्ष के दिन मैंने कैसे काटे हैं? किसी को संगीत में आनन्द मिलता हो, मुझे नहीं मिलता। किसी को पूजा-भक्ति में सन्तोष होता हो, मुझे नहीं होता। मैं नैराश्य की उस सीमा तक नहीं पहुँची। मैं पुरुष के रहते वैधव्य की कल्पना नहीं कर सकती। मन की गति तो विचित्र है। वही पीड़ा, जो बाल-विधवा सहती है और सहने में अपना गौरव समझती है, परित्यक्ता के लिए असह्य हो जाती है। मैं राजपूत की बेटी हूँ, मरना भी जानती हूँ। कितनी बार मैंने आत्मघात करने का निश्चय किया, वह आप न जानेंगे। लेकिन हर दफे यही सोचकर रुक गई थी कि मेरे मर जाने से तो आप और भी सुखी होंगे। अगर यह विश्वास होता कि आप मेरी लाश पर आकर आँसू

की चार बूँदें गिरा देंगे, तो शायद मैं कभी की प्रस्थान कर चुकी होती। मैं इतनी उदार नहीं। मैंने हिंसात्मक भावों को मन से निकालने की कितनी चेष्टा की है, यह भी आप न जानेंगे; लेकिन अपनी सौताओं की दुर्दशा ही ने मुझे धैर्य दिया है, नहीं तो अब तक मैं न जाने क्या कर बैठती। ईर्ष्या से उन्मत्त स्त्री जो कुछ कर सकती है, उसकी अभी आप शायद कल्पना नहीं कर सकते; अगर सीता भी अपनी आँख से वह सब देखतीं, जो मैं आज 16 वर्ष से देख रही हूँ, तो सीता न रहतीं। सीता बनाने के लिए राम जैसा पुरुष चाहिए।

राजा साहब ने अनुताप से कम्पित स्वर में कहा—रोहिणी, क्या सारा अपराध मेरा ही है?

रोहिणी—नहीं, आपका कोई अपराध नहीं है, सारा अपराध मेरे ही कर्मों का है। वह स्त्री सचमुच पिशाचिनी है, जो अपने पुरुष का अनभल सोचे। मुझे आपका अनभल सोचते हुए 16 वर्ष हो गए। मेरी हार्दिक इच्छा यही रही कि आपका बुरा हो और मैं देखूँ, लेकिन इसलिए नहीं कि आपको दुखी देखकर मुझे आनन्द होगा। नहीं, अभी मेरा इतना अधःपतन नहीं हुआ। मैं आपका अनभल केवल इसलिए चाहती थी कि आपकी आँखें खुलें, आप खोटे और खरे को पहचानें। शायद तब आपको मेरी याद आती, शायद तब मुझे अपना खोया हुआ स्थान पाने का अवसर मिलता। तब मैं सिद्ध कर देती कि आप मुझे जितनी नीच समझ रहे हैं, उतनी नीच नहीं हूँ। मैं आपको अपनी सेवा से लज्जित करना चाहती थी; लेकिन यह अवसर भी न मिला।

राजा साहब को नारी हृदय की तह तक पहुँचने का ऐसा अवसर कभी न मिला था। उन्हें विश्वास था कि अगर मैं मर जाऊँ तो रोहिणी की आँखों से आँसू न आएँगे। वह अपने हृदय से उसके हृदय को परखते। उनका हृदय रोहिणी की ओर से वज्र हो गया था। अगर मर जाती, तो निस्सन्देह उनकी आँखों से आँसू न आते; पर आज रोहिणी की बातें सुनकर उनका पत्थर-सा हृदय नरम पड़ गया। आह! इस हिंसा में कितनी कोमलता है! मुझे परास्त भी करना चाहती है, तो सेवा के अस्त्र से। इससे तीक्ष्ण उसके पास कोई अस्त्र नहीं!

उन्होंने गद्गद कंठ से कहा—क्या कहूँ रोहिणी, अगर मैं जानता कि मेरे अनभल ही से तुम्हारा उद्धार होगा, तो इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करता।

अहिल्या को आते देखकर रोहिणी ने कुछ उत्तर न दिया। जरा देर वहीं खड़ी रहकर दूसरी तरफ चली गयी। राजा साहब के दिल पर से एक बोझा-सा उठ गया। उन्हें अपनी निष्ठुरता पर पछतावा हो रहा था। आज उन्हें मालूम हुआ कि रोहिणी का चरित्र समझने में उनसे कैसी भयंकर भूल हुई। वहाँ उनसे न रहा गया। जी यही चाहता था कि चलकर रोहिणी से अपना अप[illegible] कराऊँ। बात बना थी और मैं क्या समझे बैठा था। यही बातें अगर [illegible]नी होतीं, तो हम दोनों में क्यों इतना मनोमालिन्य रहता?

नहीं जानता; पर मुझसे तो इसने एक बार भी हँसकर बात की होती, एक बार भी मेरा हाथ पकड़कर कहती कि मैं तुम्हें न छोड़ूँगी, तो मैं कभी उसकी उपेक्षा न कर सकता; लेकिन स्त्री मानिनी होती है, वह मेरी खुशामद क्यों करती ? सारा अपराध मेरा है। मुझे उसके पास जाना चाहिए था।

सहसा उनके मन में प्रश्न उठा—आज रोहिणी ने क्यों मुझसे ये बातें कीं ? जो काम करने के लिए वह अपने को बीस वर्ष तक राजी न कर सकी, वह आज क्यों किया ? इस प्रश्न के साथ ही राजा साहब के मन में शंका होने लगी। आज उसके मुख पर कितनी दीनता थी। बातें करते-करते उसकी आँखें भर-भर आती थीं। उसका कंठ स्वर भी कांप रहा था। उसके मुख पर इतनी दीनता कभी न दिखाई देती थी। उसके मुखमंडल पर तो गर्व की आभा झलकती रहती थी। मुझे देखते ही वह अभिमान से गर्दन उठाकर मुंह फर लिया करती थी। आज यह कायापलट क्यों हो गया।

राजा साहब ज्यों-ज्यों इस विषय की मीमांसा करते थे, त्यों-त्यों उनकी शंका बढ़ती जाती थी। रात आधी से अधिक बीत गई थी ! रनिवास में सन्नाटा छाया हुआ था। नौकर-चाकर भी सभी सो गए थे; पर उनकी आंखों में नींद न थी। वह शंका उन्हें उद्विग्न कर रही थी।

आखिर राजा साहब से लेटे न रहा गया। वह चारपाई से उठे और आहिस्ता आहिस्ता रोहिणी के कमरे की ओर चले। उसकी ड्योढ़ी पर चौकीदारिन से भेंट हुई। उन्हें इस समय यहां देखकर वह अवाक् रह गई। जिस भवन में इन्होंने बीस वर्ष तक कदम नहीं रखा, उधर आज कैसे भूल पड़े ? उसने राजा साहब के मुख की ओर देखा, मानो पूछ रही थी—आप क्या चाहते हैं ?

राजा साहब ने पूछा—छोटी रानी क्या कर रही हैं ?

चौकीदारिन ने कहा—इस समय तो सरकार सो रही होंगी। महाराज का कोई सन्देश हो, तो पहुँचा दूं।

राजा ने कहा—नहीं, मैं खुद जा रहा हूं, तू यहीं रह।

राजा साहब ने कमरे के द्वार पर खड़े होकर भीतर की ओर झांका। रोहिणी मसहरी के अन्दर चादर ओढ़े सो रही थी। वह अन्दर कदम रखते हुए झिझके। भय हुआ कि कहीं रोहिणी उठकर कह न बैठे—आप यहां क्यों आए ? वह इसी दुविधा में आधा घंटे तक वहां खड़े रहे। कई बार धीरे-धीरे पुकारा भी; पर रोहिणी न मिनकी। इतनी देर में उसने एक बार भी करवट न ली। यहाँ तक कि उसकी सांस भी न सुनाई दी। ऐसा मालूम हो रहा था कि वह मक्र किए पड़ी है और देख रही है कि राजा साहब क्या करते हैं। शायद परीक्षा ले रही है कि अब भी इनका दिल साफ हुआ या नहीं। गाफिल नींद में पड़े हुए प्राणी की श्वास क्रिया इतनी निःशब्द नहीं हो सकती। जरूर बहाना किए पड़ी हुई है, मेरी आहट पाकर चादर ओढ़ ली होगी। मान के साथ ही इसके स्वभाव में विनोद

भी तो बहुत है ! पहले भी तो इस तरह की नकलें किया करती थी। मुझे आते देखकर कहीं छिप जाती और जब मैं निराश होकर बाहर जाने लगता, तो हँसती हुई न जाने किधर से निकल आती। उसके चुहल और दिल्लगी की कितनी ही पुरानी बातें राजा साहब को याद आ गईं। उन्होंने साहस करके कमरे में कदम रखा; पर अब भी किसी तरह का शब्द न सुनकर उन्हें खयाल आया, कहीं रोहिणी ने झूठमूठ चादर तो नहीं तान दी है। मुझे चक्कर में डालने के लिए चारपाई पर चादर तान दी हो और आप किसी जगह छिपी हो। वह उसके धोखे में नहीं आना चाहते थे। उन्हें एक पुरानी बात याद आ गई, जब रोहिणी ने उनके साथ इसी तरह की दिल्लगी की थी, और यह कहकर उन्हें खूब आड़े हाथों लिया था कि आपकी प्रिया तो वह है, जिन्हें आपने जगाया है, मैं आपकी कौन होती हूँ ? जाइए, उन्हीं से बोलिए-हँसिए। वह विनोदिनी आज फिर वही अभिनय कर रही है। इस अवसर के लिए कोई चुभती हुई बात गढ़ रखी होगी—बीस बरस के बाद सुरत क्या याद रह सकती है ! राजा साहब का साठवाँ साल था; लेकिन इस वक्त उन्हें इस क्रीड़ा में यौवन काल का सा आनन्द और कुतूहल हो रहा था। वह दिखाना चाहते थे कि वह उसका कौशल ताड़ गए, वह उन्हें धोखा न दे सकेगी। लेकिन जब लगभग आधे घंटे तक खड़े रहने पर भी कोई आवाज़ या आहट न मिली, तो उन्होंने चारों तरफ चौकन्नी आँखों से देखकर धीरे से चादर हटा दी। रोहिणी सोयी हुई थी; लेकिन जब झुककर उसके मुख की ओर देखा, तो चौंककर पीछे हट गए। वह रोहिणी न थी, रोहिणी का शव था। बीस वर्ष की चिन्ता, दुःख, ईर्ष्या और नैराश्य के संताप से जर्जर शरीर आत्मा के रहने योग्य कब रह सकता था ! उन निर्जीव, स्थिर, अनिमेष नेत्रों में अब भी अतृप्त आकांक्षा झलक रही थी। उनमें तिरस्कार था, व्यंग्य था, गर्व था। दोनों ज्योतिहीन आँखें परित्यक्ता के जीवन की ज्वलन्त आलोचनाएँ थीं। जीवन की सारी व्यथाएँ उनमें सार रूप से व्यक्त हो रही थीं। वे तीक्ष्ण बाणों के समान राजा साहब के हृदय में चुभी जा रही थीं, मानो वह रही थीं—अब तो तुम्हारा कलेजा ठण्डा हुआ। अब मीठी नींद सोओ, मुझे परवा नहीं है।

राजा साहब ने दोनों आँखें बन्द कर लीं और रोने लगे। उनकी आत्मा इस अमानुषीय निष्ठुरता पर उन्हें धिक्कार रही थी। किसी प्राणी के प्रति अपने कर्तव्य का ध्यान हमें उसके मरने के बाद ही आता है—हाय ! हमने इसके साथ कुछ न किया। हमने इसे उम्र भर जलाया, रुलाया, तेरा। हाय ! यह मेरी रानी, जिस पर एक दिन मैं अपने प्राण न्योछावर करता था, इस दीन दशा में पड़ी हुई है, न कोई आगे, न पीछे ! कोई एक घूँट पानी देने वाला न था। कोई मरते समय परितोष देने वाला भी न था। राजा साहब को ज्ञात हुआ कि रोहिणी आज क्यों उनके पास गई थी ! वह मुझे सूचना दे रही थी, लेकिन पत्थर पड़ गया था। उस समय भी मैं कुछ न समझा। आह ! अगर

उसका आशय समझ जाता, तो यह नौबत क्यों आती ? उस वक्त भी यदि मैंने एक बार शुद्ध हृदय से कहा होता—प्रिये, मेरा अपराध क्षमा करो, तो इसके प्राण बच जाते। अन्तिम समय वह मेरे पास क्षमा का संदेश ले गई थी और मैं कुछ न समझा ! आशा का अन्तिम आदेश उसे मेरे पास ले गया; पर शोक !

सहसा राजा को खयाल आया—शायद अभी प्राण बच जाएँ। उन्होंने चौकीदारिन को पुकारा, बोले—जरा जाकर दरबान से कह दे, डाक्टर साहब को बुला लाए। इनकी दशा अच्छी नहीं है। चौकीदारिन रानी देवप्रिया के समय की स्त्री थी। रोहिणी के मुख की ओर देखकर बोली—डाक्टर को बुलाकर क्या कीजिएगा ? अगर अभी कुछ कसर रह गई हो, तो वह भी पूरी कर दीजिए। अभागिनी मरजाद ढोती रह गई ! उसके ऊपर क्या बीती, तुम क्या जानोगे ? तुम तो बुढ़ापे में विवाह करके बुद्धि और लज्जा दोनों ही खो बैठे। उसके ऊपर जो बीती, वह मैं जानती हूँ। हाय ! रक्त के आँसू रो-रोकर बेचारी मर गई और तुम्हें दया न आई ? क्या समझते हो, इसने विष खा लिया ? इस ढाँचे से प्राण को निकालने के लिए विष का क्या काम था ? उसके मरने का आश्चर्य नहीं, आश्चर्य यह है कि वह इतने दिन जीती कैसे रही ! खैर, जीते-जी जो अभिलाषा न पूरी की, वह मरने पर तो पूरी कर दी। इतनी ही दया अगर पहले की होती, तो इसके लिए वह अमृत हो जाती !

दम के दम में रनिवास में शोर मच गया और रानियाँ-बाँदियाँ सब आकर जमा हो गईं।

मगर मनोरमा न आई।

40

रोहिणी की मृत्यु के बाद राजा साहब जगदीशपुर न रह सके। मनोरमा का भी जी वहाँ घबराने लगा। उसी के कारण मनोरमा को वहाँ रहना पड़ता था। जब वही न रही, तो किस पर रीस करती ? उसे अब दुःख होता था कि मैं नाहक यहाँ आई। रोहिणी के कटु वाक्य सह लेती, तो आज उस बेचारी की जान पर क्यों बनती ? मनोरमा इस ग्लानि को मन से न निकाल सकती थी कि मैं ही रोहिणी की अकाल-मृत्यु का हेतु हुई। राजा साहब की निगाह भी अब उसकी ओर से फिरी हुई मालूम होती थी। अब खजांची उतनी तत्परता से उसकी फरमाइशें नहीं पूरी करता। राजा साहब भी अब उसके पास बहुत कम आते हैं। यहाँ तक कि गुरुसेवकसिंह को भी जवाब दे दिया है, और उन्हें रनिवास में आने की मनाही कर दी गई है। रोहिणी ने प्राण देकर मनोरमा पर विजय पाई

है। अब दमयन्ती और उर्मिला पर दादा साहब की कुछ विशेष दया हो गई है। [illegible]
दूसरे-तीसरे दिन बसन्तीपुर चले जाते हैं और कभी-कभी दिन का भोजन [illegible]
वहीं करते हैं। [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] नहीं हुआ।

[illegible] है। [illegible]
[illegible]
[illegible] होगा?
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] जाती है।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] गया है।

एक दिन [illegible] ने कहा—[illegible], तुम यहीं आकर क्यों नहीं रहते? [illegible]
[illegible] है।

[illegible] ने कहा—[illegible] तो आती ही
[illegible]?

[illegible] मन की बात क्या जानूँ? तुम कभी
[illegible] कहती है।

[illegible]। अब थोड़े दिनों
[illegible] होगा। तभी [illegible] आएँगी।

निर्मला—जल्दी से बैठो बेटा, हम भी देख लें।

शंखधर—मैं बाबूजी के नाम से एक स्कूल खोलूंगा; देख लेना। उसमें किसी लड़के से फीस न ली जाएगी।

वज्रधर—और हमारे लिए क्या करोगे बेटा ?

शंखधर—आपके लिए अच्छे-अच्छे सितारिये बुलाऊँगा। आप उनका गाना सुना कीजिएगा। आपको गाना किसने सिखाया, दादाजी ?

वज्रधर—मैंने तो एक साधु से यह विद्या सीखी बेटा ! बरसों उनकी खिदमत की तब कहीं जाके वह प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे ऐसा आशीर्वाद दिया कि थोड़े ही दिनों में मैं गाने-बजाने में पक्का हो गया। तुम भी सीख लो बेटा; मैं बड़े शौक से सिखाऊँगा। राजाओं-महाराजाओं के लिए तो यह विद्या है ही, बेटा, वही तो गुणियों का गुण परखकर उनका आदर कर सकते हैं। जिन्हें यह विद्या आ गई, बस, समझ लो कि उन्हें किसी बात कमी न रहेगी। वह जहाँ रहेगा, लोग उसे सिर-आँखों पर बिठाएँगे। मैंने तो एक बार इसी विद्या की बदौलत बद्रीनाथ की यात्रा की थी। पैदल चलता था। जिस गाँव में शाम हो जाती, किसी भले आदमी के द्वार पर चला जाता और दो-चार चीजें सुना देता। बस, मेरे लिए सभी बातों का प्रबन्ध हो जाता था।

शंखधर ने विस्मित होकर कहा—सच ! तब तो मैं जरूर सीखूंगा।

वज्रधर—जरूर सीख लो बेटा ! लाओ आज ही से आरम्भ कर दूं।

शंखधर को संगीत से स्वाभाविक प्रेम था। ठाकुरद्वारे में जब गाना होता, वह बड़े चाव से सुनता। खुद भी एकान्त में बैठा गुनगुनाया करता था। ताल स्वर का ज्ञान उसे सुनने ही से हो गया था। एक बार भी कोई राग सुन लेता, तो उसे याद हो जाता। योगियों के कितने ही गीत उसे याद थे। खँजरी बजाकर वह सूर कबीर, मीरा आदि सन्तों के पद गाया करता था। इस वक्त जो उसने कबीर का एक पद गाया, तो मुंशीजी उसके संगीत ज्ञान और स्वर लालित्य पर मुग्ध हो गए। बोले—बेटा, तुम तो बिना सिखाए ही ऐसा गा लेते हो। तुम्हें तो मैं थोड़े ही दिनों में ऐसा बना दूंगा कि अच्छे-अच्छे उस्ताद कानों पर हाथ धरेंगे। आखिर मेरे ही पोते तो हो। बस, तुम मेरे नाम पर एक संगीतालय खोल देना।

शंखधर—जी हाँ, उसमें यही विद्या सिखायी जाएगी।

निर्मला—अपनी बुढ़िया दादीजी के लिए क्या करोगे, बेटा ?

शंखधर—तुम्हारे लिए एक डोली रख दूंगा, जिसे दो कहार ढोएँगे। उसी पर बैठ कर तुम नित्य गंगास्नान करने जाना।

निर्मला—मैं डोली पर न बैठूंगी। लोग हँसेंगे कि नहीं, कि राजा साहब की दादी डोली पर बैठी जा रही हैं।

शंखधर—वाह ! ऐसे आराम की सवारी और कौन होगी ?

इस तरह दोनों प्राणियों का मनोरंजन करके जब वह चलने लगा, तो निर्मला

द्वार पर खड़ी हो गई, जहाँ से वह मोटर को दूर जाते तक हुए देखती रहे।

सहसा शंखधर ड्योढ़ी में खड़ा हो गया और बोला—दादाजी, आपसे कुछ माँगना चाहता हूँ।

निर्मला ने विस्मित होकर सजल नेत्रों से उसे देखा और गदगद होकर बोली—क्या माँगते हो, बेटा ?

शंखधर—मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मेरी मनोकामना पूरी हो !

निर्मला ने पोते को कंठ से लगाकर कहा—भैया, मेरा तो रोयाँ-रोयाँ तुम्हें आशीर्वाद दिया करता है ! ईश्वर तुम्हारी मनोकामनाएँ पूरी करें !

शंखधर ने उनके चरणों पर सिर झुकाया और मोटर पर जा बैठा। निर्मला चौखट पर खड़ी, मोटर कार को निहारती रही। मोड़ पर आते ही मोटर तो आँखों से ओझल हो गई; लेकिन निर्मला उस समय तक वहाँ से न हटी, जब तक उसकी ध्वनि क्षीण होते-होते आकाश में विलीन न हो गई। अन्तिम ध्वनि इस तरह कान में आयी, मानो अनन्त की सीमा पर बैठे किसी प्राणी के अन्तिम शब्द हों। जब वह आधार भी न रह गया, तो निर्मला रोती हुई अन्दर चली गयी।

शंखधर घर पहुँचा, तो अहिल्या ने पूछा—आज इतनी देर कहाँ लगायी बेटा ? मैं कब से तुम्हारी राह देख रही हूँ।

शंखधर—अभी तो ऐसी बहुत देर नहीं हुई, अम्माँ ! जरा दादीजी के पास चला गया था। उन्होंने तुम्हें आज एक संदेशा कहला भेजा है।

अहिल्या—क्या संदेशा है, सुनूँ ? कुछ तुम्हारे बाबूजी की खबर तो नहीं मिली है।

शंखधर—नहीं। बाबूजी की खबर नहीं मिली। तुम कभी-कभी वहाँ क्यों नहीं चली जातीं ?

अहिल्या—क्या इस विषय में कुछ कहती थी ?

शंखधर—कहती तो नहीं थीं; पर उनकी इच्छा ऐसी मालूम होती है। क्या इसमें कोई हरज है ?

अहिल्या ने ऊपरी मन से यह तो कह दिया—हरज तो कुछ नहीं, हरज क्या है, घर तो मेरा वही है, यहाँ तो मेहमान हूँ; लेकिन भाव से साफ मालूम होता था कि वह वहाँ जाना उचित नहीं समझती। शायद वह कह सकती, तो कहती—वहाँ से तो एक बार निकाल दी गई, अब कौन मुँह लेकर जाऊँ ? क्या अब मैं कोई दूसरी हो गई हूँ ? बालक से यह बात कहनी मुनासिब न थी।

अहिल्या तश्तरी में मिठाइयाँ और मेवे लायी और एक लौंडी से पानी लाने को कहकर बेटे से बोली—वहाँ तो कुछ जलपान न किया होगा, खा लो। आज तुम इतने उदास क्यों हो ?

शंखधर ने तश्तरी की ओर बिना देखे ही कहा—इस वक्त मेरा खाने को जी नहीं चाहता, अम्माँ !

एक क्षण के बाद उसने कहा—क्यों अम्मांजी, बाबूजी को हम लोगों की याद भी कभी आती होगी ?

अहिल्या ने सजल नेत्र होकर कहा—क्या जाने बेटा, याद आती तो काले कोसों बैठे रहते !

शंखधर—क्या वह बड़े निष्ठुर हैं, अम्मां ?

अहिल्या रो रही थी, कुछ न बोल सकी।

शंखधर—मुझे देखें, तो पहचान जाएँ कि नहीं, अम्माजी ?

अहिल्या फिर भी कुछ न बोली—उसका कंठ-स्वर अश्रुप्रवाह में डूबा जा रहा था।

शंखधर ने फिर कहा—मुझे तो मालूम होता है अम्मांजी, कि वह बहुत ही निर्दयी हैं, इसी से उन्हें हम लोगों का दुःख नहीं जान पड़ता। अगर वह भी इसी तरह रोते, तो जरूर आते। मुझे एक दफा मिल जाते, तो मैं उन्हें कायल कर देता। आप न जाने कहाँ बैठे हैं, किसी का क्या हाल हो रहा है, इसकी सुधि ही नहीं। मेरा तो कभी-कभी ऐसा चित्त होता है कि देखूं तो प्रणाम तक न करूँ, कह दूं—आप मेरे होते कौन हैं, आप ही ने तो हम लोगों को त्याग दिया है।

अब अहिल्या चुप न रह सकी, कांपते स्वर में बोली—बेटा, उन्होंने हमें त्याग नहीं दिया है। वहाँ उनकी जो दशा हो रही होगी, उसे मैं जानती हूं। हम लोगों की याद एक क्षण के लिए भी उनके चित्त से न उतरती होगी। खाने-पीने का ध्यान भी न रहता होगा। हाय ! यह सब मेरा ही दोष है, बेटा। उनका कोई दोष नहीं।

शंखधर ने कुछ लज्जित होकर कहा—अम्मांजी, यदि मुझे देखें, तो वह पहचान जाएँ कि नहीं ?

अहिल्या—तुझे ? मैं तो जानती हूं, न पहचान सकें। तब तू बिलकुल जरा-सा बच्चा था। आज उनको गये दसवां साल है। न जाने कैसे होंगे। मैं तो तुम्हें देख देखकर जीती हूँ, वह किसको देखकर दिल को ढाढ़स देते होंगे। भगवान् करें, जहाँ रहें, कुशल से रहें। बदा होगा, तो कभी भेंट हो ही जाएगी।

शंखधर अपनी ही धुन में मस्त था, उसने यह बातें सुनी ही नहीं। बोला—लेकिन अम्मांजी, मैं तो उन्हें देखकर फौरन पहचान जाऊँ। वह चाहे किसी वेष में हों, मैं पहचान लूंगा।

अहिल्या—नहीं बेटा, तुम भी उन्हें न पहचान सकोगे। तुमने उनकी तसवीरें ही तो देखी हैं। ये तसवीरें बारह साल पहले की हैं। फिर उन्होंने केश भी बढ़ा लिये होंगे।

शंखधर ने कुछ जवाब न दिया। बगीचे में जाकर दीवारों को देखता रहा। फिर अपने कमरे में आया और चुपचाप बैठकर सोचने लगा। उसका मन भक्ति और उल्लास से भरा हुआ था। क्या मैं ऐसा बहुत छोटा हूं ? मेरा तेरहवां साल

है। छोटा नहीं हूँ। इसी उम्र में कितने ही आदमियों ने बड़े-बड़े काम कर डाले हैं। मुझे करना ही क्या है? दिन भर गलियों में घूमना और सन्ध्या समय कहीं पड़ रहना। यहाँ लोगों की क्या दशा होगी, इसकी उसे चिन्ता न थी। राजा साहब पागल हो जाएँगे, मनोरमा रोते-रोते अन्धी हो जाएगी, अहिल्या शायद प्राण देने पर उतारू हो जाए, इसकी उसे इस वक्त बिलकुल फिक्र न थी। वह यहाँ से भाग निकलने के लिए विकल हो रहा था।

एकाएक उसे ख्याल आया, ऐसा न हो कि लोग मेरी तलाश में निकलें, थाने में हुलिया लिखाएँ, खुद भी परेशान हों, मुझे भी परेशान करें, इसीलिए उन्हें इतना बतला देना चाहिए कि मैं कहाँ और किस काम के लिए जा रहा हूँ। अगर किसी ने मुझे जबरदस्ती लाना चाहा, तो अच्छा न होगा। हमारी खुशी है, जब चाहेंगे आएँगे; हमारा राज्य तो कोई नहीं उठा ले जाएगा। उसने एक कागज पर यह पत्र लिखा और अपने बिस्तरे पर रख दिया—

'सबको, प्रणाम, मेरा कहा-सुना माफ कीजिएगा। मैं आज अपनी खुशी से पिताजी को खोजने जाता हूँ। आप लोग मेरे लिए जरा भी चिन्ता न कीजिएगा, न मुझे खोजने के लिए आइएगा; क्योंकि मैं किसी भी हालत में बिना पिताजी का पता लगाए न आऊँगा। जब तक एक बार दर्शन न कर लूँ और पूछ न लूँ कि कि मुझे किस तरह से जिन्दगी बसर करनी चाहिए, तब तक मेरा जीना व्यर्थ है। मैं पिताजी को अपने साथ लाने की चेष्टा करूँगा। या तो उनके दर्शनों से कृतार्थ होकर लौटूँगा या इसी उद्योग में प्राण दे दूँगा। अगर मेरे भाग्य में राज्य करना लिखा है, तो राज्य करूँगा, भीख माँगना लिखा है, तो भीख माँगूँगा; लेकिन पिताजी के चरणों की रज माथे पर बिना लगाए, उनकी कुछ सेवा किए बिना मैं घर न लौटूँगा। मैं फिर कहता हूँ कि मुझे वापस लाने की कोई चेष्टा न करे, नहीं तो मैं वहीं प्राण दे दूँगा। मेरे लिए यह कितनी लज्जा की बात है कि मेरे पिताजी तो देश-विदेश मारे-मारे फिरें और मैं चैन करूँ। यह दशा अब मुझसे नहीं सही जाती। कोई यह न समझे कि मैं छोटा हूँ, भूल-भटक जाऊँगा। मैंने ये सारी बातें अच्छी तरह सोच ली हैं। रुपये-पैसे की भी मुझे जरूरत नहीं। अम्मांजी, मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप दादाजी की सेवा कीजिएगा, और समझाइएगा कि वह मेरे लिए चिन्ता न करें। रानी अम्माँ को प्रणाम, बाबाजी को प्रणाम।'

आधी रात बीत चुकी था। शंखधर एक कुर्ता पहने हुए कमरे से निकला। बगल के कमरे में राजा साहब आराम कर रहे थे। वह पिछवाड़े की तरफ बाग में गया और एक अमरूद के पेड़ पर चढ़कर बाहर की तरफ कूद पड़ा। अब उसके सिर पर तारिकामंडित नीला आकाश था, सामने विस्तृत मैदान और छाती में उल्लास, शंका और आशा से धड़कता हुआ हृदय। वह बड़ी तेजी से कदम बढ़ाता हुआ चला, कुछ नहीं मालूम कि किधर जा रहा है, तकदीर कहाँ लिये जाती है।

ऐसी ही अँधेरी रात थी, जब चक्रधर ने इस घर से गुप्त रूप से प्रस्थान किया

था। आज भी वही अँधेरी रात है, और भागनेवाला भी चक्रधर का आत्मज है। कौन जानता है, चक्रधर पर क्या बीती ? शंखधर पर क्या बीतेगी, इसे भी कौन जान सकता है। इस घर में उसे कौन-सा सुख नहीं था ? उसके मुँह से कोई बात निकलने भर की देर थी, पूरा होने में देर न थी। क्या ऐसी भी कोई वस्तु है, जो इस ऐश्वर्य, भोग-विलास और राजपाट से प्यारी है ?

अभागिनी अहिल्या ! तू पड़ी सो रही है। एक बार तूने अपना प्यारा पति खोया और अभी तक तेरी आँखों में आँसू नहीं थमे। आज फिर तू अपना प्यारा पुत्र, अपना प्राणाधार, अपना दुखिया का धन खोए देती है। जिस सम्पत्ति के निमित्त तूने अपने पति की उपेक्षा की थी, वही सम्पत्ति क्या आज तुझे अजीर्ण नहीं हो रही है ?

41

पाँच वर्ष व्यतीत हो गए ! पर न शंखधर का कहीं पता चला, न चक्रधर का। राजा विशालसिंह ने दया और धर्म को तिलांजलि दे दी है और खूब दिल खोलकर अत्याचार कर रहे हैं। दया और धर्म से जो कुछ होता है, उसका अनुभव करके अब वह यह अनुभव करना चाहते हैं कि अधर्म और अविचार से क्या होता है। रियासत में धर्मार्थ जितने काम होते थे, वे सब बन्द कर दिए गए हैं। मन्दिरों में दिया नहीं जलता; साधु-संत द्वार से खड़े-खड़े निकाल दिये जाते हैं और प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार किए जा रहे हैं। उनकी फरियाद कोई नहीं सुनता। राजा साहब को किसी पर दया नहीं आती। अब क्या रह गया है, जिसके लिए वह धर्म का दामन पकड़ें ? वह किशोर अब कहाँ है, जिसके दर्शन मात्र से हृदय में प्रकाश का उदय हो जाता था ? वह जीवन और मृत्यु की सभी आशाओं का आधार कहाँ चला गया ? कुछ पता नहीं। यदि विधाता ने उनके ऊपर यह निर्दय आघात किया है, तो वह भी उसी के बनाए हुए मार्ग पर चलेंगे। इतने प्राणियों में केवल एक मनोरमा है, जिसने अभी तक धैर्य का आश्रय नहीं छोड़ा, लेकिन उसकी अब कोई नहीं सुनता। राजा साहब अब उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहते। वह उसी को सारी विपत्ति का मूल कारण समझते हैं। वही मनोरमा, जो उनकी हृदयेश्वरी थी, जिसके इशारे पर रियासत चलती थी, अब भवन में भिखारिन की भाँति रहती है, कोई उसकी बात तक नहीं पूछता। वह इस भीषण अंधकार में अब भी दीपक की भाँति जल रही है। पर उसका प्रकाश केवल अपने ही तक रह जाता है, अंधकार में प्रसारित नहीं होता।

आह अबोध बालक ! अब तूने देखा कि जिस अभीष्ट के लिए तूने जीवन की सभी आकांक्षाओं का परित्याग कर दिया, वह कितना असाध्य है ! इस विशाल

प्रदेश में जहाँ तीस करोड़ प्राणी बसते हैं, तू एक प्राणी को कैसे खोज पाएगा? कितना अबोध साहस था, बालोचित सरल उत्साह की कितनी अलौकिक लीला।

सन्ध्या हो गई। सूर्यदेव पहाड़ियों की आड़ में छिप गए हैं, इसीलिए सन्ध्या से पहले ही अँधेरा हो चला है। रमणियाँ जल भरने के लिए कुएँ पर आ गई हैं। इसी समय एक युवक हाथ में एक खँजरी लिए आकर कुएँ पर बैठ गया। यही शंखधर है। उसके वर्ण, रूप और वेष में इतना परिवर्तन हो गया है कि शायद अहिल्या भी उसे देखकर चौंक पड़ती। यह वह तेजस्वी किशोर नहीं, उसकी छाया मात्र है। उसका मांस गल गया है, केवल अस्थिपंजर मात्र रह गया है, मानो किसी भयंकर रोग से ग्रस्त रहने के बाद उठा हो। मानसिक ताप, वेदना और विषाद की उसके मुख पर ऐसी गहरी रेखा है कि मालूम होता है, उसके प्राण अब निकलने के लिए अधीर हो रहे हैं। उसकी निस्तेज आँखों में आकांक्षा और प्रतीक्षा की झलक की जगह अब घोर नैराश्य प्रतिबिम्बित हो रहा था—वह नैराश्य जिसका परितोष नहीं। वह सजीव प्राणी नहीं, किसी अनाथ का रोदन या किसी वेदना की प्रतिध्वनि मात्र है। पाँच वर्ष के कठोर जीवन-संग्राम ने उसे इतना हताश कर दिया है कि कदाचित् इस समय अपने उपास्यदेव को सामने देखकर भी उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आएगा।

एक रमणी ने उसकी ओर देखकर पूछा—कहाँ से आते हो परदेशी, बीमार मालूम होते हो?

शंखधर ने आकाश की ओर अनिमेष नेत्रों से देखते हुए कहा—बीमार तो नहीं हूँ माता, दूर से आते-आते थक गया हूँ।

यह कहकर उसने अपनी खँजरी उठा ली और उसे बजाकर यह पद गाने लगा—

बहुत दिनों तक मौन-मंत्र
मन-मंदिर में जपने के बाद।
पाऊँगी जब उन्हें प्रतीक्षा
के तप में तपने के बाद।
ले तब उन्हें अंक में नयनों
के जल से नहलाऊँगी।
सुमन चढ़ाकर प्रेम पुजारिन
मैं उनकी कहलाऊँगी।
ले अनुराग आरती उनकी
तभी उतारूँगी सप्रेम।
स्नेह सुधा नैवेद्य रूप में
सम्मुख रक्खूँगी कर प्रेम।

ले लूंगी वरदान भक्ति-वेदी
पर बलि हो जाने पर।
साध तभी मन की साधूंगी
प्राणनाथ के आने पर।

इस क्षीणकाय युवक के कंठ में इतना स्वर लालित्य, इतना विकल अनुराग था कि रमणियाँ चित्रवत् खड़ी रह गईं। कोई कुएँ में कलसा डाले हुए उसे खींचना भूल गई, कोई कलसे से रस्सी का फन्दा लगाते हुए उसे कुएँ में डालना भूल गई और कोई कूल्हे पर कलसा रखे आगे बढ़ना भूल गई—सभी मंत्र-मुग्ध-सी हो गईं। उनकी हृदय वीणा से भी वही अनुरक्त ध्वनि निकलने लगी।

एक युवती ने पूछा—बाबाजी, अब तो बहुत देर हो गई है, यहीं ठहर जाओ न। आगे तो बहुत दूर तक कोई गाँव नहीं है।

शंखधर—आपकी इच्छा है माता, तो यहीं ठहर जाऊँगा। भला, माताजी, यहाँ कोई महात्मा तो नहीं रहते?

युवती—नहीं, यहाँ कोई साधु-संत नहीं हैं। हाँ, देवालय है।

दूसरी रमणी ने कहा – अभी कई दिन हुए, एक महात्मा आकर टिके थे; पर वह साधुओं के वेष में न थे। वह यहाँ एक महीने भर रहे। तुम एक दिन पहले यहाँ आ जाते, तो उनके दर्शन हो जाते।

एक वृद्धा बोली—साधु संत तो बहुत देखे; पर ऐसा उपकारी जीव नहीं । तुम्हारा घर कहाँ है, बेटा?

शंखधर—कहाँ बताऊँ माता, यों ही घूमता फिरता हूँ।

वृद्धा—अभी तुम्हारे माता-पिता हैं न बेटा?

शंखधर—कुछ मालूम नहीं, माता! पिताजी तो बहुत दिन हुए, कहीं चले गए। मैं तब दो-तीन वर्ष का था। माताजी का हाल नहीं मालूम।

वृद्धा—तुम्हारे पिता क्यों चले गए? तुम्हारी माता से कोई झगड़ा हुआ था?

शंखधर—नहीं माताजी, झगड़ा तो नहीं हुआ। गृहस्थी के माया-मोह में नहीं पड़ना चाहते थे।

वृद्धा—तो तुम्हें घर छोड़ कितने दिन हुए?

शंखधर—पाँच साल हो गए, माता! पिताजी को खोजने निकल पड़ा था; पर अब तक कहीं पता नहीं चला।

एक युवती ने अपनी सहेली के कंधे से मुँह छिपाकर कहा—इनका ब्याह तो हो गया होगा?

सहेली ने उसे कुछ उत्तर न दिया। वह शंखधर के मुँह की ओर ध्यान से देख रही थी। सह[illegible] ने वृद्धा से कहा—अम्माँ, इनकी सूरत महात्मा से मिलती है कि नहीं, [illegible] देख[illegible]

वृद्धा—हाँ रे, कुछ-कुछ मालूम तो होता है। (शंखधर से) क्यों बेटा तुम्हारे पिताजी की क्या अवस्था होगी?

शंखधर—40 वर्ष के लगभग होगी और क्या।

वृद्धा—आँखें खूब बड़ी-बड़ी हैं?

शंखधर—हाँ माताजी, उतनी बड़ी आँखें तो मैंने किसी की देखी ही नहीं।

वृद्धा—लम्बे-लम्बे गोरे आदमी हैं?

शंखधर का हृदय धक-धक करने लगा। बोला—हाँ माताजी, उनका रंग गोरा है।

वृद्धा—अच्छा, दाहिनी ओर किसी चोट का दाग है?

शंखधर—हो सकता है, माताजी मैंने तो केवल उनका चित्र देखा है। मुझे तो वह दो वर्ष का छोड़कर घर से निकल गए थे।

वृद्धा—बेटा, जिन महात्मा की मैंने तुमसे चर्चा की है, उनकी सूरत तुमसे बहुत मिलती है।

शंखधर—माता, कुछ बता सकती हो, वह यहाँ से किधर गये?

वृद्धा—यह तो कुछ नहीं कह सकती; पर वह उत्तर ही की ओर गये हैं। तुमसे क्या कहूँ बेटा, मुझे तो उन्होंने प्राणदान दिया है, नहीं तो अब तक मेरा न जाने क्या हाल होता। नदी में स्नान करने गयी थी। पैर फिसल गया। महात्माजी तट पर बैठे ध्यान कर रहे थे। डुबकियाँ खाते देखा, तो चट पानी में तैर गए और मुझे निकाल लाये। वह न निकालते, तो प्राण जाने में कोई संदेह न था। महीने भर यहाँ रहे। इस बीच में कई जानें बचायी। कई रोगियों को तो मौत के मुख से निकाल लिया!

शंखधर ने काँपते हुए हृदय से पूछा—उनका नाम क्या था, माताजी।

वृद्धा—नाम तो उनका था भगवानदास; पर यह उनका असली नाम नहीं मालूम होता था; असली नाम कुछ और ही था।

एक युवती ने कहा—यहाँ उनकी एक तसवीर भी तो रखी हुई है!

वृद्धा—हाँ बेटा, इसकी तो हमें याद ही नहीं रही थी। इस गाँव का एक आदमी बम्बई में तसवीर बनाने का काम करता है। वह यहाँ उन दिनों आया हुआ था। महात्माजी तो 'नहीं नहीं' करते रहे, पर उसने झट से अपनी डिबिया खोलकर उनकी तसवीर उतार ही ली। न जाने उस डिबिया में क्या जादू है कि जिसके सामने खोल दो, उसकी तसवीर उसके भीतर खिंच जाती है।

शंखधर का हृदय दातगुण वेग से धड़क रहा था। बोले—जरा वह तसवीर मुझे दिखा दीजिए, आपकी कृपा होगी।

युवती लपकी हुई घर गयी और एक क्षण में तसवीर लिए
शंखधर की इस समय विचित्र दशा थी। उसकी हिम्मत न पड़ी
कहीं यह चक्रधर की तसवीर न हो! अगर उन्हीं की तसवं

क्या करेगा ? यह अपने पैरों पर खड़ा रह सकेगा ? उसे मूर्च्छा तो न आ जाएगी ? अगर यह वास्तव में चक्रधर ही का चित्र है, तो शंखधर के सामने एक नई समस्या खड़ी हो जाएगी । उसे अब क्या करना होगा ? अब तक वह एक निश्चित मार्ग पर चलता आया था; लेकिन अब उसे एक ऐसे मार्ग पर चलना पड़ेगा, जिससे वह बिलकुल परिचित न था। क्या वह चक्रधर के पास जाएगा ? जाकर क्या कहेगा ? उसे देखकर वह प्रसन्न होंगे, या सामने से दुतकार देंगे ? उसे वह पहचान भी सकेंगे ? कहीं पहचान लिया और उससे अपना पीछा छुड़ाने के लिए कहीं और चले गए तो ?

सहसा वृद्धा ने कहा—देखो, बेटा ! यह तसवीर है।

शंखधर ने दोनों हाथों से हृदय को सँभाले हुए तसवीर पर एक भय कम्पित दृष्टि डाली और पहचान गया। हाँ, चक्रधर ही की तसवीर थी। उसकी देह शिथिल पड़ गई, हृदय का धड़कना शान्त हो गया। आशा, भय, चिंता और अस्थिरता से व्यग्र होकर वह हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया, मानो किसी पुरानी बात को याद कर रहा है।

वृद्धा ने उत्सुकता से पुछा—बेटा कुछ पहचान रहे हो ?

शंखधर ने कुछ उत्तर न दिया।

वृद्धा ने फिर पूछा—चुप कैसे हो भैया, तुमने अपने पिताजी की जो सूरत देखी है, उससे यह तसवीर कुछ मिलती है ?

शंखधर ने अब भी कुछ उत्तर न दिया, मानो उसने कुछ सुना ही नहीं।

सहसा उसने निद्रा से जागे हुए मनुष्य की भाँति पूछा—वह उधर उत्तर ही की ओर गए हैं न ? आगे कोई गाँव पड़ेगा ?

वृद्धा—हाँ बेटा, पांच कोस पर गाँव है ! भला सा उसका नाम है, हाँ साईंगंज, साईंगंज; लेकिन आज तो तुम यहीं रहोगे ?

शंखधर ने केवल इतना कहा—नहीं माता, आज्ञा दीजिए, और खंजरी उठाकर चल खड़ा हुआ। युवतियाँ ठगी-सी खड़ी रह गईं। जब तक वह निगाहों से छिप न गया, सबकी सब उसकी ओर टकटकी लगाए ताकती रहीं; लेकिन शंखधर ने एक बार भी पीछे फिरकर न देखा।

सामने गगनचुम्बी पर्वत अंधकार में विशालकाय राक्षस की भाँति खड़ा था। शंखधर बड़ी तीव्र गति से पतली पगडण्डी पर चला जा रहा था। उसने अपने आपको उसी पगडण्डी पर छोड़ दिया है। वह कहाँ ले जाएगी, वह नहीं जानता। हम भी इस जीवन रूपी पतली, मिटी-मिटी पगडण्डी पर क्या उसी भाँति तीव्र गति से दौड़े नहीं चले जा रहे हैं ? क्या हमारे सामने उनसे भी ऊँचे अंधकार के पर्वत नहीं खड़े हैं ?

रात्रि के उस अगम्य अंधकार में शंखधर भागा चला जा रहा था! उसके पैर पत्थर के टुकड़ों से चलनी हो गए थे। सारी देह थककर चूर हो गई थी, भूख के मारे आँखों के सामने अँधेरा छाया जाता था, प्यास के मारे कंठ में काँटे पड़ रहे थे, पैर कहीं रखता था, पड़ते कहीं थे; पर वह गिरता-पड़ता भागा चला जाता था। अगर वह प्रातःकाल तक साईंगंज न पहुँचा, तो सम्भव है, चक्रधर कहीं चले जाएँ, और फिर उस अनाथ की पाँच साल की मेहनत और दौड़-धूप पर पानी न फिर जाए। सूर्य निकलने से पहले उसे वहाँ पहुँच जाना था, चाहे इसमें प्राण ही क्यों न चले जाएँ।

हिंस्र पशुओं का भयंकर गर्जन सुनाई देता था, अँधेरे में खड्ड और खाई का पता न चलता था; पर उसे अपने प्राणों की चिन्ता न थी। उसे केवल धुन थी—'मुझे सूर्योदय से पहले साईंगंज पहुँच जाना चाहिए।' आह! लाड़-प्यार में पले हुए बालक, तुझे मालूम नहीं कि तू कहाँ जा रहा है! साईंगंज की राह भूल गया। इस मार्ग से तू और जहाँ चाहे पहुँच जाय, पर साईंगंज नहीं पहुँच सकता।

गगन मण्डल पर ऊषा का लोहित प्रकाश छा गया। तारागण किसी थके हुए पथिक की भाँति अपनी उज्ज्वल आँखें बन्द करके विश्राम करने लगे। पक्षीगण वृक्षों पर चहकने लगे; पर साईंगंज का कहीं पता न चला।

सहसा एक बहुत दूर की पहाड़ी पर कुछ छोटे-छोटे मकान बालिकाओं के घरौंदे की तरह दिखाई दिए। दो-चार आदमी भी गुड़ियों की सदृश चलते-फिरते नजर आए। वह साईंगंज आ गया। शंखधर का कलेजा धक-धक करने लगा। उसके जीर्ण शरीर में अद्‌भुत स्फूर्ति का संचार हो गया, पैरों में न जाने कहाँ से दुगुना बल आ गया। वह और वेग से चला। वह सामने मुसाफिर की मंजिल है। वह उसके जीवन का लक्ष्य दिखाई दे रहा है! वह उसके जीवन यज्ञ की पूर्णाहुति है! आह! भ्रांत बालक! वह साईंगंज नहीं है।

पहाड़ी की चढ़ाई कठिन थी! शंखधर को ऊपर चढ़ने का रास्ता न मालूम था, न कोई आदमी ही दिखाई देता था, जिससे रास्ता पूछ सके। वह [illegible] कर चढ़ने लगा।

गाँव के एक आदमी ने ऊपर से आवाज दी—इधर से कहाँ [illegible] रास्ता तो पश्चिम की ओर से है! कहीं पैर फिसल जाए, तो [illegible] जाओ।

किसान ने शंखधर को सिर से पाँव तक कुतूहल से देखकर कहा—देखने में तो एक हड्डी के आदमी हो, पर हो बड़े हिम्मती। इधर से आने की आज तक किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। कहाँ घर है ?

शंखधर ने दम लेकर कहा—बाबा भगवानदास अभी यहीं हैं न ?

किसान—कौन बाबा भगवानदास ? यहाँ तो वह नहीं आए। तुम कहाँ से आते हो ?

शंखधर—बाबा भगवानदास को नहीं जानते ? वह इसी गाँव में तो आए हैं। साईंगंज यहीं है न ?

किसान—साईंगंज ! अ-र-र ! साईंगंज तो तुम पूरब छोड़ आए। इस गाँव का नाम बेंदो है।

शंखधर ने हताश होकर कहा—तो साईंगंज यहाँ से कितनी दूर है ?

किसान—साईंगंज तो पड़ेगा यहाँ से कोई पाँच कोस, मगर रास्ता बहुत बीहड़ है।

शंखधर कलेजा थामकर बैठ गया ! पाँच कोस की मंजिल, उस पर रास्ता बीहड़। उसने आकाश की ओर एक बार नैराश्य में डूबी हुई आँखों से देखा और सिर झुकाकर सोचने लगा—यह अवसर फिर हाथ न आएगा ! अगर आराध्यदेव के दर्शन आज न किए, तो फिर न कर सकूँगा। सारा जीवन दौड़ते ही बीत ... । भोजन करने का समय नहीं और विश्राम करने का भी समय नहीं। बैठने का समय फिर आएगा। आज या तो इस तपस्या का अन्त हो जाएगा, या इस जीवन का ही ! वह उठ खड़ा हुआ।

किसान ने कहा—क्या चल दिए भाई ? चिलम-विलम तो पी लो।

लेकिन शंखधर इसके पहले ही चल चुका था। वह कुछ नहीं देखता, कुछ नहीं सुनता, चुपचाप किसी अन्ध शक्ति की भाँति चला जा रहा है। वसन्त का शीतल एवं सुगन्ध से लदा हुआ समीर पुत्र-वत्सला माता की भाँति वृक्षों को हिंडोले में झुला रहा है, नवजात पल्लव उसकी गोद में मुसकराते और प्रसन्न हो-होकर ठुमकते हैं, चिड़ियाँ उन्हें गा-गाकर लोरियाँ सुना रही हैं, सूर्य की स्वर्णमयी किरणें उनका चुम्बन कर रही हैं। सारी प्रकृति वात्सल्य के रंग में डूबी हुई है, केवल एक ही प्राणी अभागा है, जिस पर इस प्रकृति वात्सल्य का जरा भी असर नहीं ! वह शंखधर है।

शंखधर सोच रहा है, अब की फिर कहीं रास्ता भूला, तो सर्वनाश ही हो जाएगा। तब वह समझ जाएगा, मेरा जीवन रोने ही के लिए बनाया गया है। रोदन—अनंत रोदन ही उसका काम है। अच्छा कहीं पिताजी मिल गए ? उनके सम्मुख वह जा भी सकेगा या नहीं ? वह उसे देखकर क्रुद्ध तो न होंगे ? जिसे दिल से भुला देने के लिए ही उन्होंने यह तपस्या व्रत लिया है, उसे सामने देखकर वह प्रसन्न होंगे ?

प्रिय को हृदय से लगाने के लिए विकल होने पर भी वह छाती पर पत्थर शिला रखकर उसकी ओर से मुँह फेर लें। तो क्या इस दशा में उसका उनके जाना, उन्हें इतनी कठिन परीक्षा में डालना, उन्हें आदर्श से हटाने की चेष्टा ा उचित है? कुछ भी हो, इतनी दूर आकर अब उनके दर्शन किए बिना वह ौटेगा। उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह उसे पहचान न सकें। वह अपने से एक शब्द भी ऐसा न निकालेगा, जिससे उन्हें उसका परिचय मिल सके। उसी भाँति दूर से उनके दर्शन करके अपने को कृतार्थ समझेगा, जैसे उनके र भक्त करते हैं।

साइंगंज दिखाई देने लगा। स्त्री-पुरुष खेतों में अनाज काटते नजर आने गे। अब वह गाँव के डाँड़ पर पहुँच गया। कई आदमी उसके सामने से होकर निकल भी गये; पर उसने किसी से कुछ नहीं पूछा। अगर किसी ने कह दिया—ाबाजी हैं, तो वह क्या करेगा? इसी असमंजस में पड़ा हुआ वह मंदिर के सामने चबूतरे पर बैठ गया। सहसा मंदिर में से एक आदमी को निकलते देखकर वह चौंक पड़ा, अनिमेष नेत्रों से उसकी ओर एक क्षण देखा, फिर उठा कि उस पुरुष के चरणों पर गिर पड़; पर पैर थरथरा गए। मालूम हुआ, कोई नदी उसकी ओर वही चली आती है—वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

वह पुरुष कौन था? वही जिसकी मूर्ति उसके हृदय में बसी हुई थी, जिसका वह उपासक था।

43

अभागिनी अहिल्या के लिए संसार सूना हो गया। पति को पहले ही खो चुकी थी। जीवन का एकमात्र आधार पुत्र रह गया था, उसे भी खो बैठी। अब वह किसका मुँह देखकर जिएगी? वह राज्य उसके लिए किसी ऋषि का अभिशाप हो गया। पति और पुत्र को पाकर अब वह टूटे-फूटे झोपड़े में कितने सुख से रहेगी। तृष्णा का उसे बहुत दंड मिल चुका। भगवान्, इस अनाथिनी पर दया करो!

अहिल्या को अब वह राजभवन फाड़े खाता था। वह अब उसे छोड़कर कहीं चली जाना चाहती थी। कोई सड़ा-गला झोपड़ा, किसी वृक्ष की छाँह, पर्वत की गुफा, किसी नदी का तट उसके लिए इस भवन से सहस्रों गुना अच्छा था। वे दिन कितने अच्छे थे, जब वह अपने स्वामी के साथ पुत्र को हृदय से लगाए एक छोटे से मकान में रहती थी। वे दिन फिर न आएँगे। वह मनहूस घड़ी थी, जब उस इस भवन में कदम रखा था। वह क्या जानती थी कि इसके लिए उसे पति औ पुत्र से हाथ धोना पड़ेगा? आह! जब उसका पति जाने लगा, तो वह भी उस

साथ ही क्यों न चली गयी? रह-रहकर उसको अपनी भोग-लिप्सा पर क्रोध आता था, जिसने उसका सर्वनाश कर दिया था। क्या उस पाप का कोई प्रायश्चित नहीं है? क्या इस जीवन में स्वामी के दर्शन न होंगे? अपने प्रिय पुत्र की मोहिनी मूर्ति फिर वह न देख सकेगी? कोई ऐसी युक्ति नहीं है?

राजभवन अब भूतों का डेरा हो गया है। उसका अब कोई स्वामी नहीं रहा। राजा साहब अब महीनों नहीं आते। वह अधिकतर इलाके ही में घूमते रहते हैं। उनके अत्याचार की कथाएँ सुनकर लोगों के रोएँ खड़े हो जाते हैं। सारी रियासत में हाहाकार मचा हुआ है। कहीं किसी गाँव में आग लगायी जाती है, किसी गाँव के कुएँ भ्रष्ट किए जाते हैं। राजा साहब को किसी पर दया नहीं। उनके सारे सद्भाव शंखधर के साथ चले गये। विधाता ने अकारण ही उनपर इतना कठोर आघात किया है। वह इस आघात का बदला दूसरों से ले रहे हैं। जब उनके ऊपर किसी को दया नहीं आती, तो वह किसी पर क्यों दया करें? अगर ईश्वर ने उनके घर में आग लगायी है, तो वह भी दूसरों के घर में आग लगाएँगे। ईश्वर ने उन्हें रुलाया है, तो वह दूसरों को रुलाएँगे। लोगों को ईश्वर की याद आती है, तो उनकी धर्मबुद्धि जागृत हो जाती है; लेकिन किन लोगों की? जिनके सर्वनाश में कुछ कसर रह गई हो, जिनके पास रक्षा करने के योग्य कोई वस्तु रह गई हो, लेकिन जिसका सर्वनाश हो चुका है, उसे किस बात का डर?

अब राजा साहब के पास जाने का किसी को साहस नहीं होता। मनोरमा को देख-देखकर तो वह आपे से बाहर हो जाते हैं। अहिल्या भी उनसे कुछ कहते हुए थरथर काँपती है। अपने प्यारों को खोजने के लिए वह तरह-तरह के मनसूबे बाँधा करती है; लेकिन कहे किससे? उसे ऐसा विदित होता है कि ईश्वर ने उसको भोग-लिप्सा का यह दंड दिया है। यदि वह अपने पति के घर जाकर उसका प्रायश्चित करे, तो कदाचित् ईश्वर उसका अपराध क्षमा कर दें। उसका डूबता हुआ हृदय इस तिनके के सहारे को जोरों से पकड़े हुए है; लेकिन हाय रे मानव हृदय! इस घोर विपत्ति में भी मान का भूत सिर से नहीं उतरता। जाना तो चाहती है; लेकिन उसके साथ यह शर्त है कि कोई बुलाए। अगर राजा साहब मुंशीजी से इस विषय में कुछ संकेत कर दें, तो उसके लिए अवश्य बुलावा आ जाए; पर राजा साहब से तो भेंट ही नहीं होती और भेंट भी होती है, तो कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

इसमें संदेह नहीं कि वह अपने मन की बात मनोरमा से कह देती, तो बहुत आसानी से काम निकल जाता; लेकिन अहिल्या का मन मनोरमा से न पहले कभी मिला था, न अब मिलता था। उससे यह बात कैसे कहती? जो मनोरमा अब गाने-बजाने और सैर-सपाटे में मग्न रहती है, उससे वह अपनी व्यथा कैसे कह सकती? वह कहे भी, तो मनोरमा क्यों उसके साथ सहानुभूति करने लगी? यह दिन के दिन और रात की रात पड़ी रोया करती है। मनोरमा कभी

भूलकर भी उसकी बात नहीं पूछती, अपने रंग में मस्त रहती है। वह भला, अहिल्या की पीर क्या जानेगी?

तो मनोरमा सचमुच राग-रंग में मस्त रहती है? हाँ, देखने में तो यही मालूम होता है। लेकिन उसके हृदय पर क्या बीत रही है, यह कौन जान सकता है? वह आशा और नैराश्य, शान्ति और अशान्ति, गम्भीरता और उच्छृंखलता, अनुराग और विराग की एक विचित्र समस्या बन गई है! अगर वह सचमुच हँसती और गाती है, तो उसके मुख की वह कांति कहाँ है, जो चन्द्र को लजाती थी; वह चपलता कहाँ है, जो हिरन को हराती थी! उसके मुख और उसके नेत्रों को जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखो, तो मालूम होगा कि उसकी हँसी उसका आर्त्तनाद है और उसका राग प्रेम-मर्मान्तिक व्यथा का चिह्न। वह शोक की उस चरम सीमा को पहुँच गई है, जब चिन्ता और वासना दोनों ही का अन्त, लज्जा और आत्मसम्मान का लोप हो जाता है, जब शोक रोग का रूप धारण कर लेता है। मनोरमा ने कच्ची बुद्धि में यौवन जैसा अमूल्य रत्न देकर जो सोने की गुड़िया खरीदी थी, वह अब किसी पक्षी की भाँति उसके हाथों से उड़ गई थी। उसने सोचा था, जीवन का वास्तविक सुख धन और ऐश्वर्य में है; किन्तु अब बहुत दिनों से उसे ज्ञात हो रहा था कि जीवन का वास्तविक सुख कुछ और ही है, और वह उससे आजीवन वंचित रही। सारा जीवन गुड़िया खेलने ही में कट गया और अंत में वह गुड़िया भी हाथ से निकल गई। यह भाग्य व्यंग्य रोने की वस्तु नहीं, हँसने की वस्तु है। हम उससे कहीं ज्यादा हँसते है, जितना परम आनन्द में हँस सकते हैं। प्रकाश जब हमारी सहन शक्ति से अधिक हो जाता है, तो अन्धकार बन जाता है; क्योंकि हमारी आँखें ही बन्द हो जाती हैं।

एक दिन अहिल्या का चित्त इतना उद्विग्न हुआ कि वह संकोच और झिझक छोड़कर मनोरमा के पास आ बैठी। मनोरमा के सामने प्रार्थी के रूप में आते हुए उसे जितनी मानसिक वेदना हुई, उसका अनुमान इसी से किया जा सकता है, कि अपने कमरे से यहाँ तक आने में उसे कम-से-कम दो घंटे लगे। कितनी ही बार द्वार तक आकर लौट गयी। जिसकी सदैव अवहेलना की, उसके सामने अब अपनी गरज लेकर जाने में उसे लज्जा आती थी; लेकिन जब भगवान् ने ही गर्व तोड़ दिया था, तो अब झूठी ऐंठ से क्या हो सकता था?

मनोरमा ने उसे देखकर कहा—क्या, रो रही थी अहिल्या? यों कब तक रोती रहेगी?

अहिल्या ने दीन भाव से कहा—जब तक भगवान् रुलावें!

कहने को तो अहिल्या ने यह कहा; पर इस प्रश्न से उसका गर्व जाग उठा और वह पछतायी कि यहाँ नाहक आयी। उसका मुख तेज से आरक्त हो गया।

मनोरमा ने उपेक्षा भाव से कहा—तब तो हँसना चाहिए। जिसमें दया नहीं,

उसके सामने रोकर अपना दीदा क्यों खोती हो ? भगवान् अपने घर का भगवान् होगा। कोई उसके रुलाने से क्यों रोए ? मन में एक बार निश्चय कर लो कि अब न रोऊँगी, फिर देखूँ कि कैसे रोना आता है !

अहिल्या से अब जब्त न हो सका, बोली—तुम तो जले पर नमक छिड़कती हो, रानीजी ? तुम्हारा जैसा हृदय कहाँ से लाऊँ ? और फिर रोता भी वह है, जिस पर पड़ती है। जिसपर पड़ी ही नहीं, वह क्यों रोएगा ?

मनोरमा हँसी—वह हँसी, जो या तो मूर्ख ही हँस सकता है या ज्ञानी ही। बोली—अगर भगवान् किसी को रुलाकर ही प्रसन्न होता है, तब तो वह विचित्र ही जीव है अगर कोई माता या पिता अपनी संतान को रोते देखकर प्रसन्न हो, तो तुम उसे क्या कहोगी—बोली ? तुम्हारा जी चाहेगा कि ऐसे प्राणी का मुँह न देखूँ। क्या ईश्वर हमसे और तुमसे भी गया बीता है ? आओ, बैठकर गावें। इससे ईश्वर प्रसन्न होगा। वह जो कुछ करता है, सबके भले ही के लिए करता है। इसलिए जब वह देखता है कि उसे लोग अपना शत्रु समझते हैं, तो उसे दुःख होता है। तुम अपने पुत्र को इसीलिए तो ताड़ना देती हो कि अच्छे रास्ते पर चले। अगर तुम्हारा पुत्र इस बात पर तुमसे रूठ जाए और तुम्हें अपना शत्रु समझने लगे, तो तुम्हें कितना दुःख होगा ? आओ, तुम्हें एक भैरवी सुनाऊँ। देखो, मैं कैसा अच्छा गाती हूँ।

अहिल्या ने गाना सुनने के प्रस्ताव को अनसुना करके कहा—माता-पिता संतान को इसीलिए तो ताड़ना देते हैं कि वह बुरी आदतें छोड़ दें, अपने बुरे कामों पर लज्जित हों और उसका प्रायश्चित करें ? हमें भी जब ईश्वर ताड़ना देता है, तो उसकी भी यही इच्छा होती है। विपत्ति ताड़ना ही तो है। मैं भी प्रायश्चित करना चाहती हूँ और आपसे उसके लिए सहायता माँगने आयी हूँ। मुझे अनुभव हो रहा है कि यह सारी विडम्बना मेरे विलास प्रेम का फल है, और मैं इसका प्रायश्चित करना चाहती हूँ। मेरा मन कहता है कि यहाँ से निकलकर मैं अपना मनोरथ पा जाऊँगी। यह सारा दंड मेरी विलासांधता का है। आप जाकर अम्माँजी से कह दीजिए, मुझे बुला लें। इस घर में आकर मैं अपना सुख खो बैठी और इस घर से निकलकर ही उसे पाऊँगी।

मनोरमा को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसकी आँखें खुल गईं। क्या वह भी इस घर से निकलकर सच्चे आनन्द का अनुभव करेगी ? क्या उसे भी ऐश्वर्य प्रेम ही का दंड भोगना पड़ रहा है ? क्या यह सारी अंतर्वेदना इसी विलास प्रेम के कारण है ?

उसने कहा—अच्छा, अहिल्या, मैं आज ही जाती हूँ।

इसके चौथे दिन मुंशी वज्रधर ने राजा साहब के पास रुखसती का संदेशा भेजा। राजा साहब इलाके पर थे। संदेशा पाते ही जगदीशपुर आये। अहिल्या का कलेजा धक-धक करने लगा कि राजा साहब कहीं आ न जाएँ। इधर-उधर

ती-फिरती थी कि उनका सामना न हो जाए। उसे मालूम होता था कि राजा हब ने रुखसती मंजूर कर ली है; पर अब जाने के लिए वह बहुत उत्सुक न । यहाँ से जाना तो चाहती थी; पर जाते दुख होता था। यहाँ आये उसे चौदह ल हो गए। वह इसी घर को अपना घर समझने लगी थी। ससुराल उसके लए बिरानी जगह थी। कहीं निर्मला ने कोई बात कह दी, तो वह क्या करेगी ? जिस घर से मान करके निकली थी, वहीं अब विवश होकर जाना पड़ रहा था। इन बातों को सोचते-सोचते आखिर उसका दिल इतना घबराया कि वह राजा साहब के पास जाकर बोली—आप मुझे क्यों विदा करते हैं ? मैं नहीं जाना चाहती।

राजा साहब ने हँसकर कहा—कोई लड़की ऐसी भी है, जो खुशी से ससुराल जाती हो ? और कौन पिता ऐसा है, जो लड़की को खुशी से विदा करता हो ? मैं कब चाहता हूँ कि तुम जाओ, लेकिन मुंशी वज्रधर की आज्ञा है, और यह मुझे शिरोधार्य करनी पड़ेगी। वह लड़के के बाप हैं, मैं लड़की का बाप हूँ; मेरी और उनकी क्या बराबरी ? और बेटी, मेरे दिल में भी अरमान है, उसके पूरा करने का और कौन अवसर आएगा ? शंखधर होता, तो उसके विवाह में वह अरमान पूरा होता। अब वह तुम्हारे गौने में पूरा होगा।

अहिल्या इसका क्या जवाब देती ?

दूसरे दिन से राजा साहब ने विदाई की तैयारियाँ करनी शुरू कर दीं। सारे इलाके के सुनार पकड़ बुलाए और गहने बनने लगे। इलाके ही के दरजी कपड़े सीने लगे। हलवाइयों के कढ़ाह चढ़ गए और पकवान बनने लगे। घर की सफाई और रँगाई होने लगी। राजाओं, रईसों और अफसरों को निमंत्रण भेजे जाने लगे। सारे शहर की वेश्याओं को बयाने दे दिये गए। बिजली की रोशनी का इंतजाम होने लगा। ऐसा मालूम होता था, मानो किसी बड़ी बरात के स्वागत और सत्कार की तैयारी हो रही है। अहिल्या यह सामान देख-देखकर दिल में झुँझलाती और शर्माती थी। सोचती—कहाँ से कहाँ मैंने यह विपत्ति मोल ले ली। अब इस बुढ़ापे में मेरा गौना ! मैं मरने की राह देख रही हूँ; यहाँ गौने की तैयारी हो रही है। कौन जाने, यह अंतिम विदाई ही हो। राजा साहब ऐसे व्यस्त थे कि किसी से बात करने की भी फ़ुरसत उन्हें न थी। कहीं सुनारों के पास बैठे अच्छी नक्काशी कर की ताकीद कर रहे हैं। कहीं जौहरियों के पास बैठे जवाहरात परख रहे हैं। उन अरमानों का वारापार ही न था। मन की मिठाई घी शक्कर की मिठाई से क स्वादिष्ट नहीं होती।

शंखधर को होश आया, तो अपने को मंदिर के बरामदे में चक्रधर की गोद में पड़ा हुआ पाया। चक्रधर चिंतित नेत्रों से उसके मुँह की ओर ताक रहे थे। गाँव के कई आदमी आस-पास खड़े पंखा झल रहे थे। आह! आज कितने दिनों के बाद शंखधर को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह पिता की गोद में लेटा हुआ है! आकाश के निवासियो, तुम पुष्प की वर्षा क्यों नहीं करते?

शंखधर ने फिर आँखें बन्द कर लीं। उसकी चिर सन्तप्त आत्मा एक अलौकिक शीतलता, एक अपूर्व तृप्ति, एक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव कर रही थी। इस अपार सुख को वह इतनी जल्द न छोड़ना चाहता था। उसे अपनी वियोगिनी माता की याद आयी। वह उस दिन का स्वप्न देखने लगा, जब वह अपनी माता को भी इस परम आनन्द का अनुभव कराएगा, उसका जीवन सफल करेगा।

चक्रधर ने स्नेह मधुर स्वर में पूछा—क्यों बेटा, अब कैसी तबीयत है?

कितने स्नेह मधुर शब्द थे। किसी के कानों ने कभी इतने कोमल शब्द सुने हैं? भगवान् इन्द्र भी आकर उससे बोलते, तो क्या वह इतना गौरवान्वित हो सकता था?

'क्यों बेटा, कैसी तबीयत है'—वह इसका क्या जवाब दे? अगर कहता है—अब मैं अच्छा हूँ, तो इस सुख से वंचित होना पड़ेगा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। देना भी चाहता, तो उसके मुँह से शब्द न निकलते। उसका जी चाहा, इन चरणों पर सिर रखकर खूब रोए। इससे बढ़कर और किसी सुख की वह कल्पना ही न कर सकता था। संसार की कोई वस्तु कभी इतनी सुन्दर थी? वायु और प्रकाश, वृक्ष और वन, पृथ्वी और पर्वत कभी इतने प्यारे न लगते थे। उनकी छटा ही कुछ और हो गई थी, उनमें कितना वात्सल्य था, कितनी आत्मीयता।

चक्रधर ने फिर पूछा—क्यों बेटा कैसी तबीयत है?

शंखधर ने कातर स्वर से कहा—अब तो अच्छा हूँ। आप ही का नाम बाबा भगवानदास है?

चक्रधर—हाँ, मुझी को भगवानदास कहते हैं।

शंखधर—मैं आप ही के दर्शनों के लिए आया हूँ। बहुत दूर से आया हूँ। मैंने बेंदो में आपकी खबर पायी। वहाँ मालूम हुआ कि आप साईंगंज चले गए हैं। वहाँ से साईंगंज चला। सारी रात चलता रहा; पर साईंगंज न मिला। एक दूसरे गाँव में जा पहुँचा, यह जो पर्वत के ऊपर बसा हुआ है। वहाँ मालूम हुआ कि मैं रास्ता भूल गया था। तभी बस्त इधर चला।

चक्रधर—रात को कहीं ठहरे नहीं?

शंखधर—यही भय था कि शायद आप कहीं और आगे न बढ़ जाएँ?

चक्रधर—कुछ भोजन भी न किया होगा ?

शंखधर—भोजन की तो ऐसी इच्छा न थी। आपके दर्शन हुए, मैं कृतार्थ हो गया। अब मेरे संकट कट जाएँगे। मैं आपका यश सुनकर आया हूँ। आप ही मेरा उद्धार कर सकते हैं।

चक्रधर—बेटा, संकट काटनेवाला ईश्वर है, मैं तो उनका क्षुद्र सेवक हूँ; लेकिन पहले कुछ भोजन कर लो और आराम से सो रहो। मुझे कई रोगियों को देखने जाना है। मैं शाम को लौटूँगा, तो तुमसे बातें होंगी। क्या कहूँ, मेरे कारण तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़ा।

शंखधर ने मन में कहा—इस परम आनन्द के लिए मैं क्या नहीं सह सकता था ! अगर मुझे मालूम हो जाता कि अग्नि-कुंड में जाने से आपके दर्शन होंगे, तो क्या मैं एक क्षण का भी विलम्ब करता ? कदापि नहीं। प्रकट में उसने कहा—मुझे तो यह स्वर्ग-यात्रा-सी मालूम होती थी। भूख, प्यास, थकान कुछ भी नहीं थी।

चक्रधर का चित्त अस्थिर हो गया। उस युवक के रूप और वाणी में न जाने कौन सी बात थी, जो उनके मन में उससे बातचीत करने की प्रबल इच्छा हो रही थी। रोगियों को देखने न जाना चाहते थे; मन बहाना खोजने लगा। रोगियों को दवा तो दे ही आया हूँ, उनकी चेष्टा भी कुछ ऐसी चिन्ताजनक नहीं। जाना व्यर्थ है। जरा पूछना चाहिए कि यह युवक कौन है ? क्यों मुझसे मिलने के लिए उत्सुक है ? कितना सुशील बालक है ! इसकी वाणी में कितना विनय है और स्वरूप तो देवकुमारों का-सा है। किसी उच्च कुल का युवक है।

लेकिन फिर उन्होंने सोचा—मेरे न जाने से रोगियों को कितनी निराशा होगी ! कौन जाने, उनकी दशा बिगड़ गई हो। जाना ही चाहिए। तब तक यह बालक भी तो आराम कर लेगा ! बेचारा सारी रात चलता रहा। मैं जानता, तो बेंदों में टिक गया होता।

एक आदमी पानी लाया। शंखधर ने मुँह-हाथ धोया और चाहता था कि खाली पेट पानी पी ले; लेकिन चक्रधर ने मना किया—हाँ-हाँ, यह क्या ? अभी पानी न पियो। रात भर कुछ खाया नहीं और पानी पीने लगे। आओ, कुछ भोजन कर लो।

शंखधर—बड़ी प्यास लगी है।

चक्रधर—पानी कहीं भागा तो नहीं जाता। कुछ खाकर पीना, और वह भी इतना नहीं कि पेट में पानी डोलने लगे।

शंखधर—दो ही घूँट पी लूँ। नहीं रहा जाता।

चक्रधर ने आकर उसके हाथ से लोटा छीन लिया और कठोर स्वर में कहा—अभी तुम एक बूँद भी पानी नहीं पी सकते। क्या जान देने पर उतारू हो गए हो ?

शंखधर को इस भर्त्सना में जो आनन्द मिल रहा था, वह कभी माता की प्रेम भरी बातों में भी न मिला था। पाँच वर्ष हुए, जब से वह अपने मन की करता आया है। वह जो पाता है, खाता है; जब चाहता है, पानी पीता है; जहाँ जगह पाता है, पड़ रहता है। किसी को इसकी कुछ परवा नहीं होती। लोटा हाथ से न छीना गया होता, तो वह बिना दो चार घुड़कियाँ खाए न मानता।

मंदिर के पीछे छोटा-सा बाग और कुआँ था। वहीं एक वृक्ष के नीचे चक्रधर की रसोई बनी थी। चक्रधर अपना भोजन आप पकाते थे, बर्तन भी आप ही धोते थे, पानी भी खुद खींचते थे। शंखधर उनके साथ भोजन करने गया, तो देखा कि रसोई में पूरी, मिठाई, दूध, दही सब कुछ है। उसकी राल टपकने लगी। इन पदार्थों का स्वाद चखे हुए उसे एक युग बीत गया था; मगर उसे कितना आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा कि ये सारे पदार्थ उसी के लिए मँगवाए गए हैं। चक्रधर ने उसके लिए तो खाना एक पत्तल में रख दिया और आप कुछ मोटी रोटियाँ और भाजी लेकर बैठे, जो खुद उन्होंने बनाई थीं।

शंखधर ने कहा—आप तो सब मुझी को दिए जाते हैं, अपने लिए कुछ रखा ही नहीं?

चक्रधर—मेरे लिए तो यह रोटियाँ हैं। मेरा भोजन यही है।

शंखधर—तो फिर मुझे भी रोटियाँ ही दीजिए।

चक्रधर मैं तो बेटा, रोटियों के सिवा और कुछ नहीं खाता। मेरी पाचन-शक्ति अच्छी नहीं है। दिन में एक बार खा लिया करता हूँ।

शंखधर—मेरा भोजन तो थोड़ा-सा सत्तू या चबेना है। मैंने तो बरसों से इन चीजों की सूरत तक नहीं देखी। अगर आप न खाएँगे, तो मैं भी न खाऊँगा।

आखिर शंखधर के आग्रह से चक्रधर को अपना नियम तोड़ना पड़ा। सोलह वर्षों का पाला हुआ नियम, जिसे बड़े-बड़े रईसों और राजाओं का भक्तिमय आग्रह भी न तोड़ सका था, आज इस अपरिचित बालक ने तोड़ दिया। उन्होंने झुँझला-कर कहा—भाई, तुम बड़े जिद्दी मालूम होते हो। अच्छा, लो, मैं भी खाता हूँ। अब तो खाओगे, या अब भी नहीं?

उन्होंने सब चीजों में से ज़रा-ज़रा सा निकालकर अपनी पत्तल में रख लिया और बाकी चीजें शंखधर के आगे रख दीं। शंखधर ने अब भी भोजन में हाथ नहीं लगाया।

चक्रधर ने पूछा—अब क्या बैठे हो, खाते क्यों नहीं? तुम्हारे मन की बात हो गई? या अब भी कुछ बाकी है?

शंखधर—आपने तो केवल उलाहना छुड़ाया है। लाइए, मैं परस दूँ

चक्रधर—अगर तुम इस तरह जिद करोगे, तो मैं तुम्हारी दवा न तुम्हें अपने साथ रखूँगा भी नहीं।

शंखधर—मुझे क्या, न दवा कीजिएगा, तो यहीं पड़ा-पड़ा मर जाऊँ

चक्रधर—कुछ भोजन भी न किया होगा ?

शंखधर—भोजन की तो ऐसी इच्छा न थी। आपके दर्शन हुए, मैं कृतार्थ हो गया। अब मेरे संकट कट जाएँगे। मैं आपका यश सुनकर आया हूँ। आप ही मेरा उद्धार कर सकते हैं।

चक्रधर—बेटा, संकट काटनेवाला ईश्वर है, मैं तो उनका क्षुद्र सेवक हूँ; लेकिन पहले कुछ भोजन कर लो और आराम से सो रहो। मुझे कई रोगियों को देखने जाना है। मैं शाम को लौटूंगा, तो तुमसे बातें होंगी। क्या कहूँ, मेरे कारण तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़ा।

शंखधर ने मन में कहा—इस परम आनन्द के लिए मैं क्या नहीं सह सकता था! अगर मुझे मालूम हो जाता कि अग्नि-कुंड में जाने से आपके दर्शन होंगे, तो क्या मैं एक क्षण का भी विलम्ब करता? कदापि नहीं। प्रकट में उसने कहा—मुझे तो यह स्वर्ग-यात्रा-सी मालूम होती थी। भूख, प्यास, थकान कुछ भी नहीं थी।

चक्रधर का चित्त अस्थिर हो गया। उस युवक के रूप और वाणी में न जाने कौन सी बात थी, जो उनके मन में उससे बातचीत करने की प्रबल इच्छा हो रही थी। रोगियों को देखने न जाना चाहते थे; मन बहाना खोजने लगा। रोगियों को दवा तो दे ही आया हूँ, उनकी चेष्टा भी कुछ ऐसी चिन्ताजनक नहीं। जाना व्यर्थ है। जरा पूछना चाहिए कि यह युवक कौन है? क्यों मुझसे मिलने के लिए उत्सुक है? कितना सुशील बालक है! इसकी वाणी में कितना विनय है और स्वरूप तो देवकुमारों का-सा है। किसी उच्च कुल का युवक है।

लेकिन फिर उन्होंने सोचा—मेरे न जाने से रोगियों को कितनी निराशा होगी! कौन जाने, उनकी दशा बिगड़ गई हो। जाना ही चाहिए। तब तक यह बालक भी तो आराम कर लेगा! बेचारा सारी रात चलता रहा। मैं जानता, तो वेंदों में टिक गया होता।

एक आदमी पानी लाया। शंखधर ने मुँह-हाथ धोया और चाहता था कि खाली पेट पानी पी ले; लेकिन चक्रधर ने मना किया—हाँ-हाँ, यह क्या? अभी पानी न पियो। रात भर कुछ खाया नहीं और पानी पीने लगे। आओ, कुछ भोजन कर लो।

शंखधर—बड़ी प्यास लगी है।

चक्रधर—पानी कहीं भागा तो नहीं जाता। कुछ खाकर पीना, और वह भी इतना नहीं कि पेट में पानी डोलने लगे।

शंखधर—दो ही घूंट पी लूं। नहीं रहा जाता।

चक्रधर ने आकर उसके हाथ से लोटा छीन लिया और कठोर स्वर में कहा—अभी तुम एक बूंद भी पानी नहीं पी सकते। क्या जान देने पर उतारू हो गए हो?

शंखधर को इस भर्त्सना में जो आनन्द मिल रहा था, वह कभी माता की प्रे भरी बातों में भी न मिला था। पाँच वर्ष हुए, जब से वह अपने मन को कर्त्त आया है। वह जो पाता है, खाता है; जब चाहता है, पानी पीता है; जहाँ जग पाता है, पड़ रहता है। किसी को इसकी कुछ परवा नहीं होती। लोटा हाथ से न छीना गया होता, तो वह बिना दो चार घुड़कियाँ खाए न मानता।

मंदिर के पीछे छोटा-सा बाग और कुआँ था। वहीं एक वृक्ष के नीचे चक्रधर की रसोई बनी थी। चक्रधर अपना भोजन आप पकाते थे, बर्तन भी आप ही धोते थे, पानी भी खुद खींचते थे। शंखधर उनके साथ भोजन करने गया, तो देखा कि रसोई में पूरी, मिठाई, दूध, दही सब कुछ है। उसकी राल टपकने लगी। इन पदार्थों का स्वाद चखे हुए उसे एक युग बीत गया था; मगर उसे कितना आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा कि ये सारे पदार्थ उसी के लिए मँगवाए गए हैं। चक्रधर ने उसके लिए तो खाना एक पत्तल में रख दिया और आप कुछ मोटी रोटियाँ और भाजी लेकर बैठे, जो खुद उन्होंने बनाई थीं।

शंखधर ने कहा—आप तो सब मुझी को दिए जाते हैं, अपने लिए कुछ रखा ही नहीं?

चक्रधर—मेरे लिए तो यह रोटियाँ हैं। मेरा भोजन यही है।

शंखधर—तो फिर मुझे भी रोटियाँ ही दीजिए।

चक्रधर—मैं तो बेटा, रोटियों के सिवा और कुछ नहीं खाता। मेरी पाचन-शक्ति अच्छी नहीं है। दिन में एक बार खा लिया करता हूँ।

शंखधर—मेरा भोजन तो थोड़ा-सा सत्तू या चबेना है। मैंने तो बरसों से इन चीज़ों की सूरत तक नहीं देखी। अगर आप न खाएँगे, तो मैं भी न खाऊँगा।

आखिर शंखधर के आग्रह से चक्रधर को अपना नियम तोड़ना पड़ा। सोलह वर्षों का पाला हुआ नियम, जिसे बड़े-बड़े रईसों और राजाओं का सविनय आग्रह भी न तोड़ सका था, आज इस अपरिचित बालक ने तोड़ दिया। उन्होंने झुँझला-कर कहा—भाई, तुम बड़े जिद्दी मालूम होते हो। अच्छा, लो, मैं भी खाता हूँ। अब तो खाओगे, या अब भी नहीं?

उन्होंने सब चीज़ों में से ज़रा-ज़रा सा निकालकर अपनी पत्तल में रख लिया और बाकी चीज़ें शंखधर के आगे रख दीं। शंखधर ने अब भी भोजन में हाथ नहीं लगाया।

चक्रधर ने पूछा—अब क्या बैठे हो, खाते क्यों नहीं? तुम्हारे मन की बात हो गई? या अब भी कुछ बाकी है?

शंखधर—आपने तो केवल उलाहना छुड़ाया है। लाइए, मैं परस दूँ।

चक्रधर—अगर तुम इस तरह जिद करोगे, तो मैं तुम्हारी दया न करूँगा। तुम्हें अपने साथ रखूँगा भी नहीं।

शंखधर—मुझे क्या, न दया कीजिएगा, तो यहीं पड़ा-पड़ा मर जाऊँगा। कौन

कोई रोनेवाला बैठा हुआ है ?

यह कहते-कहने शंखधर की आँखें सजल हो गईं। चक्रधर ने विकल होकर कहा— अच्छा लाओ, तुम्हीं अपने हाथ से दे दो। अपशब्द क्यों मुँह से निकालते हो ? लाओ कितना देते हो ? अब से मैं तुम्हें अलग भोजन मँगवा दिया करूँगा।

शंखधर ने सभी चीजों में से आधी से अधिक उनके सामने रख दीं और आप एक पंखा लेकर उन्हें झलने लगा। चक्रधर ने वात्सल्यपूर्ण कठोरता से कहा— मालूम होता है, आज तुम मुझे बीमार करोगे। भला, इतनी चीजें मैं खा सकूँगा ?

शंखधर—इसीलिए तो मैंने थोड़ी-थोड़ी दी हैं।

चक्रधर— यह थोड़ी-थोड़ी हैं। तो क्या तुम सबकी सब मेरे ही पेट में ठूँस देना चाहते हो ? अब भी बैठोगे या नहीं ? मुझे पंखे की जरूरत नहीं।

शंखधर—आप खाएँ, मैं पीछे से खा लूँगा।

चक्रधर—भाई, तुम विचित्र जीव हो। तीन दिन के भूखे हो और मुझसे कहते हो, आप खाइए; मैं फिर खा लूँगा।

चक्रधर— मैं तो आपका जूठन खाऊँगा।

उसकी आँखें फिर सजल हो गईं ! चक्रधर ने तिरस्कार के भाव से कहा— क्यों भाई, मेरा जूठन क्यों खाओगे ? अब तो सब बातें तुम्हारे ही मन की हो रही हैं।

शंखधर—मेरी बहुत दिनों से यही आकांक्षा थी। जब से आपकी कीर्ति सुनी, तभी से यह अवसर खोज रहा था।

चक्रधर—तुम न आप खाओगे, न मुझे खाने दोगे।

शंखधर— मैं तो आपका जूठन ही खाऊँगा।

चक्रधर को फिर हार माननी पड़ी। वह एकान्तवासी, संयमी, व्रतधारी, योगी आज इस अपरिचित दीन बालक के दुराग्रहों को किसी भाँति न टाल सकता था।

शंखधर को आज खड़े होकर पंखा झलने में जो आनन्द, जो आत्मोल्लास, जो गर्व हो रहा था, उसका कौन अनुमान कर सकता है। इस आनन्द के सामने वह त्रिलोक के राज्य पर भी लात मार सकता था। आज उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि अपने पूज्य पिता की कुछ सेवा कर सके। कठिन तपस्या के बाद आज उसे यह वरदान मिला है। उससे बढ़कर सुखी और कौन हो सकता है ! आज अपना जीवन सार्थक मालूम हो रहा है—वह जीवन, जिसका अब तक कोई उद्देश्य न था। आनन्द के आँसू उसकी आँखों से बहने लगे।

चक्रधर जब भोजन करके उठ गए तो उसने उसी पत्तल में अपनी पत्तल की चीजें डाल लीं और भोजन करने बैठा। ओह ! इस भोजन में कितना स्वाद था ! क्या सुधा में इतना स्वाद हो सकता है ? उसने आज से कई साल पहले उत्तम से

उत्तम पदार्थ खाए थे; लेकिन उनमें यह अलौकिक स्वाद कहाँ था ?

चक्रधर हाथ-मुँह धोकर गद्गद कंठ से बोले—तुमने आज मेरे दो नि मंग कर दिए। बिना जाने-बूझे किसी को मेहमान बना लेने का यही फल हो है। अब मैं आज कहीं न जाऊँगा। तुम भोजन कर लो और मुझसे जो कुछ कह हो, कहो। मैं ऐसे ज़िद्दी लड़के को अपने साथ और न रखूँगा। तुम्हारा घर कह है ? यहाँ से कितनी दूर है ?

शंखधर—मेरे तो कोई घर ही नहीं।

चक्रधर—माता-पिता तो होंगे ? वह किस गाँव में रहते हैं ?

शंखधर—यह मुझे कुछ नहीं मालूम। पिताजी तो मेरे बचपन ही में घर से चले गए और माताजी का पाँच साल से मुझे कोई समाचार नहीं मिला।

. चक्रधर को ऐसा मालूम हुआ, मानो पृथ्वी नीचे खिसकी जा रही है, मानो वह जल में बहे जा रहे हैं। पिता बचपन ही में घर से चले गए और माताजी का पाँच साल से कुछ समाचार नहीं मिला ? भगवान् क्या यह वही नन्हा-सा बालक है ! वही, जिसे अपने हृदय से निकालने की चेष्टा करते हुए आज 16 वर्षों से अधिक हो गए !

उन्होंने हृदय को सँभालते हुए पूछा—तुम पाँच साल तक कहाँ रहे बेटा, जो घर नहीं गए ?

शंखधर—पिताजी को खोजने निकला था और जब तक वह न मिलेंगे, लौटकर घर न जाऊँगा।

चक्रधर को ऐसा मालूम हुआ, मानो पृथ्वी डगमगा रही है, मानो समस्त ब्रह्मांड एक प्रलयकारी भूचाल से आन्दोलित हो रहा है। वह सायबान के स्तम्भ के सहारे बैठ गए और एक ऐसे स्वर में बोले, जो आशा और भय के वेगों को दबाने के कारण क्षीण हो गया था। यह प्रश्न न था; बल्कि एक जानी हुई बात का समर्थन मात्र था। तुम्हारा नाम क्या है बेटा ? इस प्रश्न का उत्तर क्या वही होगा, जिसकी सम्भावना चक्रधर को विकल और पराभूत कर रही थी ? संसार में क्या ऐसा एक ही बालक है जिसे उसका बाप बचपन में छोड़कर चला गया हो ? क्या ऐसा एक ही किशोर है, जो अपने बाप को खोजने निकला हो ? यदि उसका उत्तर वही हुआ, जिसका उन्हें भय था, तो वह क्या करेंगे ? उनके सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हो गई। वह धड़कते हुए हृदय से उत्तर की ओर कान लगाए थे, जैसे कोई अपराधी अपना कर्म दंड सुनने के लिए न्यायाधीश की ओर कान लगाए खड़ा हो।

शंखधर ने जवाब दिया – मेरा तो नाम शंखधरसिंह है।

चक्रधर—और तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

शंखधर—मुंशी चक्रधर कहते हैं।

चक्रधर—घर कहाँ है ?

शंखधर—जगदीशपुर !

सर्वनाश ! चक्रधर को ऐसा ज्ञात हुआ कि उनकी देह से प्राण निकल गए हैं, मानो उनके चारों ओर शून्य है। 'शंखधर !' वस, यही एक शब्द उस प्रशस्त शून्य में किसी पंछी की भांति चक्कर लगा रहा था। 'शंखधर !' यही एक स्मृति थी, जो उस प्राण-शून्य दशा में चेतना को संस्कारों में बांधे हुई थी।

45

राजा विशालसिंह ने जिस हौसले से अहिल्या का गौना किया, वह राजाओं-रईसों में भी बहुत कम देखने में आता है। तहसीलदार साहब के घर में इतनी चीजों को रखने की जगह भी न थी। वर्तन, कपड़े, शीशे के सामान, लकड़ी की अलभ्य वस्तुएँ, मेवे, मिठाइयां, गायें, भैंसें—इनका हफ्तों तक तांता लगा रहा। दो हाथी और पांच घोड़े भी मिले, जिनके बांधने के लिए घर में जगह न थी। पांच लौंडियां अहिल्या के साथ आईं। यद्यपि तहसीलदार साहब ने नया मकान बनवाया था; पर वह क्या जानते थे कि एक दिन रियासत जगदीशपुर की आधी सम्पत्ति आ पहुँचेगी ? घर का कोना-कोना सामानों से भरा हुआ था। कई पड़ोसियों के मकान भी अँट उठे। इस पर लाखों रुपये नकद मिले वह अलग। तहसीलदार साहब लाने को तो सब कुछ लाए, पर अब उन्हें देख-देख रोते और कुढ़ते थे। कोई भोगनेवाला नहीं ! अगर यही सम्पत्ति आज से पच्चीस साल पहले मिली होती, तो उनका जीवन सफल हो जाता, जिन्दगी का कुछ मजा उठा लेते, अब बुढ़ापे में इनको लेकर क्या करें ? चीजों को बेचना अपमान की बात थी। हां, यार दोस्तों को जो कुछ भेंट कर सकते थे, किया। अनाज की कई गाड़ियां मिली थीं, वह सब उन्होंने लुटा दीं। कई महीने सदाव्रत-सा चलता रहा। नौकरों को हुक्म दे दिया कि किसी आदमी को कोई चीज मँगनी देने से इंकार मत करो। सहालग के दिनों में रोज ही हाथी, घोड़े, पालकियां, फर्श आदि सामान मँगनी जाते, सारे शहर में तहसीलदार साहब की कीर्ति छा गई। बड़े-बड़े रईस उनसे मुलाकात करने लगे। नसीब जगे, तो इस तरह जगे। कहाँ रोटियां भी न मयस्सर होती थीं, आज द्वार पर हाथी झूमता है। सारे शहर में यही चर्चा थी।

मगर मुंशीजी के दिल पर जो कुछ बीत रही थी, वह कौन जान सकता है ? दिन में बीसों ही बार चक्रधर पर बिगड़ते—नालायक ! आप तो आप गया, अपने साथ लड़के को भी ले गया। न जाने कहाँ मारा-मारा फिरता होगा, देश का उपकार करने चला है। सच कहा है—घर की रोएँ, बन की सोएँ। घर के आदमी मरें, परवा नहीं; दूसरों के लिए जान देने को तैयार। अब बताओ, इन

हाथी, घोड़े, मोटरों और गाड़ियों को लेकर क्या करूँ? अकेले किस-किस पर बैठूँ? बहू है, उसे रोने से फुरसत नहीं। बच्चा की माँ है, उनसे अब मारे शोक के रहा नहीं जाता। कौन बैठे? यह सामान तो मेरे जी का जंजाल हो गया। पहले बेचारे शाम-सबेरे कुछ गा-बजा लेते थे, कुछ सफर भी जमा लिया करते थे, आज इन चीजों को देख-भाल ही में भोर हो जाता। क्षण भर भी आराम से बैठने की मुहलत न मिलती। निर्मला किसी चीज की ओर आँख उठाकर भी न देखती, मुंशीजी ही को सबकी निगरानी करनी पड़ती थी।

अहिल्या यहाँ आकर और भी पछताने लगी। वह रनिवास के विलासमय जीवन से विरक्त होकर यहाँ प्रायश्चित करने के इरादे से आई थी; पर यहाँ विपत्ति उसके साथ यहाँ भी आई। वहाँ उसे घर-गृहस्थी से कोई मतलब न था, यहाँ वह विपत्ति भी सिर पड़ी। जिन वस्तुओं से उसे वहाँ जरा भी मोह न था, उन्हीं के खो जाने की खबर हो जाने पर उसे दुःख होता था। वह माया को छोड़ना चाहती थी, माया ने उसी को परास्त कर दिया। सम्पत्ति से गला छुड़ाना चाहती थी; पर सम्पत्ति उससे और चिमट गई थी। वहाँ कुछ देर शान्ति से बैठ सकती थी, कुछ देर हँस-बोलकर जी बहला लेती थी, किसी के ताने-मेहने न सुनने पड़ते थे, यहाँ निर्मला बातों से छेदती और घाव पर नमक छिड़कती रहती थी। बहू के कारण वह अपने पुत्र से वंचित हुई। बहू ही के कारण पोता भी हाथ से गया। ऐसी बहू को वह फूल-पान से पूज न सकती थी। सम्पत्ति लेकर वह क्या करे? चाटे? पुत्र और पौत्र के बदले में इस अतुल धन का क्या मूल्य था? भोजन वह अब भी अपने हाथों ही पकाती थी। अहिल्या के साथ जो महाराजिनें आई थीं, उनका पकाया हुआ भोजन वह ग्रहण न कर सकती थी। अहिल्या से भी वह छूत मानती थी। इन दिनों मंगला भी आई हुई थी। उसका जी चाहता था कि यहाँ की सारी चीजें समेट ले जाऊँ। अहिल्या अपनी चीजों को तीन-तेरह न होने देना चाहती थी। इससे ननद-भावज में कभी-कभी खटपट हो जाती थी।

बर्तनों में कई बड़े-बड़े कंडाल भी थे। एक कंडाल इतना बड़ा था कि उसमें कोई सौ कलसे पानी आ जाता था। मंगला ने एक दिन यह कंडाल अपने घर भिजवा दिया। कई दिन बाद अहिल्या को यह खबर मिली, तो उसने जाकर सास से पूछा—अम्मांजी, वह बड़ा कंडाल कहाँ है, दिखाई नहीं देता?

निर्मला ने कहा—बाबा, मैं नहीं जानती, कैसा कंडाल था। घर में है, तो कहाँ जा सकता है?

अहिल्या—जब घर में हो तब न?

निर्मला—घर में से कहाँ गायब हो जाएगा?

अहिल्या—घर की चीज घर के आदमियों के सिवा और कौन छू सकता

निर्मला—तो क्या इस घर में सब चोर ही बसते हैं?

अहिल्या—यह तो मैं नहीं कहती; लेकिन चीज का पता तो लगना ही चाहिए।

निर्मला—तुम चीजें लादकर ले जाओगी, तुम्हीं पता लगाती फिरो। यहाँ चीजों को लेकर क्या करना है ? इन चीजों को देखकर मेरी तो आँखें फूटती हैं। इन्हीं के लिए तो तुमने मेरे बच्चे को वनवास दे दिया। इन्हीं के पीछे अपने बेटे से हाथ धो बैठी। तुम्हें ये चीजें प्यारी होंगी। मुझे तो नहीं प्यारी हैं।

बात कड़वी थी, पर यथार्थ। अगर धन मद ने अहिल्या की बुद्धि पर परदा न डाल दिया होता, तो आज उसे क्यों यह दिन देखना पड़ता ? दरिद्र रहकर भी सुखी होती। मोह ने उसका सर्वनाश कर दिया। फिर भी वह मोह को गले लगाए हुए है। नैहर में उसकी आई हुई चीज अपनी न थी, सब कुछ अपना होते हुए भी उसका कुछ न था। जो कुछ अधिकार था, वह पुत्र के नाते। जब पुत्र की कोई आशा न रही, तो अधिकार भी न रहा, पर यहाँ की सब चीजें उसी की थीं। उन पर उसका नाम खुदा हुआ था। अधिकार में स्वयं एक आनन्द है, जो उपयोगिता की परवा नहीं करता। उन वस्तुओं को देख-देखकर उसे गर्व होता था।

लेकिन आज निर्मला के कठोर शब्दों ने उसमें ग्लानि और विवेक का संचार कर दिया। लेकिन निश्चय किया, अब इन चीजों के लिए कभी न बोलूंगी। अगर अम्माँजी को किसी चीज का मोह नहीं है, तो मैं ही क्यों करूँ ? कोई आग लगा दे, मेरी बला से।

जब घर में कोई किसी चीज की चौकसी करनेवाला न रहा, तो चारों ओर लूट मच गई। कुछ मालूम न होता कि घर में कौन लुटेरा आ बैठा है; पर चीजें एक-एक करके निकलती जाती थीं। अहिल्या देखकर अनदेखी और सुनकर अनसुनी कर जाती थी; पर अपनी चीजों को तहस-नहस होते देखकर उसे दुःख होता था। उसका विराग मोह का दूसरा रूप था—वास्तविक रूप से भी भयंकर और दाहक।

इस तरह कई महीने गुजर गए; अहिल्या का आशा-दीपक दिन-दिन मन्द होता गया। वह कितना ही चाहती थी कि मोह-बंधन से अपने को छुड़ा ले; पर मन पर कोई वश न चलता था। उसके मन में बैठा हुआ कोई नित्य कहा करता था—जब तक मोह में पड़ी रहोगी; पति-पुत्र के दर्शन न होंगे। पर इसका विश्वास कौन दिला सकता था कि मोह टूटते ही उसके मनोरथ पूरे हो जाएँगे ? तब क्या वह भिखारिणी होकर जीवन व्यतीत करेगी ? संपत्ति के हाथ से निकल जाने पर फिर उसके लिए कौन आश्रय रह जाएगा ? क्या वह फिर अपने पिता के घर जा सकती थी ? कदापि नहीं। पिता ने इतनी धूमधाम से उसे विदा किया, इसका अर्थ ही यह था कि अब तुम इस घर से सदा के लिए जा रही हो।

अहिल्या बार-बार व्रत करती कि अब अपने सारे काम अपने हाथ से करूँगी, अब सदा एक ही जून भोजन किया करूँगी, मोटा से मोटा अन्न खाकर जीवन

व्यतीत करूंगी; लेकिन उसमें किसी व्रत पर स्थिर रहने की शक्ति न रह गई थ जब उसके स्नान कर चुकने पर लौंडी उसकी साड़ी छाँटने चलती, तो वह उ मना न कर सकती थी। जो काम आज 16 वर्षों से करती आ रही थी, उस विरुद्ध आचरण करना उसे अब अस्वाभाविक जान पड़ता था, मोटा अनाज खा का निश्चय रहते हुए भी वह स्वादिष्ट भोजन को सामने से हटा न सकती थी विलासिता ने उसकी क्रिया-शक्ति को निर्बल कर दिया था।

यहाँ रहकर वह अपने उद्धार के लिए कुछ न कर सकेगी, यह बात शनैः-शनैः अनुभव से सिद्ध हो गई।

लेकिन अब कहाँ जाए? जब तक मन की वृत्ति न बदल जाए; तीर्थयात्रा पाखंड सा जान पड़ती थी। किसी दूसरी जगह अकेले रहने के लिए कोई बहाना न था; पर यह निश्चय था कि अब वह यहाँ न रहेगी; यहाँ तो वह बंधन में और भी जकड़ गई थी।

अब उसे वागीश्वरी की याद आयी। सुख के दिन वही थे, जो उसके साथ कटे। अपनी मैका न होने पर भी जीवन का जो सुख वहाँ मिला, वह फिर नसीब न हुआ। अब उसे याद आता था कि मैं वहाँ से दुःख झेलने के लिए आयी थी। वह स्नेह-सुख स्वप्न हो गया। सास मिली वह इस तरह की, ननद मिली वह इस ढंग की; माँ थी ही नहीं, केवल बाप को पाया; मगर उसके बदले में क्या-क्या देना पड़ा। जिस दिन मालूम हुआ कि वह राजा की बेटी है, वह फूली न समाती थी, उसके पाँव जमीन पर न पड़ते थे; पर आह! क्या मालूम था कि उस क्षणिक आनन्द के लिए उसे सारी उम्र रोना पड़ेगा।

अब अहिल्या को रात-दिन यही धुन रहने लगी कि किसी तरह वागीश्वरी के पास चलूँ, मानो वहाँ उसके सारे दुःख दूर हो जाएँगे इधर कई महीनों से वागीश्वरी का पत्र न आया था; पर मालूम हुआ था कि वह आगरे ही में है। अहिल्या ने कई बार बुलाया था; पर वागीश्वरी ने लिखा था—मैं बड़े आराम से हूँ, मुझे अब यहीं पड़ी रहने दो। अब अहिल्या का मन वागीश्वरी के पास जाने के लिए अधीर हो उठा। वागीश्वरी भी उसी की भाँति दुःखिनी है। सारी आशाओं एवं सारे माया मोह से मुक्त हो चुकी है। वही उसके साथ सच्ची महानुभूति कर सकती है, वही अपने मातृस्नेह से उसका क्लेश हर सकती है।

आखिर एक दिन अहिल्या ने सास से यह चर्चा कर ही दी। निर्मला ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। शायद वह खुश हुई कि किसी तरह यहाँ से टले। मंगला तो उसके जाने का प्रस्ताव सुनकर हर्षित हो उठी। जब वह चली जाएगी, तो घर में मंगला का राज हो जाएगा। जो चीज चाहेगी, उठा ले जाएगी, कोई हाथ पकड़नेवाला या टोकनेवाला न रहेगा। दो महीने भी अहिल्या वहाँ रह गई, तो मंगला अपना घर भर लेगी। ज्यादा नहीं, तो आधी सम्पदा तो अपने घर पहुँचा ही देगी।

अहिल्या जब यात्रा की तैयारियाँ करने लगी, तो मंगला ने कहा—भाभी, तुम चली जाओगी, तो यहाँ बिलकुल अच्छा न लगेगा। वहाँ कब तक रहोगी?

अहिल्या—अभी क्या कहूँ बहिन, यह तो वहाँ जाने पर मालूम होगा।

मंगला—इतने दिनों के बाद जा रही हो, दो-तीन महीने तो रहना ही पड़ेगा। तुम चली जा रही हो, तो मैं भी चली जाऊँगी। अब तो रानी साहबा से भी भेंट नहीं होती, अकेले कैसे रहा जाएगा। तुम्हीं दोनों जनों से मिलने तो आयी थी। रानी साहबा ने तो भुला ही दिया, तुम छोड़े चली जाती हो।

यह कहकर मंगला रोने लगी।

दूसरे दिन अहिल्या यहाँ से चली। अपने साथ कोई साज सामान न लिया। साथ की लौंडियाँ चलने को तैयार थीं; पर उसने किसी को साथ न लिया। केवल एक बुड्ढे कहार को पहुँचाने के लिए ले लिया। और उसे भी आगरे पहुँचने के दूसरे ही दिन बिदा कर दिया।

आज 20 साल के बाद अहिल्या ने इस घर में फिर प्रवेश किया था; पर आह! इस घर की दशा कुछ और थी। सारा घर गिर पड़ा था। न आँगन का पता था, न बैठक का। चारों ओर मलवे का ढेर जमा हो रहा था। उस पर मदार और धतूरे के पौधे उगे हुए थे। एक छोटी सी कोठरी बच रही थी। वागीश्वरी उसी में रहती थी। उसकी सूरत भी उस घर के समान ही बदल गई थी। न मुँह में दाँत, न आँखों में ज्योति; सिर के बाल सन हो गए थे, कमर झुककर कमान हो गई थी। दोनों गले मिलकर खूब रोयीं। जब आँसुओं का वेग कम हुआ, तो वागीश्वरी ने कहा—बेटी, तुम अपने साथ कुछ सामान नहीं लायीं—क्या दूसरी ही गाड़ी से जाने का विचार है? इतने दिनों के बाद आयी भी, तो इस तरह! बुढ़िया को बिलकुल भूल ही गई! खंडहर में तुम्हारा जी क्यों लगेगा?

अहिल्या—अम्माँ, महल में रहते-रहते जी ऊब गया, अब कुछ दिन इस खंडहर में ही रहूँगी और तुम्हारी सेवा करूँगी। जब से तुम्हारे घर से गयी, तब से एक दिन भी सुख नहीं पाया। तुम समझती होगी कि मैं वहाँ बड़े आनन्द से रहती हूँगी; लेकिन अम्माँ, मैंने वहाँ दुःख ही दुःख पाया, आनन्द के दिन तो इसी घर में बीते थे।

वागीश्वरी—लड़के का अभी कुछ पता न चला?

अहिल्या—किसी का पता न चला, अम्माँ! मैं राज्य सुख पर लट्टू हो गई थी। उसी का दंड भोग रही हूँ। राज्य सुख भोगकर तो जो कुछ मिलता है, वह देख चुकी; अब उसे छोड़कर देखूँगी कि क्या जाता है; मगर तुम्हें तो बड़ा कष्ट हो रहा है, अम्माँ?

वागीश्वरी—कैसा कष्ट बेटी? जब तक स्वामी जीते रहे, उनकी सेवा करने में सुख मानती थी। तीर्थ, व्रत, पुण्य, धर्म सब कुछ उनकी सेवा ही में था। अब वह नहीं हैं, तो उनकी मर्यादा की सेवा कर रही हूँ। आज भी उनके कितने ही

भक्त मेरी मदद करने को तयार हैं; लेकिन क्यों किसी की मदद लूं? तुम्हारे दादाजी सदैव दूसरों की सेवा करते रहे। इसी में अपनी उम्र काट दी। तो फिर मैं किस मुंह से सहायता के लिए हाथ फैलाऊं?

यह कहते-कहते वृद्धा का मुखमंडल गर्व से चमक उठा। उसकी आँखों में एक विचित्र स्फूर्ति झलकने लगी! अहिल्या का सिर लज्जा से झुक गया। माता, तुझे धन्य है! तू वास्तव में सती है, तू अपने ऊपर जितना गर्व करे, वह थोड़ा है।

वागीश्वरी ने फिर कहा—ख्वाजा महमूद ने बहुत चाहा कि मैं कुछ महीना ले लिया करूं। मेरे मैकेवाले कई बार मुझे बुलाने आये। यह भी कहा कि महीने में कुछ ले लिया करो। भैया बड़े भारी वकील हैं; लेकिन मैंने किसी का एहसान नहीं लिया। पति की कमाई को छोड़कर और किसी की कमाई पर स्त्री का अधिकार नहीं होता। चाहे कोई मुंह से न कहे, पर मन में जरूर समझेगा कि मैं इन पर एहसान कर रहा हूँ। जब तक आँखें थी, सिलाई करती रही। जब से आँखें गयी, दलाई करती हूँ। कभी-कभी उन पर जी झुंझलाता है। जो कुछ कमाया, उड़ा दिया। तुम तो देखती ही थी। ऐसा कौन सा दिन जाता था कि द्वार पर चार मेहमान न आ जाते हों? लेकिन फिर दिल को समझाती हूँ कि उन्होंने किसी बुरे काम में तो धन नहीं उड़ाया! जो कुछ किया, दूसरों के उपकार के लिए किया। यहाँ तक कि अपने प्राण भी दे दिये। फिर मैं क्यों पछताऊँ और रोऊँ? यश सैंत में थोड़े ही मिलता है; मगर मैं तो अपनी बातों में लग गई। चल हाथ-मुँह धो डालो, कुछ खा पी लो, फिर बातें करूं।

लेकिन अहिल्या हाथ-मुँह धोने न उठी। वागीश्वरी की आदर्श पति भक्ति देखकर उसकी आत्मा उसका तिरस्कार कर रही थी। अभागिनी! इसे पति भक्ति कहते हैं! सारे कष्ट झेलकर स्वामी की मर्यादा का पालन कर रही है। नैहरवाले बुलाते हैं और नहीं जाती, हालांकि इस दशा में मैके चली जाती, तो कोई बुरा न कहता। सारे कष्ट झेलती है और खुशी से झेलती है। एक तू है कि मैके की संपत्ति देखकर फूल उठी, अन्धी हो गई। राजकुमारी और पीछे चलकर राजमाता बनने की धुन में तुझे पति की परवाह ही न रही, तूने संपत्ति के सामने पति को कुछ न समझा, उसकी अवहेलना की। वह तुझे अपने साथ ले जाना चाहते थे, तू न गयी, राज सुख तुझसे न छोड़ा गया। रो अपने कर्मों को।

वागीश्वरी ने फिर कहा अभी तक तू बैठी ही है। हाँ, लौंडी पानी नहीं लायी न, कैसे उठेगी! ले, मैं पानी लाये देती हूँ, हाथ-मुँह धो डाल? तब तक मैं तेरे लिए गरम रोटियाँ सेकती हूँ। देखूं, तुझे अब भाती है कि नहीं। तू मेरी रोटियों का बहुत बखान करके खाती थी।

अहिल्या ये स्नेह में सने शब्द सुनकर पुलकित हो उठी। इस 'तू' में जो सुख था; वह 'आप' और 'सरकार' में कहाँ? बचपन के दिन आँखों में फिर गए। एक क्षण के लिए उसे अपने सारे दुःख विस्मृत हो गए। बोली—अभी तो भूख-प्यास

नहीं है अम्मांजी, बैठिए कुछ बातें कीजिए। मैं आपसे अपने दुःख की कथा कहने के लिए व्याकुल हो रही हूँ। बताइए, मेरा उद्धार कैसे होगा ?

वागीश्वरी ने गम्भीर भाव से कहा—पति-प्रेम से वंचित होकर स्त्री के उद्धार का कौन उपाय है, बेटी ? पति ही स्त्री का सर्वस्व है। जिसने अपना सर्वस्व खो दिया, उसे सुख कैसे मिलेगा ? जिसको लेकर तूने पति का त्याग किया, उसको त्याग कर ही पति को पाएगी। तू इतनी कर्त्तव्यभ्रष्ट कैसे हो गई, वह मेरी समझ में ही नहीं आया। यहाँ तो धन पर इतना जान न देती थी। ईश्वर ने तो तेरी परीक्षा ली और तू उससे चूक गई। जब तक धन और राज्य का मोह न छोड़ेगी, तुझे उस त्यागी पुरुष के दर्शन न होंगे ?

अहिल्या—अम्मांजी, सत्य कहती हूँ, मैं शंखधर के हित का विचार करके उनके साथ न गयी।

वागीश्वरी—उस विचार में क्या तेरी भोग लालसा न छिपी थी ! खूब ध्यान करके सोच, तू इससे इनकार नहीं कर सकती !

अहिल्या ने लज्जित होकर कहा—हो सकता है, अम्मांजी, मैं इनकार नहीं कर सकती।

वागीश्वरी—सम्पत्ति यहाँ भी तेरा पीछा करेगी, देख लेना।

अहिल्या—अब तो उससे जी भर गया, अम्मांजी !

वागीश्वरी—जभी तो वह फिर तेरा पीछा करेगी। जो उससे भागता है, उसके पीछे दौड़ती है। मुझे शंका होती है कि कहीं तू फिर लोभ में न पड़ जाए। एक बार चूकी, तो 14 वर्ष रोना पड़ा, अब की चूकी तो बाकी उम्र ही गुजर जाएगी !

46

शंखधर को अपने पिता के साथ रहते एक महीना हो गया। न वह जाने का नाम लेता है, न चक्रधर ही जाने को कहते हैं। शंखधर इतना प्रसन्नचित्त रहता है, मानो अब उसके सिवा संसार में कोई दुःख, कोई बाधा नहीं है। इतने ही दिनों में उसका रंग रूप कुछ और हो गया है। मुख पर यौवन का तेज झलकने लगा और जीर्ण शरीर भर आया है। मालूम होता है, कोई अखंड ब्रह्मचर्य व्रतधारी ऋषि-कुमार है।

चक्रधर को अब अपने हाथों कोई काम नहीं करना पड़ता। वह जब एक गाँव से दूसरे गाँव जाते है, तो उनका सामान शंखधर उठा लेता है; उन्हें अपना भोजन तैयार मिलता है, बर्तन मंजे हुए, साफ-सुथरे। शंखधर कभी उन्हें अपनी धोती भी नहीं छांटने देता। दोनों प्राणियों के जीवन का वह समय सबसे आनन्दमय होता

है, जब एक प्रश्न करता और दूसरा उसका उत्तर देता है। शंखधर को बाबाजी की बातों से अगर तृप्ति नहीं होती, तो अल्प भाषी बाबाजी को भी बातें कर- तृप्ति नहीं होती। वह अपने जीवन के सारे अनुभव, दर्शन, विज्ञान, धर्म, इतिहास की सारी बातें घोलकर पिला देना चाहते हैं। उन्हें इसकी परवाह नहीं होती। शंखधर उन बातों को ग्रहण भी कर रहा है या नहीं, शिक्षा देने में वह इत- तल्लीन हो जाते हैं। जड़ी-बूटियों का जितना ज्ञान उन्होंने बड़े-बड़े महात्माओं ... बरसों में प्राप्त किया था, वह सब शंखधर को सिखा दिया। वह उसे कोई नई बात बताने का अवसर खोजा करते हैं, उसकी एक-एक बात पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि पड़ती है। दूसरों से उसकी सज्जनता और सहनशीलता का बखान सुनकर उन्हें कितना गर्व होता है। वह मारे आनन्द के गद्गद हो जाते हैं, उनकी आँखें सजल हो जाती हैं। सब जगह यह बात खुल गई कि यह युवक उनका पुत्र है। दोनों की सूरत इतनी मिलती है कि चक्रधर के इनकार करने पर भी किसी को विश्वास नहीं आता। जो बात सब जानते हैं, उसे वह स्वयं नहीं जानते और न जानना ही चाहते हैं।

एक दिन वह एक गाँव में पहुँचे, तो वहाँ दंगल हो रहा था। शंखधर भी अखाड़े के पास जाकर खड़ा हो गया। एक पट्ठे ने शंखधर को ललकारा। वह शंखधर का ड्योढ़ा था; पर शंखधर ने कुश्ती मंजूर कर ली। चक्रधर बहुत कहते रहे—यह लड़का लड़ना क्या जाने, कभी लड़ा हो तो जाने। भला, यह क्या लड़ेगा; लेकिन शंखधर लँगोट कसकर अखाड़े में उतर ही तो पड़ा। उस समय चक्रधर की सूरत देखने योग्य थी। चेहरे पर एक रंग जाता था, एक रंग आता था। अपनी व्यग्रता को छिपाने के लिए अखाड़े से दूर जा बैठे थे, मानो वह इस बात से बिलकुल उदासीन हैं। भला, लड़कों के खेल से बाबाजी का क्या सम्बन्ध ? लेकिन किसी न किसी बहाने अखाड़े की ओर आ ही जाते थे। जब उस पट्ठे ने पहली ही पकड़ में शंखधर को धर दबाया, तो बाबाजी आवेश में आकर स्वयं मुड़ गए। शंखधर ने जोर मारकर उस पट्ठे को ऊपर उठाया, तो बाबाजी भी सीधे हो गए और जब शंखधर ने कुश्ती मार ली, तब तो चक्रधर उछल पड़े और दौड़कर शंखधर को गले लगा लिया। मारे गर्व के उनकी आँखें उन्मत्त हो गईं। उस दिन अपने नियम के विरुद्ध उन्होंने रात को बड़ी देर तक गाना सुना।

शंखधर को कभी-कभी प्रबल इच्छा होती थी कि पिताजी के चरणों पर गिर पड़ूँ और साफ-साफ कह दूँ। वह मन में कल्पना किया करता कि अगर ऐसा करूँ, तो वह क्या कहेंगे ? कदाचित् उसी दिन मुझे सोता छोड़कर किसी ओर की ... लें। इस भय से बात उसके मुँह तक आके रुक जाती ... पर उसी के मन में यह इच्छा नहीं थी। चक्रधर भी कभी-कभी पुत्रप्रेम ... कि उसे गले लगाकर कहूँ—बेटा, तुम मेरी ही ... जिगर के टुकड़े हो, तुम्हारी याद दिल से कभी न

तुम न भूले। वह शंखधर के मुख से उनकी माता की विरह व्यथा, दादी के शोक और दादा के क्रोध की कथाएँ सुनते कभी न थकते थे। रानीजी उससे कितना प्रेम करती थीं, यह चर्चा सुनकर चक्रधर बहुत दुखी हो जाते। जिन बाबाजी को रूखे-सूखे भोजन से तुष्टि थी, यहाँ तक कि भक्तों के बहुत आग्रह करने पर भी खोये और मक्खन को हाथ से न छूते थे, वही बाबाजी इन पदार्थों को पाकर प्रसन्न हो जाते थे। वह स्वयं अब भी वही रूखा-सूखा भोजन ही करते थे; पर शंखधर को खिलाने में जो आनन्द मिलता था, वह क्या कभी आप खाने में मिल सकता था?

इस तरह एक महीना गुजर गया और अब शंखधर को यह फिक्र हुई कि इन्हें किस बहाने से घर ले चलूँ। अहा, कैसे आनन्द का समय होगा, जब मैं इनके साथ घर पहुँचूँगा!

रही। अहिल्या ने लिखा था—मैं बड़ी अभागिनी हूँ। तुम इतनी कठिन तपस्या करके जिस देवता के दर्शन कर पाए, उसके दर्शन करने की परम अभिलाषा होने र भी मैं हिल नहीं सकती। एक महीने से बीमार हूँ, जीने की आशा नहीं। अगर म आ जाओ, तो तुम्हें देख लूँ, नहीं तो यह अभिलाषा भी साथ जाएगी! मैं कई होते हुए, आगरे में पड़ी हूँ। जी घबराया करता है। अगर किसी तरह स्वामीजी ो ला सको, तो अन्त समय उनके चरणों के दर्शन भी कर लूँ। मैं जानती हूँ, वह आएँगे। व्यर्थ ही उनसे आग्रह न करना; मगर तुम आने में एक क्षण का भी विलम्ब न करना।

शंखधर डाकखाने के सामने खड़ा देर तक रोता रहा। माताजी बीमार हैं। पुत्र और स्वामी के वियोग में ही उनकी यह दशा हुई। क्या वह माता को इस दशा में छोड़कर एक क्षण भी यहाँ विलम्ब कर सकता है? उसने पाँच साल तक अपना कोई समाचार न लिखकर माता के साथ जो अन्याय किया था। उसी व्यथा में वह अधीर हो उठा।

उसका मुख उतरा हुआ देखकर चक्रधर ने पूछा—क्यों बेटा, आज उदास क्यों मालूम होते हो?

शंखधर—माताजी का पत्र आया है, वह बहुत बीमार हैं। मैं पिताजी को खोजने निकला था। वह तो न मिले, माताजी भी चली जा रही है। पिताजी इस समय मिल जाते, तो मैं उनसे अवश्य कहता…

चक्रधर—क्या कहते, कहो न?

शंखधर—कह देता कि 'कि…आप ही माताजी के प्राण ले रहे हैं। आपका विराग और तप किस काम का, जब अपने घर के प्राणी की रक्षा नहीं कर सकते? आपके पास बड़ी बड़ी आशाएँ लेकर आया था; पर आपने भी अनाथ पर दया न की। आपको परमात्मा ने योगबल दिया है, आप चाहते, तो पिताजी की टोह लगा देते।

चक्रधर ने गम्भीर स्वर में कहा बेटा, मैं योगी नहीं हूँ; पर तुम्हारे पिताजी की टोह लगा चुका हूँ। उनसे मिल भी चुका हूँ। तुम नहीं जानते; पर वे गुप्त रीति से तुम्हें देख भी चुके हैं। आह! उन्हें तुमसे जितना प्रेम है, उसकी कल्पना नहीं कर सकते। तुम्हारी माता को वह नित्य याद किया करते हैं; लेकिन उन्होंने अपने जीवन का जो मार्ग निश्चित कर लिया है, उसे छोड़ नहीं सकते और न स्वयं किसी के साथ जबरदस्ती कर सकते हैं। तुम्हारी माताजी अपनी ही इच्छा से यहाँ रह गई थी। वह तो उन्हें अपने साथ लाने को तैयार थे।

शंखधर—आजकल तो माताजी आगरे में हैं। वागीश्वरी देवी से मिलने आयी थीं, वहीं बीमार पड़ गईं; लेकिन आपने पिताजी से भेंट की और मुझसे कुछ न कहा। इससे तो यह प्रकट होता है कि आपको भी मुझ पर दया नहीं आती।

चक्रधर ने कुछ जवाब न दिया। जमीन की ओर ताकते रहे। वह अत्यन्त

कठिन परीक्षा में पड़े हुए थे। बहुत दिन के बाद, अनायास ही उन्हें पुत्र का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। वे सारी भावनाएँ, सारी अभिलाषाएँ, जिन्हें वह दिल से निकाल चुके थे, जाग उठी थीं और इस समय वियोग के भय से आर्त्तनाद कर रही थीं। वह मोह बंधन, जिसे उन्होंने बड़ी मुश्किल से ढीला कर पाया था, अब उन्हें शतगुण वेग से अपनी ओर खींच रहा था, मानो उसका हाथ उनके अस्थिपंजर को चीरता हुआ उनके अंतस्तल तक पहुँच गया है।

सहसा शंखधर ने अवरुद्ध कंठ से कहा—तो मैं निराश हो जाऊँ?

चक्रधर ने हृदय से निकलते उच्छ्वास को दबाते हुए कहा—नहीं बेटा, संभव है, कभी वह स्वयं पुत्र प्रेम से विकल होकर तुम्हारे पास दौड़े जाएँ। इसका निश्चय तुम्हारे आचरण करेंगे। अगर तुम अपने जीवन में ऊँचे आदर्श का पालन कर सके, तो तुम उन्हें अवश्य खींच लोगे। यदि तुम्हारे आचरण भ्रष्ट हो गए, तो कदाचित् इस शोक में वह अपने प्राण दे दें।

शंखधर - आपके दर्शन मुझे फिर कब होंगे? आपका पता कैसे मिलेगा? यद्यपि मुझे पिताजी के दर्शनों का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ; लेकिन पिता के पुत्रप्रेम की मेरे मन में जो कल्पना थी, जिसकी तृष्णा मुझे पाँच साल तक वन-वन घुमाती रही, यह आपकी दया से पूरी हो गई। मैंने आपको पिता तुल्य ही समझा है और जीवन पर्यन्त समझता रहूँगा। यह स्नेह, यह वात्सल्य, यह अपार करुणा मुझे कभी न भूलेगी। इन चरण कमलों की भक्ति मेरे मन में सदैव बनी रहेगी। आपके दर्शनों के लिए मेरी आत्मा सदैव विकल रहेगी और माताजी के स्वस्थ होते ही मैं फिर आपकी सेवा में आऊँगा।

चक्रधर ने आर्द्र कंठ से कहा—नहीं बेटा, तुम यह कष्ट न करना मैं स्वयं कभी-कभी तुम्हारे पास आया करूँगा? मैंने भी तुमको पुत्र तुल्य समझा है और सदैव समझता रहूँगा। मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।

संध्या समय शंखधर अपने पिता से विदा होकर चला। चक्रधर को ऐसा मालूम हो रहा था, मानो उनका हृदय वक्ष-स्थल को तोड़कर शंखधर के साथ चला जा रहा है। जब वह आँखों से ओझल हो गया, तो उन्होंने एक लम्बी साँस ली और बालकों की भाँति बिलख-बिलखकर रोने लगे। ऐसा मालूम हुआ, मानो चारों ओर शून्य है। चला गया! वह तेजस्वी कुमार चला गया, जिसको देखकर छाती गज भर की हो जाती थी; और जिसके जाने से अब जीवन निरर्थक, व्यर्थ जान पड़ता था!

उन्हें ऐसी भावना हुई कि फिर उस प्रतिभा-सम्पन्न युवक के दर्शन न होंगे!

अहिल्या के आने की खबर पाकर मुहल्ले की सैकड़ों औरतें टूट पड़ीं। शहर के बड़े-बड़े घरों की स्त्रियाँ भी आ पहुँचीं। शाम तक तांता लगा रहा। कुछ लोग डेपुटेशन बनाकर संस्थाओं के लिए चन्दे माँगने आ पहुँचे। अहिल्या को इन लोगों से जान बचानी मुश्किल हो गई। किस-किससे अपनी विपत्ति कहे? अपनी गरज के बावले अपनी कहने में मस्त रहते हैं, वह किसी की सुनते ही कब हैं? इस वक्त अहिल्या को फटे हालों यहाँ आने पर बड़ी लज्जा आयी। वह जानती कि यहाँ यह हरबोंग मच जाएगा, तो साथ दस-बीस हजार के नोट लेती आती। उसे अब इस टूटे-फूटे मकान में ठहरते भी लज्जा आती थी। जब से देश ने जाना कि वह राजकुमारी है, तब से वह कहीं बाहर न गयी थी। कभी काशी रहना हुआ, कभी जगदीशपुर। दूसरे शहर में आने का यह पहला ही अवसर था। अब उसे मालूम हुआ कि धन केवल भोग की वस्तु नहीं है, उसमें यश और कीर्ति भी मिलती है। भोग से तो उसे घृणा हो गई थी, लेकिन यश का स्वाद उसे पहली ही बार मिला। शाम तक उसने 15-20 हजार के चन्दे लिख दिये और मुंशी वज्रधर को रुपये भेजने के लिए पत्र लिख दिया। खत पहुँचने की देर थी। रुपये आ गये। फिर तो उसके द्वार पर भिक्षुकों का जमघट रहने लगा। लँगड़ों-अन्धों से लेकर जोड़ी और मोटर पर बैठनेवाले भिक्षुक भिक्षा दान माँगने आने लगे। कहीं से किसी अनाथालय के निरीक्षण करने का निमन्त्रण आता, कहीं से टी पार्टी में सम्मिलित होने का। कुमारी सभा, बालिका विद्यालय, महिला क्लब आदि संस्थाओं ने उसे मानपत्र दिये, और उसने ऐसे सुन्दर उत्तर दिये कि उसकी योग्यता और विचारशीलता का सिक्का बैठ गया। 'आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास' वाली कहावत हुई। तपस्या करने आयी थी, यहाँ सभ्य समाज की क्रीड़ाओं में मग्न हो गई। अपने अभीष्ट का ध्यान न रहा।

ख्वाजा महमूद को भी खबर मिली। बेचारे आँखों से मजबूर थे। मुश्किल से चल-फिर सकते थे! उन्हें आशा थी कि रानीजी मुझे जरूर सरफराज फरमाऐंगी; लेकिन जब एक हफ्ता गुजर गया और अहिल्या ने उन्हें सरफराज न किया, तो एक दिन तामजान पर बैठकर स्वयं आये और लाठी टेकते हुए द्वार पर खड़े हो गए। उनकी खबर पाते ही अहिल्या निकल आयी और बड़ी नम्रता से बोली—ख्वाजा साहब, मिजाज तो अच्छे हैं? मैं खुद ही हाजिर होनेवाली थी, आपने नाहक तकलीफ की।

ख्वाजा—खुदा का शुक्र है। जिंदा हूँ। हुजूर तो खैरियत से रहीं?

अहिल्या—आपकी दुआ है; मगर आप मुझसे यों बातें

कुछ और हो गई हूँ। मैं आपकी पाली हुई वही लड़की हूँ, ?

थी, और आपको उसी निगाह से देखती हूं।

ख्वाजा साहब अहिल्या की नम्रता और शील पर मुग्ध हो गए। वल्लाह ! इन्कसार है, कितनी खाकसारी है ! इसी को शराफत कहते हैं कि इंसान ... को भूल न जाए। बोले—बेटी, तुम्हें खुदा ने यह दरजा अता किया; मगर ...हारा मिजाज वही है, वरना किसे अपने दिन याद रहते हैं! प्रभुता पाते ही ...गों की निगाहें बदल जाती हैं, किसी को पहचानते तक नहीं, जमीन पर पांव ...न नहीं रखते। कसम खुदा की, मैंने जिस वक्त तुम्हें नाली में रोते पाया था, ...सी वक्त समझ गया था कि यह किसी बड़े घर का चिराग है। मैं यशोदानन्दन ...रहूम से भी बराबर यह बात कहता रहा। इतनी हिम्मत, इतनी दिलेरी, अपनी ...समत के लिए जान पर खेल जाने का यह जोश, राजकुमारियों ही में हो सकता है। खुदा आपको हमेशा खुश रखे। आपको देखकर आँखें मसरूर हो गईं। आपकी अम्माँजान तो अच्छी तरह हैं ? क्या करूँ, पड़ोस में रहता हूँ; मगर बरसों आने की नौबत नहीं आती। उनकी सी पाकीजा सिफत खातून दुनिया में कम होंगी।

अहिल्या—आप उन्हें समझाते नहीं, क्यों इतना कष्ट झेलती हैं ?

ख्वाजा—अरे बेटा, एक बार नहीं, हजार बार समझा चुका; मगर जब वह खुदा की बन्दी माने भी। कितना कहा कि मेरे पास जो कुछ है, वह तुम्हारा है ! यशोदानन्दन मरहूम से मेरा बिरादराना रिश्ता है। सच पूछो तो मैं उन्हीं का बनाया हुआ हूं। मेरी जायदाद में तुम्हारा भी हिस्सा है, लेकिन मेरी बातों का मुतलक लिहाज न किया। यह तवक्कुल खुदा की देन है। आपको इस मकान में तकलीफ होती होगी। मेरा बँगला खाली है; अगर कोई हरज न समझो, तो उसी में कयाम करो।

वास्तव में अहिल्या को उस घर में बड़ी तकलीफ होती थी। रात में नींद ही न आती। आदमी अपनी आदतों को एकाएक नहीं बदल सकता। 15 साल से वह उस महल में रहने की आदी हो रही थी, जिसका सानी बनारस में न था। इस तंग गन्दे एवं टूटे-फूटे अँधेरे मकान में, जहाँ रात भर मच्छरों की शहनाई बजती रहती थी, उसे कब आराम मिल सकता था ? उसे चारों तरफ से बदबू आती हुई मालूम होती थी। साँस लेना मुश्किल था; पर ख्वाजा साहब के निमंत्रण को वह स्वीकार न कर सकी, वागीश्वरी से अलग वह वहाँ न रह सकती थी। बोली—नहीं ख्वाजा साहब, यहाँ मुझे कोई तकलीफ नहीं है। आदमी को अपने दिन न भूलने चाहिए। इसी में 16 साल रही हूँ. जिन्दगी में जो कुछ सुख देखा, वह इसी घर में देखा। पुराने साथी का साथ कैसे छोड़ दूं !

ख्वाजा—बाबू चक्रधर का अब तक कुछ पता न चला ?

अहिल्या—इसी लिहाज से तो मैं बड़ी बदनसीब हूँ, ख्वाजा साहब ! उन... गये 15 साल गुजर गए। पाँच साल से लड़का भी गायब है। उन्हीं की तलाश... निकला हुआ है। लोग समझते होंगे कि इसकी सी सुखी औरत दुनिया ...

होगा ? और मैं अपनी किस्मत को रोती हूँ। इरादा था कि चलकर कुछ दि अम्मांजी के साथ अकेली पड़ी रहूँगी; पर अमीरी की बला यहाँ भी सिर से टली। कहिए, अब यहाँ तो आपस में दंगा-फिसाद नहीं होता ?

ख्वाजा—जी नहीं, अभी तक तो खुदा का फजल है; लेकिन यह देखता कि आपस में वह पहले की सी मुहब्बत नहीं है। दोनों कौमों में कुछ ऐसे लोग है जिनकी इज्जत और सरवत दोनों को लड़ाते रहने पर ही कायम है। बस, वह एक न एक शिगूफा छोड़ा करते हैं। मेरा तो यह कौल है कि हिन्दू रहो, मुसलमान रहो, खुदा के सच्चे बन्दे रहो। सारी खूबियाँ किसी ही कौम के हिस्से में नहीं आयीं। न सब मुसलमान पाकीजा हैं, न सब हिन्दू देवता हैं; इसी तरह न सभी हिन्दू काफिर हैं, न सभी मुसलमान मोमिन। जो आदमी दूसरी कौम से जितनी नफरत करता है, समझ लीजिए कि वह खुदा से उतनी ही दूर है। मुझे आपसे कमाल हमदर्दी है; मगर चलने-फिरने से मजबूर हूँ; वर्ना बाबू साहब जहाँ होते, वहीं से खींच लाता।

ख्वाजा साहब जाने लगे, तो अहिल्या ने इसलामी यतीमखाने के लिए पाँच हजार रुपये दान दिये। इस दान से मुसलमानों के दिलों पर भी उसका सिक्का बैठ गया। चक्रधर की याद फिर ताजी हो गई। मुसलमान महिलाओं ने भी उसकी दानशीलता देखी।

अहिल्या को अब रोज ही किसी न किसी जलसे में जाना पड़ता, और वह बड़े शौक से जाती। दो ही सप्ताह में उसका कायापलट सा हो गया। यश लालसा ने धन की उपेक्षा का भाव उसके दिल से निकाल दिया! वास्तव में वह समारोहों में अपनी मुसीबतें भूल गई। अच्छे-अच्छे व्याख्यान तैयार करने में वह इतनी तत्पर रहने लगी, मानो उसे नशा हो गया है। वास्तव में यह नशा ही था। यश लालसा से बढ़कर दूसरा नशा नहीं।

वागीश्वरी पुराने विचारों की स्त्री थी। उसे अहिल्या का यों घूम-घूमकर व्याख्यान देना और रुपये लुटाना अच्छा न लगता था। एक दिन उसने कह ही डाला—क्यों री अहिल्या, तू अपनी सम्पत्ति लुटाकर ही रहेगी ?

अहिल्या ने गर्व से कहा—और धन है ही किस लिए, अम्मांजी ? धन में यही बुराई है कि इससे विलासिता बढ़ती है लेकिन इसमें परोपकार करने की सामर्थ्य भी है।

वागीश्वरी ने परोपकार के नाम से चिढ़कर कहा—तू जो कर रही है, यह रोपकार नहीं, यश लालसा है। अपने पुरुष और पुत्र का उपकार तो तू कर न की, संसार का उपकार करने चली है !

अहिल्या—तुम तो अम्मांजी आपे से बाहर हो जाती हो।

वागीश्वरी—अगर तू धन के पीछे अन्धी न हो जाती, तो तुझे यह दंड न ना पड़ता। तेरा चित्त कुछ-कुछ ठिकाने पर आ रहा था, तब तक तुझे यह

था ? लेकिन संस्कारों को मिटाना भी तो आसान नहीं। संसार में कितना कपट है, क्या इसका उसे काफी अनुभव न था ! यद्यपि उसका हृदय उन चरणों से दौड़कर लिपट जाने के लिए अधीर हो रहा था, फिर भी मन को रोककर उसने दूर ही से पूछा—महाराज, आप कौन हैं, और मुझे क्यों याद किया है ?

शंखधर ने रानी के समीप जाकर कहा—क्या मुझे इतनी जल्द भूल गईं, कमला ? क्या इस रूपान्तर से ही तुम्हें यह भ्रम हो रहा है ? मैं वही हूँ, जिसने न जाने कितने दिन हुए, तुम्हारे हृदय में प्रेम के रूप में जन्म लिया था, और तुम्हारे प्रियतम के रूप में तुम्हारे सत्, व्रत और सेवा से अमर होकर आज तक उसी अपार आनन्द की खोज में भटकता फिरता हूँ। क्या कुछ और परिचय दूँ ? वह पर्वत की गुफा तुम्हें याद है ? वह वायुयान पर बैठकर आकाश में भ्रमण करना याद है ? आह ! तुम्हारे उस स्वर्गीय संगीत की ध्वनि अभी तक कानों में गूँज रही है। प्रिये, कह नहीं सकता, कितनी बार तुम्हारे हृदय मन्दिर के द्वार पर भिक्षुक बनकर आया, लेकिन दो बार आना याद है। मैंने उसे खोलकर अन्दर जाना चाहा; पर दोनों ही बार असफल रहा। वही अतृप्त आकांक्षा मुझे फिर खींच लाई है, और...

रानी कमला ने उन्हें अपना वाक्य न पूरा करने दिया। वह दौड़कर उनके [illegible]णों पर गिर पड़ी और उन्हें अपने आँसुओं से पखारने लगी। यह सौभाग्य [illegible] प्राप्त हुआ है ? जिस पवित्र मूर्ति की वह बीस वर्ष से उपासना कर रही थी, वही उसके सम्मुख खड़ी थी। वह अपना सर्वस्व त्याग देगी; इस ऐश्वर्य को तिलांजलि दे देगी और अपने प्रियतम के साथ पर्वतों में रहेगी। वह सब कुछ झेलकर अपने स्वामी के चरणों से लगी रहेगी। इसके सिवा अब उसे कोई आकांक्षा, कोई इच्छा नहीं है।

लेकिन एक ही क्षण में उसे अपनी शारीरिक अवस्था की याद आ गई। उसके उन्मत्त हृदय को ठोकर सी लगी। यौवन काल के रूप लावण्य के लिए उसका मन लालायित हो उठा; वे काले-काले लम्बे केश, वह पुष्प के समान विकसित कपोल, वे मदभरी मतवाली आँखें, वह कोमलता, वह माधुर्य अब कहाँ ? क्या इस दशा में वह अपने स्वामी की प्राणेश्वरी बन सकेगी।

...करने के लिए मैं तुम्हारा कायाकल्प ... काल के चिह्नों को भी मिटा दे। ... क्या यह सम्भव है?

शंखधर—हाँ प्रिये, प्रकृति जो कुछ कर सकती है वह सब विज्ञान के लिए संभव है। यह ब्राह्मांड एक विराट् प्रयोगशाला के सिवा और क्या है?

कमला के मनोल्लास का अनुमान कौन कर सकता है? आज बीस वर्ष के बाद उसके ओठों पर मधुर हास्य क्रीड़ा करता हुआ दिखाई दिया। दान, व्रत और तप के प्रभाव का उसे आज अनुभव हुआ। इसके साथ ही उसे अपने सौभाग्य पर भी गर्व हो उठा। यह मेरी तपस्या का फल है! मैं अपनी तपस्या से प्राणनाथ को देवलोक से खींच लाई हूँ। दूसरा कौन इतना तप कर सकता है? कौन इन्द्रिय सुखों को त्याग सकता है?

यह भाव मन में आया ही था कि कमला चौंक पड़ी। हाय! यह क्या हुआ? उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखों की ज्योति क्षीण हो गई है। शंखधर का तेजमय स्वरूप उसे मिटा-मिटा सा दिखाई दिया और सभी वस्तुएँ साफ नजर न आती थीं, केवल शंखधर दूर-दूर होते जा रहे थे।

कमला ने घबराकर कहा—प्राणनाथ, क्या आप मुझे छोड़कर चले जा रहे हैं। हाय! इतनी जल्द?

शंखधर ने गंभीर स्वर में कहा—नहीं प्रिये, प्रेम का बंधन इतना निर्बल नहीं होता।

कमला—तो आप मुझे जाते हुए क्यों दीखते हैं?

शंखधर—इसका कारण अपने मन में देखो!

प्रातःकाल शंखधर ने कहा—प्रिये, मेरी प्रयोगशाला की दशा क्या है?

कमला—चलिए आपको दिखाऊँ।

शंखधर—उस कठिन परीक्षा के लिए तैयार हो?

कमला—आपके रहते मुझे क्या भय है?

लेकिन प्रयोगशाला में पहुँचकर सहसा कमला का दिल बैठ गया। जिस सुख की लालसा उसे माया के अंधकार में लिये जाती है, क्या वह सुख स्थायी होगा? पहले ही की भाँति क्या फिर दुर्भाग्य की एक कुटिल क्रीड़ा उसे इस सुख से वंचित न कर देगी? उसे ऐसा आभास हुआ कि अनंत काल से वह सुख लालसा के इस चक्र में पड़ी हुई यातनाएँ झेल रही है। हाय रे ईश्वर! तूने ऐसा देव-तुल्य पुरुष देकर भी मेरी सुख लालसा को तृप्त न होने दिया।

इतने में शंखधर ने कहा—प्रिये, तुम इस शिला पर ... आँखें बन्द कर लो।

कमला ने शिला पर बैठकर कातर स्वर में पूछा—प्राण... याद रहूँगी?

शंखधर ने मुसकरा कहा—सब याद रहेंगी प्रिये, इससे निश्चित रहो।

कमला—मुझे यह राजपाट त्याग करना पड़ेगा।

शंखधर ने देखा, अभी तक कमला मोह में पड़ी हुई है। अनन्त सुख की आशा भी उसके मोह बंधन को नहीं तोड़ सकी। दुखी होकर बोले—हाँ, कमला तुम इससे बड़े राज्य की स्वामिनी बन जाओगी। राज्य सुख में बाधक नहीं होता, यदि विलास की ओर न ले जाए।

पर कमला ने ये शब्द न सुने। शिला में प्रवाहित विद्युत शक्ति ने उसे अचेत कर दिया था। केवल उसकी आँखें खुली थीं। उनमें अब भी तृष्णा चमक रही थी।

50

राजा विशालसिंह की हिंसा-वृत्ति किसी प्रकार शान्त न होती थी। ज्यों-ज्यों अपनी दशा पर उन्हें दुःख होता था, उनके अत्याचार और भी बढ़ते थे। उनके हृदय में अब सहानुभूति, प्रेम और धैर्य के लिए जरा भी स्थान न था। उनकी संपूर्ण वृत्तियाँ 'हिंसा हिंसा!' पुकार रही थीं। जब उन पर चारों ओर से दैवी आघात हो रहे थे, उनकी दशा पर दैव को लेश मात्र भी दया न आती थी, तो वह क्यों किसी पर दया करें? अगर उनका वश चलता, तो इन्द्रलोक को भी विध्वंस कर देते। देवताओं पर ऐसा आक्रमण करते कि वृत्रासुर की याद भूल जाती। स्वर्ग का रास्ता बन्द पाकर वह अपनी रियासत को ही खून के आँसू रुलाना चाहते थे। इधर कुछ दिनों से उन्होंने प्रतिकार का एक और ही शस्त्र खोज निकाला था। उन्हें निस्संतान रखकर मिली हुई संतान उनकी गोद से छीनकर, दैव ने उनके साथ सबसे बड़ा अन्याय किया था। दैव के शस्त्रालय में उनका दमन करने के लिए यही सबसे कठोर शस्त्र था। इसे राजा साहब उनके हाथों से छीन लेना चाहते थे। उन्होंने सातवाँ विवाह करने का निश्चय कर लिया था। राजाओं के लिए कन्याओं की क्या कमी? ब्राह्मणों ने राशि, वर्ण और विधि मिला दी थी कि यह विवाह कभी निष्फल नहीं जा सकता, अतएव कई महीने से इस सातवें विवाह की तैयारियाँ बड़े जोरों से हो रही थीं। कई राजवैद्य रात-दिन बैठे भाँति-भाँति के रस बनाते रहते। पौष्टिक औषधियाँ चारों ओर से मँगायी जा रही थीं। राजा साहब यह विवाह इतनी धूमधाम से करना चाहते थे कि देवताओं के कलेजे पर साँप लोटने लगें।

रानी मनोरमा ने इधर बहुत दिनों से घर या रियासत के किसी मामले में बोलना छोड़ दिया था। वह बोलती भी, तो सुनता कौन? कहाँ तो यह हाल था कि राजा साहब को उसके बगैर क्षण भर चैन न आता था, उसे पाकर मानो वह

सब कुछ पा गए थे। रियासत का सियाह-सुफेद सब-कुछ उसी के हाथों में था; यहाँ तक कि उसके प्रेम प्रवाह में राजा साहब की संतान लालसा भी विलीन हो गई थी। वही मनोरमा अब दूध की मक्खी बन हुई थी। राजा साहब को उसकी सूरत से घृणा हो गई थी। मनोरमा के लिए अब यह घर नरक तुल्य था। चुपचाप सारी विपत्ति सहती थी। उसे बड़ी इच्छा होती थी कि एक बार राजा साहब के पास जाकर पूछूँ, मुझसे क्या अपराध हुआ है; पर राजा साहब उसे इसका अवसर ही न देते थे। उनके मन में एक धारणा बैठ गई थी और किसी तरह न छूटती थी। उन्हें विश्वास था कि मनोरमा ही ने रोहिणी को विष देकर मार डाला। इसका कोई प्रमाण हो या न हो; पर यह बात उनके मन में बैठ गई थी। इस हत्यारिन से वह कैसे बोलते ?

मनोरमा को आए दिन कोई न कोई अपमान सहना पड़ता था। उसका गर्व चूर करने के लिए रोज कोई न कोई षड्यंत्र रचा जाता था। पर वह उद्दंड प्रकृति वाली मनोरमा अब धैर्य और शान्ति का अथाह सागर है, जिसमें वायु के हल्के-हल्के झोकों से कोई आन्दोलन नहीं होता। वह मुसकराकर सब कुछ शिरोधार्य करती जाती है। यह विकट मुस्कान उसका साथ कभी नहीं छोड़ती। इस मुस्कान में कितनी वेदना, विडम्बनाओं की कितनी अवहेलना छिपी हुई है, इसे कौन जानता है ? यह मुस्कान नहीं, 'वह भी देखा, यह भी देखा' वाली कहावत का यथार्थ रूप है। नई रानी साहिबा के लिए सुन्दर भवन बनवाया जा रहा था। उसकी सजावट के लिए एक बड़े आईने की जरूरत थी। शायद बाजार में इतना बड़ा आईना न मिल सका। हुक्म हुआ—छोटी रानी के दीवानखाने का बड़ा आईना उतार लाओ। मनोरमा ने यह हुक्म सुना और मुसकरा दी। फिर कालीन की जरूरत पड़ी। फिर वही हुआ—छोटी रानी के दीवानखाने से लाओ। मनोरमा ने मुसकराकर सारी कालीनें दे दी। इसके कुछ दिनों बाद हुक्म हुआ—छोटी रानी की मोटर नए भवन में लायी जाए। मनोरमा इस मोटर को बहुत पसन्द करती थी, उसे खुद चलाती थी। यह हुक्म सुना, तो मुसकरा दी। मोटर चली गई।

मनोरमा के पास पहले बहुत-सी सेविकाएँ थीं। इधर घटते-घटते उनकी संख्या तीन तक पहुँच गई थी। एक दिन हुक्म हुआ कि तीन सेविकाओं में से दो नए महल में नियुक्त की जाएँ। उसके एक सप्ताह बाद वह एक भी बुला ली गई। मनोरमा के यहाँ अब कोई सेविका न रही। इस हुक्म का भी मनोरमा ने मुसकराकर स्वागत किया।

मगर अभी सबसे कठोर आघात बाकी था। नई रानी के लिए तो नया महल बन ही रहा था। उसकी माताजी के लिए एक दूसरे मकान की जरूरत पड़ी। माताजी को अपनी पुत्री का वियोग असह्य था। राजा साहब ने नए महल में उनका निवास उचित न समझा। माता के रहने से नई रानी की स्वाध

विघ्न पड़ेगा, इसीलिए हुक्म हुआ कि छोटी रानी का महल खाली करा लिया जाए। रानी ने यह हुक्म सुना और मुसकरा दी। महल खाली करा दिया गया। जिस हिस्से में पहले महरियाँ रहती थीं, उसी को उसने अपना निवासस्थान बना लिया। द्वार पर टाट के परदे लगवा दिए। यहाँ पर भी उतनी ही प्रसन्न थी, जितनी अपने महल में।

एक दिन गुरुसेवक मनोरमा से मिलने आये। राजा साहब की अप्रसन्नता का पहला वार उन्हीं पर हुआ था। वह दरबार से अलग कर दिए गए थे। वह अपनी जमींदारी की देखभाल करते थे। अधिकार छीने जाने पर वह अधिकार के शत्रु हो गए थे। अब फिर वह किसानों का संगठन करने लगे थे, बेगार के विरुद्ध अब फिर उनकी आवाज उठने लगी थी। मनोरमा पर ये सब अत्याचार देख-देखकर उनकी क्रोधाग्नि भड़कती रहती थी। जिस दिन उन्होंने सुना कि मनोरमा अपने महल से निकाल दी गई है, उनके क्रोध का वारापार न रहा। उनकी सारी वृत्तियाँ इस अपमान का बदला लेने के लिए तिलमिला उठीं।

मनोरमा ने उनका तमतमाया हुआ चेहरा देखा, तो काँप उठी।

गुरुसेवक ने आते ही आते पूछा—तुमने महल क्यों छोड़ दिया?

मनोरमा—कोई किसी से जबरदस्ती मान करा सकता है? मुझे वहीं कौन-सा ऐसा बड़ा सुख था, जो महल छोड़ने का दुःख होता? मैं यहाँ भी खुश हूँ।

गुरुसेवक—मैं देख रहा हूँ, बुड्ढा दिन-दिन सठियाता जाता है। विवाह के पीछे अंधा हो गया है।

मनोरमा—भैया, आप मेरे सामने ऐसे शब्द मुँह से न निकालें। आपके पैरों ...ता हूँ।

गुरुसेवक—तुम शब्दों को कहती हो, मैं इनकी मरम्मत करने की फिक्र में हूँ। जरा विवाह का मजा चख लें।

मनोरमा ने त्योरियाँ बदलकर कहा—भैया, मैं फिर कहती हूँ कि आप मेरे सामने ऐसी बातें न करें। मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं है। वह इस समय अपने होश में नहीं हैं। यही क्या, कोई आदमी शोक के ऐसे निर्दय आघात सहकर अपने होश में नहीं रह सकता। मैं या आप उनके मन के भावों का अनुमान नहीं कर सकते। जिस प्राणी ने चालीस वर्ष तक एक अभिलाषा को हृदय में पाला हो, उसी एक अभिलाषा के लिए उचित अनुचित, सब कुछ किया हो और चालीस वर्ष के बाद जब उस अभिलाषा के पूरे होने के सब सामान हो गए हों, एकाएक उसके गले पर छुरी चल जाए, तो सोचिए कि उस प्राणी की क्या दशा होगी? राजा साहब ने सिर पटककर प्राण नहीं दे दिए, यही क्या कम है? कम से कम मैं तो इतना धैर्य न रख सकती। मुझे इस बात का दुःख है कि उनके साथ मुझे जितनी सहानुभूति होनी चाहिए, मैं नहीं कर रही हूँ।

गुरुसेवक ने गम्भीर भाव से कहा—अच्छा, प्रजा पर इतना जुल्म क्यों हो रहा

गुरुसेवक—नोरा ! तुम नाहक जिद करती हो।

मनोरमा—अच्छी बात है, न बताइए। जाइए, अब न पूछूंगी। आज से समझ लीजिएगा कि नोरा मर गई।

गुरुसेवक ने हारकर कहा—अगर मैं कोई बात अनुमान से बता ही दूं, तो तुम क्या कर लोगी ?

मनोरमा—अगर रोक सकूंगी, तो रोकूंगी।

गुरुसेवक—उसको तुम नहीं रोक सकतीं, मनोरमा ! और न मैं ही रोक सकता हूं।

मनोरमा कुछ उत्तेजित होकर बोली—कुछ मुंह से कहिए भी तो।

गुरुसेवक—प्रजा राजा साहब की अनीति से तंग आ गई है।

मनोरमा—यह तो मैं बहुत पहले से जानती हूं ! भारत भी तो अंगरेजों की अनीति से तंग आ गया है। फिर इससे क्या ?

गुरुसेवक—मैं विश्वासघात नहीं कर सकता।

मनोरमा—भैया, बता दीजिए, नहीं तो पछताइएगा।

गुरुसेवक—मैं इतना नीच नहीं हूं। बस, बस, इतना ही बता देता हूं कि राजा साहब से कह देना, विवाह के दिन सावधान रहें।

गुरुसेवक लपककर बाहर चले गए ! मनोरमा स्तम्भित-सी खड़ी रह गई, मानो हाथ के तोते उड़ गए हों। इस वाक्य का आशय उसकी समझ में न आया। हां, इतना समझ गई कि बारात के दिन कुछ न कुछ उपद्रव अवश्य होने वाला है !

कल ही विवाह का दिन था। सारी तैयारियां हो चुकी थीं। संध्या हो गई थी। प्रातःकाल बारात यहां से चलेगी। ज्यादा सोचने विचारने का समय नहीं था। इसी वक्त राजा साहब को सचेत कर देना चाहिए। कल फिर अवसर हाथ से निकल जाएगा। उसने राजा साहब के पास जाने का निश्चय किया; मगर पुछवाए किससे कि राजा साहब हैं या नहीं ? इस वक्त तो वह रोज सैर करने जाते हैं, आज शायद सैर करने न गए हों, मगर तैयारियों में लगे होंगे !

मनोरमा उसी वक्त राजा साहब के दीवानखाने की ओर चली। इस संकट में वह मान कैसे करती ? मान करने का समय नहीं है। चार वर्ष के बाद आज उसने पति के शयनागार में प्रवेश किया। जगह वही थी; पर कितनी बदली हुई पौधों के गमले सूखे पड़े थे, चिड़ियों के पिंजरे खाली। द्वार पर चिक पड़ी हुई थी। राजा साहब कहीं बाहर जाने के लिए कपड़े पहने तैयार थे। मेज पर बैठे जल्दी-जल्दी कोई पत्र लिख रहे थे; मनोरमा को देखते ही कुरसी से चौंककर उठ बैठे और बाहर की ओर चले, मानो कोई भयंकर जन्तु सामने आ गया हो।

मनोरमा ने सामने खड़े होकर कहा—मैं आपसे एक बहुत जरूरी बात कहने आयी हूं। एक क्षण के लिए ठहर जाइए।

राजा साहब कुछ झिझककर खड़े हो गए। जिस अत्याचारी के आतंक सारी रियासत त्राहि-त्राहि कर रही थी, जिसके भय से लोगों के रक्त सूखे ज थे, जिसके सम्मुख जाने का साहस किसी को नहीं होता था, उसे ही देखकर द आती थी। वह भवन जो किसी समय आसमान से बातें करता था, इस समय पृथ् पर मस्तक रगड़ रहा था। वह निराशा की सजीव मूर्ति थी, दलित अभिलाषाओ की जीती-जागती तसवीर, पराजय की करुण प्रतिमा, मर्दित अभिमान का आर्त नाद। और वह मोह का उपासक विवाह करने जा रहा था। मनोरथों पर पड़ी हु तुषार गिर, मूँछ और भौंहों को सम्पूर्ण रूप से ग्रस चुकी थी, जिनकी ठंडी साँसों से दाँत तक गल गए थे वही अपनी झुकी हुई कमर और काँपती हुई टाँगों से प्रणय मन्दिर की ओर दौड़ा जा रहा था। वाह रे, मोह की कुटिल क्रीड़ा!

मनोरमा ने आग्रहपूर्ण स्वर से कहा—जरा बैठ जाइए, मैं आपका बहुत समय न लूँगी।

राजा—बैठूँगा नहीं; मुझे फुरसत नहीं है। जो बात कहनी है, वह कह दो; मगर मुझे ज्ञान का उपदेश मत देना।

मनोरमा—ज्ञान का उपदेश मैं भला, आपको क्या दूँ? केवल इतना ही कहती हूँ कि कल बरात में सावधान रहिएगा।

राजा—क्यों?

मनोरमा—उपद्रव हो जाने का भय है।

राजा—बस, इतना ही कहना है या कुछ और?

मनोरमा—बस इतना ही।

राजा—तो तुम जाओ, मैं उपद्रवों की परवा नहीं करता। लुटेरों का भय उसे होता है, जिसके पास सोने की गठरी हो। मेरे पास क्या है, जिसके लिए डरूँ?

एकाएक उनकी मुखाकृति कठोर हो गई। आँखों में अस्वाभाविक प्रकाश दिखाई दिया। उद्दंडता से बोले—मुझे किसी का भय नहीं है। अगर किसी ने चूँ भी किया तो रियासत में आग लगा दूँगा। खून की नदी बहा दूँगा। विशालसिंह रियासत का मालिक है, उसका गुलाम नहीं। कौन है, जो मेरे सामने खड़ा हो सके? मेरी एक एक तेज निगाह शत्रुओं का पित्ता पानी कर देने के लिए काफी है।

मनोरमा का हृदय करुणा से व्याकुल हो उठा। इन शब्दों में कितनी मानसिक वेदना भरी हुई थी, वे होश की बातें नहीं, बेहोशी की बाढ़ थी। आग्रह करके बोली—फिर भी सावधान रहने में तो कोई बुराई नहीं है। मैं आपके साथ रहूँगी।

राजा ने मनोरमा को घोर सशंक नेत्रों से देखकर कहा—नहीं, नहीं; तुम मेरे साथ नहीं रह सकतीं, किसी तरह नहीं। मैं तुमको खूब जानता हूँ।

यह कहते हुए राजा साहब चले गए। मनोरमा खड़ी सोचती रह गई कि

बातों का क्या आशय है ? इन शब्दों में जो शंका और दुश्चिन्ता छिपी हुई थी, यदि इनकी गन्ध भी उसे मिल जाती, तो शायद उसका हृदय फट जाता, वह वहीं खड़ी-खड़ी चिल्लाकर रो पड़ती। उसने समझा, शायद राजा साहब को उसे अपने साथ रखने में वही संकोचमय आपत्ति है, जो प्रत्येक पुरुष को स्त्रियों से सहायता लेने में होती है। इस वक्त लौट गई; लेकिन वह खटका उससे बराबर लगा हुआ था।

रात अधिक बीत गई थी। बाहर बारात की तैयारियाँ हो रही थीं। ऐसा शानदार जुलूस निकालने की आयोजना की जा रही थी जैसा इस नगर में कभी न निकला हो। गोरी फौज थी, काली फौज थी, रियासत की फौज थी। फौजी बैंड था, कोतल घोड़े, सजे हुए हाथी, फूलों की सँवारी हुई सवारी गाड़ियाँ, सुन्दर पालकियाँ—इतनी जमा की गई थीं कि शाम से घड़ी रात तक उनका ताँता ही न टूटे। बैंड से लेकर डफले और नृसिंहे तक सभी प्रकार के बाजे थे। सैकड़ों ही विमान सजाए गए थे और फुलवारियों की तो गिनती ही नहीं थी। सारी रात द्वार पर चहल-पहल रही और सारी रात राजा साहब सजावट का प्रबन्ध करने में व्यस्त रहे। मनोरमा कई बार उनके दीवानखाने में आई और उन्हें वहाँ न देखकर लौट गई। उसके जी में बार-बार आता था कि बाहर ही चलकर राजा साहब से अनुनय-विनय करूँ; लेकिन भय यही था कि कहीं वह सबके सामने बकझक न करने लगें, उसे कुछ कह न बैठें। जो अपने होश में नहीं, उसे किसकी लज्जा और किसका संकोच ! आखिर, जब इस तरह जी न माना तो वह द्वार पर जाकर खड़ी हो गई शायद राजा साहब उसे देखकर उसकी तरफ आएँ, लेकिन उसे देखकर भी राजा साहब उसकी ओर न आए, बल्कि और दूर निकल गए।

सारे शहर में इस जुलूस और इस विवाह का उपहास हो रहा था, नौकर-चाकर तक आपस में हँसी उड़ाते थे, राजा साहब की चुटकियाँ लेते थे। अपनी धुन में मस्त राजा साहब को कुछ न सूझता था, कुछ न सुनाई देता था। सारी रात बीत गई और मनोरमा को कुछ कहने का अवसर न मिला। तब वह अपनी कोठरी में लौट आयी और ऐसा फूट-फूटकर रोयी, मानो उसका कलेजा बाहर निकल पड़ेगा। उसे आज बीस वर्ष पहले की बात याद आयी, जब उसने राजा से विवाह के पहले कहा था—मुझे आपसे प्रेम नहीं है, और न हो सकता है। उसने अपने मनोभावों के साथ कितना अन्याय किया था। आज वह बड़ी खुशी से राजा साहब की रक्षा के लिए अपना बलिदान कर देगी। इसे वह अपना धन्य भाग्य समझेगी। यह उस अखंड प्रेम का प्रसाद है, जिसका उसने 15 वर्ष तक आनन्द उठाया और जिसकी एक-एक बात उसके हृदय पर अंकित हो गई थी। उन अंकित चिह्नों को कौन उसके हृदय से मिटा सकता है ? निष्ठुरता में इतनी शक्ति नहीं! अपमान में इतनी शक्ति नहीं ! प्रेम अमर है, अमिट है।

दूसरे दिन बारात निकलने से पहले मनोरमा फिर राजा साहब के पास
को तैयार हुई, लेकिन कमरे से निकली ही थी कि दो हथियारबन्द सिपाहिय
उसे रोका।

रानी ने डाँटकर कहा—हट जाओ, नमकहरामो! मैंने ही तुम्हें नौकर र
और तुम मुझसे गुस्ताखी करते हो?

एक सिपाही बोला—हुजूर के हुक्म के ताबेदार हैं, क्या करें? महाराज
साहब का हुक्म है कि हुजूर इस भवन से बाहर न निकलने पावें। हमारा-क्य
अपराध है, सरकार?

मनोरमा—तुम्हें किसने यह आज्ञा दी है?

सिपाही—खुद महाराजा साहब ने।

मनोरमा—मैं केवल एक मिनट के लिए राजा साहब से मिलना चाहती हूँ।

सिपाही—बड़ी कड़ी ताकीद है सरकार, हमारी जान न बचेगी।

मनोरमा ऐंठकर रह गई। एक दिन सारी रियासत उसके इशारे पर चलती थी। आज पहरे के सिपाही तक उसकी बात नहीं सुनते। तब और अब मे कितना अंतर है।

मनोरमा ने वहीं खड़े-खड़े पूछा—बारात निकलने में कितनी देर है:

सिपाही—अब कुछ देर नहीं है। सब तैयारी हो चुकी है।

मनोरमा—राजा साहब की सवारी के साथ पहरे का कोई विशेष प्रबन्ध भी किया गया है?

सिपाही—हाँ हुजूर! महाराज के साथ एक सौ गोरे रहेंगे। महाराज की सवारी उन्हीं के बीच में रहेगी।

मनोरमा संतुष्ट हो गई। उसकी इच्छा पूरी हो गई। राजा साहब सावधान हो गए, किसी बात का खटका नहीं। वह अपने कमरे मे लौट गयी।

चार बजते-बजते बारात निकली। जुलूस की लम्बाई दो मील से कम न थी। भाँति-भाँति के बाजे बज रहे थे, रुपये लुटाए जा रहे थे; पग-पग पर फूलों की वर्षा की जा रही थी। सारा शहर तमाशा देखने को फटा पड़ता था।

इसी समय अहिल्या और शंखधर ने नगर में प्रवेश किया और राजभवन की
ओर चले; किन्तु थोड़ी ही दूर गए थे कि बारात के जुलूस ने रास्ता रोक दिया।
व यह मालूम हुआ कि महाराजा विशालसिंह की बारात है, तो शंखधर ने मोटर
क दी और उस पर खड़े होकर अपना रूमाल जोर से हिलाते हुए जोर से बोले
-सब आदमी रुक जाएँ, कोई एक कदम भी आगे न बढ़े! फौरन महाराजा
हब को सूचना दो कि कुँवर शंखधर आ रहे हैं।

दम के दम में सारी बारात रुक गई। 'कुँवर साहब आ गए'।
के झोंके की भाँति इस सिरे से उस सिरे तक दौड़ गई। जो जहाँ
रह गया। फिर उनके दर्शन के लिए लोग दौड़-दौड़कर जमा

जुलूस तितर-वितर हो गया। विशालसिंह ने यह भगदड़ देखी; तो समझे, कुछ उपद्रव हो गया। गोरों को तैयार हो जाने का हुक्म दे दिया। कुछ अँधेरा हो चला था। किसी ने राजा साहब से साफ तो न कहा कि कुँवर साहब आ गए, बस जिसने सुना, झंडी-झंडे, बल्लम—भाले फेंक-फाँककर भागा। राजा साहब का घबरा जाना स्वाभाविक ही था। उपद्रव की शंका पहले ही से थी। तुरन्त खयाल हुआ कि उपद्रव हो गया। गोरों को बन्दूकें सँभालने का हुक्म दिया।

उसी क्षण शंखधर ने सामने राजा साहब को प्रणाम किया।

शंखधर को देखते ही राजा साहब घोड़े से कूद पड़े और उसे छाती से लगा लिया। आज इस शुभ मुहूर्त में, वह अभिलाषा भी पूरी हो गई, जिसके नाम को वह रो चुके थे। बार-बार कुँवर को छाती से लगाते थे; पर तृप्ति ही न होती थी। आँखों से आँसू की झड़ी लगी हुई थी। जब जरा चित्त शान्त हुआ तो बोले—तुम आ गए बेटा, मुझ पर बड़ी दया की। चक्रधर को लाये हो न ?

शंखधर ने कहा—वह तो नहीं आये।

राजा—आएँगे, मेरा मन कहता है। मैं तो निराश हो गया था, बेटा। तुम्हारी माता भी चली गयी। तुम पहले ही चले गये; फिर मैं किसका मुँह देख-देखकर जीता ? जीवन का कुछ तो आधार चाहिए। अहिल्या तभी से न जाने कहाँ घूम रही है।

शंखधर—वह तो मेरे साथ हैं।

राजा—अच्छा, वह भी आ गई। वाह, मेरे ईश्वर ! सारी खुशियाँ एक ही दिन के लिए जमा कर रखी थीं। चलो, उसे देखकर आँखें ठंडी करूँ।

बारात रुक गई। राजा साहब और शंखधर अहिल्या के पास आये। पिता और पुत्री का सम्मिलन बड़े आनंद का दृश्य था। कामनाओं के वे वृक्ष, जो मुद्दत हुई, निराशा तुषार की भेंट हो चुके थे, आज लहलाते, हरी भरी पत्तियों से लदे हुए सामने खड़े थे। आंसुओं का वेग शान्त हुआ, तो राजा साहब बोले—तुम्हें यह बारात देखकर हँसी आई होगी। सभी हँस रहे हैं; लेकिन बेटा, यह बारात नहीं है। कैसी बारात और कैसा दूल्हा ! यह विक्षिप्त हृदय का उद्गार है, और कुछ नहीं। मन कहता था—जब ईश्वर को मेरी सुधि नहीं, वह मुझ पर जरा भी दया नहीं करते, अकारण ही मुझे सताते हैं, तो मैं क्यों उनसे डरूँ ? जब स्वामी को सेवक की फिक्र नहीं, तो सेवक को स्वामी की फिक्र क्यों होने लगी ? मैंने उतना अन्याय किया, जितना मुझसे हो सका। धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य के विचार दिल से निकाल डाले। आखिर मेरी विजय हुई कि नहीं ?

अहिल्या—लल्लू अपने लिए रानी भी लेता आया है।

राजा—सच कहना ! यह तो खूब हुई। क्या वह भी साथ है ?

मोटर के पिछले भाग में बहू बैठी थी। अहिल्या ने पुकारकर कहा—बहू, पिताजी के चरणों के दर्शन कर लो।

वहू आयी। राजा साहब देखकर चकित हो गए। ऐसा अनुपम सौंदर्य उ
किसी चित्र में भी न देखा था। वहू को गले लगाकर आशीर्वाद दिया और अ
से मुसकराकर बोले—शंखधर तो बड़ा भाग्यवान् मालूम होता है। यह देव
कहाँ से उड़ा लाया ?

अहिल्या—दक्षिण के एक राजा की कुमारी है। ऐसा शील स्वभाव है
देखकर भूख-प्यास बन्द हो जाती है। आपने सच ही कहा—देवकन्या है।

राजा—तो यह मेरी बारात का जुलूस नहीं, शंखधर के विवाह का उत्स
है !

51

कमला को जगदीशपुर मे आकर ऐसा मालूम हुआ कि वह एक युग के बाद अपने घर आयी है। वहाँ की सभी चीजें, सभी प्राणी उसके जाने-पहचाने थे; पर अब उनमें कितना अन्तर हो गया था। उसका विशाल नाचघर बिलकुल बेमरम्मत पड़ा हुआ था। मोर उड़ गए थे, हिरन भाग गए थे और फौवारे सूखे हुए पड़े थे। लताएँ और गमले कब के मिट चुके थे, केवल लम्बे-लम्बे स्तंभ खड़े थे; पर कमला को नाचघर के विध्वंस होने का जरा भी दुःख न हुआ। उसकी यह दशा देखकर उसे एक प्रकार का संतोष हुआ, मानो उसके घृणित विलास की चिता हो। अगर यह नाचघर आज वैसा ही हरा-भरा होता, जैसा उसके समय में था, तो क्या वह उसके अंदर कदम रख सकती ? कदाचित् वह वहीं गिर पड़ती। अब भी उसे ऐसा जान पड़ा कि यह उसके उसी जीवन का चित्र है। कितनी ही पुरानी बातें उसकी आँखों मे फिर गईं, कितनी ही स्मृतियाँ जागृत हो गईं। भय और ग्लानि से उसके रोएँ खड़े हो गए। आह ! यही वह स्थान है, जहाँ उस हतभागिनी ने स्वयं अपने पति को न पहचानकर उसके लिए अपने कलुषित प्रेम का जाल बिछाया था ! आह ! काश, वह पिछली बातें भूल जाती। उस विलास जीवन की याद उसके हृदय पट से मिट जाती ! उन बातों को याद रखते हुए क्या इस जीवन का आनंद उठा सकती थी ? मृत्यु का भयंकर हाथ न जाने कहाँ से निकल-कर उसे डराने लगा। ईश्वरीय दंड के भय से वह काँप उठी। दीनता के साथ मन ईश्वर से प्रार्थना की—भगवान् पापिनी मैं हूँ, मेरे पापों के लिए महेंद्र को दंड त देना। मैं सहस्र जीवन तक प्रायश्चित्त करूँगी, मुझे वैधव्य की आग में न लाना !

नाचघर से निकलकर देवप्रिया ने रानी मनोरमा के कमरे में प्रवेश किया। अनुपम छवि अब मलिन पड़ गई थी। जिस केश राशि को हाथ में लेकर एक वह चकित हो गई थी, उसका अब रूपांतर हो गया था। जिन

माधुर्य का प्रवाह था, अब वह सूखी पड़ी थीं। उत्कंठा की करुण प्रतिमा थी, जिसे देखकर हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। कौन कह सकता था, वह सरला विशाल-सिंह के गले पड़ेगी।

मनोरमा बोली—नाचघर देखने गयी थीं। आजकल तो बेमरम्मत पड़ा हुआ है। उसकी शोभा तो रानी देवप्रिया के साथ चली गयी।

देवप्रिया ने धीरे से कहा—वहाँ आग क्यों न लग गई—यही आश्चर्य है?

मनोरमा—क्या कुछ सुन चुकी हो?

देवप्रिया—हाँ, जितना जानती हूँ, उतना ही बहुत है। और ज्यादा नहीं जानना चाहती।

यहाँ से वह रानी रामप्रिया के पास गयी। उसे देखकर देवप्रिया की आँखें सजल हो गईं। बड़ी मुश्किल से आँसुओं को रोक सकी। आह जिस बालिका को उसने एक दिन गोद खिलाया था, वही अब इस समय यौवन की स्मृति मात्र रह गई थी।

देवप्रिया ने वीणा की ओर देखकर कहा—आपको संगीत से बहुत प्रेम है?

रामप्रिया अनिमेष नेत्र से उसकी ओर ताक रही थी। शायद देवप्रिया की बात उसके कानों तक पहुँची ही नहीं।

देवप्रिया ने फिर कहा—मैं भी आपसे कुछ सीखूँगी।

रामप्रिया अभी तक उसकी मुख छवि निहारने में मग्न थी। अब की भी कुछ सुन सकी।

देवप्रिया फिर बोली—आपको मेरे साथ बहुत परिश्रम न करना पड़ेगा। थोड़ा बहुत जानती भी हूँ।

यह कहकर उसने फिर वीणा उठा ली और यह गीत गाने लगी—

प्रभु के दर्शन कैसे पाऊँ?
बनकर सरस सुमन की लतिका, पद कमलों से लग जाऊँ;
या तेरे मन मन्दिर की हरि, प्रेम पुजारिन बन जाऊँ।
प्रभु के दर्शन कैसे पाऊँ?

आह! यही गीत था, जो रामप्रिया ने कितनी बार देवप्रिया को गाते सुना था, वही स्वर था, वही माधुर्य था, वही लोच था, वही हृदय में चुभनेवाली तान थी। रामप्रिया ने भयातुर नेत्रों से देवप्रिया की ओर देखा और मूर्च्छित हो गई। देवप्रिया को भी अपनी आँखों के सामने एक परदा सा गिरता हुआ मालूम हुआ। उसकी आँखें आप ही आप झपकने लगीं। एक क्षण और; सारा रहस्य खुल जाएगा! कदाचित् कायाकल्प का आवरण हट जाए और फिर न जाने क्या हो? वह रामप्रिया को उसी दशा में छोड़कर इस तरह अपने भवन की ओर चली, मानो कोई उसे दौड़ा रहा हो।

मनोरमा को ज्यों ही एक लौंडी से रामप्रिया के मूर्च्छित हो जाने की खबर

मिली; वह तुरन्त रामप्रिया के पास आयी और घंटों की दौड़धूप के बाद कहीं रामप्रिया ने आँखें खोलीं। मनोरमा को वहाँ देखकर वह फिर सहम उठी और सशंक दृष्टि से चारों ओर देखकर उठ बैठी।

मनोरमा ने कहा—आपको एकाएक यह क्या हो गया? अभी तो बहू यहाँ बैठी थी।

रामप्रिया ने मनोरमा के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—कुछ कहते नहीं बनता बहिन! मालूम नहीं, आँखों को धोखा हो रहा है या क्या बात है। बहू की सूरत बिलकुल देवप्रिया बहिन से मिलती है। रत्ती भर भी फर्क नहीं है।

मनोरमा—कुछ-कुछ मिलती तो है, मगर इससे क्या? एक ही सूरत के दो आदमी क्या नहीं होते?

रामप्रिया—नहीं मनोरमा, बिलकुल वही सूरत है। रंगढंग, बोलचाल सब वही है। गीत भी इसने वही गाया, जो देवप्रिया बहिन गाया करती थीं। बिलकुल वही स्वर था, वही आवाज। अरे बहिन, तुमसे क्या कहूँ, आँखों में वही मुसकराहट है, तिल और मसों में भी फर्क नहीं। तुमने देवप्रिया को जवानी में नहीं देखा। मेरी आँखों में तो आज भी उसकी वह मोहिनी छवि फिर रही है। ऐसा मालूम होता है कि बहिन स्वयं कहीं से आ गई हैं। क्या रहस्य है, कह नहीं सकती, पर यह वही देवप्रिया है, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं।

मनोरमा—राजा साहब ने भी रानी देवप्रिया को जवानी में देखा होगा?

रामप्रिया—हाँ देखा है और देख लेना, वह भी यही बात कहेंगे। सूरत का मिलना और बात है, वही हो जाना और बात है। चाहे कोई माने या न माने, मैं तो यही कहूँगी कि देवप्रिया फिर अवतार लेकर आयी है।

मनोरमा—हाँ, यह बात हो सकती है।

रामप्रिया—सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि इसने गीत भी वही गाया, जो देवप्रिया बहिन को बहुत पसंद था। ज्योतिषियों से इस विषय में राय लेनी चाहिए। देवप्रिया को जो कुछ भोग-विलास करना था, कर चुकी। अब वह यहाँ क्या करने आयी है?

मनोरमा—आप तो ऐसी बातें कर रही हैं, मानो वह अपनी खुशी से आयी है।

रामप्रिया—यह तो होता ही है, और क्या समझती हो? आत्मा को वही जन्म मिलता है, जिसकी उसे प्रबल इच्छा होती है। मैंने कई पुस्तकों में पढ़ा है, आत्माएँ एक जन्म का अधूरा काम पूरा करने लिए फिर उसी घर में जन्म लेती हैं। इसकी कितनी मिसालें मिलती हैं।

मनोरमा—लेकिन रानी देवप्रिया तो राजपाट स्वयं छोड़कर तीर्थयात्रा करने गयी थीं।

रामप्रिया—क्या हुआ बहिन, उनकी भोग तृष्णा

का प्रवाह था, अब वह सूखी पड़ी थीं। उत्कंठा की करुण प्रतिमा थी, जिसे र हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। कौन कह सकता था, वह सरला विशाल-के गले पड़ेगी।

मनोरमा बोली—नाचघर देखने गयी थीं। आजकल तो बेमरम्मत पड़ा हुआ उसकी शोभा तो रानी देवप्रिया के साथ चली गयी।

देवप्रिया ने धीरे से कहा—वहाँ आग क्यों न लग गई—यही आश्चर्य है ?

मनोरमा—क्या कुछ सुन चुकी हो ?

देवप्रिया—हाँ, जितना जानती हूँ, उतना ही बहुत है। और ज्यादा नहीं ानना चाहती।

यहां से वह रानी रामप्रिया के पास गयी। उसे देखकर देवप्रिया की आँखें सजल हो गईं। बड़ी मुश्किल से आँसुओं को रोक सकी। आह जिस बालिका को उसने एक दिन गोद खिलाया था, वही अब इस समय यौवन की स्मृति मात्र रह गई थी।

देवप्रिया ने वीणा की ओर देखकर कहा—आपको संगीत से बहुत प्रेम है ?

रामप्रिया अनिमेष नेत्र से उसकी ओर ताक रही थी। शायद देवप्रिया की बात उसके कानों तक पहुँची ही नहीं।

देवप्रिया ने फिर कहा—मैं भी आपसे कुछ सीखूंगी।

रामप्रिया अभी तक उसकी मुख छवि निहारने में मग्न थी। अब की भी कुछ सुन सकी।

देवप्रिया फिर बोली—आपको मेरे साथ बहुत परिश्रम न करना पड़ेगा। थोड़ा बहुत जानती भी हूँ।

यह कहकर उसने फिर वीणा उठा ली और यह गीत गाने लगी—

प्रभु के दर्शन कैसे पाऊँ ?
बनकर सरस सुमन की लतिका, पद कमलों से लग जाऊँ;
या तेरे मन मन्दिर की हरि, प्रेम पुजारिन बन जाऊँ।
प्रभु के दर्शन कैसे पाऊँ ?

आह ! यही गीत था, जो रामप्रिया ने कितनी बार देवप्रिया को गाते सुना था, वही स्वर था, वही माधुर्य था, वही लोच था, वही हृदय में चुभनेवाली तान थी। रामप्रिया ने भयातुर नेत्रों से देवप्रिया की ओर देखा और मूर्च्छित हो गई। देवप्रिया को भी अपनी आँखों के सामने एक परदा सा गिरता हुआ मालूम हुआ। उसकी आँखें आप ही आप झपकने लगीं। एक क्षण और; सारा रहस्य खुल जाएगा ! कदाचित् कायाकल्प का आवरण हट जाए और फिर न जाने क्या हो ? वह रामप्रिया को उसी दशा में छोड़कर इस तरह अपने भवन की ओर चली, मानो कोई उसे दौड़ा रहा हो।

मनोरमा को ज्यों ही एक लौंडी से रामप्रिया के मूर्च्छित हो जाने की ख

मिली; वह तुरन्त रामप्रिया के पास आयी और घंटों की दौड़धूप के बाद क रामप्रिया ने आँखें खोलीं। मनोरमा को खड़ी देखकर वह फिर सहम उठी औ सशंक दृष्टि से चारों ओर देखकर उठ बैठी।

मनोरमा ने कहा—आपको एकाएक यह क्या हो गया? अभी तो बहू यह बैठी थी।

रामप्रिया ने मनोरमा के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—कुछ कहते नही बनता बहिन। मालूम नही, आँखो को धोखा हो रहा है या क्या बात है। बहू की सूरत बिलकुल देवप्रिया बहिन से मिलती है। रत्ती भर भी फर्क नही है।

मनोरमा—कुछ-कुछ मिलती तो है, मगर इससे क्या? एक ही सूरत के दो आदमी क्या नही होते?

रामप्रिया—नही मनोरमा, बिलकुल वही सूरत है। रगढंग, बोलचाल सब वही है। गीत भी इसने वही गाया, जो देवप्रिया बहिन गाया करती थी। बिलकुल यही स्वर था, यही आवाज। अरे बहिन, तुमसे क्या कहूँ, आँखो मे वही मुसकराहट है, तिल और मसों मे भी फर्क नही। तुमने देवप्रिया को जवानी मे नही देखा। मेरी आँखो में तो आज भी उनकी यह मोहिनी छवि फिर रही है। ऐसा मालूम होता है कि बहिन स्वयं कही से आ गई हैं। क्या रहस्य है, कह नहीं सकती; पर यह वही देवप्रिया हैं, इसमें रत्ती भर भी संदेह नही।

मनोरमा—राजा साहब ने भी रानी देवप्रिया को जवानी मे देखा होगा?

रामप्रिया—हाँ देखा है और देख लेना, वह भी यही बात कहेंगे। सूरत का मिलना और बात है, वही हो जाना और बात है। चाहे कोई माने या न माने, मैं तो यही कहूँगी कि देवप्रिया फिर अवतार लेकर आयी है।

मनोरमा—हाँ, यह बात हो सकती है।

रामप्रिया—सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि इसने गीत भी वही गाया, जो देवप्रिया बहिन को बहुत पसंद था। ज्योतिषियों से इस विषय मे राय लेनी चाहिए। देवप्रिया को जो कुछ भोग-विलास करना था, कर चुकी। अब वह यहाँ क्या करने आयी है?

मनोरमा—आप तो ऐसी बातें कर रही हैं, मानो वह अपनी खुशी से आयी है।

रामप्रिया—यह तो होता ही है, और क्या समझती हो? आत्मा को वही जन्म मिलता है, जिसकी उसे प्रबल इच्छा होती है। मैंने कई पुस्तको मे पढ़ा है, आत्माएँ एक जन्म का अधूरा काम पूरा करने लिए फिर उसी घर में जन्म लेती हैं। इसकी कितनी मिसालें मिलती हैं।

मनोरमा—लेकिन रानी देवप्रिया तो राजपाट स्वयं छोड़कर तीर्थयात्रा करने गयी थी।

रामप्रिया—क्या हुआ बहिन, उनकी भोग तृष्णा शांत न हुई थी। अगर

वही तृष्णा उन्हें फिर लायी है, तो कुशल नहीं है।

मनोरमा—आपकी बातें सुनकर तो मुझे भी शंका होने लगी है।

इसी समय अहिल्या सामने से निकल गयी। मारे गर्व और आनन्द के उसके पांव जमीन पर न पड़ते थे। पति की याद भी इस आनन्द प्रवाह में विलीन हो गई थी; जैसे संगीत की ध्वनि आकाश में विलीन हो जाती है।

52

मुंशी वज्रधर ने यह शुभ समाचार सुना, तो फौरन घोड़े पर सवार हुए और राजभवन आ पहुँचे। शंखधर उनके आने का समाचार पाकर नंगे पांव दौड़े और उनके चरणों को स्पर्श किया। मुंशीजी ने पोते को छाती से लगा लिया और गदगद कंठ से बोले—यह शुभ दिन भी देखना बदा था बेटा, इसी से अभी तक जीता हूँ। यह अभिलाषा पूरी हो गई। बस, इतनी लालसा और है कि तुम्हारा राजतिलक देख लूं! तुम्हारी दादी बैठी तुम्हारी राह देख रही हैं? क्या उन्हें भूल गए?

शंखधर ने लजाते हुए कहा—जी नहीं, शाम को जाने का इरादा था। उन्हीं के आशीर्वाद से तो मुझे पिताजी के दर्शन हुए। उन्हें कैसे भूल सकता हूँ?

मुंशीजी - तुम लल्लू को अपने साथ घसीट नहीं लाए?

शंखधर—वह अपने जीवन में जो पवित्र कार्य कर रहे हैं, उसे छोड़कर कभी न आते। मैंने अपने को जाहिर भी नहीं किया, नहीं तो शायद वह मुझसे मिलना भी स्वीकार न करते।

इसके बाद शंखधर ने अपनी यात्रा का, अपनी कठिनाइयों का और पिता से मिलने का सारा वृत्तान्त कहा।

यों बातें करते हुए मुंशीजी राजा साहब के पास जा पहुँचे। राजा साहब ने बड़े आदर से उनका अभिवादन किया और बोले—आप तो इधर का रास्ता ही भूल गए।

मुंशीजी—महाराज, अब आपका और मेरा संबंध और प्रकार का है। ज्यादा आऊँ जाऊं तो आप ही कहेंगे, यह अब क्या करने आते हैं, शायद कुछ लेने की नीयत से आते होंगे। कभी जिन्दगी में धनी नहीं रहा, पर मर्यादा की सदैव रक्षा की है।

राजा—आखिर आप दिन भर बैठे-बैठे वहां क्या करते हैं, दिल नहीं घबराता? (मुः कराकर) समधिनजी में भी तो अब आकर्षण नहीं रहा।

मुंशीजी—वाह, आप उस आकर्षण का मजा क्या जानेंगे? मेरा तो अनुभव है कि स्त्री-पुरुष का प्रेम सूत्र दिन दिन दृढ़ होता जाता है। अब तो राजकुमार का तिलक हो जाना चाहिए। आप भी कुछ दिन शांति का आनन्द उठा लें।

राजा—विचार तो मेरा भी है; लेकिन मुंशीजी, न जाने क्या बात है। जबसे शंखधर आया है; क्यो शंका हो रही है कि इस मगल में कोई न कोई विघ्न अवश्य पड़ेगा। दिल को बहुत समझाता हूँ; लेकिन न जाने क्यो यह शंका अन्द से निकलने का नाम नही लेती।

मुंशीजी—आप ईश्वर का नाम लेकर तिलक कीजिए। जब टूटी हुई आशाएँ पूरी हो गई, तो अब सब कुशल ही होगा। आज मेरे यहाँ कुछ आनंदोत्सव होगा। आजकल शहर मे अच्छे-अच्छे कलावन्त आए हुए हैं, सभी आएँगे। आपने कृपा की, तो मेरे सौभाग्य की बात होगी।

राजा—नही मुंशीजी, मुझे तो क्षमा कीजिए। मेरा चित्त शांत नही। आपसे सत्य कहता हूँ मुंशीजी, आज अगर मेरा प्राणान्त हो जाए, तो मुझसे बढ़कर सुखी प्राणी संसार में न होगा। अगर प्राण दे देने की कोई सरल तरकीब मुझे मालूम होती, तो जरूर दे देता। शोक की पराकाष्ठा देख ली। आनन्द की पराकाष्ठा भी देख ली। अब और कुछ देखने की आकांक्षा नही है। डरता हूँ; कही पलड़ा फिर न दूसरी ओर झुक जाए।

मुंशीजी देर तक बैठे राजा साहब को तस्कीन देते रहे; फिर सब महिलाओ को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देकर और शंखधर को गले लगाकर वह घोड़े पर सवार हो गए। इस निर्द्वन्द्व जीव ने चिन्ताओ को कभी अपने पास नही फटकने दिया। धन की इच्छा थी, ऐश्वर्य की इच्छा थी; पर उनपर जान न देते थे। संचय करना तो उन्होने सीखा ही न था। थोड़ा मिला तब भी अभाव रहा; बहुत मिला तब भी अभाव रहा। अभाव से जीवन पर्यन्त उनका गला न छूटा। एक समय था, जब स्वादिष्ट भोजनों को तरसते थे। अब दिल खोकर दान देने को तरसते हैं। क्या पाऊँ और क्या दे दूँ? बस, फिक्र थी तो इतनी ही। कमर झुक गई थी, आँखों से सूझता भी कम था; लेकिन मजलिस नित्य जमती थी, हँसी-दिल्लगी करने में कभी न चूकते थे। दिल मे कभी किसी से कीना नही रखा और कभी किसी की बुराई चेती।

\+ \+ \+

दूसरे दिन संध्या समय मुंशीजी के घर बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया गया। ...मंला पोते को छाती से लगाकर खूब रोयी। उसका जी चाहता था; यह मेरे ही रहता। कितना आनन्द होता! शंखधर से बातें करने से उसको तृप्ति ही न ...थी। अहिल्या ही के कारण उसका पुत्र हाथ से गया। पोता भी उसी के ...न हाथ से जा रहा है। इसलिए अब भी उसका मन अहिल्या से न मिलता ...निर्मला को अपने बाल बच्चों के साथ रहकर सभी प्रकार का कष्ट सहना ...था। वह अब इस अन्तिम समय किसी को आँखों की ओट न करना चाहती ...जाने कब दम निकल जाए, कब आँखें बन्द हो जाएँ। बेचारी किसी को ...न सके।

बाहर गाना हो रहा था। मुंशीजी शहर के रईसों की दावत का इंतजाम कर रहे थे। अहिल्या लालटेन ले-लेकर घर भर की चीजों को देख रही थी और अपनी चीजों के तहस-नहस होने पर मन ही मन झुंझला रही थी। उधर निर्मला चारपाई पर लेटी शंखधर की बातें सुनने में तन्मय हो रही थी। कमला उसके पाँव दबा रही थी, और शंखधर उसे पंखा झल रहा था। क्या स्वर्ग में इससे बढ़कर कोई सुख होगा? इस सुख से उसे अहिल्या वंचित कर रही थी। आकर उसका घर मटियामेट कर दिया।

प्रातःकाल जब शंखधर विदा होने लगे, तो निर्मला ने कहा—बेटा, अब बहुत दिन न चलूंगी। जब तक जीती हूँ, एक बार रोज आया करना।

मुंशीजी ने कहा—आखिर सैर करने तो रोज ही निकलोगे। घूमते हुए इधर भी आ जाया करो। यह मत समझो कि यहाँ आने से तुम्हारा समय नष्ट होगा। बड़े बूढ़ों के आशीर्वाद निष्फल नहीं जाते। मेरे पास राजपाट नहीं; पर ऐसा धन है, जो राजपाट से कहीं बढ़कर है। बड़ी सेवा, बड़ी तपस्या करके मैंने उसे एकत्र किया है। वह मुझसे ले लो। अगर साल भर भी बिना नागा अभ्यास करो, तो बहुत कुछ सीख सकते हो। इसी विद्या की बदौलत तुमने पाँच वर्ष देश-विदेश की यात्रा की। कुछ दिन और अभ्यास कर लो, तो पारस हो जाओ।

निर्मला ने मुंशीजी का तिरस्कार करते हुए कहा—भला, रहने दो अपनी विद्या, आए हो वहाँ से बड़े विद्वान् बनके! उसे तुम्हारी विद्या नहीं चाहिए। चाहे तो सारे देश के उस्तादों को बुलाकर गाना सुने। उसे कमी काहे की है?

मुंशीजी—तुम तो हो मूर्ख। तुमसे कोई क्या कहे? इस विद्या से देवता प्रसन्न हो जाते हैं, ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं, तुम्हें कुछ खबर भी है? जो बड़े भाग्यवान् होते हैं, उन्हें ही यह विद्या आती है।

निर्मला—जभी तो बड़े भाग्यवान् हो।

मुंशीजी—तो और क्या भाग्यहीन हूँ? जिसके ऐसा देवरूप पोता हो, ऐसी देवकन्या-सी बहू हो, मकान हो, जायदाद हो, चार को खिलाकर खाता हो, क्या वह अभागा है? जिसकी इज्जत आबरू से निभ जाए, जिसका लोग यश गावें, वही भाग्यवान् है। धन गाड़ लेने से ही कोई भाग्यवान् नहीं हो जाता।

आज राजा साहब के यहाँ भी उत्सव था, इसलिए शंखधर इच्छा रहते हुए भी न ठहर सके।

स्त्रियाँ निर्मला के चरणों को अंचल से स्पर्श करके विदा हो गईं, शंखधर खड़े हो गए। निर्मला ने रोते हुए कहा—कल मैं तुम्हारी बाट देखती रहूँगी।

शंखधर ने कहा—अवश्य आऊँगा।

जब मोटर पर बैठ गए, तो निर्मला द्वार पर खड़ी होकर उन्हें देखती रही। शंखधर के साथ उसका हृदय भी चला जा रहा था। युवकों के प्रेम में उद्विग्नता होती है, वृद्धों का प्रेम हृदय-विदारक होता है। युवक जिससे प्रेम करता है, उससे

प्रेम की आशा भी रखता है। अगर उसे प्रेम के बदले प्रेम न मिले, तो वह प्रेम को हृदय से निकालकर फेंक देगा। वृद्ध जनों को भी क्या यही आशा होती है ? वे प्रेम करते हैं और जानते हैं कि इसके बदले उन्हें कुछ न मिलेगा। या मिलेगी, तो दया। शंखधर की आँखों में आँसू न थे, हृदय में तड़प न थी, वह यों प्रसन्नचित्त चले जा रहे थे, मानो सैर करके लौटे जा रहे हों।

मगर निर्मला का दिल फटा जाता था और मुंशी वज्रधर की आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था।

53

कई दिन गुजर गए। राजा साहब हरि भजन और देवोपासना में व्यस्त थे। इधर 5-6 वर्ष से उन्होंने किसी मन्दिर की तरफ झाँका भी न था। धर्म चर्चा का बहिष्कार सा कर रखा था। रियासत में धर्म का खाता ही खोल दिया गया था। जो कुछ धार्मिक जीवन था, वह वसुमती के दम से। मगर अब एकाएक देवताओं से राजा साहब को फिर श्रद्धा हो आई थी। धर्मखाता फिर खोला गया और जो वृत्तियाँ बन्द कर दी गई थीं, वे फिर से बाँधी गईं। राजा साहब ने फिर चोला बदला। वह धर्म या देवता किसी के साथ निःस्वार्थ प्रेम नहीं रखते थे। जब संतान की ओर से निराशा हो गई, तो उनका धर्मानुराग भी शिथिल हो गया। जब अहिल्या और शंखधर ने उनके जीवन-क्षेत्र में पदार्पण किया, तब फिर धर्म और दान-व्रत की ओर उनकी रुचि हुई। जब शंखधर चला गया और ऐसा मालूम हुआ कि अब उनके लौटने की आशा नहीं है, तो राजा साहब ने धर्म की अवहेलना ही नहीं की, बल्कि देवताओं के साथ जोर-शोर से प्रतिरोध भी करने लगे। धर्म-संगत बातों को चुन-चुनकर बन्द किया। अधर्म की बातें चुन-चुनकर ग्रहण कीं। शंखधर के लौटते ही उनका धर्मानुराग फिर जागृत हो गया। सम्पत्ति मिलने पर ही तो रक्षकों की आवश्यकता होती है।

इन दिनों राजा साहब बहुधा एकान्त में बैठे किसी चिन्ता में निमग्न रहते थे, बाहर कम निकलते। भोजन से भी उन्हें कुछ अरुचि हो गई थी। वह मानसिक अंधकार, जो नैराश्य की दशा में उन्हें घेरे हुए था, अब एकाएक आशा के प्रकाश से छिन्न भिन्न हो गया था। धर्मानुराग के साथ उनका कर्तव्य-ज्ञान भी जाग पड़ा था। जैसे जीवन-लीला के अन्तिम काड में हमें भक्ति की चिन्ता सवार होती है, बड़े-बड़े भोगी भी रामायण और भागवत का पाठ करने लगते हैं, उसी भाँति राजा साहब को भी अब बहुधा अपनी अपकीर्ति पर पश्चात्ताप होता था।

आधी रात से अधिक बीत चुकी थी। रनिवास में सोता पड़ा हुआ था। अहिल्या के बहुत समझाने पर भी मनोरमा अपने पुराने भवन में न आयी। वह

उसी छोटी कोठरी में पड़ी हुई थी। सहसा राजा साहब ने प्रवेश किया। मनोरमा विस्मित होकर उठ खड़ी हुई।

राजा साहब ने कोठरी को ऊपर नीचे देखकर करुण स्वर में कहा—नोरा, मैं आज तुमसे अपना अपराध क्षमा कराने आया हूँ। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, इसे क्षमा कर दो। मुझे इतने दिनों तक क्या हो गया था, कह नहीं सकता। ऐसा मालूम होता है कि रोहिणी की मृत्यु के पश्चात् जो दुर्घटनाएँ हुईं, उन्होंने मेरे चित्त को अस्थिर कर दिया। मुझे ऐसा मालूम होता था कि शत्रुओं से घिरा हूं। मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ उठा करती थीं। किसी पर विश्वास न होता था। अब भी मुझे किसी अनिष्ट की शंका हो रही है; लेकिन वह दशा नहीं। तुम मेरी रक्षा के लिए जो कुछ कहती और करती थीं, उसमें मुझे कपट की गंध आती थी। अबकी ही तुमने मुझे सावधान रहने के लिए कहा था; लेकिन मैं उसका आशय और ही समझ बैठा था और तुम्हारे ऊपर पहरा बिठा दिया था। अपने होश में रहनेवाला आदमी कभी ऐसी बातें न करेगा।

मनोरमा ने सजल नेत्र होकर कहा—उन बातों को याद न कीजिए। आपको भी दुःख होता है और मुझे भी दुःख होता है। मेरा ईश्वर ही जानता है कि एक क्षण के लिए भी मेरे हृदय में आपके प्रति दुर्भावना नहीं उत्पन्न हुई।

राजा—जानता हूँ नोरा, जानता हूँ। तुम्हें इस कोठरी में पड़े देखकर इस समय मेरा हृदय फटा जाता है! अब मुझे मालूम हो रहा है कि दुर्दिन में मन के कोमल भावों का सर्वनाश हो जाता है और इनकी जगह कठोर एवं पाशविक भाव जागृत हो जाते हैं। सच तो यह है नोरा कि मेरा जीवन ही निष्फल हो गया। प्रभुता पाकर मुझे जो कुछ करना चाहिए था, सो कुछ न किया; जो कुछ करने के मंसूबे दिल में थे, एक भी न पूरे हुए। जो कुछ किया, उलटा ही किया। मैं रानी देवप्रिया के राज्य प्रबंध पर हँसा करता था; पर मैंने प्रजा पर जितना अन्याय किया, उतना देवप्रिया ने कभी नहीं किया था। मैं कर्ज को काला साँप समझता था; पर आज रियासत कर्ज के बोझ से लदी हुई है। प्रजा रानी देवप्रिया का नाम आज भी आदर के साथ लेती है। मेरा नाम सुनकर लोग कानों पर हाथ रख लेते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ, मुझे यह रियासत न मिली होती, तो मेरा जीवन कहीं अच्छा होता।

मनोरमा—मुझे भी अकसर यही विचार हुआ करता है।

राजा—अब जीवन-लीला समाप्त करते समय अपने जीवन पर निगाह डालता हूँ, तो मालूम होता है, मेरा जन्म ही व्यर्थ हुआ। मुझसे किसी का उपकार न हुआ। मैं गृहस्थी के उस सुख से भी वंचित रहा, जो छोटे से छोटे मनुष्य के लिए भी सुलभ है। मैंने कुल मिलाकर छः विवाह किए और सातवाँ करने जा रहा था। क्या किसी भी स्त्री को मुझसे सुख पहुंचा? यहाँ तक कि तुम जैसी देवी को भी मैं सुखी न रख सका। नोरा, इसमें रत्ती भर भी बनावट नहीं है कि मेरे

जीवन में अगर कोई मधुर स्मृति है, तो वह तुम हो, और तुम्हारे साथ मैंने यह व्यवहार किया! कह नहीं सकता, मेरी आँखों पर क्या परदा पड़ा हुआ था। शंखधर अपने साथ मेरे हृदय की सारी कोमलताओं को लेता गया था। उसे पाकर आज मैं फिर अपने को पा गया हूँ। सच कहता हूँ, उसके आते ही मैं अपने को पा गया; लेकिन नोरा, हृदय अन्दर ही अन्दर काँप रहा है। मैं इस शंका को किसी तरह दिल से बाहर नहीं निकाल सकता कि कोई अनिष्ट होने वाला है। उस समय मेरी क्या दशा होगी? उसकी कल्पना करके मैं घबरा जाता हूँ, मुझे रोमांच हो जाता है और जी चाहता है, प्राणों का अन्त कर दूँ। ऐसा मालूम होता है, मैं सोने की गठरी लिए भयानक वन में अकेला चला जा रहा हूँ, न जाने कब डाकुओं का निर्दय हाथ मेरी गठरी पर पड़ जाए। बस, यह धड़कन मेरे रोम-रोम में समाई हुई है!

मनोरमा—जब ईश्वर ने गई हुई आशाओं को जिलाया है, तो अब सब कुशल ही होगी। अगर अनिष्ट होना होता तो यह बात ही न होती। मैं तो यही समझती हूँ।

राजा—क्या करूँ नोरा, मुझे इस विचार से शान्ति नहीं होती। मुझे भय होता है कि यह किसी अमंगल का पूर्वाभास है।

यह कहते-कहते राजा साहब मनोरमा के और समीप चले आए और उसके कान के पास मुँह ले जाकर बोले—यह शंका बिलकुल अकारण ही नहीं है, नोरा! रानी देवप्रिया के पति मेरे बड़े भाई होते थे। उनकी सूरत शंखधर से बिलकुल मिलती है। जवानी में मैंने उनको देखा था। हूबहू यही सूरत थी। तिल बराबर भी फर्क नहीं। भाई साहब का एक चित्र भी मेरे अलबम में है। तुम यही कहोगी कि यह शंखधर ही का चित्र है। इतनी समानता तो जुड़वाँ भाइयों में भी नहीं होती। कोई पुराना नौकर नहीं है, नहीं तो मैं इसकी साक्षी दिला देता। पहले शंखधर की सूरत भाई साहब से उतनी ही मिलती थी, जितनी मेरी। अब तो ऐसा जान पड़ता है कि स्वयं भाई साहब ही आ गए हैं।

मनोरमा—तो इसमें शंका की क्या बात है? उसी वृक्ष का फल शंखधर भी तो है।

राजा—आह! नोरा, तुम यह बात नहीं समझ रही हो। तुम्हें कैसे समझा दूँ? इसमें भयंकर रहस्य है, नोरा! मैंने अबकी शंखधर को देखा, तो चौंक पड़ा। सच कहता हूँ, उसी वक्त मेरे रोएँ खड़े हो गए।

मनोरमा—आश्चर्य तो मुझे भी हो रहा है। रानी रामप्रिया आई थी। वह कहती थीं, बहू की सूरत रानी देवप्रिया से बिलकुल मिलती है। वह भी बहू को देखकर विस्मित रह गई थीं।

राजा ने घबराकर कहा—रामप्रिया ने मुझसे यह बात नहीं कही, नोरा! अब कुशल नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ नोरा, मेरी बात को

कुशल नहीं है। कोई भारी दुर्घटना होनेवाली है। हा ! विधाता, इससे तो अच्छा था कि मैं निस्संतान ही रहता।

राजा साहब ने विकल होकर दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया और चिन्ता में डूब गए। एक क्षण बाद मानो मन ही मन निश्चय करके, कि अमुक दशा में उन्हें क्या करना होगा, अत्यन्त स्नेह करुण शब्दों में मनोरमा से बोले—क्यों नोरा, एक बात तुमसे पूछूं, बुरा तो न मानोगी ? मेरे मन में कभी-कभी यह प्रश्न हुआ करता है कि तुमने मुझसे क्यों विवाह किया ? उस वक्त भी मेरी अवस्था ढल चुकी थी। धन का इच्छुक मैंने तुम्हें कभी नहीं पाया। जिन वस्तुओं पर अन्य स्त्रियाँ प्राण देती हैं, उनकी ओर मैंने तुम्हारी रुचि कभी नहीं देखी। क्या वह केवल ईश्वरीय प्रेरणा थी, जिसके द्वारा पूर्व पुण्य का उपहार दिया गया हो ?

मनोरमा ने मुस्कराकर कहा—दंड कहिए।

राजा—नहीं नोरा, मैंने जीवन में जो कुछ सुख और स्वाद पाया, वह तुम्हारे स्नेह और माधुर्य में पाया। वह भाग्य की निर्दय क्रीड़ा है कि जिसे मैं अपना सुख सर्वस्व समझता था, उस पर सबसे अधिक अन्याय किया; किन्तु अब मुझे अपने अन्याय पर दुख के बदले एक प्रकार का सन्तोष हो रहा है। वह परीक्षा थी, जिसने तुम्हारे सतीत्व को और भी उज्ज्वल कर दिया, जिसने तुम्हारे हृदय की उस अपार कोमलता का परिचय दे दिया, जो कठोर होना नहीं जानती, जो कंचन की भाँति तपने पर और भी विशुद्ध एवं उज्ज्वल हो जाती है। इस परीक्षा के बिना तुम्हारे ये गुण छिपे रह जाते। मैंने तुम्हारे साथ जो-जो नीचताएँ कीं, वे किसी दूसरी स्त्री में शत्रुता के भाव उत्पन्न कर देतीं। वह मानसिक वेदना, वह अपमान, वह दुर्जनता दूसरा कौन सहता और सहकर हृदय में मैल न आने देता ? इसका बदला मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ ?

मनोरमा—स्त्री क्या बदले ही के लिए पुरुष की सेवा करती है ?

राजा—इस विषय को और न बढ़ाओ मनोरमा, नहीं तो कदाचित् तुम्हें मेरे मुँह से अपनी अन्य बहिनों के विषय में अप्रिय सत्य सुनना पड़ जाए। मेरे उस प्रश्न का उत्तर दो, जो अभी मैंने तुमसे किया था। वह कौन सी बात थी, जिसने तुम्हें मुझसे विवाह करने की प्रेरणा दी ?

मनोरमा—बता दूं ? आप हँसिएगा तो नहीं ? मैं रानी बनना चाहती थी। मैंने बाबूजी से आपकी तारीफ सुनी थी। इसका भी एक कारण था—आपकी सहृदयता और आपकी विश्वासमय सेवा।

राजा—रानी किसलिए बनना चाहती थी, नोरा ?

मनोरमा—आप राजा जिस लिए बनना चाहते थे, उसी लिए मैं रानी बनना चाहती थी। कीर्ति, दान, यश, सेवा मैं इन्हीं को अधिकार के सुख समझती हूँ; प्रभुता और विलास को नहीं।

राजा—इसका आशय यही है कि कीर्ति तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी

आकांक्षा थी या कुछ और? कीर्ति के लिए तुमने यौवन के अन्य सुखों का त्याग कर दिया। मैं यह पहले से ही जानता था नोरा, और इसीलिए स्वभाव से कृपण होने पर भी मैंने कभी तुम्हारे उपकार के कामों में बाधा नहीं डाली। मेरे लिए सेवा और उपकार गौण बातें थीं। अधिकार, ऐश्वर्य, शासन इन्हीं को मैं प्रधान समझता हूँ। तुम्हारा आदर्श कुछ और है, मेरा कुछ और। जब कीर्ति के लिए तुमने जीवन के और सभी सुखों पर लात मार दी, तो मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसी व्यवस्था कर दूँ, जिससे तुम्हें आगे चलकर किसी बाधा का सामना न करना पड़े। कौन जानता है कि क्या होनेवाला है, नोरा! पर मैं यह आशा कदापि नहीं करता कि शंखधर तुम्हें प्रसन्न रखने की उतनी चेष्टा करेगा, जितनी उसे करनी चाहिए। मैं उसकी बुराई नहीं कर रहा हूँ। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है, इस लिए मैं यह चाहता हूँ कि रियासत का एक भाग तुम्हारे नाम लिख दूँ। मेरी बात सुन लो, मनोरमा! मैंने दुनिया देखी है और दुनिया का व्यवहार जानता हूँ। इसमें न मेरी कोई हानि है, न तुम्हारी और न शंखधर की। तुम्हें इसका अख्तियार होगा कि यदि इच्छा हो, तो अपना हिस्सा शंखधर को दे दो; लेकिन एक हिस्से पर तुम्हारा नाम होना जरूरी है। मैं कोई आपत्ति न मानूंगा।

मनोरमा—मेरी कीर्ति अब इसी में है कि आपकी सेवा करती रहूँ।

राजा—नोरा, तुम अब भी मेरी बातें नहीं समझीं। मेरे मन में कैसी-कैसी शंकाएँ हैं, यह मैं तुमसे कहूँ, तो तुम्हारे ऊपर जुल्म होगा। मुझे लक्षण बुरे दिखाई दे रहे हैं।

मनोरमा ने अबकी दृढ़ता से कहा—शंकाएँ निर्मूल हैं; लेकिन यदि ईश्वर कुछ बुरा ही करनेवाले हों, तो भी मैं शंखधर की प्रतियोगिनी बनना स्वीकार न करूँगी, जिसे मैंने पुत्र की भाँति पाला है। चक्रधर का पुत्र इतना कृतघ्न नहीं हो सकता।

राजा ने जाँघ पर हाथ पटककर कहा—नोरा, तुम अब भी नहीं समझीं। खैर, कल से तुम नए भवन में रहोगी। यह मेरी आज्ञा है।

यह कहते हुए वह उठ खड़े हुए। बिजली के निर्मल प्रकाश में मनोरमा उन्हें खड़ी देखती रही। गर्व से उसका हृदय फूला न समाता था। इस बात का गर्व नहीं था कि अब फिर रियासत में उसकी तूती बोलेगी, फिर वह मनमाना धन लुटाएगी। गर्व इस बात का था कि स्वामी मेरा इतना आदर करते हैं। आज विशालसिंह ने मनोरमा के हृदय पर अन्तिम विजय पायी। आज मनोरमा को अपने स्वामी की सहृदयता ने जीत लिया। प्रेम सहृदयता ही का रसमय रूप है। प्रेम के अभाव में सहृदयता ही दम्पत्ति के सुख का मूल है—

राजा साहब को अब किसी तरह शान्ति न मिलती थी। कोई न कोई भयंकर विपत्ति आनेवाली है, इस शंका को वह दिल से न निकाल सकते थे। दो-चार प्राणियों को जोर-जोर से बातें करते सुनकर वह घबरा जाते थे कि कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई। शंखधर कहीं जाता, तो जब तक कुशल से लौट न आए, वह व्याकुल रहते थे। उनका जी चाहता था कि यह मेरी आँखों के सामने से दूर न हो। उसके मुख की ओर देखकर उनकी आँखें आप ही आप सजल हो जाती थीं। वह रात को उठकर ठाकुरद्वारे में चले जाते और घंटों ईश्वर की वन्दना किया करते। जो शंका उनके मन में थी, उसे प्रकट करने का उन्हें साहस न होता था। वह उसे स्वयं व्यक्त करते थे। वह अपने मरे हुए भाई की स्मृति को मिटा देना चाहते थे, पर वह सूरत आँख से न टलती। कोई ऐसी क्रिया, ऐसी आयोजना, ऐसी विधि न थी, जो इस पर मँडरानेवाले संकट का मोचन करने के लिए न की जा रही हो; पर राजा साहब को शान्ति न मिलती थी।

संध्या हो गई थी। राजा साहब ने मोटर मँगवाई और मुंशी वज्रधर के मकान पर जा पहुँचे। मुंशीजी की संगीत मंडली जमा हो गई थी। संगीत ही उनका दान, व्रत, ध्यान और तप था। उनकी सारी चिन्ताएँ और सारी बाधाएँ संगीत स्वरों में विलीन हो जाती थीं। मुंशीजी राजा साहब को देखते ही खड़े होकर बोले—आइए, महाराज! आज ग्वालियर के एक आचार्य का गाना सुनवाऊँ! आपने बहुत गाने सुने होंगे; पर इनका गाना कुछ और ही चीज है।

राजा साहब मन में मुंशीजी की बेफिक्री पर झुँझलाए। ऐसे प्राणी भी संसार में हैं, जिन्हें अपने विलास के आगे किसी वस्तु की परवाह नहीं। शंखधर से मेरा और इनका एक सा सम्बन्ध है; पर यह अपने संगीत में मस्त हैं और मैं शंकाओं से व्यग्र हो रहा हूँ। सच है—"सबसे अच्छे मूढ़, जिन्हें न व्यापत जगत गति!" बोले—इसीलिए तो आया ही हूँ; पर जरा देर के लिए आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।

दोनों आदमी अलग एक कमरे में जा बैठे। राजा साहब सोचने लगे, किस तरह बात शुरू करूँ? मुंशीजी ने उनको असमंजस में देखकर कहा—मेरे लायक जो काम हो, फरमाइए। आप बहुत चिन्तित मालूम होते हैं। बात क्या है?

राजा—मुझे आपके जीवन पर डाह होता है। आप मुझे भी क्यों नहीं निर्द्वंद्व रहना सिखा देते!

मुंशीजी—यह तो कोई कठिन बात नहीं। इतना समझ लीजिए कि ईश्वर ने संसार की सृष्टि की है और वही इसे चलाता है। जो कुछ उसकी इच्छा होगी, वही होगा। फिर उसकी चिन्ता का भार क्यों लें?

राजा—यह तो बहुत दिनों से जानता हूँ। पर इससे चित्त को शान्ति
होती ! अब मुझे मालूम हो रहा है कि संसार में मन लगाना ही सारे दु:खों
मूल है। जगदीशपुर राज्य को भोगना ही मेरे जीवन का लक्ष्य था। मैंने अ
जीवन में जो कुछ किया, इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए। अपने जीवन प
कभी एक क्षण के लिए भी विचार नहीं किया। जब राज्य न था, तब अवश्य कुछ
दिनों के लिए सेवा के भाव मन में जागृत हुए थे—वह भी बाबू चक्रधर के सत्संग
से। राज्य मिलते ही मेरा कायापलट हो गया। फिर कभी आत्मचिन्तन की नौबत
न आई। शंखधर को पाकर मैं निहाल हो गया। मेरे जीवन मे ज्योति-सी आ गई,
मैं सब कुछ पा गया, पर अब की जब से शंखधर लौटा है, मुझे उसके विषय मे
भयंकर शंका हो रही है, आपने मेरे भाई साहब को देखा था ?

मुंशीजी—जी नही, उन दिनों तो मैं यहाँ से बाहर नौकर था। अजी, तब
इल्म की कदर थी। मिडिल पास करते ही सरकारी नौकरी मिल गई थी। स्कूल
मे कोई लड़का मेरी टक्कर का न था। अध्यापकों को भी मेरी बुद्धि पर आश्चर्य
होता था। बड़े पंडितजी कहा करते थे, यह लड़का एक दिन ओहदे पर पहुँचेगा।
उनकी भविष्यवाणी उस दिन पूरी हुई, जब मैं तहसीलदारी पर पहुँचा।

राजा—भाई साहब की सूरत आज तक मेरी आँखों मे फिर रही है। यह
देखिए, उनकी तसवीर है।

राजा साहब ने एक फोटो निकालकर मुंशीजी को दिखाया। मुंशीजी उसे
देखते ही बोले—यह तो शंखधर की तसवीर है।

राजा—नही साहब, यह मेरे बड़े भाई का फोटो है। शंखधर ने तो अभी तक
तसवीर ही नही खिचवायी न जाने तसवीर खिचवाने से उसे क्यों चिढ़ है।

मुंशीजी—मैं इसे कैसे मान लूँ ? तसवीर साफ शंखधर की है।

राजा—तो मालूम हो गया कि मेरी आँखें धोखा नही खा रही थी।

मुंशीजी—जी हाँ, यकीन मानिए तब तो बड़ी विचित्र बात है।

राजा—अब आपसे क्या अर्ज करूँ ? मुझे बड़ी शंका हो रही है। न रात को
नींद आती है। दिन को बैठे चौंक पड़ता हूँ। प्राणियो की सूरतें कभी इतनी नही
मिलती। भाई साहब ने ही फिर मेरे घर मे जन्म लिया है, इसमे मुझे बिलकुल
शंका नहीं रही। ईश्वर ही जाने क्यों उन्होंने कृपा की है, अगर शंखधर का बाल
भी बाँका हुआ, तो मेरे प्राण न बचेंगे।

मुंशजी—ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल होगी। घबराने की कोई बात नही।
कभी-कभी ऐसा होता है।

राजा—अगर ईश्वर चाहते कि कुशल हो, तो यह समस्या ही क्यों आगे
आती ? उन्हें कुछ न कुछ अनिष्ट करना है। मेरी शंका निर्मूल नही है मुंशीजी !
बहू की सूरत भी रानी देवप्रिया से मिल रही है। रामप्रिया तो बहू को देखकर
चकित हो गई थी वह कहती थी, देवप्रिया ही ने अवतार लिया है। भाई और

भावज का फिर इस घर में अवतार लेना क्या अकारण ही है ? भगवान् अगर तुम्हें फिर वही लीला दिखानी हो, तो मुझे संसार से उठा लो।

मुंशीजी ने अब की कुछ चिंतित होकर कहा—यह तो वास्तव में बड़ी विचित्र बात है !

राजा—विचित्र नहीं है मुंशीजी, इस रियासत का सर्वनाश होनेवाला है ! रानी देवप्रिया ने अगर जन्म लिया है, तो वह कभी सधवा नहीं रह सकती। उसे न जाने कितने दिनों तक अपने पूर्व कर्मों का प्रायश्चित करना पड़ेगा। दैव ने मुझे दंड देने ही के लिए मेरे पूर्व कर्मों के फलस्वरूप यह विधान किया है; पर आप देख लीजिएगा, मैं अपने को उसके हाथों की कठपुतली न बनाऊँगा; अगर मैंने बुरे कर्म किए हैं तो मुझे चाहे जो दंड दो, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। मुझे अंधा कर दो, भिक्षुक बना दो, मेरा एक-एक अंग गल-गलकर गिरे, मैं दाने-दाने का मोहताज हो जाऊँ। ये सारे ही दंड मुझे मंजूर है, लेकिन शंखधर का सिर दुखे, यह मैं नहीं सहन कर सकता। इसके पहले मैं अपनी जान दे दूंगा। विधाता के हाथ की कठपुतली न बनूंगा।

मुंशीजी—आपने किसी पंडित से इस विषय में पूछ-ताछ नहीं की ?

राजा – जी नहीं, किसी से नहीं। जो बात प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, उसे किसी से क्या पूछूं ? कोई अनुष्ठान, कोई प्रायश्चित्त इस संकट को नहीं टाल सकता। उसके रूप की कल्पना करके मेरी आँखों में अँधेरा छा जाता है। पंडित लोग अपने स्वार्थ के लिए तरह-तरह के अनुष्ठान बता देंगे; लेकिन अनुष्ठानों से क्या विधि का विधान पलटा जा सकता है ? मैं अपने को इस धोखे में नहीं डाल सकता। मुंशीजी, अनुष्ठानों का मूल्य मैं खूब जानता हूँ। माया बड़ी कठोर-हृदया होती है। मुंशीजी ! मैंने जीवन पर्यन्त उसकी उपासना की है। कर्म-अकर्म का एक क्षण भी विचार नहीं किया। उसका मुझे यह उपहार मिल रहा है ! लेकिन मैं उसे दिखा दूंगा कि वह मुझे अपने विनोद का खिलौना नहीं बना सकती। मैं उसे कुचल दूंगा, जैसे कोई जहरीले साँप को कुचल डालता है। अपना सर्वनाश अपनी आँखों देखने ही में दुःख है। मैं उस पिशाचिनी को यह अवसर न दूंगा कि वह मुझे रुलाकर आप हँसे। मैं संसार के सबसे सुखी प्राणियों में हूँ। इसी दशा में हूँ और इसी दशा में संसार से विदा हो जाऊँगा। मेरे बाद मेरा निर्माण किया हुआ भवन रहेगा या गिर पड़ेगा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। अपनी आँखों से अपना सर्वनाश न देखूँगा। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इस स्थिति में भी आप कैसे संगीत का आनन्द उठा सकते हैं ?

मुंशीजी ने गम्भीर भाव से कहा—मैं अपनी जिन्दगी में कभी नहीं रोया। ईश्वर ने जिस दशा में रखा, उसी में प्रसन्न रहा। फाके भी किए हैं और आज ईश्वर की दया से पेट भर भोजन भी करता हूँ, पर रहा एक ही रस। न साथ कुछ लाया हूँ, न ले जाऊँगा। व्यर्थ क्यों रोऊँ ?

55

शंखधर राजकुमार होकर भी तपस्वी है। विलास की किसी भी वस्तु से उसे प्रेम नहीं। दूसरों से वह बहुत प्रसन्न होकर बातें करता है। अहिल्या और मनोरमा के पास वह घंटों बैठा गप-शप किया करता है। दादा और दादी के समीप जाकर तो उसकी हँसी की पिटारी-सी खुल जाती है; लेकिन सैर-शिकार से कोसों भागता है। एकांत में बैठा हुआ वह नित्य गहरे विचारों में मग्न रहता है। उसके जी में बार-बार आता है कि पिताजी के पास चला जाऊँ; पर घरवालों के दुःख का विचार करके जाने की हिम्मत नहीं पड़ती। जब उसके पिता ने सेवा-व्रत ले रखा है, तो वह किस हृदय से राजसुख भोगे ? नरम-नरम तकिए उसके हृदय में काँटे के समान चुभते हैं, स्वादिष्ट भोजन उसे जहर की तरह लगता है।

पर सबसे विचित्र बात यह है कि वह कमला से भागता रहता है। युवती देवप्रिया अब वह रानी कमला नहीं है, जो हर्षपुर में तप और व्रत में मग्न रहती थी। वे सभी कामनाएँ, जो रमणी के हृदय में लहरें मारा करती हैं, उदित हो गई हैं। वह नित्य नए रूप बदलकर शंखधर के पास आती है; पर ठीक उसी समय शंखधर को या तो कोई जरूरी काम बाहर ले जाता है, या वह कोई धार्मिक प्रश्न उठा देता है। रात को भी शंखधर कुछ न कुछ पढ़ता-लिखता रहता है। कभी-कभी सारी रात पढ़ने में कट जाती है। देवप्रिया उसकी राह देखती-देखती सो जाती है। विपत्ति तो यह है कि देवप्रिया को पूर्वजन्म की सभी बातें याद हैं, वायुयान का दृश्य भी याद है; पर वह सोचती है, एक बार ऐसा हुआ, तो क्या बार बार होगा ? उसने अपना वैधव्य कितने संयम से व्यतीत किया था। पूर्व-कर्मों का प्रायश्चित्त क्या इतने पर भी पूरा नहीं हुआ ?

प्रकृति माधुर्य में डूबी हुई है। आधी रात का समय है। चारों तरफ चाँदनी छिटकी हुई है। वृक्षों के नीचे कैसा जाल बिछा हुआ है ! क्या पक्षी हृदय को फँसाने के लिए ? नदियों पर कैसा सुन्दर जाल है ! क्या मीन हृदय को तड़पाने के लिए ? ये जाल किसने फैला रखे हैं ?

देवप्रिया ने आज अपने आभूषण उतार दिये हैं, केश खोल दिये हैं और वियोगिनी के रूप में पति से प्रेम की भिक्षा माँगने जा रही है। आईने के सामने जाकर खड़ी हो गई। आईना चमक उठा। देवप्रिया विजय गर्व से मुसकरायी। कमरे के बाहर निकली।

सहसा उसके अन्तःकरण में कहीं से आवाज आयी, 'सर्वनाश !' देवप्रिया के पाँव रुक गए। देह शिथिल पड़ गई। उसने भीत दृष्टि से इधर-उधर देखा। फिर आगे बढ़ी।

उसी समय वायु बड़े वेग से चली। कमरे में कोई चीज 'खट-खट !' करती

हुई नीचे गिर पड़ी। देवप्रिया ने कमरे में जाकर देखा, शंखधर का तैल चि
संगमरमर की भूमि पर गिरकर चूर-चूर हो गया था। देवप्रिया के अन्त:करण
फिर वही आवाज आयी—सर्वनाश! उसके रोएँ खड़े हो गए। पुष्प के समान
कोमल शरीर मुरझा गया। वह एक क्षण तक खड़ी रही। फिर आगे बढ़ी।

शंखधर दीवानखाने में बैठे हुए सोच रहे थे। मेरे बार-बार जन्म लेने का हेतु क्या है? क्या मेरे जीवन का उद्देश्य जवान होकर मर जाना ही है? क्या मेरे जीवन की अभिलाषाएँ कभी पूरी न होंगी? संसार के सब प्राणियों के लिए यदि भोग-विलास वर्जित नहीं है, तो मेरे ही लिए क्यों है? क्या परीक्षा की आग में जलते ही रहना मेरे जीवन का ध्येय है?

देवप्रिया द्वार पर आकर खड़ी हो गई।

शंखधर ने उसका अलंकार विहीन रूप देखा, तो उन्मत्त हो गए। अलंकारों का त्याग करके वह मोहिनी हो गई थी।

देवप्रिया ने द्वार पर खड़े-खड़े कहा—अन्दर आऊँ?

शंखधर के अंत:करण में कहीं से आवाज आयी। मुँह से कोई शब्द न निकला।

देवप्रिया ने फिर कहा—अंदर आऊँ?

शंखधर ने कातर स्वर में कहा—नेकी और पूछ-पूछ!

देवप्रिया—नहीं प्रियतम, तुम्हारे पास आते डर लगता है।

शंखधर ने एक पग आगे बढ़कर देवप्रिया का हाथ पकड़ा और अंदर खींच लिया। उसी वक्त वायु का वेग प्रचंड हो गया। बिजली का दीपक बुझ गया। कमरे में अंधकार छा गया।

देवप्रिया ने सहमी हुई आवाज में कहा—मुझे छोड़ दो!

उसका हृदय धक-धक कर रहा था।

सितार पर चोट पड़ते ही जैसे उसके तार गूँज उठते हैं, वैसे ही शंखधर का स्नायुमंडल थरथरा उठा। रमणी को करपाश में लपेट लेने की प्रबल इच्छा हुई। मन को सँभालकर कहा—घर आयी हुई लक्ष्मी को कौन छोड़ता है?

देवप्रिया—बिना बुलाया मेहमान बिना कहे जा भी तो सकता है।

शंखधर की विचित्र दशा थी। भीतर भय था, बाहर इच्छा। मन पीछे हटता
था, पैर आगे बढ़ते थे। उसने बिजली का बटन दबाकर कहा—लक्ष्मी बिना बुलाए
ही आती प्रिये! कभी नहीं। उपासक का हृदय अव्यक्त रूप से नित्य उसकी
कामना करता ही रहता है। वह मुँह से कुछ न कहे; पर उसके रोम-रोम से
आह्वान के शब्द निकलते हैं।

देवप्रिया की चिरक्षुधित प्रेमाकांक्षा आतुर हो उठी। अनन्त वियोग से
तड़पता हुआ हृदय आलिंगन के लिए चीत्कार करने लगा। उसने अपना सिर
शंखधर के वक्ष स्थल पर रख दिया और दो बाँहें उसके गले में डाल दी। किन्तु

कोमल, कितना मधुर, कितना अनुरक्त स्पर्श था ! शंखधर प्रेमोल्लास से विभोर हो गया। उसे जान पड़ा कि पृथ्वी नीचे कांप रही है और आकाश ऊपर उड़ा जाता है। फिर ऐसा हुआ कि वज्र बड़े वेग से उसके सिर पर गिरा।

वह मूच्छित हो गया।

देवप्रिया के अंतःकरण में फिर आवाज आयी—'सर्वनाश ! सर्वनाश ! सर्वनाश।' घबराकर बोली—प्रियतम, तुम्हें क्या हो गया ? हाय ! तुम कैसे हुए जाते हो ? हाय ! मैं जानती कि मुझ पापिनी के कारण तुम्हारी यह दशा होगी, तो अंतकाल तक वियोगाग्नि में जलती रहती; पर तुम्हारे निकट न आती। प्यारे, आंखें खोलो, तुम्हारी कमला रो रही है।

शंखधर ने आंखें खोल दीं। उनमें अकथनीय शोक था, असहनीय वेदना थी अपार तृष्णा थी।

अत्यंत क्षीण स्वर से बोला—प्रिये ! फिर मिलेंगे। यह लीला उस दिन समाप्त होगी, जब प्रेम में वासना न रहेगी।

चांदनी अब भी छिटकी हुई थी। वृक्षों के नीचे अब भी चांदनी का जाल बिछा हुआ था। जल क्षेत्र में अब भी चांदनी नाच रही थी। वायु-संगीत अब भी प्रवाहित हो रहा था, पर देवप्रिया के लिए चारों ओर अंधकार और शून्य हो गया था।

सहसा राजा विशालसिंह द्वार पर आकर खड़े हो गए।

देवप्रिया ने विलाप करके कहा—हाय नाथ ! तुम मुझे छोड़कर कहां चले गये ? क्या इसीलिए, इसी क्षणिक मिलाप के लिए मुझे हर्षपुर से लाये थे ?

राजा साहब ने यह करुण विलाप सुना और उनके पैरों तले से जमीन निकल गयी। उन्होंने विधि को परास्त करने का संकल्प किया था। विधि ने उन्हें परास्त कर दिया। वह विधि को हाथों का खिलौना बनाना चाहते थे। विधि ने दिखा दिया, तुम मेरे हाथ के खिलौने हो। वह अपनी आंखों से जो कुछ न देखना चाहते थे, वह देखना पड़ा और इतनी जल्द ! आज ही वह मुंशी वज्रधर के पास से लौटे थे। आज ही उनके मुंह से वे अहंकारपूर्ण शब्द निकले थे। आह ! कौन जानता था कि विधि इतनी जल्द यह सर्वनाश कर देगा ! इससे पहले कि वह अपने जीवन का अंत कर दें, विधि ने उनकी आशाओं का अंत कर दिया।

राजा साहब ने कमरे में जाकर शंखधर के मुख की ओर देखा। उनके जीवन का आधार निर्जीव पड़ा हुआ था। यही दृश्य आज से पचास वर्ष पहले उन्होंने देखा था। यही शंखधर था ! हां, यही शंखधर था ! यही कमला थी ! हां, यही कमला थी ! वह स्वयं बदल गए थे। उस समय दिल में मनसूबे थे, बड़े-बड़े इरादे थे। आज नैराश्य और शोक के सिवा कुछ न था।

उनके मुख से विलाप का एक शब्द भी न निकला। आंखों से आंसू की एक बूंद भी न गिरी। खड़े-खड़े भूमि पर गिर पड़े और दम निकल गया।

शंखधर के चले आने के बाद चक्रधर को संसार शून्य जान पड़ने लगा। सेवा
का वह पहला उत्साह लुप्त हो गया। उसी सुन्दर युवक की सूरत आँखों मे
नाचती रहती। उसीकी बातें कानों में गूँजा करती। भोजन करने बैठते, तो उसकी
जगह खाली देखकर उनके मुँह मे कौर न धँसता। हरदम कुछ खोए-खोए से रहते
थे। बार-बार यह जी चाहता था कि उसके पास चला जाऊँ। बार-बार चलने
का इरादा करते, पर पग रुक जाते। साईंगंज से जाने का अब उनका जी नही
चाहता था। इतने दिनों तक वह एक जगह कभी नही रहे। शंखधर अपनी खँजरी
यही छोड़ गया है। चक्रधर के लिए संसार मे इससे बहुमूल्य कोई वस्तु नही है।
शंखधर की पुरानी धोती और फटे हुए कुरते सिरहाने रखकर सोते हैं। रमणी
अपने सुहाग के जोड़े को भी इतनी देख-देख न करती होगी।

संध्या हो गई है। चक्रधर मदिर के दालान मे बैठे हुए चलने की तैयारी कर
रहे हैं। अब यहाँ नही रहा जा सकता। उस देवकुमार को देखने के लिए आज वह
बहुत विकल हो रहे हैं।

गाँव के चौधरी ने आकर कहा—महाराज, आप व्यर्थ गठरी बाँध रहे हैं।
हम लोगो का प्रेम फिर आधे रास्ते से खींच लाएगा। आप हमारी विनती न सुनें,
पर प्रेम की रस्सी को कैसे तोड़ डालिएगा?

चक्रधर—नही भाई, अब जाने दो। बहुत दिन हो गए।

चौधरी का लड़का नीचे रखी हुई खँजरी उठाकर बजाने लगा। चक्रधर ने
उसके हाथ से खँजरी छीन ली और बोले—खँजरी हमें दे दो बेटा, टूट जाएगी।

लड़के ने रोकर कहा—हम खँजरी लेंगे।

चक्रधर बोले - नही भाई, खँजरी न दूँगा। यह खँजरी उस युवक की है,
जो कई दिनों तक मेरे पास रहा था। दूसरे की चीज कैसे दे दूँ?

गाँव के बहुत से आदमी जमा हो गए। चक्रधर विदा हुए। कई आदमी मील
भर तक उनके साथ आये।

लेकिन प्रातःकाल लोग मंदिर पर पूजा करने आये, तो देखा कि बाबा
भगवानदास चबूतरे पर झाड़ू लगा रहे हैं।

एक आदमी बोला—हम कहते थे, महाराज न जाइए, लेकिन आपने न
माना। आखिर हमारी भक्ति खींच लायी न? अब इसी गाँव मे आपको कुटी
बनानी पड़ेगी।

चक्रधर ने सकुचाते हुए कहा—अभी यहाँ कुछ दिन और अन्न-जल है,
भाई! सचमुच इस गाँव की मुहब्बत नही छोड़ती।

चक्रधर ने मन में निश्चय किया, अब शंखधर को देखने का इरादा कभी न

करूँगा। वह अपने घर पहुँच गया। सम्भव है, उसका तिलक भी हो गया हो। मेरी याद भी उसे न आती होगी। मैं व्यर्थ ही उसके लिए इतना चिंतित हूँ। पुत्र सभी के होते हैं, पर उसके पीछे कोई इतना अंधा नहीं हो जाता कि और सब काम छोड़कर बस उसी के नाम रोता रहे।

फिर सोचा—एक बार देख आने में हरज ही क्या है? कोई मुझे बाँध तो रखेगा नहीं। जब उस वक्त कोई न रोक सका, तो आज कौन रोकेगा? जरा देखूं, किस ढंग से राज करता है। मेरे उपदेशों का कुछ फल हुआ या पड़ गया उसी चक्कर में? धुन का पक्का तो जरूर है। कर्मचारियों के हाथ की कठपुतली तो शायद न बने, मगर कुछ कहा नहीं जा सकता। मानवीय चरित्र इतना जटिल है कि बुरे से बुरा आदमी देवता हो जाता है, और अच्छे से अच्छा आदमी भी पशु। मुझे देखकर झेंपेगा तो क्या! मैं यों उसके सम्मुख जाऊँ ही क्यों? दूर ही से देखकर चला आऊँगा। रंग-ढंग तो दो-चार आदमियों से बातें करते ही मालूम हो जाएगा।

जरा भी ज्ञान न हुआ। पर वह कर वही रहे थे, जो उन्हें करना चाहिए था, किसी की बातों का ऊटपटांग जवाब न देते थे, जिन गाड़ियों पर बैठना न चाहि था, उनपर न बैठते थे, जिन स्टेशनों पर उतरना न चाहिए था, वहाँ न उतर थे। अभ्यास बहुधा चेतना का स्थान ले लिया करता है।

तीसरे दिन प्रातःकाल गाड़ी काशी जा पहुँची। ज्यों ही गाड़ी गंगा के पुल प पहुँची, चक्रधर की चेतना जाग उठी। सँभल बैठे। गंगा के बाएँ किनारे पर हरियाली छायी हुई थी। दूसरी ओर काशी का विशाल नगर ऊँची अट्टालिकाओं और गगनचुम्बी मन्दिर-कलसों से सुशोभित सूर्य के स्निग्ध प्रकाश से चमकता हुआ खड़ा था। मध्य में गंगा मंद गति से अनंत की ओर दौड़ी चली जा रही थी, मानो अभिमान से अटल नगर और उच्छृंखलता से झूमती हुई हरियाली से कह रही हो—अनंत जीवन अनंत प्रवाह में है। आज बहुत दिनों के बाद यह चिर-परिचित दृश्य देखकर चक्रधर का हृदय उछल पड़ा। भक्ति का उद्‌गार मन में उठा। एक क्षण के लिए वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गए, गंगा-स्नान की प्रबल इच्छा हुई। इसे वह किसी तरह न रोक सके।

स्टेशन पर कई पुराने मित्रों से उनकी भेंट हो गई। उनकी सूरतें कितनी बदल गई थीं। वे चक्रधर को देखकर चौंके, कुशल पूछी और जल्दी से चले गये। चक्रधर ने मन में कहा—कितने रूखे लोग हैं कि किसी को बातें करने की फ़ुरसत नहीं।

वह एक ताँगे पर बैठकर स्नान करने चले। थोड़ी ही दूर गये थे कि गुरुसेवक सिंह मोटर पर सामने से आते दिखाई दिये। चक्रधर ने ताँगेवाले को रोक दिया। गुरुसेवक ने भी मोटर रोकी और पूछा—क्या अभी चले आ रहे हैं?

चक्रधर—जी हाँ, चला ही आता हूँ?

गुरुसेवक ने मोटर आगे बढ़ा दी। चक्रधर को इनसे इतनी रुखाई की आशा न थी। चित्त खिन्न हो उठा।

दशाश्वमेध घाट पहुँचकर ताँगे से उतरे। इसी घाट पर वह पहले भी स्नान किया करते थे। सभी पंडे उन्हें जानते थे; पर आज किसी ने भी प्रसन्न चित्त से उनका स्वागत नहीं किया। ऐसा जान पड़ता था कि उन लोगों को उनसे बातें करते जब्र हो रहा है किसी ने न पूछा—कहाँ-कहाँ घूमे? क्या करते रहे?

स्नान करके चक्रधर फिर ताँगे पर आ बैठे और राजभवन की ओर चले। ज्यों-ज्यों भवन निकट आता था, उनका आशंकित हृदय अस्थिर होता जाता था।

ताँगा सिंहद्वार पर पहुँचा। वह राज्य पताका, जो मस्तक ऊँचा किए लहराती रहती थी, झुकी हुई थी। चक्रधर का दिल बैठ गया। इतने जोर से धड़कन होने लगी मानो हथौड़े की चोट पड़ रही हो।

ताँगा देखते ही एक बूढ़ा दरबान आकर खड़ा हो गया, चक्रधर को ध्यान से

खा और भीतर की ओर दौड़ा। एक क्षण के अन्दर हाहाकार मच गया। चक्रधर को मालूम हुआ कि वह किसी भयंकर जन्तु के उदर में पड़े हुए, तड़फड़ा रहे हैं।

किससे पूछें, क्या विपत्ति आयी है ? कोई निकट नहीं आता। सब दूर सिर झुकाए खड़े हैं। वह कौन लाठी टेकता हुआ चला आता है ? अरे ! यह तो मुंशी वज्रधर हैं। चक्रधर तांगे से उतरे और दौड़कर पिता के चरणों पर गिर पड़े।

मुंशीजी ने तिरस्कार के भाव से कहा—दो-चार दिन पहले न आते बना कि लड़के का मुँह तो देख लेते। अब आये हो, जबकि सर्वनाश हो गया ! क्या बैठे यही मना रहे थे ?

चक्रधर रोए नहीं, गम्भीर एवं सुदृढ़ भाव से बोले—ईश्वर की इच्छा। मुझे किसी ने एक पत्र तक न लिखा। बीमारी क्या थी ?

मुंशी—अजी, सिर तक नहीं दुखा, बीमारी होना किसे कहते हैं ? बस, होनहार ! तकदीर ! रात को भोजन करके बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे थे। बहू से बातें करते हुए स्वर्ग की राह ली। किसी हकीम वैद्य की अक्ल नहीं काम करती कि क्या हो गया था। जो सुनता है, दाँतों तले अंगुली दबाकर रह जाता है। बेचारे राजा साहब भी इस शोक में चल बसे। तुमने उसे भुला ही दिया था; पर उसे तुम्हारे नाम की रट लगी हुई थी बेचारे के दिल में कैसे-कैसे अरमान थे ! हम और तुम क्या रोएँगे, रोती है प्रजा। इतने ही दिनों में सारी रियासत उस पर जान देने लगी थी। इस दुनिया में क्या कोई रहे ! जी भर गया। अब तो जब तक जीना है, तब तक रोना है। ईश्वर बड़ा ही निर्दयी है।

चक्रधर ने लम्बी सांस खींचकर कहा—मेरे कर्मों का फल है। ईश्वर को दोष न दीजिए।

मुंशी—तुमने ऐसे कर्म किए होंगे; मैंने नहीं किए। मुझे क्यों इतनी बड़ी चोट लगाई ? मैं भी अब तक ईश्वर को दयालु समझता था; लेकिन अब वह श्रद्धा नहीं रही। गुणानुवाद करते सारी उम्र बीत गई। उसका यह फल ! उस पर कहते हो, ईश्वर को दोष न दीजिए। अपने कल्याण ही के लिए तो ईश्वर का भजन किया है, या किसी की जीभ खुजलाती है ? कसम ले लो, जो आज से कभी एक पद भी गाऊँ। तोड़ आया सितार, सारंगी, सरोद, पखावज; सब पटकक तोड़ डाले। ऐसे निर्दयी की महिमा कौन गाए और क्यों ? मर्द आदमी तुम्हा आँखों में आँसू भी नहीं निकलते ? खड़े ताक रहे हो। मैं कहता हूँ—रो लो, न तो कलेजे में नासूर पड़ जाएगा। बड़े-बड़े त्यागी देखे हैं; लेकिन जो पेट भर रोया नहीं, उसे फिर हँसते नहीं देखा। आओ, अन्दर चलो। बहू ने दीवार से सि पटक दिया, पट्टी बांधे पड़ी हुई है। तुम्हें देखकर उसे धीरज हो जायगा! मैं ड हूँ कि वहाँ जाकर कहीं तुम भी रो न पड़ो, नहीं तो उसके प्राण ही निकल जाएँ

यह कहकर मुंशीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया और अंतःपुर में ले

अहिल्या को उनके आने की खबर मिल गई थी। उठना चाहती थी; पर उठने की शक्ति न थी।

चक्रधर ने सामने आकर कहा—अहिल्या !

अहिल्या ने फिर चेष्टा की। वरसों की चिन्ता, कई दिनों के शोक और उपवास एवं बहुत-सा रक्त निकल जाने के कारण शरीर जीर्ण हो गया था। करवट घूमकर दोनों हाथ पति के चरणों की ओर बढ़ाए; पर वह चरणों को स्पर्श न कर सकी, हाथ फैले रह गए, और एक क्षण में भूमि पर लटक गए। चक्रधर ने घबराकर उसके मुख की ओर देखा। निराशा मुस्काकर रह गई थी। नेत्रों में करुण याचना भरी हुई थी।

चक्रधर ने रुँधे हुए स्वर में कहा—अहिल्या, मैं आ गया, अब कहीं न जाऊँगा! ईश्वर से कहता हूँ, कहीं न जाऊँगा। हाय ईश्वर! क्या तू मुझे यही दिखाने के लिए यहाँ लाया था?

अहिल्या ने एक बार तृषित, दीन एवं तिरस्कारमय नेत्रों से पति की ओर देखा। आँखें सदैव के लिए बन्द हो गईं।

उसी वक्त मनोरमा आकर द्वार पर खड़ी हो गई। चक्रधर ने आँसुओं को रोकते हुए कहा—रानीजी, जरा आकर इन्हें चारपाई से उतरवा दीजिए।

मनोरमा ने अन्दर आकर अहिल्या का मुख देखा और रोकर बोली—आपके दर्शन बदे थे, नहीं तो प्राण तो कब के निकल चुके थे। दुखिया का कोई भी अरमान पूरा न हुआ।

यह कहते-कहते मनोरमा की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

उपसंहार

कई साल बीत गए हैं। मुंशी वज्रधर नहीं रहे। घोड़े की सवारी का उन्हें बड़ा शौक था। नर घोड़े ही पर सवार होते थे। बग्घी, मोटर, पालकी इन सभी को वह जनानी सवारी कहते थे। एक दिन जगदीशपुर से बहुत रात गए लौट रहे थे। रास्ते में एक नाला पड़ता था। नाले में उतरने के लिए रास्ता भी बना हुआ था; लेकिन मुंशीजी नाले में उतरकर पार करना अपमान की बात समझते थे। घोड़े ने जस्त मारी, उस पार निकल भी गया, पर उसके पाँव गड्ढे में पड़ गए। गिर पड़ा, मुंशीजी भी गिरे और फिर न उठे। हँस-खेलकर जीवन काट दिया। निर्मला भी पति का वियोग सहने के लिए बहुत दिन जीवित न रहीं। उनकी अन्तिम अभिलाषा, कि चक्रधर फिर विवाह कर लें, पूरी न हो सकी।

देवप्रिया फिर जगदीशपुर पर राज्य कर रही है। हाँ, उसका नाम है। विलासिनी देवप्रिया अब तपस्विनी देवप्रिया है। उसका भविष्य अ

मय नहीं है। प्रभात की आशामयी किरणें उसके जीवन मार्ग को आलोकित कर रही हैं।

रानी मनोरमा नए भवन में रहती हैं। उसने कितनी ही चिड़ियाँ पाल रखी हैं। उन्हीं की देख-रेख में अब वह अपने दिन काटती है। पक्षियों के कलरव में वह अपनी मनोव्यथा को विलीन कर देना चाहती है। उसके शयनागार में सोने के चौखट में जड़ा हुआ एक चित्र दीवार से लटका हुआ है, जिसमें दीवान हरिसेवक के मुँह से निकले हुए ये शब्द अंकित हैं—

'लौंगी को देखो !'

आज से कई साल पहले, जब राजा साहब जीवित थे, मनोरमा को उसके पिता ने यही अंतिम उपदेश दिया था। उसी दिन से यह उपदेश उसका जीवन-मंत्र बना हुआ है।

चक्रधर बहुत दिन घर पर न रहे। माता-पिता के बाद वह घर, घर ही न रहा। फिर दक्षिण की ओर सिधारे! लेकिन अब वह केवल सेवा कार्य ही नहीं करते; उन्हें पक्षियों से बहुत प्रेम हो गया है। विचित्र पक्षियों की उन्हें नित्य खोज रहती है। भक्तजन उनका यह पक्षी-प्रेम देखकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार के पक्षी लाते रहते हैं। इन पक्षियों के अलग-अलग नाम हैं। अलग-अलग उनके भोजन की व्यवस्था है। उन्हें पढ़ाने, घुमाने व चुगाने का समय नियत है।

साँझ हो गई थी। मनोरमा बाग में टहल रही थी। सहसा हौज के पास एक बहुत ही सुंदर पिंजरा दिखाई दिया। उसमें एक पहाड़ी मैना बैठी हुई थी। रानीजी को आश्चर्य हुआ। यहाँ पिंजरा कहाँ से आया? उसके पास कई चिड़ियाँ थीं, जिन्हें उसने सैकड़ों रुपये खर्च करके खरीदा था; पर ऐसी सुंदर एक भी न थी। रंग पीला था, सिर पर लाल दाग था, चोंच इतनी प्यारी कि चूम लेने को जी चाहता था। मनोरमा समीप गई, तो मना बोली—'नोरा! हमें भूल गईं? तुम्हारा पुराना सेवक हूँ।'

मनोरमा के आश्चर्य का पारावार न रहा। उसे कुछ भय सा लगा। इसे मेरा नाम किसने पढ़ाया? किसकी चिड़िया है? यहाँ कैसे आई? इसका स्वामी अवश्य कोई होगा? आता होगा, देखूं कौन है?

मनोरमा बड़ी देर तक खड़ी उस आदमी का इंतजार करती रही। जब अब भी कोई न आया, तो उसने माली को बुलाकर पूछा—यह पिंजरा बाग में कौन लाया?

माली ने कहा—पहचानता तो नहीं हुजूर; पर हैं कोई भले आदमी। मु देर तक रियासत की बातें पूछते रहे। पिंजरा रखकर गए कि और चिड़ियाँ ले आऊँ; पर लौटकर न आए।

रानी—आज फिर आएँगे ?

माली—हाँ हुजूर, कह तो गए हैं।

रानी—आएँ तो मुझे खबर देना।

माली—बहुत अच्छा, सरकार

रानी—सूरत कैसी है, बता सकता है ?

माली—बड़ी-बड़ी आँखें हैं हुजूर, लम्बे आदमी हैं। एक-एक बाल पक रहा है।

रानी ने उत्सुकता से कहा—आएँ तो मुझे जरूर बुला लेना।

रानी पिंजरा लिए चली आई। रात भर वही मैना उसके ध्यान में बसी रही। उसकी बातें कानों में गूँजती रहीं।

कौन कह सकता है, यह संकेत पाकर उसका मन कहाँ-कहाँ विचर रहा था। सारी रात वह मधुर स्मृतियों का सुखद स्वप्न देखने में मग्न रही। प्रातःकाल उसके मन आया, चलकर देखूँ, वह आदमी आया है या नहीं। वह भवन से निकली; पर फिर लौट गयी।

थोड़ी ही देर में फिर वही इच्छा हुई। वह आदमी कौन है, क्या यह बात उससे छिपी हुई थी ? वह बाग के फाटक तक आई; पर वहीं से लौट गई। उसका हृदय हवा के पर लगाकर उस मनुष्य के पास पहुँच जाना चाहता था; पर आह! कैसे जाए ?

चार बजे वह ऊपर के कमरे में जा बैठी और उस आदमी की राह देखने लगी। वहाँ से माली का मकान साफ दिखाई देता था। बैठे-बैठे बड़ी देर हो गई। अँधेरा होने लगा। रानी ने एक गहरी साँस ली। शायद अब न आएँगे।

सहसा उसने देखा, एक आदमी दो पिंजरे दोनों हाथों से लटकाए बाग में आया। मनोरमा का हृदय बाँसों उछलने लगा। सहस्र घोड़ों की शक्तिवाला इंजन से उस आदमी ओर खींचता हुआ जान पड़ा। वह बैठी न रह सकी। दोनों हाथों हृदय को थामे, साँस बन्द किए मनोवेग से आंदोलित वह खड़ी रही। उसने ोचा, माली अभी मुझे बुलाने आता होगा; पर माली न आया और वह आदमी हीं पिंजरा रखकर चला गया। मनोरमा अब वहाँ न रह सकी। हाय! वह चले रहे हैं! तब वह जमीन पर लेटकर फफक-फफककर रोने लगी।

सहसा माली ने आकर कहा—सरकार वह आदमी दो पिंजरे रख गया है र कह गया है कि फिर कभी और चिड़ियाँ लेकर आऊँगा।

मनोरमा ने कठोर स्वर में पूछा—तूने मुझसे उसी वक्त क्यों नहीं कहा ?

माली पिंजरे को उसके सामने जमीन पर रखता हुआ बोला—सरकार, मैं

उसी वक्त आ रहा था; पर उसी आदमी ने मना किया। कहने लगा, अभी सरकार को क्यों बुलाओगे? मैं फिर कभी और चिड़ियाँ लाकर आप ही उनसे मिलूँगा।

रानी कुछ न बोली। पिंजरे में बन्द दोनों चिड़ियों को सजल नेत्रों से देखने लगी।

□□□